हीरसौभाग्य-लघुवृत्तिसमेतं

श्रीहीरसुन्दरमहाकाव्यम् - २

(सटिप्पणीकम्)

कर्ता : पण्डित श्रीदेवविमलगणिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगद्गुरु-हीर-स्वर्गारोहण-चतुःशताब्दी ग्रन्थमाला-५

अर्हम् ॥

पण्डितश्रीदेवविमलगणिविरचितं

श्री हीरसुन्दरमहाकाव्यम्

सटिप्पणीकं

'हीरसौभाग्य' उपरि-लघुवृत्तिसमेतम् ॥

द्वितीयो भागः

संपादकः

श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिकृतमार्गदर्शनानुसारेण

मुनिरत्नकीर्तिविजयः

प्रकाशकः

श्री जैन ग्रन्थप्रकाशन समिति

खम्भात

ई. २००५ सं. २०६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीहीरसुन्दरमहाकाव्यम् - सटिप्पणीकं

(हीरसौभाग्योपरि लघुवृत्तिसमेतम्) ॥

कर्ता : पं. देवविमलगणिः ॥

संपादन : मुनिरत्नकीर्तिविजयः

प्रकाशक : श्री जैन ग्रंथप्रकाशन समिति,
शाह शनुभाई कचराभाई
जीराला पाडो, खंभात-३८८६२०

© सर्वाधिकार सुरक्षित

ई. २००५ | वि.सं. २०६१ | प्रति : ५००

प्राप्तिस्थान : सरस्वती पुस्तक भंडार
११२, हाथीखाना, रतनपोळ,
अहमदाबाद-३८०००१

आवरण चित्र : श्री दिव्यराज राणा
श्री नैनेश सरैया

मूल्य : रू. १५०-००

मुद्रक : क्रिष्ना प्रिन्टरी
हरजीभाई नाथालाल पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाँव,
अहमदाबाद-१३. (फोन : २७४९४३९३)

Jain Education International | For Private & Personal Use Only | www.jainelibrary.org

समर्पणम्

यदीयवात्सल्यरसेन सिक्तं,
वृद्धिं गतं संयमजीवनं मे ।
समर्पये ग्रन्थममुं हि तस्मै,
पूज्याय सूर्योदयसूरिणेऽहम् ॥

- मुनिरत्नकीर्तिविजयः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

श्रीहीरसुंदरमहाकाव्यना बीजा भागनुं प्रकाशन थई रह्युं छे। एना पहेला भागनुं प्रकाशन वि.सं. २०५२मां भावनगरमां थयुं हतुं। ते पछी ९ वर्षना लां...बा गाळे बीजो भाग प्रकाशित थई रह्यो छे। कार्य थयानो हरख छे तो विलंब कर्यानो खेद पण छे ज। अने ते माटे क्षमाप्रार्थी छुं। विलंब माटे कोई बहाना उपजाववा नथी। आळस अने प्रतिबद्धतानो अभाव विलंबमां कारण छे ए मारे कबूलवुं ज जोइए। कार्यमां रुचि ओछी छे एवुं तो नहीं ज कहुं, रुचि तो छे ज छतांय विलंब तो थयो ज छे ए वास्तविकता छे।

आ तो पहेलुं पगलुं छे। हां! ए डगलुं - भले डगमगतुं - पण गुरुभगवंतनी आंगळी झालीने पण मंडायानो अंतरमां आनंद छे। आमां त्रुटिओ हशे ज- छे ज। संशोधनना कशा ज अनुभव वगर मात्र जगद्गुरु•प्रत्येना हृदयना आदर श्रद्धा अने पूज्यभावथी प्रेराइने आ कार्य हाथमां लीधुं हतुं। अने बधे ठेकाणे पूज्यगुरुभगवंतश्रीनुं मार्गदर्शन लईने कर्युं छे। छतांय, मारां मतिमान्द्य अने बिन-अनुभवनां कारणे आमां क्षतिओ रही होय तेने - 'गच्छत: स्खलनं क्वापि'- ए न्याये मारी करीने स्वीकारुं छुं।

आ अने आवां कार्योमां रुचिनुं एक कारण ए पण छे के ज्यारे आवां कार्यो करतां होइए छीए त्यारे, बीजा कोई पण योगो के प्रयोगो द्वारा प्राप्त न थती, मन-वचन-कायाना योगीनी एकाग्रता सहजपणे अनुभवाय छे। एज तो स्वाध्यायनो मोटामां मोटो लाभ छे। अने एटलां माटे ज आवां कार्योमां खूंपी जवानुं- खूंपी रहेवानुं मन थाय छे - गमे छे।

आम तो अत्यारनां संशोधननां क्षेत्र तरफ दृष्टि करीए तो तेमां आ कार्य कंइ बहु मोटुं न ज गणाय, एक नानकडा बिन्दु जेटलुं ज गणाय, तो पण संशोधन क्षेत्रनां - भले नानकडा पण आ कार्यमांथी पसार थवानुं थयुं तेनाथी ते क्षेत्रनो नानकडो पण अनुभव तो थयो ज, जे आगळ उपर आ क्षेत्रमां वधु ऊंडा ऊतरवा माटेनी प्रेरणा पुरी पाडशे। अने बीजी महत्त्वनी अने मोटी वात तो ए छे के आ बहाने जगद्गुरुना जीवन-प्रसंगोमांथी पण पसार थवानुं थयुं। तेनो पण एक अनेरो आनंद छे। आ सामान्य लाभ नथी।

सर्वव्यापी यश:पुञ्ज अने निर्मळ साधुताथी छलकतां एमनां जीवनने मर्यादानुं कवच धारण करेला शब्दो द्वारा वर्णववुं शक्य ज नथी। एमनुं चरित्र, एमणे पोतानां जीवनमां प्रतिष्ठित करेला निस्पृहता, निष्पक्षता, निरपेक्षता वगेरे गुणो द्वारा, "अवधु! निरपक्ष विरला कोई"-मां दर्शावेला ए 'विरलजण'नां दर्शन करावे छे। शासन प्रभावनानुं एवुं एकपण कार्य नथी जे एमना हाथे एमनी निश्रामां थयुं न होय! अने छतांय क्यांय एनो भार नहीं। ते कार्योने एमणे क्यारेय पोतानी ओळख बनावी नथी। एमना गुणो ज एमनी साची ओळख हती अने छे। गुणो ज तो साधुनी साची ओळख होय! करेलां कार्योने काळनो काट लागे य खरो। पण गुणोने काळनी असर नथी होती। ए तो पोते अमर होय छे अने एना धारकने पण अमर बनावे छे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमां एमना तप अने स्वाध्याय वगेरे आराधनाओनुं जे वर्णन छे, वाह ! वांचीने रोमांचित थइ जवाय, हैयुं अहोभावथी झुकी जाय - ए 'जागता जण'नां ओवारणां लेवानुं मन थाय, अने जात माटे शरम पण अनुभवाय के केवा भ्रममां राचीए छीए ! आ ए साधुता छे, जेने देवो झंखे छे अने नमन करे छे । एमनां जीवननो प्रधान सूर छे - साधुता, आत्मजागृति, आत्मभान । एमनां जीवनमां पुण्यनो प्रकर्ष जेम जोवा मळे छे तेम मोह उपरना विजयनो प्रकर्ष-उत्कर्ष पण डगले ने पगले जोवा-अनुभववा मळे छे । अने ते ए ज छे जेने शास्त्रोमां महापुरुषो साची साधुता के आत्मजगृतिना नामे ओळखावे छे । मोह-जय विनानो एकलो पुण्यनो प्रकर्ष साधुता न गणाय, ए तो क्यारेक आत्मा माटे हानिकारक पण बनी शके ।

बे हजार साधुओना पोते नायक ! केवी अने केटली जवाबदारी हशे ? संघ शासन अने समाज प्रत्ये पण एटली ज जवाबदारी । प्रश्नो अने समस्याओ तो त्यांय आवतां ज हशे, अने छतांय केवा हळवा फूल ! बधी ज जवाबदारीओ वच्चे पण केवुं ज्ञानमय, तपोमय जीवन ? केवी चित्तविशुद्धि-आत्मविकासनी लगन ? आज छे एमनुं साचुं जीवन, आट आटली जवाबदारीमां पण हजारो उपवास, आयंबिल, नीवी; सेंकडो छठ, अठम कर्या । पोताना गुरुभगवंतो पासे प्रायश्चित लईने तेनी तपश्चर्याओ पण करी । अने आ बधा ज बाह्यतप उपरांत सौथी महत्त्वनी बात-स्वाध्याय-शास्त्रसर्जन ! एमणे एमनां जीवनमां चार करोडनो स्वाध्याय कर्यो हतो । 'चार करोड' बोलता तो मोढुं ज खुल्लुं रही जाय छे, कल्पनातीत छे । एमनां संयम जीवनना ५६ वर्षमां गणतरी मूको तो रोज-आजीवन २००० गाथानो स्वाध्याय करे त्यारे ५६ वर्षे ४ करोडनो स्वाध्याय थाय । स्वाध्याय एमना श्वास-प्राण साथे वणाई गयो होय एवुं लागे । बळूकी आत्मजागृति के साधुतानी अदम्य खेवना विना आ निष्ठा-ज्ञाननिष्ठा शक्य नथी । पूज्यगुरुभगवंत एक वात कायम करे छे के 'ज्ञान होवुं एक वात छे अने ज्ञानदशा होवी ते बीजी वात छे' । जगद्गुरुनी आ निष्ठा एमनी ज्ञानदशानो पुरावो छे ।

आदर्श नायक केवा होय, आदर्श साधुजीवन केवुं होय तेनो आदर्श नमूनो छे जगद्गुरुनुं जीवन । साधुजीवनमी मर्यादाओ, विधिनिषेधो, गरिमा वगेरेनी जे वातो शास्त्रोमां आवे छे तेनो जीवंत चितार छे जगद्गुरुनुं जीवन । अने एटले ज कंहेवानुं मन थाय छे के मुमुक्षु के संयमीनां जीवनमां एनी मोक्षयात्रामां के चरित्र जीवननां रूडां पालनमां जगद्गुरुनुं चरित्र बहु ज उपकारक छे । साधु जीवननी-साधुतानी ए शिक्षापोथी छे । ए दृष्टिए एनो अभ्यास थवो जोइए ।

जगद्गुरुश्रीनी साधुताना अमृतकुंभनी एकाद छांट पण आ जीवनमां आवे एवा पुरुषार्थना आशिषनी देव-गुरु-धर्मनां चरणे प्रार्थना छे ।

आ कार्यमां डहेलानो उपाश्रय-अमदावाद, शेठ डॉ. अ. पेढीनो भंडार-भावनगर, श्री जैन आत्मानन्द सभा-भावनगर, श्रीहंसविजयजी शास्त्रसंग्रह - वडोदरा - आ बधा भंडारोनी प्रतिओनी झेरोक्ष नकलनो उपयोग कर्यो छे ते माटे ते ते भंडारोना कार्यवाहकोनो आ क्षणे आभार मानुं छुं ।

हील०-लघुवृत्ति ११मा.सर्गना ९मा श्लोक सुधी ज छे । पछी ते प्रतिमां श्लोक-टीका बधा ज पाठो हीसुं० जेवा ज छे । वळी त्यार पछीना पृष्ठोना अक्षरो पण बदलाय छे एटले ११/९ पछीनो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाग पाछळथी लखायो होय ते शक्य छे ।

हीलमां श्लोको तथा तेमनो क्रम हीमु० जेवा ज छे । पण आमां हीसुं०ना क्रमे ज हील०नी टीका गोठवी छे । तेनो क्रमनिर्देश टिप्पणी रूपे नीचे कर्यो छे । अने श्लोकोनो पाठ पण हीसुं०नो ज मूळमां राख्यो छे । पाठान्तर टिप्पणीमां आप्यो छे अने ते श्लोकनी बाजुमां ★ नुं निशान कर्युं छे तेथी ते श्लोको हील०मां हीमु० जेवा ज समझवाना छे, तेनी शरुआतमां नोंध पण मूकी छे ।

हीसुं०मां जे श्लोको नथी अथवा व्युत्क्रमे छे तेनी एक तालिका आपवानो पहेला भागनी प्रस्तावनामां निर्देश कर्यो हतो ते प्रमाणे ते तालिका परिशिष्ट रूपे मूकी छे । परिशिष्ट-२मां, टीकामां आवतां, अवतरणो आप्यां छे । तेनां शक्य मूळ स्थानो शोधीने मेळववा प्रयत्न कर्यो छे ।

पहेला भागनी जेम आमां श्लोक के टीका पूर्वे हीसुं० के हील० एवी संज्ञा करी नथी । मात्र टीकाना टाइपो बदल्या छे जेथी ख्याल आवी जाय छे ।

प्रांते, पूज्य गुरुभगवंते मारा पर विश्वास मूकीने आ कार्य मने सोंप्यु; तेमना ए विश्वासमां हुं केटलो खरो ऊतर्यो छुं ए तो तेओश्रीज कही शके, पण तेओश्रीए अखूट धीरज राखीने मारा आळस अने विलंबने सह्या छे अने आ डगलुं मांडवामां छेक सुधी आंगळी झाली ज राखी छे - ए एमनो महमूलो उपकार छे । आगळ भविष्यमां आवां कार्योमां एमना विश्वासने सवायो करी देखाडवानां बळ माटेनी कृपा पण एमनी पासे ज याचीने विरमुं छुं ।

मुनिरत्नकीर्तिविजय

भगवाननगरनो टेकरो, अमदावाद
भादरवा सुदि-११, वि.सं. २०६१

संज्ञा

हीसुं० - हीरसुन्दर

हील० - हीरसौभाग्यलघुवृत्ति

हीमु० - हीरसौभाग्यमुद्रित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

(प्रथम भागनी)

जगद्गुरु अने 'हीरसौभाग्य'

जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरीश्वरजी महाराज, ए १६मा शतकना एक प्रभावक धर्मपुरुष अने प्रतिभासम्पन्न जैनाचार्य छे. तेओना अहिंसापरायण, करुणा छलकता, अने विश्वकल्याणनी उदात्त भावनाथी मघमघता जीवन अने जीवनकार्यो विशे तेमनी विद्यमानतामां अने त्यार पछी आज सुधीमां अनेक ग्रन्थो रचाया छे. जैन संघना अने विशेषे तपगच्छना इतिहासमां आवी प्रशस्ति भाग्ये ज कोई गच्छनायकने सांपडी छे. तेमना जीवननो ऊंडाणथी अभ्यास करतां अने तेमना विशे जे लखायुं छे तेनुं अवलोकन करतां सहेजे समजाय छे के जगद्गुरु साचा स्वरूपमां लोकवल्लभ युगपुरुष हता. तेओनी सिद्धान्तनिष्ठा, विद्याध्ययन, तपश्चर्या, चरित्ररमणता, प्रतिभा, हृदयनी विशाळता, गच्छनी तथा शासननी धुरानुं संचालन करवानी निपुणता, स्वपक्ष अने परपक्षनो सुमेळ तथा संकलन साधवानी कुनेह, गंभीरता, समय आवे गच्छपति तरीके कडक अथवा मक्कम रीते काम लेवानी दृढता वगेरे विशिष्टताओ परत्वे तेमना विरोधीओमां पण बे मत नहोता. बल्के, आ बधी विशिष्टताओने लीधे ज तेओश्री स्वपरपक्षमां तेमज भक्तो अने विरोधीओमां पण मान्य अने आदरपात्र बनी गया हता. तेमना विशे रचायेली कृतिओमां- श्री जगद्गुरुकाव्य, श्रीहीरविजयसूरि रास जेवी प्रगल्भ रचनाओ उपरान्त हीरसूरि स्वाध्याय, अनेक सज्झायो, सलोका, मांडवणा (वहाण), प्रबन्ध, वगेरे विविध प्रकारनी अढळक रचनाओनो समावेश थाय छे. आ रचनाओ जोतां जगद्गुरुनी लोकवल्लभतानी प्रतीति अनायास थई जाय छे.

आ बधी रचनाओमां शिरमोर समी रचना एटले-**हीरसौभाग्य महाकाव्य**. श्री जगद्गुरुना गुरुभगवंत तपगच्छनायक श्री विजयदानसूरीश्वरजी दादानी शिष्यपरंपरामां ऊतरी आवेल पंडितश्री सिंहविमलगणिना शिष्य पंडितश्री देवविमलगणिए जगद्गुरुनी हयातीमां ज रचेल आ महाकाव्य प्राचीन संस्कृत महाकाव्योनी परंपराने अनुसरतुं एक समृद्ध अने प्रतिभासंपन्न महाकाव्य छे. महाकाव्यनां तमाम लक्षणो धरावतुं, सत्तर सर्गोमां अने टीका सहित आशरे १० हजार श्लोकोमां पथराएलुं अने वळी स्वोपज्ञवृत्तियुक्त आ महाकाव्य माघ अने नैषध जेवां प्राचीन महाकाव्योनी हरोळमां निःशंक ऊभुं रही शके तेम छे; तो आ महाकाव्यना प्रणेता श्रीदेवविमलगणिनी आ काव्यमां ऊपसती कविप्रतिभा तेओने पूर्वना प्रतिभासम्पन्न महाकविओ तेमज टीकाकारोनी पंक्तिमां मूकी आपे छे.

हीरसौभाग्य महाकाव्य तेना काव्यनायक महापुरुषना जेवुं ज सौभाग्यशाळी जणाय छे. आ महाकाव्य जेवुं रचायुं तेवुं लोकप्रिय अने लोकप्रसिद्ध बनी गयुं हतुं. महोपाध्याय श्री धर्मसागरजीगणिए पोतानी रचना-**तपगच्छपट्टावली**-नी स्वोपज्ञवृत्तिमां श्री हीरविजयसूरिनुं संक्षिप्त चरित्रवर्णन करतां नोंध्युं छे के '**तद्व्यतिकरो विस्तरतः श्रीहीरसौभाग्यकाव्यादिभ्योऽवसेयः**' अर्थात्, श्री जगद्गुरुना चरित्रनो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिक वृत्तान्त श्री हीरसौभाग्य वगेरे थकी जाणी लेवो. संवत् १६४८ मां रचायली पट्टावलीमां पण हीरसौभाग्यनो, एक वरिष्ठ अने वृद्ध उपाध्यायजी भगवंत द्वारा, उल्लेख थाय अने हवालो अपाय ते सूचवे छे के आ महाकाव्य १६४८मां तो घणुं प्रचलित अने लोकप्रिय बनी गयुं हशे.

जो के, (भारत ना) अन्यान्य अनेक ग्रन्थभंडारोमां तपास करवा छतां हीरसौभाग्यनी सांपडती अति अल्पसंख्यक प्रतिओ जोतां पाछळथी आ महाकाव्यनुं अध्ययन घटी गयुं हशे, तेम मानी शकाय. परंतु, तेनुं कारण पाछळना सैकाओमां संस्कृतनुं घटी गयेलुं अध्ययन-अध्यापन ज गणवुं जोइए, नहि के आ काव्य के तेना कथानायकनी लोकप्रियतानी ऊणप.

परंतु, छेल्लां थोडां वर्षोमां आ काव्यनुं पठन-पाठन पुन: विपुल प्रमाणमां थतुं जोवा मळे छे. रघुवंश, किरात, माघ, जेवां महाकाव्यो, व्याकरणना तथा संस्कृतना बोधने दृढ/स्फुट करवा माटे जाणवां जोइए तेवी एक परंपरा आपणे त्यां छे, अने वर्षोथी ते प्रमाणे थतुं पण आव्युं छे. पण, निर्णयसागर प्रेसे सर्वप्रथम हीरसौभाग्य तथा विजयप्रशस्ति वगेरे काव्योनुं मुद्रण कर्युं, ते पछी विद्वद्वर्गने अहेसास थवा लाग्यो के पंचमहाकाव्योनी हरोळमां के बराबरीमां ऊभां रही शके तेवां आ काव्यो पण छे, तो तेमनुं अध्ययन संघमां थाय तो शुं खोटुं ? आ रीते धीमे-धीमे आ काव्योनुं अध्ययन संघमां प्रचलित थतुं गयुं, जे आजे तो व्यापक अने विपुल बन्युं छे. हीरसौभाग्यनो अनुवाद पण थयो छे, अने तेनुं पुनर्मुद्रण पण थई चूक्युं छे.

हीरसुन्दर : हीरसौभाग्यनो पूर्वावतार

'हीरसौभाग्य, ए, खरी रीते, ए महाकाव्यनो बीजो अवतार छे. आ काव्यनो पहेलो अवतार तो छे. 'हीरसुन्दर' महाकाव्य. एम समजाय छे के श्रीदेवविमलगणिए, आ काव्य रचनानो उपक्रम सर्वप्रथम हाथ धर्यो हशे त्यारे तेमणे आ काव्यने 'हीरसुन्दर काव्य' लेखे रचवानुं विचार्युं हशे. आनुं प्रमाण एटले :

(अ) 'हीरसौभाग्य'नी हीरसुन्दर काव्यना नामे उपलब्ध थती विभिन्न प्रतिओ, तेमज, (ब) 'हीरसुन्दर'ना रूपमां कर्ताए करवा धारेला काव्यना काचा आलेख(Draft)नी हीरसौभाग्य करतां भिन्न पाठ धरावती-प्रतिओ. अलबत, आ (अ) अने (ब) बन्ने विभागनी जूज प्रतिओ ज मळे छे; तेमांये (ब) विभागनी उपलब्ध प्रतिओ एकाद सर्ग जेटला अंशने ज समजावनारी छे. परंतु, ते प्रतो उपरथी एटलुं स्पष्ट थई शके छे के कर्त्ताए पहेलां 'हीरसुन्दर' नामे काव्य सर्जवानुं विचार्युं हशे, अने पाछळथी 'सोम सौभाग्य'ना अनुकरणरूपे होय, नाममां वधु सौन्दर्य लाववानी अभिलाषाथी होय के कर्त्तानां माता 'सौभाग्यदे'नुं नाम अमर करवानी भावनाथी होय-गमे ते कारणे कर्त्ताए नाममां परिवर्तन कर्युं छे; एटलुं ज नहि, पण (ब) विभागनी प्रतिओ तपासतां, तेमणे काव्यना पद्योनी वाचनामां पण महदंशे शाब्दिक-परिवर्तन कर्युं छे.

'हीरसुन्दर' काव्यनी जे प्रतिओ अत्यारे अमारी समक्ष छे, ते आ प्रमाणे छे :

१. शेठ डोसाभाई अभेचंद पेढी-भावनगर जैन तपा संघना ज्ञानभंडारनी प्रति.

२. श्री जैन आत्मानंद सभा-भावनगरना भंडारनी प्रति.

३. ईडर-जैन संघना ज्ञानभंडारनी प्रति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत प्रकाशनमां मुख्यत्वे क्रमांक १ प्रतिनो ज उपयोग थयो छे. क्रमांक २ प्रति ते क्रमांक १नी नकल होवा उपरान्त अशुद्धिनो भंडार छे तेथी तेनो उपयोग करवो मुनासिब नथी मान्यो. क्र. ३नी प्रति मात्र एक ज सर्ग धरावती प्रति छे. अने तेनी प्रतिलिप आ पुस्तकमां परिशिष्ट-१ तरीके मूकी छे. आ प्रतिनी नकल प्रकाशन कार्य दरम्यान छेक छेल्ले मळी होई तेनो उपयोग आ रीते ज थई शक्यो छे.

आमां क्र. १ वाळी प्रतिमां १५-१६ ए बन्ने सर्गोने पंदरमा सर्ग तरीके ओळखाव्या होई, कुल १६ सर्ग ज होवानुं समजाय छे, पण वस्तुतः १७ सर्गो ज छे. क्र. १ प्रतिनी वाचनामां तथा मुद्रित हीरसौभाग्यनी वाचनामां केटलेक स्थळे तफावत मळे छे, ते तमाम स्थळो तथा तफावतोनो निर्देश जे ते स्थळे पाठनोंधो(Foot notes)मां दर्शावेल छे.

मुद्रित हीसौ०मां केटलेक स्थळे टीका होवा छतां पद्यो नथी. ए पद्यो हीसु०नी प्रति क्र. १मां अकबंध जळवायां छे. ए उपरान्त; मुद्रित हीसौ० मूळ तथा वृत्तिमां घणी अशुद्धिओ जोवा मळे छे, तेनुं मार्जन हीसुं० द्वारा महदंशे थई शके तेम छे : आ बे बाबतो हीसुं० द्वारा थती उपलब्धि गणाय.

क्र. ३नी प्रति ए शुद्धरूपेण हीरसुन्दर काव्यनो खरडो जणाय छे. खरडो एटला माटे के तेना प्रथम सर्गनी मुख्य वाचनानी साथे ज, ते ज प्रतिमां, हांसियामां ते वाचनागत घणां पद्योनां के पद्यांशोना पाठान्तरो पण आलेखायां छे. ईडरनी प्रतिमां मार्जिनमां जोवा मळतां सूक्ष्म अक्षरो ते पादटीप नथी, पण पद्य-पद्यांशना, कर्त्ताना मनमां उद्भवेलां पाठान्तरो छे, ते नोंधवुं जरूरी छे. अने आज कारणे, ईडरनी प्रति ते काव्यना कर्त्ता पं. श्री देवविमलगणिना स्वहस्ताक्षर छे एवुं विधान जरा पण अंदेशा विना कही शकाय तेम छे. शुद्ध पाठ अने मूळपाठनां ज फेरफारोनी नोंध-आ लक्षणो 'कर्त्तानो स्वहस्त' होवा बाबते नक्कर आधार बनी शके. कर्त्ता सिवाय मूळपाठमां फेरफार कोण करे ? कोण करी शके ?

सारांश ए छे, कर्त्ता ए प्रथम हीसुं० रच्युं, ते पण तेना विविध आकार-प्रकारो बदलतां-बदलतां. छेल्ले एक आकारमां स्थिर कर्युं हशे, अने ते पछी हीसुं०नुं हीसौ०मां रूपांतर सूझ्युं हशे. तेथी आपणने हीसौ०नुं मळतु स्वरूप सांपड्युं.

हीरसौभाग्य/हीरसुन्दरनी टीकाओ

जेवुं मूळ हीसुं०/हीसौ० काव्य माटे, तेवुं ज तेनी टीका परत्वे पण छे. कर्त्ताए पोताना आ काव्यनी एक नहि, त्रण-त्रण वृत्तिओ रची छे, जे साहित्यना इतिहासमां एक विरल के अजोड घटना गणाय.

तेमणे पहेलां हीसुं० पर टिप्पणी रूप साव नानी टीका लखी. आपणे सगवड खातर तेने 'हीसुं०'नो पर्याय एवुं नाम आपी शकीए. ए पछी तेमणे हीसौ०नी लघुवृत्ति रची, जेनी एकमात्र प्रति अमदावाद-डेलाना उपाश्रयना भंडारमांथी उपलब्ध थई शकी छे, अने जेनी संपादित वाचना आ प्रकाशनमां आपी छे. अने त्यार पछी तेमणे हीसौ०नी बृहद्वृत्ति बनावी, जे मुद्रित हीसौ०मां उपलब्ध छे.

एक ग्रन्थकारना, एक सर्जकना मनोव्यापारो केवी रीते सतत पलटाता रहे छे, अने पोताना सर्जनमां केवा अने केवी रीते सुधारा-वधारा-उमेरा-परिवर्तन करता रहे छे - तेनुं आ एक श्रेष्ठ दृष्टान्त गणी शकाय.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० के हीसौ०नी आम तो अढळक विशेषताओ अने लाक्षणिकताओ छे. अने ए बधी विशेषताओनो ताग मेळववा माटे आ काव्यनो अनेक दृष्टिए अभ्यास थवो अत्यन्त जरूरी छे. आ काव्यमां धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, भाषाशास्त्रीय, तुलनात्मक, अलंकारिक, साहित्यिक-एम अनेक प्रकारे अध्ययन करवाजोगी सामग्री मळी शके ज. आम छतां, प्रथम नजरे आंखे ऊडीने वळगती बे विशेषताओ ते आ :

(१) आमां कर्त्ताए टांकेलां अनेक ग्रन्थोनां अढळक उदाहरणो-अवतरणो.

(२) आमां मळता देश्य तेमज कर्त्ताना समकालीन व्यवहारोपयोगी भाषाकीय शब्दप्रयोगो.

थोडुं फुटकळ काम आ दिशामां थयुं छे खरुं. पण नक्कर काम हजी सन्निष्ठ-रसिक अभ्यासीनी प्रतीक्षामां ऊभुं ज छे. हीसुं० ना द्वितीय भागमां आवा शब्दो तथा उदाहरणोनी एक नोंध मूकवानी धारणा छे, ए आशाए के कोई अभ्यासी तेनो उपयोग करी शके.

प्रस्तुत प्रकाशन/संपादन परत्वे

संवत् २०४८मां ऊनाक्षेत्रनी स्पर्शना थई, त्यारे जगद्गुरुनी अंतिम भूमि रूप "शाहबाग"नी पण यात्रानो योग बन्यो. जगद्गुरुना स्पृहणीय जीवन-कार्य प्रत्येनो अहोभाव ते पळे प्रबळपणे अभिव्यक्त थतो अनुभवायो. तेओश्रीनी जीर्ण थएल समाधिनो पुनरुद्धार २०५२ सुधीमां करावावो - एवो एक संकल्प पण सहजभावे मनमां जाग्यो.

सं. २०५०मां जगद्गुरुनी जन्मभूमिना क्षेत्र 'पालनपुर'मां चातुर्मासनो योग बन्यो. अपरिचित क्षेत्र, पण एकमात्र आकर्षण ए के त्यां हजी जगद्गुरुनुं जन्मस्थान गणातुं मकान उपाश्रयरूपे मोजूद छे. चोमासामां पण आ सिवाय कोई ज बाबत एवी न मळी के जे त्यां अजाण्याने जवा के रहेवानुं आकर्षण बनी शके. पण ए चोमासामां जगद्गुरुना जन्मस्थान '**नाथीबाईना उपाश्रय**'ना नित्यदर्शननो सरस लाभ थयो, ए ज महत्त्वनुं गणाय. हुं एम विचारुं छुं के जेमना जन्मनुं तथा स्वर्गारोहणनुं - आ बन्ने स्थानो आजे पण मोजूद होय तेवा ऐतिहासिक पुरुष मात्र जगद्गुरु ज छे.

पालनपुरना वर्षावासमां 'हीरसौभाग्य'नुं वांचन करवुं आरंभ्युं. तो मुद्रित प्रतिमां आव्या करती क्षतिओ बहु खटकवा मांडी. शोधकवृत्तिनी प्रेरणाथी हीसौ०नी हस्तप्रतिओ मेळववा प्रयास कर्यो, तो हीसौ०नी बे त्रण ज प्रतिओ मळी, अने वधुमां हीसुं० तथा हील० नी कुल त्रणेक प्रतिओ सांपडी. ए बधी सामग्री तपासतां हीसुं० तथा हील०नी सामग्री हजी अप्रगट होवानुं जणातां तेनुं संपादन तथा प्रकाशन, चतुर्थ शताब्दीना अवसरने अनुलक्षीने, करवानो निश्चय कर्यो; अने मुनि श्रीरत्नकीर्तिविजयजीने ए काम भळाव्युं. तेमणे पण उल्लासभेर ए काम करवानुं स्वीकार्युं; अने तेमणे करेली दोढ वर्षनी महेनतनुं परिणाम आ ग्रंथरूपे आजे प्रगट थई रह्युं छे.

आ संपादनमां प्रथम हीसुं० काव्यनो मूळपाठ, तेनी नीचे तेनी टिप्पणी, अने ते पछी हील० (हीरसौभाग्य परनी लघुवृत्ति)नो पाठ-आ क्रमे वाचना आपवामां आवी छे. हील० प्रतिमां पण मूळ-काव्य पाठ छे ज; परंतु ते हीमु० (हीरसौभाग्य-मुद्रित)ने सर्वांशे मळतो ज पाठ छे, तेथी ते पाठ अत्रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपेल नथी. ज्यां ज्यां हीसुं० अने हील० प्रति के हीमु० वाचनाना पाठमां फेरफार आवे छे त्यां ते पाठ योग्य सूचनपूर्वक मूळमां के पादनोंधरूपे मूकेल छे. पद्योना क्रममां फेरफार होय, कोई पद्यो/पद्य हीसुं०मां न होय एवे स्थळे ते अंगेनी नोंध के पाठ मूकवामां आवेल छे. आवां स्थानोनी तालिका बीजा खण्डमां आपवानी धारणा छे.

प्रथम खण्डरूप प्रकाशनमां हीसुं० ना १ थी ८ सर्गो समाव्या छे. ९ थी १६/१७ सर्गो बीजा भागमां समावाशे. प्रांते आपेलां बे परिशिष्टोमां प्रथममां हीसुं०नी ईडर-भंडारनी प्रतिनी वाचना छे. ए प्रति हीसुं० ना प्रथम सर्गात्मक छे, तेमज तेमां कर्ताए स्वयं तेना पाठांतरो के रूपांतरो नोंधेलां छे. ए अक्षरो झेरोक्स नकलमां जेटला उकेली शकाया तेटला अहीं आप्या छे. परंतु आ प्रतिनो पाठ अहीं प्रथम वखत प्रकाशमां आवे छे, जे अभ्यासीओ माटे खूब उपयोगी थशे तेवी श्रद्धा छे. द्वितीय परिशिष्टमां ८ सर्गोमां पद्योनी अकारादि-सूचि आपी छे.

आ कार्य माटे पोताना भंडारोनी प्रतिओनी झेरोक्स नकलो आपवा बदल १. डहेलानो उपाश्रय-अमदावाद, २. शेठ डो. अ. पेठीनो भंडार-भावनगर, ३. श्री जैन आत्मानन्दसभा-भावनगर, ४. ईडर-संघ भंडार-आ बधाना कार्यवाहकोनो ऋणस्वीकार करीए छीए. ईडरनी प्रतिनी नकल माटे पन्यास श्रीमुनिचन्द्रविजयजी गणि (झींझुवाडा)नो पण आभार मानवो जोईए.

आ ग्रंथनुं संपादन मुनि रत्नकीर्तिविजयजीए खूब रस अने खंतथी कर्युं छे. संपादन-संशोधन माटेनो तेमनो आ प्रथम ज प्रयास होवा छतां आ कार्यमां तेमणे प्रशस्य गति अने निपुणता दाखवी छे, ते ग्रंथनुं अवलोकन करनारने अवश्य जणाई आवशे. आम छतां 'गच्छतः स्खलनं क्वापि' ए न्याये, तेमनो आ प्रथम ज अनुभव तथा प्रयास होई क्यांय पण क्षति जणाय तो सुज्ञ जनो ध्यान दोरे तेवी तेमनी प्रार्थना, अहीं मारा द्वारा तेओ प्रगट करे छे.

ग्रंथना प्रूफवाचन तथा अन्यान्य कार्योमां मुनिश्रीविमलकीर्तिविजयजी, मुनि श्री धर्मकीर्तिविजयजी तथा मुनि श्री कल्याणकीर्तिविजयजीनो भरपूर साथ मळ्यो छे, ते पण अहीं नोंधवुं जोईए.

प्रांते, जगद्गुरुनी ४००मी स्वर्गारोहण-तिथि उजवणीरूपे अने आराधनारूपे आ ग्रंथनुं प्रकाशन थई रह्युं छे, तेनी पाछळ श्री गुरुभगवंतनी कृपा ज महत्त्वपूर्ण परिबळ छे, अने ते सदाय वरसती ज रहो तेवी प्रार्थना साथे-

भावनगर **— विजयशीलचन्द्रसूरि**

पर्युषणमहापर्व-सं. २०५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमः

- शासनदेवीप्रकटीभवन-गुरुप्रश्न-तदुत्तर-गमन-चन्द्रतारास्त-तमस्तमीविरामदिनदिनकरोदय-श्रीविजयसेनसूरिसूरिपददान-नन्दिभवन-मेघजीऋषिसमागमन-गन्धारपुरगमनवर्णनो नाम नवमः सर्गः ०१
- दिल्लीमण्डलवर्ण[न]-दिल्लीनगरीवर्णन-हमाउं-तत्पुत्राकब्बरसाहिवर्णन-फतेपुराकब्बरसभा-साहिप्रश्न-तत्सभ्यप्रोक्तश्रीहीरविजयसूरिगुणवर्णनो नाम दशमः सर्गः ३४
- अकब्बरसाहिपुरस्तदाकारितदूतद्वन्द्वागमनविज्ञपनतत्प्रेषणाकमिपुरपतिपार्श्वागमनश्राद्धा-कारणसूरिपार्श्वप्रस्थापन-तदागमनकथनसूरिप्रस्थानशुभशकुनावलोकानाकमिपुरागमन-खानसम्मुखागमनात्ममन्दिरप्रापणगजाश्वादिढौकनतन्निषेधखानचमत्कृतिकरणवसतिप्रवेश-नादिवर्णनो नाम एकादशः सर्गः ७०
- अकमिपुरप्रस्थान-श्रीविजयसेनसूरिसम्मुखागमन-पत्तनसमवसरण-तत्प्रस्थान-श्रीविजयसेनसूरिपश्चाद्वलन-सिद्धपुरागमन-मार्गोल्लङ्घना-जुनपल्लीपतिस्त्रीनमनादि-अर्बुदाचल-तदधिरोहण-विमलवसतिप्रमुखचैत्य-भगवत्प्रणमनस्तवनादिवर्णनो नाम द्वादशः सर्गः १००
- शिवपुरीसमागमन - सुरत्राणनृपमहोत्सवकरण-आउआपुरेशताह्लासाधुपूजाप्रभावनानिर्मापण-मेडतानगरागमन-नागपुरीयविक्रमपुरीयसङ्घमहोत्सवकरण-फलवर्द्धिपार्श्वनाथयात्राकरण-महोपाध्यायश्रीविमलहर्षगणि पं० सी (सिं)हविमलगणिपुरःप्रेषण-साहिमिलन-तदुदन्ताकर्णनाऽभिरामावादागमन-वाचकसम्मुखागम-श्रीसङ्घसम्मुखकरणोत्सव-साहिमिलन-कुशलप्रश्न-दूताकारण-तथागमविधिकथन-तीर्थकथन-साहिजाताशीःप्रदानवर्णनो नाम त्रयोदशः सर्गः १२६
- अकब्बरगोष्ठी-मृगयानियमन- सकलजन्तुजातसातनिर्विशनाशीर्वचन-तीर्थयात्रा-गूर्जरागमना-ऽमारि-जीजिया-शत्रुञ्जयशैलार्पणदिफुरमानप्रदानादिवर्णनो नाम चतुर्दशः सर्गः १६१
- श्रीशत्रुञ्जयशैलवर्णनो नाम पञ्चदशः सर्गः २०७
- सङ्घागमन-यात्राकरण-माहात्म्यवर्णनो नाम पञ्चदशः (षोडशः) सर्गः २३१
- शत्रुञ्जययात्राकरणा-नन्तरप्रस्थान-शत्रुञ्जयासिन्धूत्तरणा-ऽजयपार्श्वनाथयात्राकरण-तन्महिमवर्णन-द्वीपसङ्घसम्मुखागमनो-न्नतनगरपवित्रीकरण-संलेखनाराधनाविधाना-ऽनशनपूर्वकस्वर्लोकगमन-श्रीविजयसेनसूरिगणैश्वर्या-ऽशीर्वादवर्णनो नाम षोडशः (सप्तदशः) सर्गः २५२

परिशिष्ट-१	हीरसुन्दरकाव्यसत्कपद्यानामकाराद्यनुक्रमः	३३१
परिशिष्ट-२	ग्रन्थान्तर्गतोद्धरणानि	३५६
परिशिष्ट-३	ग्रन्थान्तर्निर्दिष्टा गूर्जरभाषाप्रयोगाः	३८४
परिशिष्ट-४	ग्रन्थान्तर्गतविशेषनामानि	३८६
परिशिष्ट-५	हीसुं० हीमु० हील० मध्ये श्लोकतालिका	४१०
परिशिष्ट-६	हीमु० हीसुं० हील० - अन्तर्गता ये श्लोका यत्र न सन्ति तेषां सूचिः	४११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथाय नमः ॥

पण्डितश्रीदेवविमलगणिविरचितम्

श्री'हीरसुन्दर' महाकाव्यम्

(द्वितीयो भागः)

ऐँ नमः

॥ अथ नवमः सर्गः ॥

[१]अथ सा [२]त्रिदशी [३]सूरिपुरुहूतपुरो व्यभात् ।
[४]मुक्तिसीमन्तिनीमुक्तदूतीव [५]विवरीषया ॥१॥

(१) अथ - देवीसमागमानन्तरम् । (२) शासनदेवता । (३) हीरविजयसूरीन्द्रस्याऽग्रे । (४) सिद्धिवधूप्रेषितसन्देशहारिकेव । (५) पाणिग्रहणचिकीर्षया ॥१॥

अथेत्यनन्तरं सा सुरी सूरीन्द्रपुरो भाति स्म । उत्प्रेक्ष्यते - विशेषेण महामहपुरस्सरं वरीतुमिच्छया मुक्ता मुक्तिस्त्रीदूतीव ॥१॥

[१]वाग्विलासैः सृजन्तीव [२]हारहूरावहेलनाम् ।
[३]तृणतां च नयन्तीव [४]निक्कणं वेणुवीणयोः ॥२॥

पिकीव पञ्चमोद्गारं [२]ऋतोः [१]सख्युर्मनोभुवः ॥
[३]गीर्वाणगृहिणी वाणी [४]श्रमणेन्दोः पुरोऽग्रहीत् ॥३॥ युग्मम् ॥

(१) वचनरचनाभिः । (२) द्राक्षाणामवगणनाम् । (३) पुनस्तृणीकुर्वन्ती(ती) । (४) वंशवीणारवम् ॥२॥

(१) स्मरमित्रस्य । (२) ऋतोर्वसन्तस्य । "सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनम्" इति नैषधे । (३) देवी । (४) सूरीन्द्रस्याऽग्रे । (५) अवादीदित्यर्थः ॥३॥ युग्मम् ॥

हारहूरावगणनां कुर्वती पुनर्वंशविपञ्च्योर्न किञ्चित्करतां प्रापयन्ती सती सा वचनमुवाच । यथा काममित्रस्य ऋतोर्वसन्तस्य पञ्चमध्वनिं पिकी गृह्णाति । पञ्चमालापं कुरुते इत्यर्थः ॥२-३॥

स्वयं [१]श्रमणशक्रेण ध्यानेनेवाऽ[२]नुगामिना ।
यद[३]ाहूता[४]ऽनुगृह्याऽहं [५]तत्र[1] हेतुः प्रसाद्यताम् ॥४॥★

(१) मुनीन्द्रेण । (२) सेवकेनेव । (३) आकारिता । (४) प्रसादं विधाय । (५) आकारणे । (६) कथ्यताम् ॥४॥

---

1. कारणं तत्प्रसाद्यताम् । हीमु० । ★ एतच्चिह्नाङ्किताः श्लोका हीलप्रतौ हीमुवद् दृश्यन्ते । एवं सर्वत्र ज्ञेयम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथाऽनुगामिना सेवकेनाऽऽहूयते तद्वदहमनुग्रहं कृत्वाऽऽहूता तत्कारणं प्रसाद्यताम् ॥४॥

[१]व्यापार्य कार्ये क्वचन [२]किङ्करीं मां [३]कृतार्थय ।
वज्रस्वामीव [४]पद्मस्याऽर्थने [५]पाथोधिनन्दनाम् ॥५॥

(१) आदिश्य-आज्ञां दत्वा । (२) सेविकाम् । (३) सफलीकुरु । (४) कमलानयने । (५) लक्ष्मीमिव ॥५॥

हे सूरीन्द्र ! आज्ञां दत्वा मां कृतार्थय । यथा **वज्रस्वामी** सहस्रपत्रपङ्कजमार्गणेन ग्रहणेन लक्ष्मीं कृतार्थयामास ॥५॥

[१]निगद्येति [२]जिनाधीशशासनामरसुन्दरी ।
भेजे [३]जोषं मुखे [४]शारदीनेव [५]शिखिमण्डली ॥६॥

(१) उक्त्वा । (२) जिनशासनदेवता । (३) मौनम् । "जोषमासनविशिष्य बभाषे" इति नैषधे । (४) शरत्कालसम्बन्धिनी । (५) मयूरमाला । "समय एव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव मनीषिणाम् । शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम् ॥" इति माघे ॥६॥

शासनाधिष्ठात्री इति उक्त्वा मौनं तस्यौ । यथा शरत्कालसम्बन्धिनी मयूरमाला मुखे जोषं भजते । न ब्रवीतीत्यर्थः ॥६॥

[१]यदास्यकौमुदीकान्तवाक्पीयूषाभिलाषिणी ।
[२]चलचञ्चुचलच्चक्षुरिव [३]सा [४]रभसादभूत ॥७॥[1]

(१) सूरीन्द्रवदनचन्द्रस्य वचनामृतपानकाङ्क्षिणी । (२) चकोराङ्गना । (३) देवी । (४) औत्सुक्यात् ॥७॥

यदा० । यन्मुखचन्द्रस्य वचनामृताभिलाषिणी सा चकोरीव चञ्चलनेत्रा जाता ॥७॥

[१]वाचं [२]वाचंयमश्रेणीरोहिणीरमणस्[३]ततः ।
[४]तत्पुरो [५]ग्र(ग्रा)हयामास सुधाया [६]औरसीमिव ॥८॥

(१) वाणीम् । (२) मुनिमण्डलीषु चन्द्रः । (३) देवीवचनानन्तरम् । (४) देव्या अग्रे । (५) गृह्णाति स्म । (६) सुजाताम् ॥८॥

सूरीन्द्रस्तस्याः पुरः सुधायाः सुजातां वाचं बभाषे ॥८॥

[१]अदृग्गोचरपारस्य [२]वाङ्मयस्याऽम्बुधेरिव ।
[३]यन्मनीषा सुखं देवि ! [४]तरीव[2] [५]पारदृश्वरी ॥९॥

---

1. इति गुर्वभिप्रायजिज्ञासायां देवताप्रश्नः । हील० ।
2. ०रीवत्पार० हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]विनेया [2]विनयावासाः कतिचित्ते[3] मर्मांसते ।
[5]शौण्डीरिमधरा [6]गन्धसिन्धुरा इव बन्धुराः ॥१०॥ युग्मम् ॥

(१) न नयनविषयः पारो यस्य । (२) शास्त्रस्य । (३) येषां प्रज्ञा । (४) नौरिव । (५) पारगाम्निनी ॥९॥

(१) शिष्याः । (२) विनीताः । (३) ते-गुणैर्विख्यातिभाजः । (४) सन्ति । (५) कर्मशत्रुसेनां प्रति शौर्यं धारिणः । (६) गन्धहस्तिनः ॥१०॥

अद० । विने० । हे देवि ! ते विख्याताः कियन्तो मम शिष्याः सन्ति येषां प्रतिभा शास्त्रार्णवे सुखं यथा स्यात्तथा नौरिव पारगामिनी विद्यते ॥९-१०॥

मध्येऽमीषां विनेयानां [1]कतमः [2]कमलानने ! ।
[3]भास्वान् विष्णोरिव[4] पदे ममाऽस्त्यभ्युदयंगमी[5] ॥११॥

(१) कः । (२) पद्मवक्त्रे ! (३) भानुः । (४) आकाशे । (५) उदयं गमिष्यतीति ॥११॥

यथाऽऽकाशे रविरुदयं गच्छति तथा को विनेयोऽभ्युदयं गमिष्यति इति त्वं ब्रूहि ॥११॥

[1]एवमालापिता[2] [3]तेन तं सुरी पुनरूचुषी[4] ।
[5]प्रावृषेण्यमिवाऽम्भोदं [6]नभोम्बुपनितम्बिनी ॥१२॥

(१) पूर्वोक्तप्रकारेण । (२) भाषिता (३) सूरिणा । (४) बभाषे । (५) वर्षाकालीनम् । (६) बप्पीहबालिका ॥१२॥

इत्थं पृष्टा सती सा तमिदं कथयति । यथा चातकी प्रावृण्मेघं कथयति ॥१२॥

[1]आस्ते श्रीजयविमलो यस्तेऽन्तेवासिवासवः[2] ।
स ते [3]दम्यो रथस्येव [4]धुरं पट्टस्य [5]धास्यति ॥१३॥

(१) वर्त्तते । (२) शिष्यशिरोमणिः । (३) वत्सतरः । प्रौढीभूतो वत्सः । (४) धुराधरणार्हः । (५) धारयिष्यति ॥१३॥

यस्तव शिष्यो **जयविमल**नाम्नाऽऽस्ते स पट्टधुराकर्षकः । यथा वत्सरो रथधुरं बिभर्त्ति ॥१३॥

त्वया [1]विश्राणिता [2]देव ! विधिना [3]स्वपदेन्दिरा ।
[4]वार्द्धिना विष्णुनेव श्रीश्चिरमेतेन रंस्यते ॥१४॥

(१) दत्ता । (२) भट्टारक ! । (३) निजपट्टलक्ष्मीः । (४) समुद्रेण ॥१४॥

हे देव ! हे भट्टारक ! त्वया सम्पद् दत्ता सा **जयविमल**प्रज्ञांसे(शे)न सह क्रीडिष्यति । यथाऽर्णवेन दत्ता श्रीर्विष्णुना सह रमते ॥१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं गुणै[१]रप्रतीकाशं [२]त्वद्गणश्रीः श्रयिष्यति ।
वल्ली [३]विवर्धमानेव [४]स्मयमानमहीरुहम् ॥१५॥

(१) असाधारणम् । (२) श्रीमद्गच्छलक्ष्मीः । (३) वृद्धिं प्राप्नुवन्ती । (४) विकचवृक्षम् ॥१५॥

गुणैर्निरुपमं तं गणश्रीं श्रयिष्यति । यथा लता वृक्षं श्रयति ॥१५॥

[१]पट्टधुर्ये[२]ऽङ्गजे राज्ञा युवराज इवो[३]र्जिते ।
त्वया[४]ऽस्मिन्नि[५]र्मिते [७]काऽपि भाविनी [६]शासनोन्नतिः ॥१६॥

(१) भारधुरीणे । (२) पुत्रे । (३) प्रबलबले । (४) जयविमलप्रज्ञांशे । (५) कृते । (६) शासनप्रभावना । (७) काऽप्यद्भुतवैभवा । जगदाश्चर्यकारिणी ॥१६॥

पट्ट० । यथा राज्ञा स्वपुत्रे पट्टे स्थापिते शोभा स्यात्तथा त्वयाऽस्मिन्स्वपट्टे स्थापितेऽपूर्वा शोभा भाविनी ॥१६॥

[१]विक्रमार्क्क इव श्रीमत्सिद्धसेनदिवाकरात् ।
[२]त्वत्तस्त[३]दनु [४]कोऽप्यु[५]र्व्वीब्रध्नो [६]बोधिम[७]वाप्स्यति ॥१७॥[1]

(१) विक्रमादित्यः । (२) श्रीमत्सकाशात् । (३) तस्य पट्टस्थापनानन्तरम् । (४) कश्चित् । (५) राज(जा) । (६) प्रतिबोधम् । (७) लप्स्यते ॥१७॥

तस्मिन्पट्टे स्थापिते सति त्वत्तः कोऽपि प(पा)तिसाहिर्बोधिबीजं प्राप्स्यति ॥१७॥

[१]समाकर्ण्य सुरीवर्ण्यमानं तं [२]पिप्रिये [३]प्रभुः ।
[४]रथाङ्गवन्नि[५]शावेदिगदिताभ्युदयं रविम् ॥१८॥

(१) श्रुत्वा । (२) प्रीतिं प्राप्नोति स्म । (३) सूरिः । (४) चक्रवाकः । (५) कुर्कुटकथितोद्गमम् ॥१८॥

[१]इत्य[२]तर्क्यत [३]तेना[४]ऽन्त[५]र्भाग्यसौभाग्यभू[६]रसौ ।
[७]प्रणुन्न[८]येव पुण्यै[९]र्य त्रिदश्याऽपि प्रशस्यते ॥१९॥

(१) इति वक्ष्यमाणम् । (२) विचारितम् । (३) सूरिणा । (४) चित्ते । (५) भाग्यं-पुण्यं, सौभाग्यं-सुभगता जनवल्लभत्वं लोके ख्यातिर्वा तयोरास्पदम् । (६) जयविमलः । (७) प्रेरितया । (८) यस्मात्कारणात् । (९) त्रिदश्या-देव्या ॥१९॥

असौ भाग्यवान् यतः पुण्यप्रेरितया देव्याऽपि श्लाघ्यते ॥१९॥

[१]मेरुभूरिव भात्येषा [२]जिनपट्टपरम्परा ।
[३]समुद्भवन्ति [४]येनोऽस्यां सूरीन्द्राः स्वर्द्रुमा इव ॥२०॥

---

1. देव्या पट्टधुरंधरकथनम् ॥हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्वर्णाचलवनभूमीव । (२) श्रीमहावीरपट्टश्रेणिः । (३) प्रकटीभवन्ति । (४) कारणेन । (५) मेरुभूमौ जिनपट्टपङ्क्तौ च ॥२०॥

यस्यां मेरुभूसदृक्षायां सूरयः कल्पवृक्षाः इव जाताः ॥२०॥

[1]अर्हन्मतैकमलयोद्भूतसूरीन्द्रचन्दनैः ।
[2]यशःप्रसृमरामोदैः [3]सुरभीक्रियते जगत् ॥२१॥

(१) जिनशासनमेव मलयाद्रिस्तत्र प्रादुर्भूतैः सूरिभिरेव श्रीखण्डैः । (२) यशांस्येव विस्तरणशीलपरिमलैः । (३) वास्यते ॥२१॥

अर्ह० । श्रीजिनशासनोद्भूतभट्टारकैर्यशोभिर्जगद्व्याप्तम् ॥२१॥

[1]इत्य[2]न्तरुदयत्प्रीतिक्षिरनीरनिधिप्लवे ।
[3]निचिखेल चिरं [4]के[2]लिकलहंस इव प्रभुः ॥२२॥★

(१) अमुना प्रकारेण । (२) मनसि प्रकटीभवत्प्रमोददुग्धाम्बुधिपयःपूरे । (३) क्रीडति स्म । (४) क्रीडाहंस इव ॥२२॥

इति चित्तोद्भूते प्रीतिनर्मदापूरे गन्धगजवत्स सूरिः क्रीडति स्म ॥२२॥

लोका[1]न्कोकानिवा[2]ऽऽह्लादं [3]लम्भय[4]न्भानुमानिव ।
[5]दानलीलायितै[6]र्हेलां [7]कल्पय[8]न्कल्पभूरुहाम् ॥२३॥

[1]प्रबोधं विदध[2]त्प्रातरिवा[3]ऽशेषजनुष्मताम् ।
[4]पुष्पकाल इवो[5]ल्लासं [6]प्रणय[7]न्सुमनःश्रियाम् ॥२४॥

त्वं चिरं [1]नन्द सूरीन्द्रे[2]त्यभि[3]नोनूय [4]निर्ज्जरी ।
तत[5]स्तच्चरणाम्भोजं भ्रमरीव चुचुम्ब सा ॥२५॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।

(१) चक्रवाकान् । (२) हर्षम् । (३) प्रापयन् । (४) सूर्यः । (५) दानविलासैः । (६) अवगणनाम् । (७) कुर्वन् । (८) कल्पद्रुमाणाम् ॥२३॥

(१) प्रतिबोधं-जागरणम् । (२) प्रभातम् । (३) समस्तजनानाम् । (४) वसन्त इव । (५) विकाशम् । (६) कुर्वन् । (७) सतां कुसुमानां च लक्ष्मीनाम् ॥२४॥

(१) जीयाः अद्वैतज्ञान-दर्शन-चारित्रादिसमृद्धिं लभस्व वा । (२) इति पूर्वोक्तप्रकारेण । (३) अभिष्टुत्य । (४) देवी । (५) सूरिपदपद्मम् । अथ वा पूर्वोक्तद्वयोक्तानि शत्रन्तानि सम्बोधनान्येव । "गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे ! त्वां करुणा रुणद्धि नः" इति नैषधेऽपि निदर्शनम् ॥२५॥ त्रिभिः ॥

1. ०मेकलाद्रिकनीप्लवे । हीमु० । 2. ०गन्धसिन्धुरेन्द्र इव प्रभुः । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा रविश्चक्रवाकानाह्लादयति तद्वल्लोकानानन्दयन् । पुनर्विश्राणनैः कल्पवृक्षाणामवगणनां कुर्वन् । पुनरशेषजन्तूनां प्रतिबोधं दधन्-यथा दिनमुखं विनिद्रतां धत्ते । पुनः सुमनसामुत्तमानां लक्ष्मीनामुल्लासं कुर्वन् । यथा वसन्तः कुसुमश्रीणां विकाशं प्रणयति । हे सूरीन्द्र ! त्वं चिरं जीया इत्युक्त्वा शासनसुरी सूरिचरणयुगलीं चुम्बति स्म-नमस्करोति स्मेत्यर्थः ॥२३-२४-२५॥

ततो[१]ऽस्या धर्मलाभाशीर्व्यश्राणि[२] [३]श्रमणेन्दुना ।
[४]श्रेयःसिद्धेरुपादानं[५] तस्याः [६]सम्प्रस्थिताविव ॥२६॥

(१) देव्याः । (२) दत्ता । (३) सूरिणा । (४) कल्याणप्राप्तेः । (५) मूलकारणम् । (६) प्रयाणे ॥२६॥

ततः सूरिणा धर्मलाभो दत्तः । उत्प्रेक्ष्यते-मोक्षलक्ष्म्या मूलहेतुः ॥२६॥

पुनः [१]स्वल्पेऽपि कार्येऽहं धुर्येण[२] गणधारिणाम् ।
[३]प्रसादपात्रीकर्त्तव्या [४]किङ्करीवाऽमरी त्वया ॥२७॥

(१) स्तोके । (२) गणधरधुरीणेन । (३) प्रसत्तेः स्थानम् । (४) चेटीव ॥२७॥

पुनः० । पुनः कार्ये प्रोक्तव्या ॥२७॥

इत्यु[१]दित्वा प्रभुं नत्वा [२]मोदमेदस्विनी ततः ।
[३]क्षणिकेव क्षणादासीददृश्या [४]द्योतिताम्बरा ॥२८॥[1]

(१) कथयित्वा । (२) हर्षप्रकर्षवती । (३) विद्युदिव । (४) प्रभाप्रकाशिताकाशा ॥२८॥

सा इत्युक्त्वा विद्युद्वददृश्याऽभूत् ॥२८॥

[2]कुर्वन्कु[१]वलयोल्लासं [२]द्विजज्योत्स्नाविराजितः ।
[३]कलधौतावदातश्री-[४]विभुर्विधुरिवाऽजनि ॥२९॥★

(१) भूमीमण्डलस्य उत्पलानां च आह्लादं विकाशं च । (२) दन्तचन्द्रिकाभिः शोभितः । द्विजैश्चन्द्रानुगैश्चन्द्रिकया च भूषितः । (३) कलधौतं-स्वर्णं रूप्यं च, तद्वदवदातः-पीतः । "विभ्राजते तव वपुः कनकावदात" मिति भक्तामरस्तवे । शुभ्रश्च । "कलधौतं स्वर्णरूप्ययो" रित्यनेकार्थः । (४) सूरिः ॥२९॥

कल० । काञ्चनमिव गौराङ्गः । पक्षे-रूप्यवत्श्वेतः । पुनर्द्विजानां-दन्तानां वा नक्षत्राणां वा कान्त्या शोभितः । पुनः पृथ्वीतलस्य कमलस्य वा उल्लासं कुर्वन् । अतः सूरिश्चन्द्रवद् व्यभात् ॥२९॥

[१]अश्रान्ता[२]नन्तपदवीलङ्घनैः [३]श्रान्तवानिव ।
शशी शनैः शनैरस्ताचलचूला[४]मथाऽऽश्रयत् ॥३०॥

---

1. इति शासनदेवतास्वस्थानगमनम् । हील० ।
2. कलधौतावदातश्रीर्द्विजज्योत्स्नाविराजितः । कुर्वन्कुवलयोल्लासं विभुर्विधुरिवाऽभवत् ॥हीमु०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) निरन्तरम् । (२) अपरिमितमार्ग आकाशमार्गश्च तस्याऽतिक्रमणेन । (३) जातश्रमः । (४) देवीगमनानन्तरम् ॥३०॥

अनन्तगगनमार्गलङ्घनैः श्रान्त इव चन्द्रः शनैरस्ताचलशिखां श्रयति स्म ॥३०॥

[१]गर्भाश्मगर्भचन्द्राश्मकल्पितोत्तंसिकेव सा ।
अस्ताचलश्रीर्भाति स्म [२]मौलिलीलायितेन्दुना ॥३१॥

(१) मध्ये मरकतं यस्याः चन्द्रोपलकृता वतंसिका । "विदर्भपुत्रीश्रवणावतंसिका" इति नैषधे । (२) शिरसि लीलायमानचन्द्रेण ॥३१॥

मध्यभागे मरकतरत्नं यस्य तादृशचन्द्रकान्तरत्नघटितमुकुटा इव अस्ताद्रिलक्ष्मीश्चन्द्रेण भाति स्म ॥३१॥

चन्द्रश्[१]चङ्क्रमणक्लान्तं [२]स्वाशनायितरोहितम् ।
[३]वनाय [४]मोक्तुमस्ताद्रे[५]रध्यास्त किम[६]धित्यकाम् ॥३२॥

(१) भ्रमणेन परिश्रान्तम् । (२) आत्मनो बुभुक्षिताङ्कमृगम् । (३) चरणाय । "वनाय प्रीतिप्रतिबद्धवत्सा" मिति रघुवंशे । (४) मोचनाय । (५) भेजे । (६) अस्ताद्रेरूर्ध्वभूमीम ॥३२॥

चङ्क्रमणेन श्रान्तं क्षुधितं स्वमृगं वनाय मोक्तुम् । उत्प्रेक्ष्यते – अस्ताद्रेरुपरि गतः ॥३२॥

[१]विभुना [२]वाक्सुधास्यन्दिवदनेन विधुर्जितः ।
[३]तत्तुलाप्त्यै [४]काङ्क्षीवाऽ[५]स्तगह्वरमीयिवान् ॥३३॥★

(१) सूरिणा । (२) वचनामृतश्राविवक्त्रेण । (३) प्रभुवदनसादृश्यलाभाय । (४) तपः कर्तुं वाञ्छन् । (५) अस्ताचलगुहां गतः ॥३३॥

विभु० । उत्प्रेक्ष्यते – श्रीहीरविजयसूरिवदनेन जितश्चन्द्रस्तत्सदृशीभवितुमस्ताचलगुहायां गतः ॥३३॥

[2] [१]रथाङ्गव्यथनोद्भूतैः [२]पक्त्रिमैरिव [३]पाप्मभिः ।
[४]त्रियामापगमे [५]राजा तत्यजे [६]वसुभिः क्षणात् ॥३४॥[3]

(१) चक्रवाकानां वियोगपीडनजातैः । (२) परिपाकं प्राप्तैः । (३) पातकैः (४) निशानाशे । (५) चन्द्रो नृपश्च । (६) किरणैर्द्रव्यैश्च ॥३४॥

वसुभिः-किरणैर्द्रव्यैश्च ॥३६॥

---

1. ०वागादस्ताद्रिगह्वरे हीमु० । 2. हीमु० हीलप्रतौ चैतेषां ३४-३५-३६-३७-३८-३९ तमश्लोकानामेषोऽनुक्रमः – ३६-३९-३५-३४-३८-३७ । 3. इति चन्द्रस्याऽस्ताचलगमनम् । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]इतोऽभ्युदयते भानुरि[2]तश्चन्द्रोऽस्तमी[3]यते ।
इदं किमप्य[4]नीदृक्षमहो [5]विलासितं विधेः ॥३५॥[1]

(१) पूर्वस्यां दिशि । (२) प्रतीच्याम् । (३) प्राप्नोति । (४) अपूर्वं वक्तुमशक्यम् । (५) दैवविजृम्भितम् ॥३५॥

अनीदृक्षं विद्वद्भिरपि वक्तुमशक्यं विधिविलसितम् ॥३९॥

प्रेक्ष्य [1]क्षपाक्षये चन्द्रं [2]विद्राणं [3]चन्द्रगोलिका ।
त्यक्त्वा कान्तं ययौ क्वापि [4]पुंश्चलीव [5]यदृच्छया ॥३६॥

(१) रजनिनाशे । (२) निःश्रीकं मृतप्रायं वा । (३) चन्द्रिका । (४) व्यभिचारिणीव । (५) स्वेच्छया ॥३६॥

यथाऽसती निःश्रीकं मृतप्रायं पतिं मुक्त्वा याति ॥३५॥

दृष्ट्वा [1]यान्तं [2]जघन्याया[3]मन्तर्भूताभ्यसूयया ।
चन्द्रश्चन्द्रिकया [4]रुच्य इव [5]चण्डिकया [6]जहे ॥३७॥

(१) गच्छन्तम् । (२) पश्चिमायाम् । "अजघन्यः प्रचेता" इति चम्पूकथायाम् । निकृष्टायामपि । (३) चित्तोद्भूतेर्ष्यया । (४) भर्त्ता । (५) अत्यन्तकोपनशीला चण्डिका तयेव । (६) त्यक्तः ॥३७॥

जघन्यायां जातेर्वा रूपाद्वा कुत्सितायां योषिति पश्चिमायां वा आगतं दृष्ट्वा ज्योत्स्नया चन्द्रस्त्यक्तः । यथा कोपनया पतिस्त्यज्यते ॥३४॥

[1]तमीप्रियतमो मध्यं [2]प्रत्यग्द्वीपवतीपतेः ।
[3]जनिकर्त्तु[4]र्निजस्येव मिलनाय [5]समीयिवान् ॥३८॥

(१) चन्द्रः । (२) पश्चिमसमुद्रस्य । (३) तातस्य । (४) स्वस्य । (५) समागतः ॥३८॥

चन्द्रः पश्चिमसमुद्रं जनकं मिलितुं गतः ॥३८॥

[1]नियन्त्र्य हन्तुं [2]स्वर्भाणुं [3]पाशकाङ्क्षीव [4]पाशिना ।
विधुः [5]पाथोधिसौधेना[6]ऽऽधातुं [7]सौहार्द[8]मीयिवान् ॥३९॥

(१) बध्वा । (२) राहु[म्] । (३) बन्धनग्रन्थिवाञ्छकः । (४) वरुणेन । (५) समुद्रगृहेण । (६) कर्त्तुम् । (७) मैत्र्यम् । (८) आगतः ॥३९॥

उत्प्रेक्ष्यते-चन्द्रो राहुं हन्तुं वरुणसमीपे पाशयाचनार्थं गतः ॥३७॥

---

1. इति चन्द्रमसोऽस्तमयनम् । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]दत्वो[२]दयं त्वमेवा[३]ऽस्तं कथं दत्से प्रियस्य [४]नः ।
तारका इत्यु[५]पालब्धुं भेजुरस्ताचलं किमु ॥४०॥

(१) प्रदाय । (२) उद्गमं-ऐश्वर्यम् । द्वितीयायामुदयाचले चन्द्रोदयदर्शनात् । तथा प्रातर्वर्णने <u>उदयनाचार्ये</u>णाप्युक्तं यथा- "उदयगिरिकुरङ्गीशृङ्गकण्डूयनेन स्वपिति सुखमिदानीमन्तरेन्दोः कुरङ्ग" इति । (३) क्षयम् । (४) अस्माकम् । (५) उपालम्भं दातुम् ॥४०॥

त्वमेवोदयं दत्वा त्वमेवाऽस्माकं पतेः चन्द्रस्याऽस्तं कथं दत्से इति तारका उपालब्धुमस्ताचलं गताः ॥४०॥

[१]नक्षत्रपद्धतेः [२]प्रातर्भ्रस्यन्तो[३]ऽम्बुधरादिव ।
क्षणा[४]द्विलयमा[५]सेदुस्तारकाः [६]करका इव ॥४१॥

(१) आकाशात् । (२) प्रातःकाले एव तारकाणां भ्रंशो न निशि । (३) घनादिव । (४) नाशम् । (५) प्रापुः । (६) घनोपला इव ॥४१॥

गगनात् मेघात्पतन्तस्तारका घनोपला इव जाताः सन्तो विलयमगुः ॥४१॥

[1]किं[१] [२]पाथेयमिवा[३]ऽऽदाय [४]क्षपा नक्षत्रमुक्तिकाः ।
[५]प्रत्यूषे प्रो[६]षितं कान्तं मृगाङ्कमनुगच्छति ॥४२॥

(१) किमुत्प्रेक्षायाम् । (२) शम्बलम् । (३) लात्वा । (४) निशा । (५) प्रभाते । (६) द्वीपान्तरे प्रस्थितम् ॥४२॥

यथा मणिमुक्तादिपाथेयमादाय याति तद्वत्तारामुक्ता आदाय चन्द्रमनुयाति ॥५१॥

अत्या[१]ऽब्धिमग्नं [२]प्रत्यूषद्विषता [३]मुषितश्रियम् ।
तारास्ता[४]रापतिं प्रेक्ष्यो[५]ऽन्वमज्जंस्तमिवाऽर्णवे ॥४३॥

(१) समुद्रे ब्रूडितम् । (२) प्रभातशत्रुणा । (३) गृहीतलक्ष्मीकम् । (४) चन्द्रम् । (५) चन्द्रपृष्ठे समुद्रे बुब्रूडुः ॥४३॥

चन्द्रं समुद्रे मग्नं दृष्ट्वा तारका अर्णवे बुब्रूडुरिव ॥४२॥

[१]वितत्य [२]मायिकेवा[2][३]ऽभ्रे [४]मायां [५]तारामयीं [६]तमी ।
क्षणाददृश्यतां निन्ये मन्ये तां [७]दिवसानने ॥४४॥★

(१) विस्तार्य । (२) इन्द्रजालिकेनेव । (३) आकाशे । (४) कपटरचनाम् । (५) ग्रहनक्षत्रतारकरूपाम् । (६) रात्रिः । (७) प्रभाते ॥४४॥

उत्प्रेक्ष्यते - मायां विस्तार्य पुना रात्र्या विलयं नीताः ॥५२॥

---

1. एते ४२तमादारभ्य ५२तमपर्यन्तं श्लोका हीमु०हीलप्रतौ च यथासङ्ख्याः ५१-४२-५२-४३-४४-४५-४६-४७-४८ - ४९-५० एवं क्रमेण दृश्यन्ते । 2. **०यिकीवा०** हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]निशाशनायितेना[2]ऽभ्रपथे [3]तारकतन्दुलाः ।
[4]दिनाननशकुन्तेन शङ्के [5]कुक्षिगतीकृताः ॥४५॥

(१) निशायां बुभुक्षितेन । (२) आकाशे । (३) तारका एव कलमशालयः । "प्रथममुपहृत्यार्थं तारैरखण्डितन्दुलै" रिति नैषधे । तन्दुलास्तुषनिर्मुक्तकलमाः । (४) प्रभापक्षिणा । (५) भक्षिताः । "बहुरूपकशालभञ्जिका मुखचन्द्रेषु कलङ्करङ्कवः । वदनेकपसौधकन्धरा हरिभिः कुक्षिगतीकृता इव" इति नैषधे ॥४५॥

अहमेवं मन्ये । बुभुक्षितेन प्रभातपक्षिणा तारकतन्दुला भक्षिताः ॥४३॥

[1]दिग्गजेन्द्रावगाहेनोत्पन्नाः [2]स्वःसिन्धुबुद्बुदाः ।
क्षणादिव [3]व्यलीयन्त तारकास्ता[4]रकापथे ॥४६॥[1]

(१) दिक्करिणां जलावगाहनोद्भूताः । (२) गगनगङ्गाबुद्बुदाः । (३) क्षयं प्रापुः । (४) गगने ॥४६॥

तारकाः क्षयमाप्ताः । उत्प्रेक्ष्यते - दिक्कुञ्जराणां जलक्रीडाकरणादुत्पन्नाः स्वर्गङ्गायाः पानीयस्थासकाः ॥४४॥

[1]आगामिनो गवां[2] पत्युः [3]प्रातःसेनापतेः पुरः ।
[4]कान्दिशीका इवा[6]ऽनश्यन्[5]नन्धकारविरोधिनः ॥४७॥

(१) आगमिष्यतीति आगन्तुके । (२) सूर्ये नृपे च । (३) प्रभातसेनानाथस्याऽग्रे । (४) भयद्रुताः । (५) तमःशत्रवः । (६) प्रणेशुः ॥४७॥

गवां-किरणानां भूमीनां वा भर्तुः-सूर्यस्य राज्ञ आगन्तुकस्य भयद्रुता अन्धकारा वैरिणश्च नश्यन्ति ॥४५॥

[1]गह्वरे [2]भूभृतां [3]गुप्तं [4]तामसास्तापसा इव ।
कृशाः किमु [5]तपस्यन्ति पुनर[6]भ्युदयाशया ॥४८॥[2]

(१) गुहायाम् । (२) गिरीणाम् । (३) गूढम् । (४) अन्धकारनिकराः । (५) तपः कुर्वन्ति । (६) स्फूर्तिमत्ताकाङ्क्षया ॥४८॥

उत्प्रेक्ष्यते - अन्धकाराः तपः कुर्वन्ति ॥४६॥

[1]विद्राणोत्पलदृक्क्षी[2]णशुक्रा [3]भ्रश्यत्पयोधरा ।
[4]म्लानास्येन्दुस्त्य[5]क्ततारमुक्ता वृद्धेव [6]शर्वरी ॥४९॥

(१) सङ्कुचिता कुवलयमेव तत्तुल्या वा दृष्टिर्यस्याः । (२) क्षीणः-क्षयं प्राप्तोऽस्तमितो

1. इति तारकाणामस्तः हील० । 2. इत्यन्धकारगमनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा शुक्रग्रहो यस्याम् । पक्षे-क्षीणं गर्भसम्भवाभावाद्विनष्टं शुक्रं-पुंवीर्यं यस्याम् । (३) भ्रश्यद्घना पतत्कुचा च । (४) म्लानिं प्राप्तो विच्छायो वदनमेव चन्द्रो यस्याः, मुखसदृशो वा चन्द्रो यस्याः । (५) उज्झितानि तारानक्षत्राण्येव शुभ्राणि वा मौक्तिकानि । अर्थान्मुक्ताहारो यया । (६) रात्रिः ॥४९॥

विद्राणे उत्पलानि एव तत्तुल्ये नेत्रे यस्याः । पुनरस्तमितः शुक्रो वीर्यं च यस्यां सा । पुनर्विरलीभवदभ्रा पतितस्तना च । पुनर्म्लानवक्त्रा क्षीणचन्द्रा च । पुनस्त्यक्तास्तारा मुक्ताहारा च यया । अतो जरतीव रजन्यासीत् ॥४७॥

[1]रजनीवियुजां जाने [2]द्विजानाम[3]पशापतः ।
[4]कैरवाक्षी क्षणाद्[5]राज्ञः [6]क्षीणतां [7]प्रतिपेदुषी ॥५०॥

(१) रजन्यां वियुञ्जन्ति । वियोगं प्राप्नुवन्तीति । (२) पक्षिणाम् । चक्रवाकानामित्यर्थः । "विहगयोः कृपयेव शनैर्ययौ रविरहर्विरहध्रुवभेदयो" रिति रघौ । तथा सुरथोत्सवकाव्येऽपि - "रजनीवियुजां पतित्रिणा" मिति । (३) विरुद्धशापात् । (४) कैरवाक्षी - स्त्रीः । (५) चन्द्रस्य । रात्रिरित्यर्थः । भूपमहिषी वा । (६) क्षयम् । (७) प्राप्ता ॥५०॥

राज्ञः स्त्रीः तमी क्षीणाऽभवत् ॥४८॥

[1]त्यक्ततारपरीवारा [2]छिन्नध्वान्तकचच्छटा ।
[3]तमी [4]तपस्विनीवाऽऽसीद्[5]दयिते[7]ऽस्तमिते [6]विधौ ॥५१॥

(१) उज्झितस्तारा एव परिवारो यया । (२) छेदं क्षयं नीता तमांस्येव केशश्रेणीर्यस्याः । (३) रात्रिः । (४) तापसीव । (५) भर्त्तरि । (६) चन्द्रे । (७) मृते ॥५१॥

त्यक्तास्तारा एव परिच्छदो यया सा, पुनश्छिन्नो ध्वान्तरूपः केशपाशो यया तादृशी रात्रिश्चन्द्रेऽस्तमिते तपस्विनी जाता ॥४९॥

[1]संसिसृक्षुः शशी कान्तां कामगाद[2]नुरागवान् ।
इत्या[3]लोकयितुं शङ्के [4]तमी [5]तमनुजग्मुषी ॥५२॥

(१) सङ्गं कर्त्तुमिच्छुः । "निर्वापयिष्यन्निव संसिसृक्षो" रिति नैषधे । (२) रक्तिम्ना रागेण वा युतः । अस्ताद्रिसङ्गान्मनागरुणीभूतः । (३) द्रष्टुम् । (४) रात्रिः । (५) शशिनमनुगता ॥५२॥

संसिसृ० । चन्द्रः कामपि सङ्गं कर्त्तुं गत इत्यालोकि(कयि)तुं तमी पृष्ठे प्रस्थिता ॥५०॥

तमस्विन्या विधोः पत्यु[1]र्विरहासहमानया ।
[2]प्रातः सन्ध्याबृहद्भानौ स्वतनूः किम[3]हूयत ॥५३॥

(१) [अ]तिशया वियोगं सोढुमसमर्थया । (२) प्रातस्त्यरक्तिमानले । (३) हुता-भस्मीकृता ॥५३॥

रात्र्या वियोगभयात् प्रातःसन्ध्यारूपेऽग्नौ स्ववपुर्हुतमिव ॥५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]तूर्याणां [2]यामिनीयामविरामे ध्वनिरुद्ययौ ।
प्रयाणं सूचयन्प्रातरिव राज्ञो[3] मृगीदृशः ॥५४॥[1]

(१) वाद्यानाम् । (२) पाश्चात्यरात्रौ । (३) नृपमहिष्या निशायाश्च ॥५४॥

वाद्यध्वनिः प्रादुर्भूतः । उत्प्रेक्ष्यते - निशाप्रस्थानं कथयन् ॥५४॥

चक्रे [1]श्रमणशक्रेण विधि[2]र्वैभातिकस्ततः ।
[3]जैत्रं [4]तन्त्रमि[5]वाऽधृष्यभावद्वेष्यजिगीषया ॥५५॥

(१) हीरविजयसूरिणा । (२) प्रभातकालसम्बन्धी प्रतिक्रमणादिः । (३) जयनशीलम् । (४) उपायम् । (५) अनाकलनीयान्तरङ्गरिपुपरम्परां परिभवितुमिच्छया ॥५५॥

श्रीसूरिणाऽऽवश्यकं कृतम् । उत्प्रेक्ष्यते - कर्मघातकं तन्त्रमिव ॥५५॥

[1]उपभुज्य प्रियां[2] प्राचीं [3]वज्रिणा [4]व्रजता [5]दिवम् ।
[6]व्युत्सृष्टमिव ताम्बूलं [7]शोणिमा प्रातरुद्ययौ ॥५६॥

(१) भुक्त्वा । (२) पूर्वां दिशं प्रियाम् । (३) शक्रेण । (४) गच्छता । (५) स्वर्गम् । (६) त्यक्तम् । (७) रागः ॥५६॥

प्रातः रक्तिमा प्रादुर्भूतः । उत्प्रेक्ष्यते - प्राचीं नक्तं भुक्त्वा गच्छता हरिणा ताम्बूलं नीरसत्वात्त्यक्तम् ॥५६॥

प्रातःसन्ध्या व्यभाद्व[1]ह्निहेतिर्मुक्ता [2]विवस्वता ।
हन्तुं [3]महाहवोन्मादिमन्देहानिव कोपतः ॥५७॥

(१) अनलास्त्रम् । (२) भानुना । (३) प्रबलयुद्धे । मन्देहा नाम रविरिपुराक्षसाः । "इह हि समये मन्देहेषु व्रजन्त्युदवज्रता " मिति नैषधे । "तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च मन्देहा नाम राक्षसाः । उदयन्तं सहस्रांशुमभियुद्धयन्ति ते सदा" इति नैषधवृत्तौ ॥५७॥

प्रभातसन्ध्या रेजे । उत्प्रेक्ष्यते - रणोद्धतान् मन्देहराक्षसान् हन्तुं वह्निशस्त्रमर्केण मुक्तम् । "तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च मन्देहानाम राक्षसाः । उदयन्तं सहस्रांशुमभियुद्धयन्ति ते सदा" । इति वचनात् ॥५७॥

[1]सन्ध्यारागारुणं जैनं[2] पदं प्रातर्व्यराजत ।
अपूजि [3]निर्जरै[4]र्भक्तिप्रह्वैः किं [5]कुङ्कुमद्रवैः ॥५८॥

(१) प्रातःसन्ध्यारागेण रक्तम् । (२) आकाशं तीर्थकृच्चरणं च । (३) देवैः । (४) भक्तिनम्रैः । (५) केसरपङ्कैः ॥५८॥

सन्ध्यारागरक्तं गगनं व्यभात् । उत्प्रेक्ष्यते-विष्णुपदभक्तैर्निर्जरौघैः पूजितमभ्यर्चितं विलिप्तमिव ॥५८॥

---

1. इति रात्रिगमनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रातर्दिग्दन्तिनां[1] गङ्गां व्रजतां[2]जलकेलये ।
जज्ञे [3]गण्डगलद्बिन्दुवृन्दैर्व्योमाऽरुणं किमु ॥५९॥

(१) दिग्गजानाम् । (२) पानीये क्रीडार्थम् । (३) कपोलनिर्गच्छद्भिः रक्तमदबिन्दुवृन्दैः । पञ्चम्यां हि दशायां करिणां कपोलेभ्यो रक्ता बिन्दवो निस्सरन्ति । "भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणा" इति कुमारसम्भवे ॥५९॥

प्रातः० । स्वर्गङ्गायां गच्छतां हस्तिनां रक्तमदैः । उत्प्रेक्ष्यते – व्योमाऽरुणीभूतम् ॥५९॥

[1]प्रत्यूषे [2]मखभुग्लेखातल्पेभ्यः [3]पतयालुभिः ।
किमा[4]स्तीर्णारुणाम्भोजपर्णैः [5]शोणीकृतं नभः ॥६०॥1

(१) प्रभाते । (२) सुरश्रेणीपल्यङ्केभ्यः । (३) पतनशीलैः । (४) प्रस्तृतरक्तकमलपत्रैः । (५) रक्तीकृतम् ॥६०॥

प्रातर्देवशय्यातः पतनशीलैः रक्ताम्भोजपत्रै रक्तीकृतमिव ॥६०॥

[1]अथो [2]पाथोजिनीनाथोऽभ्युदियाय नभोऽङ्गणे ।
[3]कपोलकुङ्कुमक्लिन्नं [4]प्राच्याः किं कर्णमण्डलम्2 **॥६१॥★**

(१) सन्ध्यारागानन्तरम् । (२) रविः । (३) गल्लपत्रावलीघुसृणव्याप्तम् । (४) पूर्वदिक्पत्न्याः ॥६१॥

अथ रविरुद्गमं लभते । उत्प्रेक्ष्यते-कुङ्कुमव्याप्तं प्राच्याः कर्णाभरणम् ॥६१॥

[1]पूषद्विषं [2]प्रसाद्यौ[3]ऽम्भोमूर्तिं नि[4]त्यानुशीलनैः ।
[5]पद्मिनीभिर[8]भीर्भर्त्ता [6]पूषा[7]ऽऽहूतः किमुद्ययौ ॥६२॥

(१) ईश्वरम् । (२) प्रसन्नीकृत्य । (३) जलमूर्त्तिम् । यत उक्तम् – "क्षितिजलपवनहुताशन-यजमानाकाशसोमसूर्याख्याः । यस्य खलु मूर्त्तयोऽष्टौ स भवतु भवतां भवः सिद्ध्यै ॥" (४) सदा सेवाभिः । (५) न विद्यते पूषद्विषः सकाशाद्भीतिर्यस्य । (६) सूर्यः । (७) आकारितः । (८) कमलिनीभिः स्त्रीभिर्वा ॥६२॥

भानुमानुद्ययौ । उत्प्रेक्ष्यते-जलमूर्त्ति –शङ्करं प्रसन्नीकृत्य शङ्करान्निर्भीकः पतिः पूषा पद्मिनीभिरानीतः ॥६२॥

[1]अभ्रमूवल्लभेनेवो[2]त्खातः [3]प्रातर्नि[4]खेलता ।
[5]प्राग्गिरेर्गैरि[6]को ग[7]ण्डोपलो [8]बालारुणो व्यभात् ॥६३॥

(१) ऐरावणेन । "गजानामभ्रमूपति" रिति काव्यकल्पलतायां – दीर्घऊकारान्तोऽप्यस्ति । (२) उत्पाद्य क्षिप्तः । (३) प्रभाते । (४) क्रीडता । (५) पूर्वाचलस्य । (६) धातुमयः । (७)

1. इति प्रातःसन्ध्या हील० । 2. ०कुण्ड० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थूलपाषाणः । (८) नवीनभानुः ॥६३॥

बालरविर्व्यभात् । उत्प्रेक्ष्यते – तटाघातादिक्रीडां कुर्वता ऐरावणेन पूर्वाचलस्य धातुमयोऽसूक्ष्मपाषाण उत्पाद्य क्षिप्तः ॥६३॥

[१]द्यावाभूमीपराभूष्णुं [२]भूच्छायामरवैरिणम् ।
[३]भेत्तुं [४]व्यामोचि [५]चण्डांशुचक्रं किं [६]चक्रपाणिना ॥६४॥

(१) गगनभुवोः पराभवनशीलम् । (२) तमोरूपं दैत्यम् । (३) हन्तुम् । (४) क्षिप्तम् । (५) भानुरूपं सुदर्शनचक्रम् । (६) हरिणा ॥६४॥

तमोदैत्यं हन्तुं नारायणेन तीक्ष्णकिरणकलितं सूर्यरूपं वा चक्रं मुक्तमिव ॥६४॥

[१]कण्ठपीठीलुठत्प्राणरथाङ्गाह्वविहायसाम् ।
[२]जीवातुर्य[३]मुनाबीजी [४]व्यरचीव [५]विरञ्चिना ॥६५॥[1]

(१) वियोगाकुलतया कण्ठगतजीवितानां चक्रवाकपक्षिणाम् । (२) जीवनौषधम् । (३) सूर्यः । (४) कृतम् । (५) विधिना । "जयत्युदरनिःसरद्वरसरोजपीठीपठच्चतुर्मुखमुखावली" ति चम्पूकथायाम् ॥६५॥

कण्ठपीठ्यां निर्गमनायाऽऽगच्छन्तः प्राणा येषां तादृशानां चक्रवाकानां जीवनौषधमिव सूर्योदयो जातः ॥६५॥

[१]शोणी [२]दीप्तिर्दि[३]नेशस्या[४]ऽधात्कु[५]मारितरा श्रियम् ।
[६]कोकैर्दुःखानलज्वाला किमु[७]द्गीर्णाः [८]सुहृत्पुरः ॥६६॥

(१) रक्ता । (२) कान्तिः । (३) रवेः । (४) दधौ । (५) बाला । प्रथमोत्पन्ना । "रचयति रुचिः शोणीमेतां कुमारितरा रवे" रिति नैषधे । (६) चक्रवाकैः । (७) प्रकटीकृताः । (८) मित्राग्रे – सूर्यस्याऽग्रे ॥६६॥

सूर्यस्य रक्ता बाला–प्रथमोत्पन्ना कान्तिः शोभां धत्ते स्म । उत्प्रेक्ष्यते – चक्रवाकैर्मित्रस्य सूर्यस्य पुरो दुःखाग्निज्वाला हृदयाद्बहिरुद्भ्रान्ता इव ॥६६॥

निजा[१]नुरागिणीर्वीक्ष्य दारान्स्मे[२]रसरोजिनीः ।
किमु[३]द्गीर्णो[४]ऽरुणज्योतीरागो [५]राजीवबन्धुना ॥६७॥

(१) स्वस्मिन्ननुरक्ताः । (२) कमलिनीः । (३) प्रकटितः । (४) रक्तकान्तिरेवाऽनुरागः । (५) भानुना ॥६७॥

निजा०– पद्मिनीः स्वप्रेयसीर्दृष्ट्वा रविणा रागो बहिरुद्गीर्ण इव ॥६७॥

---

1. इति सूर्योदयः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]हरिव्यापादितध्वान्तकुम्भिकुम्भसमुद्भवैः ।
[२]रक्तै रक्तीकृता शङ्के प्रभा भाति स्म [३]भानवी ॥६८॥

(१) सूर्यहततमोगजशिरोभवैः । (२) शोणितैः । (३) भानुसम्बन्धिनी ॥६८॥

रविप्रभा भाति । उत्प्रेक्ष्यते- हरिणा-भानुना केसरिणा च विदारिततमोहस्तिकुम्भोद्भूतै रक्तै रक्तीकृता ॥६८॥

[१]कान्तागमे धृ[२]ताताम्राम्बरा इव दिगङ्गनाः ।
[३]बन्धूकबन्धुरैर्ब्र[४]ध्नभवैर्भान्ति प्रभाभरैः ॥६९॥

(१) भर्त्तुरागमने । "दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वर" इति रघौ । (२) परिधृतरक्तवसनाः । (३) बन्धुजीवकवत् 'विपोहरियां' इति प्रसिद्धानि, तद्वन्मनोज्ञै रक्तैः । (४) सूर्योत्पन्नैः ॥६९॥

सूर्योद्भवकान्तिभिराशावशा भान्ति । उत्प्रेक्ष्यते - सूर्यागमे परिहितरक्तवस्त्रा ॥६९॥

[१]द्रुमद्रोणिषु स[२]ञ्चिन्वन्नुल्लसत्पल्लवानिव ।
[३]तन्वन्निव [४]तटाकेषू[1][५]न्निद्रत्कोकनदश्रियम् ॥७०॥

कुर्वन्निव गिरेः शृङ्गे गै[१]रिकावनिविभ्रमम् ।
[२]ताम्बूलश्रियमा[३]स्येषु दि[४]ग्वधूनां दिश[५]न्निव ॥७१॥

[१]सीमन्तेषु [२]मृगाक्षीणां सिन्दूरं [३]पूरयन्निव ।
प्रातः प्रस्तारयन्भाति [४]भानुमा[५]न्भानुविभ्रमम् ॥७२॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

(१) वृक्षश्रेणिषु । "भिल्लीपल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु" इति चम्पूककथायाम् । "द्रोणी द्रोणिरिदन्तः श्रेण्यामपी" त्यनेकार्थवृत्तौ । (२) उपचयं प्रापयन् । (३) विस्तारयन् । (४) सरस्सु । (५) वि[क]चरक्तकमललक्ष्मीम् ॥७०॥

(१) धातुमयभूमीभ्रान्तिम् । (२) ताम्बूलीदलभक्षणभवस्तस्य शोभाम् । (३) मुखेषु । (४) दिगङ्गनानाम् । (५) यच्छन् ॥७१॥

(१) केशवर्त्मसु । (२) स्त्रीणाम् । (३) भरन् । (४) रविः । (५) कान्ति विलासम ॥७२॥

सूर्यो रश्मिविलासं प्रस्तारयन्भाति । किं कुर्वन् ? । द्रुमश्रेणीषु पल्लवान्बाहुल्यं प्रापयन् । पुनः किं कुर्वन् ?। गिरिशृङ्गे रक्तधातुभूमिविभ्रमं विरचयन् । पुनः तटाकेषु रक्तोत्पलभ्रान्तिं कुर्वन्, दिग्वधूनामास्येषु ताम्बूलं ददन्, स्त्रीणां सीमन्तेषु सिन्दूरं पूरयन् इव ॥७०-७१-७२॥

[१]प्रारेभे भानुना [२]व्योम्नि क्रमाच्च[३]ङ्क्रमणक्रमः ।
[४]विश्वविश्वम्भराभोगं प्रे[५]क्षितुं किमु [६]काङ्क्षता ॥७३॥[2]

1. ०केषु निन्दन्कोक० हीमु० । स चाशुद्धः । 2. इति दिनोदयः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) प्रारब्धः । (२) गगने । (३) गमनानुक्रमः । परिपाटी । (४) सर्वभूमेर्विस्तारम् । (५) द्रष्टुम् । (६) इच्छता ॥७३॥

गगने भानुर्गन्तुमारभत । उत्प्रेक्ष्यते – समग्रपृथ्वीविस्तारं विलोकयितुं काङ्क्षता ॥७३॥

[१]आसाद्य दर्शनं तस्याः [२]शासनस्वर्गिसुभ्रुवः ।
[३]व्यरंसीद् ध्यानतः सूरिर्यो[५]गीव [४]परमात्मनः ॥७४॥

(१) प्राप्य । (२) शासनदेवतायाः । (३) विरमते(ति) स्म । (४) परमात्मनो दर्शनात् । (५) ध्यानं कुर्वाणा योगिनो हृदि परमानां(त्मानं) प्रेक्ष्य ध्यानाद्विरमन्ते(न्ति) । यथा– ''योगात्स चाऽन्तः परमात्मसंज्ञं दृष्ट्वा परंज्योतिरुपारराम'' इति कुमारसम्भवे ॥७४॥

पूर्वोक्तायाः शासनदेव्या दर्शनं प्राप्य सूरिर्ध्यानाद्विरमते(ति) स्म । यथा ध्यानस्था योगीन्द्रा हृदि परमात्मानमालोक्य विरमन्ते(न्ति) ॥७४॥

सूरीन्दुर्वस[१]तेर्मध्यं[1] [२]ध्यानस्था[ना]दथाऽऽगमत् ।
[३]प्राग्गिरेः [४]कन्दरक्रोडाद्भा[५]स्वानिव न[६]भोऽङ्गणम् ॥७५॥★

(१) उपाश्रयस्य । (२) ध्यानविधानास्पदात् । (३) पूर्वाद्रेः । (४) गुहोत्सङ्गात् । (५) रविः । (६) गगनमध्यम् ॥७५॥

श्रीसूरिर्ध्यानस्थानादुपाश्रयमध्ये आगतः । यथा पूर्वाद्रेर्नभोमध्ये रविरागच्छति ॥७५॥

[१]प्रीतिप्रह्वैः प्रभुस्तत्र [२]परिवव्रे [३]व्रतिव्रजैः ।
[४]सुनासीर इवाऽऽ[५]स्थानीमा[६]सीनः स्व[७]र्गिणां गणैः ॥७६॥

(१) प्रेमप्रणमनशीलैः । (२) परिवृतः । (३) मुनिगणैः । (४) शक्रः । (५) सभाम् । (६) उपविष्टः । (७) सुरनिकरैः ॥७६॥

प्रीति० । तत्र– मौलोपाश्रये श्रीसूरिः साधुभिर्वृतः । यथेन्द्रो देवगणैर्वृतो भवति ॥७६॥

तत्राऽऽगमन्[१]पत्तनादिसङ्घास्तं वन्दितुं तदा ।
[२]स्वर्गादिदेवाः समवसरणस्थं यथा जिनम् ॥७७॥

(१) अणहिल्लपत्तनप्रमुखसङ्घाः । (२) स्वर्गप्रमुखसुरावसेभ्यश्चतुर्विधसुरा इव ॥७७॥

पत्तनादिसङ्घास्तं नन्तुमागताः । यथा समवसरणस्थं जिनं नन्तुं वैमानिकादिदेवाः समागच्छन्ति ॥७७॥

[१]प्रबोधयन्[२]सुदृक्पद्मान् [३]कुदृक्पङ्कांश्च [४]शोषयन् ।
[५]स्पर्द्धयेव रवेः सूरेः प्रतापो [६]व्यानशे दिशः ॥७८॥

---

1. ०ध्ये० हीसु. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) प्रतिबोधयुक्तान् कुर्वन् विकाशयंश्च । (२) सम्यग्दृश एव कमलाः । (३) कुमतकर्दमान् । (४) निष्ठापयन् शोषं नयंश्च । (५) सूर्यप्रतापस्य स्पर्द्धया । (६) समस्ता अपि दिशो व्याप्नोति स्म ॥७८॥

सम्यग्दृश एव कमलान् बोधयन् । पुनः कुवादिकर्दमान् शोषयन् । अतो रविस्पर्द्धया सूरिप्रतापेन दिशो व्याप्ताः ॥७८॥

[1]प्रतिक्रम्य [2]चतुर्मासीं स क्रमाद्[3]व्यहरत्ततः ।
हर्षाद्[1]वर्षा[4]मिवोल्लङ्घ्य [5]मानसादि[6]ष्टमानसः ॥७९॥

(१) पूर्णीकृत्य । (२) वर्षाचतुर्मासम् । (३) प्रस्थितः । (४) मेघागमम् । (५) मानसनामसरसः । (६) हंसः । "नृपमानसमिष्टमानस" इति नैषधे ॥७९॥

स विजहार । यथा हंसो वर्षासमयमुल्लङ्घ्य मानसात् प्रयाति ॥७९॥

[2]क्रमाद[1]हम्मदावादपुरे सूरिः [2]समीयिवान् ।
[3]नभोनीरधिवर्णिन्याः [4]प्रतीरे [5]सुप्रतीकवत् ॥८०॥★

(१) अकमिपुरे । (२) समागतः । (३) गङ्गायाः । (४) तटे । (५) ईशानदिग्गजः ॥८०॥

स **अहम्मदावादपुरे** गतवान् । यथेशानदिक्सम्बन्धी सुप्रतीकदिग्गजो गगनगङ्गायां गच्छति ॥८०॥

दे[1]वीनिगदितागण्यभाग्यसौभाग्यशालिनः ।
स्वस्याऽन्तेवासिनस्तस्य [3]कम्माङ्गजयतीशितुः ॥८१॥
[3]सूरीन्द्रः [1]कामयाञ्चक्रे दातुं [2]सूरिपदं ततः ।
[3]तनूजस्येव राज्यस्य धुरं [4]धात्रीपुरन्दरः ॥८२॥★ युग्मम् ॥

(१) शासनदेवतासूचितासाधारणपुण्यसुभ[ग]ताभिः शोभनशीलस्य । (२) आत्मनः शिष्यस्य । (३) जयविमलप्रज्ञांशस्य ॥८१॥

(१) वाञ्छति स्म । (२) आचार्यपदम् । (३) पुत्रस्य । (४) राजा ॥८२॥

श्रीसूरिर्**जयविमल**प्रज्ञांशस्य सूरिपदं दातुमभिलषति स्म । यथा राजा स्वपुत्रस्य राज्यभारं दत्ते ॥८१-८२॥

प्रक्रमे[1] तत्र [2]तत्रत्यसङ्घेनाऽऽगृह्यत प्रभुः ।
[3]तमिवाऽभि[4]नवं सूरिशक्रमन्यं [5]दिदृक्षता ॥८३॥

(१) तस्मिन् प्रस्तावे (२) अकमिपुरीयश्राद्धवर्गेण । (३) हीरसूरिमिव । (४) नवीनम् । (५) द्रष्टुमिच्छता ॥८३॥

तस्मिन्प्रस्तावे सङ्घेनाऽऽग्रहः कृतः । उत्प्रेक्ष्यते- नवं सूरिं द्रष्टुमिच्छता ॥८३॥

1. °द्वर्षा इवो° हीमु° । °द्वर्षादिवो° हील° । 2. क्रमेणाह° हीसु° । 3. सूरीन्दुः हीमु° ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]ततः [2]स्वाशयसंवादि [4]प्रपेदे [3]तद्वचः प्रभुः ।
[5]व्रतव्यतिकरे [6]लौकान्तिकदेवोक्तम[7]ाप्तवत् ॥८४॥

(१) सङ्घाग्रहानन्तरम् । (२) निजाभिप्रायसदृशम् । यादृशं स्वचित्ते तादृश एव सङ्घाग्रहः । (३) सङ्घस्य वचः । (४) अङ्गीचक्रे । (५) दीक्षाग्रहणसमये । (६) लोकस्य-पञ्चमकल्पस्य प्रान्तस्तत्र भवा लौकान्तिकाः सुरास्तेषां कथितम् । (७) जिनेन्द्र इव ॥८४॥

ततः स्वाभिप्रायसदृशं वाचं प्रपेदे । यस्य विभोः (यथा विभुः) लोकान्तिकदेववाचं प्रपेदे ॥८४॥

सूरीन्द्रेणाऽथ दै[1]वज्ञैर्मु[2]हूर्त्तं निर[3]धार्यत ।
[4]एतन्महोदयस्येव [5]प्रारम्भप्रथमेक्षणः ॥८५॥

(१) मौहूर्त्तिकैः । (२) सुवेला । (३) निश्चिता । (४) श्रीजयविमलपण्डितस्याऽद्वैताभ्युदयस्य । (५) आरम्भस्याऽऽदिमोऽवसरः । "क्षणः कालविशेषे स्यात्पर्वण्यवसरे महे" इत्यनेकार्थः ॥८५॥

दैवेज्ञैर्मुहूर्त्तमुक्तम् ॥८५॥

[1]शिल्पिभिः [2]कारितः [3]सङ्घैर्मण्डपो [4]यन्मुनीशितुः ।
[5]पट्टश्रियं [6]वरीतुं किं स्वयंवरणमण्डपः ॥८६॥

(१) विज्ञानिभिः । (२) निष्पादितः । (३) अकमिपुरश्राद्धैः । (४) हीरविजयसूरेः । (५) पट्टलक्ष्मीम् । जयविमलस्य वा सूरिपदश्रियम् । (६) स्वीकर्त्तुम् ॥८६॥

श्रीसङ्घैर्मण्डपः कृतः । उत्प्रेक्ष्यते - पट्टश्रियः स्वयंवरमण्डपः ॥८६॥

[1]एतद्व्यतिकरे[2]ऽनेककौतुकालोकलालसा ।
त्रिलोकी [3]चित्रदम्भेन मण्डपे [4]किमुपेयुषी ॥८७॥

(१) आचार्यपददानावसरे । (२) बह्वाश्चर्यदर्शनलोलुपा । (३) आलेख्यमिषेण । (४) आगता ॥८७॥

[1]...... प्रस्तावे चित्रदम्भात्त्रिलोकीवाऽऽगता ॥८७॥

[1]विस्तीर्णोऽपि [2]स [3]सङ्कीर्णो [4]बभूवाऽनेकनागरैः ।
[5]भाविभट्टारकागण्यपुण्याकृष्टैरिवाऽऽगतैः ॥८८॥

(१) पृथुलोऽपि । (२) जनाश्रयः । (३) लघुः । (४) बहुनगरनरैः । (५) भविष्यदाचार्यस्य जयविमलपण्डितस्य प्रबलभाग्येनाऽऽकृष्टैरिव ॥८८॥

मण्डपः सङ्कीर्णो जातः ॥८८॥

---

1. झेरोक्षसंज्ञकप्रतिलिपेरस्वच्छत्वादक्षराणीमान्यवाच्यानि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]निशि [3]तारैरिवा[2]ऽऽकाशो [4]भ्रियमाणः स[5] निर्भरम् ।
तं[6]महोमिलितै रेजे [7]पौरैर्जानपदैर्जनैः ॥८९॥

(१) रात्रौ । (२) गगनम् । (३) तारकैः । (४) पूर्यमाणम् । (५) अनिलप्रवेशम् । (६) आचार्यपदोत्सवे सङ्गतैः । उत्सववाची महः शब्दः सकारान्तोऽप्यस्ति - ''एनं महस्विनमुपैति सदारुणोच्चै''- रिति नैषधे । नलानलयोर्वर्णने - 'महस्विनं तेजस्विन[मनल]मुत्सववन्तं च' । 'महस्तेजस्युत्सवे चे'त्यनेकार्थः । (७) पुरभवैर्देशोत्पन्नैर्जनैः ॥८९॥

यथा नक्तं नक्षत्रैर्गगनं भ्रियते । तद्वज्जनैर्भृतः स मण्डपो रेजे ॥८९॥

[1]तीर्थेशितेव समवसरणं [2]श्रमणाग्रणीः ।
[3]श्रमणश्रेणिभिः सार्धम[4]ध्यासामास मण्डपम् ॥९०॥

(१) जिनेन्द्र इव । (२) सूरिः । (३) मुनिमण्डलीभिः । (४) आश्रयति स्म ॥ ९०॥

यथा [तीर्थकरः] समवसरणं श्रयति तद्वन्मुनिभिः सह श्रीसूरिर्मण्डपमाश्रितवान् ॥९०॥

[1]पण्डिताखण्डलं श्रीमज्जयाद्यविमलाभिधम् ।
[2]आह्वातुं प्रे[3]षयामास [4]मुनिमुख्यान्मु[5]नीश्वरः ॥९१॥

(१) प्रज्ञांशशक्रः(क्रम्) । (२) आकारयितुम् । (३) प्रहिणोति स्म । (४) वाचकादीन्यतिप्रवरान् । (५) सूरिः ॥९१॥

श्रीजयविमलप्रज्ञांशमाह्वातुं[1] .... ॥९१॥

[1]अयमा[2]नीयता[3]ऽमीभिर्मण्डपं [4]पण्डिताग्रणीः ।
[5]औत्तराहै[2]र्ग[6]न्धिवाहैर[7]म्बुवाहोऽ[8]म्बराङ्कवत् ॥९२॥*

(१) जयविमलपण्डितः । (२) आनीतः । (३) मुनिमुख्यैः । (४) कोविदकुञ्जरः । (५) उत्तरस्यां भवैः । (६) वातैः । (७) मेघः । (८) गगनमध्यम् ॥९२॥

अमीभिर्मुनीनैः स पण्डितमुख्यो卐......... 'सूरीयो वायु' इति लोकप्रसिद्धैर्वायुभिर्मेघो गगनमध्ये आनीयते । तेन वायुनाऽवश्यं देवः समेति ॥९२॥

प्र[1]भुं बभाज तैः[2] सार्द्धं साधुभिः [3]साधुसिन्धुरः ।
युवराज [3]इवा[4]ऽनेकसामन्तैः पि[5]तरं निजम् ॥९३॥*

(१) हीरसूरिम् । (२) मुनिभिः समम् । (३) जयविमलप्रज्ञांशः । (४) बहुमण्डलीकैः । (५) तातम् ॥९३॥

प्रभुं० ।[4] .....[सूरिं बभाज ।]यथा सीमालकभूपयुतो यु[वराजो जन]कं भ[जते]॥९३॥

1. झेरोक्षसंज्ञकप्रतिलिपेरस्वच्छत्वादक्षराणीमान्यवाच्यानि । 2. उत्तरा० हीमु० । 3. इवानल्पैः सामन्तैः० हीमु० । 4. झेरोक्षसंज्ञक प्रतिलिपेरस्वच्छत्वादक्षराणीमान्यवाच्यानि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाविसूरेरभूत्तस्योपाध्यायपदमादितः ।
परमावधिवत्साधोरुदेष्यत्केवलश्रियः[1] ॥९४॥

(१) भविष्यदाचार्यस्य । (२) वाचकपदम् । (३) प्रथमम् । (४) प्रादुर्भविष्यत्केवलज्ञानलक्ष्मीकस्य । (५) मुनेः । (६) परमं पृथक्परमाणुज्ञानकृदवधिज्ञानमिव ॥

तस्योपाध्यायपदं दत्तम् । यथा केवलज्ञानात्पूर्वं परमावधिरु[त्पद्यते]॥९४॥

महामहैस्ततस्तस्य सूरिः सूरिपदं ददौ ।
जातवेदाः स्फुरज्ज्योतिर्निकेतनर्मणेरिव[2] ॥९५॥

(१) महोत्सवैः । (२) आचार्यपदम् । (३) दत्तवान् । (४) वह्निः । (५) दीप्रदीप्तिम् । (६) दीपस्य ॥९५॥

सूरिर्महोत्सवैः सूरिपदं [ददौ] । यथा [वह्निर्दीपस्य] दीप्तिं प्रदत्ते ॥९५॥

उज्झित्वा शमिनोऽशेषान्सुरानिव रमा हरिम् ।
तं सूरिमुपगच्छन्ती रेजे सूरिपदेन्दिरा ॥९६॥

(१) त्यक्त्वा । (२) मुनीन् । (३) समस्तान् । (४) सुरान्मुक्त्वा । (५) श्रीः । (६) विष्णुमिव । "लक्ष्मीर्यस्याः सर्वाङ्गलावण्यमधु लोचनकषकैरापीय पीयूषजुषो मदनपरवशाः परस्परमेवेर्ष्यन्तश्चक्रुश्चक्रपाणिना समं सङ्गरम् । अथ सर्वानप्यन्तरान्तरापततस्तानुल्लङ्घ्य भगवतश्चिक्षेप कण्ठे वैकुण्ठस्य स्वयंवरणमालिका" मिति चम्पूकथायाम् । (७) जयविमलाह्वमाचार्यम् । (८) प्रयान्ती । (९) सूरिपदश्रीः ॥९६॥

सकलमुनीन् त्यक्त्वा[3]........ सूरिपद[3]......... यथा देवान् त्यक्त्वा कृष्णं भजन्ती श्रीर्भाति ॥९६॥

तस्य पूरयतो विश्वकामांश्चिन्तामणेरिव ।
श्रीमदद्विजयसेनेति सूरिराजोऽभिधां व्यधात् ॥९७॥

(१) ददतः । (२) कामितानि ॥९७॥

तस्य **श्रीविजयसेनसूरि**रित्यभिधा कृता ॥९७॥

किन्नर्य इव नागर्यः(र्यो) जगुर्गीतिं पिकक्कणाः ।
सङ्गीतं तेनिरे नाकिकुमारा इव नर्त्तकाः ॥९८॥

---

1. ०'श्रियः' इतः परं हीसुं०हील०प्रतयोर्मध्ये - **उदेष्यत्केवलस्येव तुर्यज्ञानं जिनेशिनुः** । इति पाठान्तरं लिखितमस्ति । तट्टीका चैवं हीसुंप्रतौ दृश्यते - **प्रकटीभविष्यत्केवलज्ञानस्य तीर्थकृतः मनःपर्यवज्ञानमिव** ॥ 2. ०"**मणेरिव**" इतः परं हीसुंहीलप्रतयोर्मध्ये - **प्रदीप इव दीपस्य निजज्योतिस्तमोपहम्** । इति पाठान्तरं दृश्यते । पश्चात् हीलप्रतौ - "इत्यपि द्विपदी पाठान्तरे" - एवं लिखितमस्ति । अस्य टीका च हीसुंप्रतावेवं दृश्यते- **स्वकान्ति ध्वान्तच्छिदम्** । 3. झेरोक्षसंज्ञकप्रतिलिपेरस्वच्छत्वादक्षराणीमान्यवाच्यानि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) किन्नराङ्गना इव । (२) नगराङ्गनाः । (३) कोकिलालापाः । (४) देवकुमाराः । (५) गीत-नृत्य-वाद्यत्रये प्रेक्षणनिमित्तं प्रयुक्त(क्ते) सति सङ्गीतमिति संज्ञा । सम्भूय सर्वैर्गीयतेऽस्मिन्निति सङ्गीतम् । (६) नृत्यकारकाः ॥९८॥

[1]................ नृत्यन्ति स्म ॥९८॥

[१]त्रिलोकीमपि कुर्वाणं तत्र [२]चित्रीकृतामिव ।
[३]नेत्रश्रोत्रसुधास्यन्दि [४]तौर्यत्रिकमजायत ॥९९॥

(१) त्रैलोक्यम् । (२) आलेख्ये निर्मितामिव । (३) नयनयोः श्रोत्रयोश्चाऽमृतं स्त्रवतीत्येवं शीलम् । (४) गीत-नृत्य-वाद्यत्रयम् ॥९९॥

लोकत्रयीं चित्रलिखितामिव कुर्वाणम् । पुनर्नेत्रश्रोत्रयोः सुधां स्यन्दते क्षरति सिञ्चति वा तादृशं गीतनृत्यवाद्यत्रयं जातम् ॥९९॥

[१]तत्राऽस्ति [२]श्राद्धमूर्द्धन्यः श्राद्धो [३]मूलाभिधः [४]सुधीः ।
[५]सौन्दर्यधर्मदाढ्र्याभ्यां [६]कामदेव इवाऽपरः ॥१००॥

(१) अहम्मदावादे । (२) श्रावकेषु शेखरः । (३) मूलकश्रेष्ठी नाम । (४) चतुरः । (५) शरीररमणी[य]तया धर्मे दृढतया च । (६) कन्दर्पदेवः महावीरश्राद्धश्च ॥१००॥

तत्र मूलकश्रेष्ठ्यभूत् । उत्प्रेक्ष्यते - अन्यः कामदेवः ॥१००॥

[१]जृम्भकव्रजवज्[२]जन्मोत्सवे शंभो[३]र्वणिग्वरः ।
ववर्ष [४]वसुधाराभि[५]स्तस्य [६]सूरिपदक्षणे ॥१०१॥

(१) तिर्यग्जृम्भकदेवगण इव । (२) जिनजन्ममहे । (३) वणिग्मुख्यः । (४) स्वर्णरूप्यवृष्टिभिः । (५) विजयसेनसूरेः । (६) आचार्यपददानसमये ॥१०१॥

जृम्भ० । तस्य सूरिपदोत्सवे मूलो श्रेष्ठी प्रभावनां कृतवान् । यथा तिर्यग्जृम्भकदेवा वृष्टिं कुर्वन्ति ॥१०१॥

[१]तस्मिन्विनिहितं सूरिपदं [२]सूरिसिताशुना ।
दिदीपे [३]भास्वता [४]ज्योतिरिव [५]सायं [६]धनञ्जये ॥१०२॥

(१) विजयसेनसूरीन्द्रे । (२) हीरविजयसूरिमहेन्द्रेण । (३) भानुना । (४) कान्तिः । (५) सन्ध्यायाम् । (६) वह्नौ । "दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशन" इति रघौ ॥१०२॥

तस्मिन्सूरिपदं दत्तं दीप्यते स्म । यथा हरिणा दत्तं धनञ्जये दीप्यते ॥१०२॥

शोभामुभौ लभेते स्म [१]श्रीमत्सूरिपुरन्दरौ ।
[२]प्रणिघ्नन्तौ [३]तमःस्तोमं [४]सूर्याचन्द्रमसाविव ॥१०३॥

---

1. झेरोक्षसंज्ञकप्रतिलिपेरस्वच्छत्वादक्षराणीमान्यवाच्यानि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) श्री[मन्तौ] द्वौ हीरविजय-विजयसेनसूरीन्द्रौ । (२) व्यापादयन्तौ । (३) अज्ञानान्ध-कारााणां निकरम् । (४) रवीन्दू इव ॥१०३॥

श्रीसूरीन्द्रौ शोभेते स्म ॥१०३॥

[१]वनीमिवाऽवनीं सूरिशक्रौ च[२]ङ्क्रमणैः क्रमात् ।
[३]मधुराधाविव मासौ शोभां ल[४]म्भयतः स्म तौ ॥१०४॥[1]

(१) आरामम् । "स्ववनीसम्प्रवदत्पिकापि का" इति नैषधे । (२) विहारैः । (३) चैत्रवैशाखमासाविव । (४) प्रापयतः स्म ॥१०४॥

यथा चैत्रवैशाखमासौ वनं भूषयतस्तद्वत्तौ सूरीशौ धरणीं भूषयतः स्म ॥१०४॥

[१]कोऽपि [२]मेधाविमूर्द्धन्यो लु[३]म्पाकानां मते तदा ।
[४]मेघजीऋषिरित्यास्ते नाम्नो[५]ऽमेध्ये [६]मणिर्यथा ॥१०५॥

(१) कश्चित् । (२) प्रज्ञालचूडामणिः । (३) 'लुंका' इति प्रसिद्धास्तेषां मतस्य स्वामी । (४) मेघजीऋषिरिति नाम्ना । (५) अवस्करे-अशुचिस्थाने । (६) रत्नमिव ॥१०५॥

तदा-तस्मिन्स[मये]लउका **मेघजीऋषिः** प्रज्ञालचूडामणिरस्ति । यथाऽशुचिस्थाने रत्नं पतितं भवति ॥१०५॥

ऋषिः कुंअरजीनामा [१]तं लुम्पाकमतप्रभुः ।
पल्लिपतिर्यथा [२]वङ्कचूलं नि[३]जपदे [४]न्यधात् ॥१०६॥

(१) मेघजीऋषिम् । (२) राजपुत्रम् । (३) तस्य पट्टे । (४) स्थापयति स्म ॥१०६॥

कुंअरजीऋषिर्मेघजीऋषिं स्थाने स्थापितवान् । यथा पल्लिपतिर्व[ङ्कचूलं नाम राजपुत्रं] स्वपदे स्थापितवान् ॥१०६॥

[१]सिद्धान्तानेष [२]निध्याय[2] कदाचि[३]च्चित्तचक्षुषा ।
प्रतिमा[४]मार्हतीं चित्रवल्लीं चाष इवै[५]क्षत ॥१०७॥*

(१) आचाराङ्गाद्यानागमान् । (२) विलोक्य । (३) शुद्धमनोनयनेन । (४) जिनसम्बन्धिनीम् । (५) दृष्टवान् ॥१०७॥

मेघजीऋषि[स्तत्त्वचक्षुषा सिद्धान्तान्] विलोकयन् सन् जिनप्रतिमाक्षराणि दृष्टवान् । यथा [नीलचाष]श्चित्रवल्लीमीक्षते ॥१०७॥

लुम्पाकानां [१]मतात्तस्मादिव [२]कारानिकेतनात् ।
निर्गन्तुं [३]कामयामास स [४]ततो मेघजीमुनिः ॥१०८॥[4]

---

1. इति ध्यानोत्थानाकमि[पुरागमनाचार्यपदस्थापनम् ।] हील० । 2. **०ध्यायन्कदा०** हीमु० । 3. **चित्तत्त्वच०** हीमु० । 4. इति मेघजीमुनेः प्रतिमाक्षरदर्शनात्प्रतिबोधः । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) लुम्पाकगच्छात् । (२) चारकगृहात् । (३) इच्छति स्म । (४) प्रतिमादर्शनानन्तरम् ॥१०८॥

लुम्पा० । कारागारसदृशाल्लुम्पाकमतान्निर्गन्तुं मेघजीमुनिरभिलषति स्म ॥१०८॥

त[1]न्मताधिकृतान्वेषधरान्वागु[रि]कानिव ।
[2]पाशे पातयतो [3]मुग्धान्मृगानिव [4]विवेद सः[5] ॥१०९॥

(१) लुम्पाकमताधिकारिणः । (२) वागुराणां पाशे-बन्धे । (३) अनभिज्ञान् । तत्त्वातत्त्वविचारणाचतुरान् । (४) जानाति स्म । (५) मेघजीमुनिः ॥१०९॥

तान्मुनिरूपधरान्जनान् वागुरिकानिव जानाति स्म ॥१०९॥

अ[1]मी वीं[2]ङ्खां [4]प्रकुर्वन्ति बका इव शनैः [3]शनैः ।
[5]सतां स[6]म्यग्दृशो ह[8]न्तुं काङ्क्षन्तः श[7]फरीरिव ॥११०॥

(१) लुम्पाकाः । (२) गमनम् । (३) आलोक्याऽऽलोक्य । (४) मुञ्चन्ति । (५) मुग्धश्राद्धानाम् । (६) सम्यक्त्वानि । सत्यज्ञानदृष्टीः । (७) मच्छ्यी(त्सी)रिव । (८) व्यापादयितुम् ॥११०॥

अमी सम्यक्त्वमीनान् हन्तुं बका इव शनैः शनैश्चलन्ति स्म ॥११०॥

[1]विगोपनमिवै[2]तेषां वेषं वै[3]षभृतामवै[4]त् ।
[5]तन्मतस्थं पुनर्मे[7]ने [1]सोऽन्धकूपगतं [6]निजम् ॥१११॥

(१) विडम्बनाप्रायम् । (२) लुम्पाकानाम् । (३) वेषधारिणाम् । (४) वेत्ति स्म । (५) लुम्पाकमतस्थायुकम् ॥ (६) स्वम् । (७) जानाति स्म । (८) घोरान्धकारावृतकूपान्तःपातिनम् ॥१११॥

पुनर्जैनाभासलिङ्गधारिणां वेषं विडम्बनाप्रायं बुबुधे । आत्मानमन्धकूपस्थं मेने ॥१११॥

[1]आप्तोक्तिरत्नगर्भायाममीषां [3]प्रतिमा[2]ऽर्हताम् ।
[4]निधिकुम्भीव [5]दुःस्थानां [6]पथिकी नाऽभवद् दृशोः ॥११२॥

(१) सिद्धान्तभूमौ । (२) तीर्थकृताम् । (३) मूर्त्तिः । (४) निधानघटी । (५) दरिद्राणाम् । (६) गोचरा ॥११२॥

रत्नगर्भातुल्यायां जिनोक्तौ जिनप्रतिमा सत्यपि दरिद्राणां तेषां दृशोर्गोचरा नाऽभवत् ॥११२॥

ऐ[1]हिकामुष्मिके [2]सौख्ये दूरेऽत्र[3] स्था[4]यिनो मम ।
[5]नीरतीरे [6]सरःपङ्के नि[7]मग्नस्येव [8]दन्तिनः ॥११३॥

---

1. सौधं कूपगतं० हीमु० । स चाशुद्धो भाति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) इहलोकसम्बन्धिपरलोकसम्बन्धिनी । (२) सुखे । (३) लुम्पाकमते । (४) तिष्ठतो ममाऽतिदूरे । (५) जलतटे । (६) तडागकर्दमे । (७) पतितस्य । (८) गजस्य ॥११३॥

अत्र स्थितस्य मे इहलोक-परलोकसुखे दूरे वर्तेते । यथा सरसः पङ्के ब्रूडितस्य हस्तिनो नीरतीरे दुर्लभे ॥११३॥

→ चेतसीति विचिन्त्याऽसौ पाण्डवानिव पण्डितः ।
कैश्चिच्चाऽऽलोचचतुरैरालोच्य सचिवैरिव ॥११४॥←

स[१] [२]पल्वलमिवा[३]ऽमेध्यं हंसो [४]लुम्पाकनायकः ।
[५]अत्याक्षीत्[६]पक्षमात्मीयं [७]विनेयैस्त्रिंशता समम्[1] ॥११४॥

(१) मेघजीऋषिः । (२) अल्पसरः । (३) अपवित्रम् । (४) लुम्पाकमतस्वामी । (५) त्यजति स्म । (६) लुम्पाकमतम् । (७) शिष्यैः ॥११४॥

स चित्त इति विचिन्त्य तत्त्वानुगतप्र(म)तिमान् त्रिंशत्शिष्यैरात्मीयं लुम्पाकमतं त्यजति स्म । यथा हंसो जम्बाल-सेवाल-पुरीषा-स्थिपञ्जर-कण्ट[क]-ठिक्करककलितं अपावनं लघुतटाकं त्यजति ॥११४-११५॥

[१]निर्जित्य [२]स्वमतैश्वर्यस्मयं तौर्य[३]त्रिकोत्सवैः ।
[४]प्राणमत्प्रतिमां [५]जैनीं [६]जयी[2] [७]राजेव [८]मातरम् ॥११५॥*

(१) जित्वा । (२) स्वस्य मतस्य लुम्पाकनामगच्छस्याऽऽधिपत्यगर्वम् । (३) गीत-नृत्य-वाद्यत्रयैरुपलक्षितोत्सवैः । (४) प्रणमति स्म । (५) वीतरागसम्बन्धिनीम् । (६) जयनशीलः । अखिलदिक्चक्रजेता । (७) नृपः । (८) जननीम् ॥११५॥

निर्जि० । स्वमतप्रभुत्वं त्यक्त्वा जैनप्रतिमां स प्रणमति स्म । यथा जयवान् राजा स्वमातरं प्रणमति ॥११६॥

कलौ [१]स्वकामिताप्राप्तेर्लोकानालोक्य [२]सीदतः ।
[३]पूर्णकामांश्चि[४]कीर्षु[3]स्तान् [५]स्वैः [६]सुरद्रुमिवाऽऽगतम् ॥११६॥*

[१]स्वोदयाय कलिं [२]लुप्त्वा किमु कर्तुं कृतं[३] युगम् ।
[४]नक्तंदिनमिवा[५]ऽऽदित्यं धर्मं [६]मूर्तमिवो[७]द्गतम् ॥११७॥

[१]चतुर्थारकवल्लोकान्[२]पञ्चमेऽप्यरकेऽथवा ।
[३]अवतीर्णमिवो[४]द्धर्तुं कृपया गौतमं [५]पुनः ॥११८॥

→←एतदन्तर्गतः श्लोकः हीसुंप्रतौ नास्ति । 1. ॥११५॥ युग्मम् । इति मेघजीमुनेर्लुम्पाकमतत्यजनम् ।हील० । 2. जयीव निजमात० हीमु० । 3. ०कीर्षु ता. हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]तपागच्छश्रिया [२]लीलाललाममिव जैङ्गमम् ।
श्रीहीरविजयं प्रीतेरै[४]षीदेष[५] निषेवितुम् ॥११९॥ चतुर्भिः कलापकम् ।

(१) निजाभिष्टानवाप्तेः । (२) दुःखीभवतः । (३) इच्छापूरणपर्यन्तलब्धसमस्तकामितान् । (४) कर्त्तुमिच्छुः । (५) स्वर्गात् । (६) कल्पतरुम् ॥११६॥

(१) स्वस्योदयाय - चतुरंशैः स्थिरीभवनाय चतुरङ्गतया प्रादुर्भवाय वा । (२) निष्कास्य । (३) कृतं युगम् । कृतयुगे धर्मश्चतुर[ङ्गः] स्यात्, यदुक्तं नैषधे - "पदैश्चतुर्भिः सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे" इति । (४) रात्रिंदिवसम् । (५) रविम् । (६) शरीरवन्तम् । (७) प्रकटीभूतम् ॥११७॥

(१) चतुर्थारके इव । (२) दुःख(दुःष)मारकेऽपि । (३) गृहीतावतारम् । (४) मोक्षे प्रापयितुम् । (५) द्वितीयवारम् ॥११८॥

(१) तपागच्छलक्ष्म्याः । (२) लीलातिलकमिव । ललामशब्दो नकारान्तो-ऽकारान्तोऽप्यस्ति - "ललामवल्ललाम(मा)श्वे" अदन्तः पुंक्लीबे, नकारान्तः क्लीबे इत्यनेकार्थे । (३) चलत् । (४) इच्छति स्म । (५) मेघजीऋषिः ॥११९॥ चतुः ।

कल्पद्रुसदृशं पुनः कृतयुगकारिणं पुना रवितुल्यं पुनर्मूर्तिमद्धर्मरूपं गौतमावतारं पुनस्तपागच्छ-तिलकं श्रीहीरविजयसूरिं सेवितुं स वाञ्छति स्म ॥११७-११८-११९-१२०॥

[१]व्रतं जि[२]घृक्षुः सो[३]ऽकाङ्[४]क्षीद्धीहसूरेः समागमम् ।
[५]श्रीसुव्रतजिनस्येव [६]कार्त्तिकश्रेष्ठिपुङ्गवः ॥१२०॥

(१) दीक्षाम् । (२) ग्रहीतुकामः । (३) मेघजी । (४) इच्छति स्म । (५) मुनिसुव्रतस्वामिनः । (६) कार्त्तिकनामा श्रेष्ठी ॥१२०॥

स हीरसूरेः समागमं वाञ्छति स्म । यथा कार्त्तिकश्रेष्ठी श्रीसुव्रतस्वामिन आगमं वाञ्छति स्म ॥१२१॥

वि[१]ज्ञाय हीरसूरीन्दुरा[२]शयं मेघजीमुनेः ।
[३]आगादहम्मदावादे [४]माकन्दे की[५]रवत्क्रयात् ॥१२१॥[1]

(१) ज्ञात्वा । (२) अभिप्रायम् । (३) आगतः । (४) सहकारे । (५) शुक इव ॥१२१॥

श्रीहीरविजयसूरिरहम्मदावादनगरे आगच्छति स्म । यथा सहकारे कीरः समेति ॥१२२॥

[१]प्राच्यामिव [२]प्रतीच्यां [३]स्व-महोऽभ्यै[४]धिकमाँ[५]वहन् ।
[६]परोक्षलक्षान्दधत्ता[७]क्ष्यान्गृह्णन् [८]राज्ञां पुनः [९]श्रियम् ॥१२२॥

1. ॥१२२॥ इति हीरविजयसूरेर्मेघजीऋषिदीक्षार्थमहम्मदावादागमनम् । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]सैंहिकेयान्जयन्[2]शौर्याद्यो[3]ऽजैषीत्[4]पूषणं श्रिया ।
स [5]गौर्जरेष्[1][6]वथा[7]ऽऽगच्छत्साहिश्रीमदकब्बरः ॥१२३★॥ युग्मम् ॥

(१) पूर्वस्याम् । (२) पश्चिमायाम् । (३) स्वप्रतापम् । (४) अतिशायिनम् । (५) बिभ्रत् । (६) लक्षशः । (७) अश्वान् । (८) नृपाणाम् । (९) लक्ष्मीम् ॥१२२॥

(१) सिंह-व्याघ्रान् । (२) पराक्रमात् । (३) जयति स्म । (४) रविम् । "नमसितुमना यन्नाम स्यान्न सम्प्रति पूषण" मिति नैषधे । रविस्तु प्रतीच्यां मन्दायमानमहाः सप्ताश्वः चन्द्रस्य श्रियं दिशति । राहोर्बिभेति । (५) गूर्जरदेशेषु । (६) तस्मिन्समये । (७) आगतः ॥१२३॥

प्रतीच्यामपि स्वप्रतापं वहन्, पुनर्जात्यतुरङ्गान् दधन्, पुन राज्ञां भूपानां श्रियं गृह्णन्, पुनः सिंहिकाया अपत्यानि केसरिणो जयन् । सूर्यस्तु प्रतीच्यां मन्दमहाः सप्ताश्वः चन्द्रस्य श्रियं दिशन् स्वर्भाणोः सकाशात्पराभवं लभमानः । अतः स सूर्यं जयन् **अकब्बरपादसाहिर्गूर्जर**मण्डल आगच्छति स्म ॥१२३-१२४॥

[1]साहिना [2]सार्द्धम[3]भ्येयुः [4]प्राच्यां केऽपीह नैग[5]माः ।
[6]शर्वरीसार्वभौमेन [7]नभोमार्गे ग्रहा इव ॥१२४॥

(१) अकब्बरेण । (२) समम् । (३) आगताः । (४) प्राग्भवाः । (५) वणिजः । (६) चन्द्रेण । (७) गगनाध्वनि ॥१२४॥

साहि० । साहिसार्द्धं वणिज आगच्छन्ति स्म ॥१२५॥

[1]तेष्वा(ऽप्या)सन् शासने[2] जैने [3]लीना [4]मीना इवाऽम्बु[5]नि ।
[6]स्थानसिंहादिमा [7]मान्या [8]अमात्या इव भूपतेः ॥१२५॥[2]

(१) वणिक्षु (वणिजः) । (२) जिनशासने । (३) एकाग्रमानसाः । (४) मत्स्याः । (५) जले । (६) स्थानसिंहप्रमुखाः । (७) माननार्हाः । (८) प्रधानाः - सचिवाः ॥१२५॥

श्रीस्थानसिंहादिमा इभ्या जिनशासनभक्ता आसन् ॥१२६॥

[1]अरुन्तुदं [2]कुपक्षाणामिवा[3]ऽऽसेचनकं स[4]ताम् ।
[5]परिव्रज्योत्सवं कर्त्तुं कां[6]ङ्क्षन्तो मेघजीमुनेः ॥१२६॥

[1]निशितायसशल्यानि हृ[2]दि मिथ्यादृशामिव ।
आनयन्ति स्म ते [3]तूर्याण्य[4]कब्बरमहीहरेः ॥१२७॥ युग्मम् ॥[3]

(१) मर्मव्यथकम् । (२) कुमतीनां दृशाम् । (३) तृप्तिकारि । "तदासेचनकं यस्य दर्शनाद्दृग् न तृप्यति" । (४) सुदृशाम् । (५) दीक्षामहम् । (६) इच्छन्तः ॥१२६॥

---

1. गुर्जरेष्व० हीमु० ॥ 2. इति प्राच्यश्राद्धाः हील० । 3. इति वाद्यानयनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) तीक्ष्णलोहमयत्रिशूलानीव । "हृदि शल्यमयमिवार्ऽपितम्" इति रघौ । पीडाकारित्वात्त्रिशूलमिति तद्वृत्तौ । (२) हृदये । (३) वाद्यानि । (४) अकब्बरपातिसाहेः ॥१२७॥ युग्मम् ॥

कुमतिनां मर्मव्यथकं सतामासेचनकम् । "तदासेचनकं यस्य दर्शनाद् दृग् न तृप्यति" - तादृशमुत्सवं कर्त्तुं वादित्राणि आनयन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते - मिथ्यादृशां हृदि तीक्ष्णान्यायसानि लोहमयानि शल्यानि ॥ १२७-१२८॥

[१]स्पृहयद्भिरिवो[२]द्वोढुं [३]सिद्धिमुग्धमृगीदृशम् ।
श्राद्धै[४]रस्य तप[५]स्यायाः प्रारभ्यत [६]महामहः ॥१२८॥

(१) वाञ्छद्भिः । (२) परिणेतुम् । (३) मुक्तिवनिताम् । (४) मेघजीमुनेः । (५) दीक्षायाः । (६) महोत्सवः ॥१२८॥

श्राद्धैर्दीक्षोत्सवः प्रारभ्यत ॥१२९॥

[१]पूरिताशेषदिग्ध्वानढक्का [२]तद्यशसामिव ।
[1]तद्यशोभूपदिग्जैत्रयात्राढक्काक्क[णा इ]व ॥
[2][कुलशैलपयोराशि-प्रतिध्वनिविधायिनः]
[३]वाद्यमानघनातोद्यनादाः प्रा[४]दुरबीभवन् ॥१२९॥

(१) निर्भरं भृता समस्ता दिशो यैस्तादृशाः शब्दा यासां तादृशा यशपटहा इव । (२) मेघजीमु[नेर्यशसामिव]। (३) वाद्यवादकैराहन्यमानबहुवादित्रशब्दाः । (४) प्रकटीबभूवुः ॥१२९॥

पर्वतेषु अर्णवे च प्रतिशब्दकारिणो वादित्रशब्दाः प्रकटीभवन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते - पूरिताशेषदिशो यैस्तादृशो ध्वानो यस्यास्तादृशी कीर्त्तीनां ढक्का । पुनरुत्प्रेक्ष्यते - प्रतापभूपस्य दिग्यात्रायै निःशानशब्दाः ॥१३०-*१३१॥

[१]वदान्यैः [२]श्रीदवद्दानं [३]ददे[४]ऽगीयत गायनैः ।
[५]अनर्त्ति नर्त्तकै[६]रूचे बन्दिभिर्बिरुदावली ॥१३०॥

(१) दानशीलैः । (२) धनदैरिव । (३) दत्तम् । (४) गीतम् । (५) नृत्यं निर्मितम् । (६) कथिता ॥१३०॥

द्वात्रिंशत्तमं सुगमम् ॥१३२॥

[१]वैंधेयव[२]न्निरीया[३]ऽन्धकूपात्कूपे पतामि किं[४]म् ? ।
प[५]रपक्षा[3][६]न्गणे स्वस्य स्वस्या[७]ऽऽहूतिकृतस्त[८]दा ॥१३१॥

---

1. तन्महो० हीमु० । 2. [ ] एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतो नास्ति । 3. ०क्षान्गाणैः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवमत्येति दीक्षां स श्रीहीरविजयान्तिके ।
सत्याकृतिमिवाऽऽदत्त सङ्गमे सुगतिश्रियः ॥१३२॥[1] युग्मम् ॥

(१) मूर्ख इव । (२) निर्गत्य । (३) पातालावटात् । (४) कथम् । (५) अन्यगच्छीयान् । (६) गच्छे । (७) आकारणं कुर्वतः । (८) तस्मिन्नवसरे ॥१३१॥

(१) अवगणय्य । विमुच्य । (२) सत्यङ्कारम् । 'संचकार' इति प्रसिद्धः । (३) स्वर्गापवर्गलक्ष्म्याः । (४) सङ्गमकरणे ॥१३२॥ युग्मम् ।

वैधे० । मूर्खवदेकस्मात्कूपान्निर्गत्याऽन्यस्मिन्कूपे कथं झम्पामि इति परमतवेषधरान् सूरिपदप्रदानादिपूर्वकमाकारणकारिण उपेक्ष्य स **मेघजीमुनिर्हीरविजयसूरीन्द्र**पार्श्वे दीक्षां जग्राह । उत्प्रेक्ष्यते-स्वर्गापवर्गादीनां सत्यङ्कारमिव-संचकार इव ॥१३३-१३४॥

उद्योतं शासने तेने विजयं दुर्दृशां च यत् ।
इतीवाऽस्य व्यधात्सूरिरुद्योतविजयाभिधाम् ॥१३३॥

(१) वैशद्यम् । (२) जिनशासने (३) कुपाक्षिकाणाम् । (४) इति हेतोः । (५) मेघजीऋषेः ॥१३३॥

शासनस्योद्य(द्यो)तकारित्वात्कुमतविजयकृत्त्वात् **उद्योतविजय** नाम कृतम् ॥१३५॥

पादपीठलुठन्मूर्धा बद्धाञ्जलिरसौ विभुम् ।
श्रीनाभ इव नाभेयं स्वम्भुवमबीभजत् ॥१३४॥[2]

(१) पदासनमिलन्मौलिः । (२) रचितकरसम्पुटो ललाटे । (३) ऋषभदेवगणधरः । (४) वृषभस्वामिनम् । (५) जिनम् ॥१३४॥

असौ- **उद्योतविजयमुनि**स्तं भजति स्म । यथा श्रीनाभनामा गणधरः श्रीऋषभनाथं भजति स्म ॥१३६॥

पारीन्द्र इव सूरीन्द्रः प्रणिहत्य तमोद्विपम् ।
नृणां विश्राणयद्बोधिं मुक्तापङ्क्तिमिवाऽर्थिनाम् ॥१३५॥

(१) सिंहः । (२) अज्ञानकर(रि)णम् । (३) दत्ते स्म । (४) सम्यक्त्वम् । तत्त्वज्ञानम् । (५) मौक्तिकमालाम् । (६) याचकानाम् ॥१३५॥

श्रीसूरिर्नृणामज्ञानहस्तिनं हत्वा बोधिं ददाति स्म । यथा सिंहस्तम इव श्यामं गजं व्यापाद्य याचकानां मौक्तिकानि प्रयच्छति ॥१३७॥

मह्यां विहरति स्वैरं श्रीमत्सूरिपुरन्दरे ।
दानवर्षितया भव्यव्रजेनाऽनेकपायितम् ॥१३६॥

1. युगलम् हील० । 2. इति मेघजीऋषेर्दीक्षामहः । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) भूमण्डले । (२) स्वतन्त्रम् । (३) दानम्-द्रविणविश्राणनं मदाम्बु च वर्षतीत्येवंशील-तया । "दानं विश्राणनमदाम्भसो"रित्यनेकार्थः । दानवर्षणस्वभावेन । (४) जनैः । (५) अनेकान् दुःस्थानर्थिनो वा पान्ति दारिद्र्याद्दुद्धरन्ति सुखीकुर्वन्ति वा इत्यनेकपास्तद्वदाचरितं हस्तिसदृशीभूतं च ॥१३६॥

श्रीवाचंयमेन्द्रे पृथ्व्यां विचरति सति दानं-द्युम्नदानं मदाम्भश्च, तद्वर्षणाद्द्रव्यौघेनाऽनेकदुःस्थान्पान्ति दौःस्थ्यादुद्धरन्तीहितं प्रयच्छन्ति च तेऽनेकपा गजाश्च, तद्वदाचरितम् ॥१३८॥

[1]पितेव [2]सूनुना साकं [3]कम्माङ्गजयतीन्दुना ।
पत्तनं [4]पावनीचक्रे हीरसूरीश्वरः क्रमात् ॥१३७॥

(१) जनकः । (२) पुत्रेण । (३) श्रीविजयसेनसूरीश्वरेण । (४) पवित्रीचकार ॥१३७॥

श्रीविजयसेनसूरिणा सह श्रीहीरविजयसूरिः पत्तनं पवित्रीचक्रे ॥१३९॥

कृत्वा क्रमाद[1]नुचानपदनन्दिं मुनीश्वरः ।
[2]देशं [3]स्वसूनो [4]राजेव [5]गणं [6]तस्य वशं व्यधात् ॥१३८॥

(१) आचार्यपदनन्दिम् । (२) जनपदम् । (३) निजपुत्रस्य । (४) नृपतिरिव । (५) तपागच्छम् । (६) श्रीविजयसेनसूरेरायत्तम् ॥१३८॥

कृत्वा० । आचार्यपदनन्दिं कृत्वा श्रीसूरिर्गणं तस्य वशं करोति स्म ॥१४०॥

1[1]प्रभोर्[2]नन्दिमहे हेमराजो[3] मन्त्रीश्वरो मुदा ।
[4]अमानि मा[5]नवैः [6]श्रीद इवा[7]ऽमितधनं ददत् ॥१३९॥2

(१) सूरेः । (२) तस्मिन्नाचार्यपदनन्दिमहोत्सवे । (३) हेमराजनामा मन्त्री । (४) ज्ञातः । (५) जनैः । (६) धनद इव । (७) अगणितम् ॥१३९॥

आचार्यपदनन्दिमहोत्सवे धनं वपन् हेमराजो मन्त्री बुधैर्धनद इवाऽवबुद्धः ॥१४२॥

[1]प्रत्यतिष्ठत्[2]परोलक्षा [3]आर्हतीः प्रतिमाः प्रभुः ।
[4]कल्पितानल्पसङ्कल्पाः [5]कल्पसाललता इव ॥१४०॥

(१) प्रतिष्ठापयति स्म । (२) लक्षशः । (३) जैनीः । (४) प्रदत्तबहुकामिताः । (५) कल्पवल्ल्य इव । "कल्पद्रुमलता" इति सोमसौभाग्यकाव्ये ॥१४०॥

श्रीहीरविजयसूरिः कल्पलतासदृशीर्लक्षबद्धा प्रतिमाः प्रतिष्ठति स्म ॥१४२॥

पान्थानिव [1]महानन्दपुटभेदनपद्धतौ ।
[2]दीक्षयामास सूरीन्द्रोऽनेकान्[3]भ्यतनूभवान् ॥१४१॥

---

1. प्रभो तदार्नन्दि० इति हीसुंप्रतौ दृश्यते । स चाशुद्धो भाति । 2. इति विजयसेनसूरिनन्दिः । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) मोक्षपत्तनमार्गे । (२) दीक्षां ग्राहयति स्म । (३) व्यवहारिपुत्रान् ॥१४१॥

श्रीसूरिर्मोक्षपथिकावतारान् व्यवहारिसुतान्दीक्षयामास ॥१४३॥

[१]शाखाप्रशाखाश्रेणीभिराकीर्णः [२]श्रमणाग्रणीः ।
व्यभाद्[३]वट इव [४]च्छायाच्छन्नः सेव्यश्च[५] राजभिः ॥१४२॥

(१) शाखा[प्रशाखा]विमलविजय-हर्षसौभाग्यप्रमुखास्तासां पङ्क्तिभिर्व्याप्तम् (प्तः) । (२) मुनिपुङ्गवः । (३) न्यग्रोधः । (४) शोभाकलितः । (५) भाविनि भूतोपचाराद्भूपैरुपास्यः । वटस्तु स्कन्धनिःसृताः शाखास्ताभ्यः पुनर्निःसृताः प्रशाखास्तासां श्रेणिभिर्भरितः प्रतिच्छाययोपचितः, यक्षैर्लक्षितः, यक्षाणां वटवासित्वात् ॥१४२॥

श्रीसूरिः शाखाप्रशाखाभिर्व्याप्तो वट इव रराज ॥१४४॥

[१]समस्थापयत्ती[२]र्थसार्थाननेका-[३]ननेकान्तवादाम्बुजाम्भोजबन्धुः ।
[४]महीमण्डले [५]रन्तुमु[६]त्कण्ठितायाः सुर[७]त्केलिगेहा इव ब्र[८]ह्मलक्ष्म्याः ॥१४३॥[1]

(१) संस्थापयति स्म । (२) तीर्थमालाम् । (३) जैनशासनसरोरुहसहस्त्ररश्मिः । (४) तीर्थानां भूमण्डले स्थायित्वात्, अत एव भूपीठे । (५) क्रीडितुम् । (६) उत्सुकितायाः । (७) दृश्यमानाः क्रीडार्थं गृहाः । (८) मोक्षश्रियाः ॥१४३॥

श्रीसूरिस्तीर्थानि स्थापयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते - मोक्षलक्ष्म्याः क्रीडागृहाणि ॥१४५॥

[१]अथो [२]लाटलक्ष्मीललामायमानं पुरं वा[३]र्द्धितीरेऽस्ति[४] गन्धारनाम ।
किमु[५]द्वेज्यमाना जलै[६]रम्बुराशेः [७]प्रतीरं [८]पुरी [९]संश्रिता [१०]शार्ङ्गपाणेः ॥१४४॥

(१) अस्मिन्नवसरे । (२) लाटना[म]मण्डलश्रियास्तिलकवदाचरत् । (३) समुद्रोपकण्ठे । (४) गन्धारनाम नगरमस्ति । (५) उद्वेगं प्राप्यमाणा । (६) समुद्रसलिलैः । (७) तटम् । (८) प्राप्ता । (९) द्वारिकेव ॥१४४॥

अथेत्यनन्तरं **लाडदेश**तिलकायमानमर्णवतटे **गन्धार**नाम बन्दिरं समस्ति । उत्प्रेक्ष्यते-अर्णव-तरङ्गैरुद्वेगं प्राप्ता शाङ्‌र्गपाणेर्नारायणस्य पुरी द्वारिकानगरी तटं संश्रिता किमु आस्ते ॥१४६॥

→निधानेशरम्भाकुमारीगणेशान्दधानेन गाङ्गेयराजेश्वरांश्च ।←
[३]जिता [१]येन [२]वस्वोकसारा स्वलक्ष्म्या [४]ह्रियेवा[५]ऽऽश्रिता श[६]म्भुशैलस्य मौलिम् ॥१४५॥

(१) येन - गन्धारपुरेण । (२) अलका । (३) अभिभूता सती । (४) लज्जया । (५) गता । (६) कैलाशशिखरम् ॥१४५॥

निधा० । निधीशा धनदश्च, रम्भाः - कदल्योऽप्सरसश्च, कुमार्यः कन्यकाः, धनदाङ्गजनलकूबरपत्नी

---

1. इति हीरविजयसूरिधर्मकृत्यमहिमसम्पदः । हील० । →←एतदन्तर्गतः पाठस्तस्य टीका च हीसुंप्रतौ न स्तः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा गणानां जनसमुदायानां ईशान् गणेशं च । तथा स्वर्णं देशाधिपतिं च स्वामिकार्त्तिकं च, राजानो यक्षा ईश्वरः शंभुस्तान्बिभ्रता येन जिताऽलका कैलाशमस्तकं श्रिता ॥१४७॥

[१]स्फूर्त्या [२]मणीकम्बुवराटमुक्तिकाप्रवालमातङ्गतुरङ्गमश्रियाम् ।
[३]विहेलितेना[४]ऽम्बुधिना [५]द्विवेलं वे[६]लाच्छलाद्यं[७]न्नगरं न्य[८]षेवि ॥१४६॥

(१) विलासेन । (२) रत्न-शंख-कपर्दक-मुक्ताफल-विद्रुम-गजा-श्वादिलक्ष्मीनाम् । समुद्रे ऐरावणोच्चैःश्रवसोरुत्पन्नत्वाद् जलगजाश्वानां सम्भवाद्वा । (३) विजितेन । (४) समुद्रेण । (५) द्वे वेले वारे यत्रेति क्रियाविशेषणम् । (६) जलवृद्धिमिषात् । (७) <u>गन्धारपुरम्</u> । (८) सेवितम् ॥१४६॥

रत्न-शङ्ख-रत्नमुख्य-मुक्ताफल-विद्रुम-हस्ति-अश्वानां शोभया जितेनाऽर्णवेन यन्नगरं सेवितम् ॥१४८॥

[१]इन्द्रनीलमणिशालिजालका[२]श्चन्द्रकान्तकृतचन्द्रशालिकाः ।
[३]भूतलाभ्युदयिनो बभासिरे [४]शारदी[न]शशिमण्डला इव ॥१४७॥[1]

(१) नीलमणीनां शोभनशीलागवाक्षा येषु । (२) चन्द्रकान्तमणिभिर्निर्मितशिरोगृहाणि । (३) पृथ्वीपीठोद्गमनशीलाः । (४) शरत्कालसम्बन्धिचन्द्रबिम्बाः ॥१४७॥

इन्द्रनीलै रचिता जालका यासु तादृशाश्चन्द्रकान्तघटितचन्द्रशालाः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते-चन्द्रमण्डलानि ॥१४९॥

[१]महैर्मही[२]योभिरनेकनागरैः [३]प्रवेशितः सूरिपुरन्दरः पुरम् ।
[४]दिग्जैत्रयात्रासु नि[५]जानुगीकृतप्रतीपभूमिपतिसार्वभौमवत् ॥१४८॥

(१) उत्सवैः । (२) अतिशायिभिः । (३) प्रवेशः कारितः । (४) दिशां जयनशीलप्रयाणेषु । (५) स्वसेवकीकृतरिपुनृपतिः चक्रीव ॥१४८॥

नागरैर्महोत्सवेन श्रीसूरिः प्रवेशितः । यथा नम्रीकृतानेकभूपश्चक्री पौरैः पुरं प्रवेश्यते ॥१५०॥

ग[१]णकैरविणीरमणः श्रमणैर्बहुभिः सह त[२]त्पु[३]रमध्यवसत् ।
क[४]लभप्रकरैरि[व][५]गंधगजो [६]जलबालकभूधरभूवलयम् ॥१४९॥

(१) गच्छाधिपतिः । (२) <u>गन्धारपुरम्</u> । (३) आश्रयति स्म । (४) बालगजव्रजैः । (५) गन्धहस्ती । (६) विन्ध्याद्रिभूपीठम् ॥१४९॥

स गणचन्द्रो मुनिभिः सह तत्पुरमाश्रयति स्म । यथा त्रिंशदब्दकैर्गजैः सह गन्धहस्ती विन्ध्याद्रिपृथ्वीं श्रयति ॥१५१॥

अ[१]मरपुरीकृतलज्जे त[२]त्र स[2] जेतुं [३]बलेर्गृहं स[४]ज्जे ।
प्रा[५]वृषि [3]मान[६]ससद्मा मानससरसीव [७]संतस्थे ॥*१५०॥[4]

---

1. इति गन्धारवर्णनम् । हील० । 2. विजेतुं हीमु० । 3. **दुग्धपयोधौ मधुपरिपन्थीव तस्थौ सः ॥१५२॥** 4. इति गन्धारपुरे हीरसूरेः स्थितिः । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अमरावत्याः कृता लज्जा येन । (२) गन्धारनगरे । (३) नागभवनम् । (४) कृतोद्यमे । (५) वर्षाकाले । (६) हंसः । (७) संस्थितः ॥१५०॥

अमरपुराधिके पुनर्बलिगृहं जेतु सज्जीभूते **गन्धारपुरनगरे** स प्रावृषि तस्थौ । यथा नारायणोऽर्णवे प्रावृषि तिष्ठति ॥१५२॥

[1]जीविकामिव [2]नभोऽम्बुपावलेः [3]प्रावृषं पुन[4]रवेत्य पत्तने ।
[5]हीरसूरिपुर(रु)हूतशासना[6]त्तस्थिवान्विजयसेनसूरिराट् ॥१५१॥

(१) जीवनवृत्तिः । (२) बप्पीहपङ्क्तेः । (३) वर्षाकालम् । (४) ज्ञात्वा । (५) गुरोरादेशात् । (६) स्थितः ॥१५१॥

चातकपङ्क्तेर्जीवनवृत्तिमिव प्रावृषं ज्ञात्वा **हीरविजयसूरि**निर्देशा**द्विजयसेनसूरिः पत्तने** तस्थिवान् ॥१५३॥

प्रीणन्[1]प्राणिनभोऽम्बुपान्[2]प्रविदध[3]द्दुर्वादिनां [4]दुर्दिनं
[5]बोधाङ्कूरकरम्बितां वि[6]रजसं कुर्वंश्च [7]चित्तक्षितिम् ।
आनन्दं [8]ददते स्म [9]विस्मयकरीं [10]व्याहारधारां [11]किर-
न्भूमौ [12]सूरिपुरन्दरो [13]जलधरो [14]जम्भारिमार्गे पुनः ॥१५२॥

(१) भव्यबप्पीहान् । (२) कुर्वन् । (३) परवादिनाम्-मिथ्यादृशाम् । (४) दुष्टदिवसं मेघान्धकारं च । (५) तत्त्वज्ञानसम्यक्त्वप्ररोहपूर्णाम् । (६) विगतरजस्काम् । पापधूलीभ्यां रहिताम् । (७) मन एव मेदिनीम् । (८) 'ददि दाने' आत्मनेपदी । (९) आश्चर्यनिष्पादिनीम् । (१०) वाग्विलासामृतवृष्टिम् । (११) विस्तारयन् । (१२) हीरसूरीन्द्रः । (१३) मेघः । (१४) गगने । "येनाऽमुना बहुविगाढसुरेश्वराध्वराज्याभिषेकविकसन्महसा बभूवे" इति नैषधे । गगनं शक्रमार्ग इति ॥१५२॥

भव्यचातकान् तर्पयन्, पुनः कुमतानां दुर्दिनं कुर्वन्, पुनर्मनोभूमीं प्रतिबोधप्ररोहां पापधूलिरहितां च कुर्वन्, पुनर्वाग्विलासामृतं विस्तारयन् । एतादृशसूरिहरिर्भूमौ, गगने मेघश्च हर्षं ददते स्म । 'ददि दाने' इत्येतस्य रूपमेकवचनान्तम् ॥१५४॥

भवसलिलनिधे[1]रिवैकसेतुं विधिम[2]वलम्ब्य [3]तदाऽऽ[4]गमप्रणीतम् ।
[5]घनसमयदिना[6]न्दिनेश्वरश्रीर्ग[7]मयामास मुनीश्वरः [8]क्रमेण ॥१५३॥

इति पं० देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये शासनदेवीप्रकटीभवन-गुरुप्रश्न-तदुत्तर-गमन-चन्द्रतारास्त-तमस्तमीविरामदिनदिनकरोदय-श्रीविजयसेनसूरिसूरिपददान-नन्दिभवन-मेघजीऋषिसमागमन-गन्धारपुरगमनवर्णनो नाम नवमः सर्गः ॥९॥ ग्रन्थाग्रम् १६३॥

(१) संसारसमुद्र(द्रे) अद्वैतपालिः । 'पाज' इति प्रसिद्धिः । (२) आश्रित्य । (३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्षाकाले । (४) सिद्धान्तोक्तम् । (५) प्रावृषेण्यदिवसान् । (६) सूर्यवत्तेजोलक्ष्मीर्यस्य । (७) अतिक्रामति स्म । (८) परिपाट्या ॥१५३॥

भव० । भवार्णवे पतताममद्वितीयपद्यासदृशं विधिमोघनिर्युक्तिदिनचर्याशास्त्रोक्तमाश्रित्य स सूर्यतेजाः सूरीशः प्रावृषेण्यवासरानतिक्रामति स्म ॥१५५॥

→ यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः
पुत्रं कोविदसिंहसी(सिं)हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।
सर्गोऽसौ नवमोऽत्र देवविमलव्यावर्णिते हीरयु-
क्सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सम्पूर्णतां प्राप्तवान् ॥१५६॥←

इति पं.सी(सिं)हविमलगणि शिष्य पं०देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये देवीकथन-चन्द्राद्यस्त-सूर्योदयादि-विजयसेनसूरिपदनन्दि-मेघजीऋषिसमागमादिवर्णनो नवमः सर्गः ॥

→←एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐं नमः

॥ अथ दशमः सर्गः ॥

निःशेषदेशककुदं भुवि भाति दिल्लीदेशोऽथ केलिनिलयो नलिनालयायाः ।
नाभीभुवा भुजगनिर्ज्जरसद्मसारमादाय निर्मित इवैष खनिः सुखानाम् ॥१॥

(१) समस्तजनपदेषु मुख्यः । (२) दिल्लीमण्डलः । मेवातदेशः । (३) अथाकब्बरसाहि-मिल[न]प्रारम्भे । (४) क्रीडागृहम् । (५) लक्ष्म्याः । (६) ब्रह्मणा । "नाभीमथैष श्लथवास-सोऽस्या" इति नैषधे । (७) नागलोक-स्वर्गयोः सारम् । (८) गृहीत्वा । (९) दिल्लीदेशः । (१०) सुखाकरः ॥१॥

निःशे० । समग्रदेशप्रधानो **मेवातमण्डलो**ऽस्ति । उत्प्रेक्ष्यते-लक्ष्म्याः क्रीडागृहम् । उत्प्रेक्ष्यते-नागलोकस्वर्लोकसारमादाय धात्रा सुखखनिः कृत इव ॥१॥

यस्मिन्विभाति भागिनी तपनाङ्गजस्य रङ्गत्तरङ्गशिखरोन्मिषितारविन्दा[1] ।
देशश्रियाः किमपि निर्गलितोत्तरीया वेणी विभूषणवतीव परिस्फुरन्ती ॥२॥*

(१) देशे । (२) सूर्यपुत्रस्य-यमस्य जामिर्यमुनेत्यर्थः । (३) चलत्कल्लोलाग्रे स्मरत्कमलानि यस्याम् । (४) कथमपि । (५) निष्पतितोपरिवसनायाः । (६) कबरी । (७) आभरणभ्राजिनी । (८) प्रत्यक्षलक्षा ॥२॥

यस्मिन्देशे यमस्वसा नदी विकसितारविन्दयुक्ता भाति । उत्प्रेक्ष्यते-केनापि प्रकारेण पतिताच्छादनवस्त्रा पुनर्मस्तकाभरणभूषिता दीप्यमाना वेणी ॥२॥

उत्ताननक्र इव वक्त्रकजं कुशाद्यावर्त्ते विभूषयति मध्यमहीममुष्य ।
उत्पत्तिमाकलयतो ददतोऽङ्गिकामान् क्षीरार्णवे क्रतुभुजामिव पादपस्य ॥३॥
आसेदुषीभिरवने विदुषीभिरिक्षुच्छायासु यन्नवकुटुम्बिघटस्तनीभिः ।
कीर्तिर्जगज्जयिरतीशजयोर्जितेव राजीमतीशितुरगीयत गीतिरुच्चैः ॥४॥

(१) उन्नतनासि[का]। (२) मुखाम्बुजम् । (३) कुश इति पदमाद्यं यत्र तादृशे आवर्त्ते-कुशावर्त्तदेशे । (४) शोभां नयति । (५) दिल्लीदेशस्य मध्यप्रदेशम् । (६) जन्म । (७) दधतः कुर्वतो वा । (८) यच्छतः (९) जन्तुजाताभिलाषान् । (१०) क्षीरसमुद्रे । (११) देवतरोः । कल्पद्रोरित्यर्थः ॥३॥

(१) उपविष्टाभिः । (२) पण्डिताभिः-कुशलाभिः । (३) इक्षुक्षेत्ररक्षायाम् । "इक्षुच्छाया निषादिन्य०" इति रघौ । (४) दिल्लीदेशस्य तरुणीभिः । कौटुम्बिकानां वनिताभिः । (५) जगतां

---

1. ०रोन्मथिता० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयनशीलस्मरस्य पराभवनोद्भूताभिः । (६) नेमिनाथस्य । (७) गीता । (८) अतिशायिस्वरैः ॥४॥

यथोन्नतं नक्रं वक्त्रं भूषयति तद्वन्**मेवातमण्डल**मध्यभूमीं भूषयति । कुशावर्ते देशे जन्म दधतः । यथा क्षीरार्णवे पारिजातनामा कल्पद्रुरुत्पत्तिं धत्ते । पुनर्जन्तुवाञ्छापूरयतः श्रीनेमिनाथस्य कामजयेनोपार्जिता कीर्त्तिरिक्षुच्छायास्थिताभिः पुनस्तद्रक्षणे चतुराभिः **दिल्ली**देशस्य तरुणी[भिः] कर्षुकस्त्रीभिर्जगे, न तु गीत-मित्युत्प्रेक्षोद्भावनीया ॥३-४॥

[1]संसेवितो [2]द्विरसनै[3]रसुराश्रयश्च [4]ख्यातो [5]रसातलतया नर[6]कानुषङ्गी ।
[7]एतद्विगानमपनेतु[8]मिदंमिषेण वासो [9]व्यधायि किमु [10]भोगिगृहेण भूमौ ॥५॥

(१) आश्रितः । (२) भुजगैः दुर्जनैश्च । (३) दैत्यावासः । (४) प्रसिद्धः । (५) रसातलमित्यनिष्टवाक्यम् । धनपालोऽप्याह - "रसातलं यातु यदत्र पौरुष" मिति विरुद्धोक्तिः । (६) नरकस्याऽनुषङ्गोऽस्त्यस्मिन् नरकस्य सेवी च । (७) ईदृशं विश्वेऽपवादं वारयितुम् । (८) दिल्लीदेशदम्भेन । (९) कृतः । (१०) नागलोकेन ॥५॥

यदसौ भुजगैः खलैश्चाश्रितः, पुनर्दैत्याश्रयः, पुनः पातालतया विख्यातः, पुनर्नरकासुरस्य दुर्गतीनां वाऽपसङ्गवान् - एतदपवादं नेतुम् । उत्प्रेक्ष्यते - **दिल्लीदेश**दम्भान्नागलोकेन भूमौ वासः कृतः ॥५॥

[1]तन्निर्जयोद्यतनिजस्य भया[2]दवेत्य [3]यातं [4]प्रणश्य [5]बलिसद्म तले[6]ऽचलायाः ।
पृष्ठे[7] विलग्न इव [8]तं [9]विजिगीषुरेष[10] स्वर्गः [11]क्ष्मामुपजगाम [13]मिषादमु[12]ष्य ॥६॥

(१) तस्य बलिसद्मनः पराभवने उद्यमभाज उत्सुकस्य वा निजस्याऽऽत्मनः । "निजस्य तेजःशिखिनः परःशता" इति नैषधे । (२) ज्ञात्वा । (३) गतम् । (४) नंष्ट्वा । (५) नागलोकम् । (६) भूमेरधस्तात् । (७) पश्चाद्विलग्नः । (८) तम्-बलिसद्म । (९) जेतुमिच्छुः । (१०) प्रत्यक्षलक्ष्यः । (११) भूमीमागतः । (१२) दिल्लीदेशस्य । (१३) कपटात् ॥६॥

तन्नि० । नागलोकजयोद्यतस्य स्वर्गस्य भयाद्बलिसद्म रसातले प्रविष्टं ज्ञात्वा **दिल्ली**दम्भात् । उत्प्रेक्ष्यते-स्वर्गः पृष्ठे लग्न इवाऽऽगतः ॥६॥

[1]यः [2]पद्मनन्दन इवाऽस्ति [3]हिरण्यगर्भो, [4]रम्याप्सरा हरिरिवाऽच्युतव[5]त्सलक्ष्मीः ।
[6]रत्नाकरोऽम्बुधिरिवाऽरिरिवाऽऽत्मयोने-[7]र्दुर्गान्वितः [8]पविरिवाऽसहजैरजेयः ॥७॥[1]

(१) देशः । (२) ब्रह्मेव । "पद्मनन्दनसुतारिरंसुना" इति नैषधे । (३) स्वर्णं मध्ये यस्य । कनकभृतनिधानकलशानां भूगर्भे स्थायित्वात् । ब्रह्मणस्त्वभिधानम् । (४) क्रीडाकरणोचितानि पानीयप्रधानानि सरांसि यत्र । शक्रस्तु रमणार्हा अप्सरसो रम्भा प्रमुखा यस्य । (५) सह लक्ष्म्या विभवेन वर्तते यः । कृष्णस्तु श्रिया पत्न्या सहितः । (६) प्रशस्तवस्तूनां खानिः । समुद्रस्तु मणीनां खानिरुत्पत्तिस्थानम् । (७) विषमाद्रिकोट्टैः कलितः । शिवस्तु पार्वत्या युतः । (८) वज्र

[1] इति दिल्लीदेशः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इव । (९) वैरिभिर्जेतुमशक्यः ॥७॥

यो **दिल्लीदेशः** ब्रह्मेव निधिसहितः, पुनर्य इन्द्र इव रम्यानि(णि) अप्प्रधानानि सरांसि यत्र, कृष्णवत्सद्रव्य, रत्नानां खनिः, ईश इव कोट्टकलितः वज्र इव दुर्भेद्यः ॥७॥

[1]दिल्लीति तत्र नगरी न [2]गरीयसीभिः, [3]श्रीभिः क्वचिद्[4]विरहिता रहिता न[5] नीत्या ।
रेजे [6]गिरीशगिरिशृङ्गकृतैस्तपोभिः, [8]प्राप्ता परां[7] श्रियमसौ त्रिशिरःपुरीव ॥८॥

(१) <u>दिल्ली</u> इति नाम्नी पुरी । (२) महतीभिः । (३) लक्ष्मीभिः । (४) वियुक्ता । (५) न न्यायेन । (६) कैलासशिखरे प्रणीतैर्निरशनपानादितपोभिः । (७) उत्कृष्टलक्ष्मीम् । (८) प्रपन्ना । (९) धनदनगरीव ॥८॥

लक्ष्म्या नीत्या च न रहिता **दिल्ली** रेजे । उत्प्रेक्ष्यते - अलकेव ॥८॥

[1]दम्भोलिपाणिनगरीविभवाभिभाव-प्रागल्भ्यम[2]ाकलयता [3]निजवैभवेन ।
[4]निर्जित्य या[5] [6]बलिगृहं [9]पद[7]मस्य [8]मौलौ, [10]कालीव [11]कासरसुरासहजं ससर्ज ॥९॥[1]

(१) इन्द्रपुरीसमृद्धिपराभ[व]ने बुद्धिमत्तां चातुर्यम् । (२) बिभ्रता । (३) स्वलक्ष्म्या । "स्फुरन्माञ्जिष्ठवैभव" इति काव्यकल्पलतायाम् । (४) जित्वा । (५) <u>दिल्ली</u> । (६) नागलोकम् । (७) नागलोकस्य । (८) मस्तके । (९) चरणं-स्थानम् । (१०) पार्वती । (७) 卐कासरदैत्यस्य । कालिकार्थे स्वस्य विभोर्भावो वैभवस्तेन सामर्थ्येन महिषासुरं जित्वा तन्मस्तके पादं कृतवती । तस्या मूर्त्तेस्तत्प्रकारदर्शनात् ॥९॥

अमरावतीशोभाजैत्रेण विभवेन नागलोकं जित्वा तन्मस्तके या **दिल्ली** पदं धत्ते स्म । यथा पार्वती महिषासुरमस्तके पदं धत्ते ॥९॥

[1]तस्यां [2]महीहिमकरेण [3]हमांउनाम्ना, जज्ञे [4]पुरन्दरविजित्वरविक्रमेण ।
[5]यस्यौ[6]जसेव विजितेन पदं [7]मुरारे-[8]स्तत्तुल्यतां [9]स्पृहयताऽ[10]शुमता [11]न्यषेवि ॥१०॥

(१) <u>दिल्ली</u>नगर्याम् । (२) भूपेन । (३) ह<u>माउ</u> इति नाम यस्य । (४) शक्र-जयनशीलबलेन । (५) <u>हमाउपातिसाहे</u>ः । (६) प्रतापेन । (७) नारायणचरणम् । (८) <u>हमाउप्र</u>तापसादृश्यम् । (९) इच्छता (१०) सूर्येण । (११) सेवितम् ॥१०॥

दिल्लीनगर्यां **हमाऊपातिसाहि**र्जात । यत्प्रतापजितेन सूर्येण गगने नष्टमित्यर्थः ॥१०॥

[1]श्रीकाबिलाधिपतिबब्बरपातिसाहि-पुत्रः [2]पुलोमदमनोऽ[3]खिलमुद्गलानाम् ।
[2]शू[4]रस्य [5]सूनुमपि [6]निर्मितवा[7]न्सदण्डं, [8]कालं [9]करालमपि यः [10]प्रसरत्प्रतापैः ॥११॥*[3]

(१) श्रिया कलित<u>काबिल</u>नाममण्डलस्य स्वामी यः <u>बब्बरसाहि</u>स्तस्य नन्दनः । (२) अधिपतिः । (३) समस्तमुद्गललोकानाम् । (४) सूर्यस्य चारस्य वा । (५) पुत्रमपि । (६)

1. इति दिल्ली । 卐 'अस्य' इति पदस्यैवायमर्थः, अतः ७ इत्यङ्कः पुनर्दर्शितः । 2. सूर० हीमु० । 3. इति हमाऊपातिसाहिः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चकार । (७) वेत्रिणम् । 'छडीदार' इति प्रसिद्धिः । राजादेयांशयुतं वा । (८) यमम् । (९) भीषणम् । परेषां भीतिकारिणमपि । (१०) स्वतेजसैव, न परं स्वयम् ॥११॥

श्रीबब्बरपातिसाहिपुत्रो मुद्गलेन्द्रोऽभवत् । श्लेषचित्रयोः सशयोरभेदात् शूरस्य सूरस्य वा पुत्रं यमं सुभटं वा सदण्डम् । 'छडीदार' इति यः कृतवान् । किंभूतम् ? कालं मृत्यु(यू)त्पादकत्वेन विविधायुधधारकत्वेन वा भीषणम्॥११॥

तस्याऽङ्गजोऽभवदकब्बरभूमिभानु[1]-भूपालमौलिमणिचुम्बितपादयुग्मः ।
शौरेरिवांऽबुधिशयो भुजपञ्जरान्त-विश्रान्तवार्द्धिवसनाजयराजहंसः ॥१२॥★

(१) हमांउसाहेस्तनयः । (२) अकब्बर इतिनाम्ना पातिसाहिः । "माध्यन्दिनावधि-विधेर्वसुधाविवस्वा" निति नैषधे । (३) नृपतिमुकुटरत्नालीढचरणकमलः । (४) वसुदेवस्य । (५) विष्णुः । (६) भुजावेव पञ्जरं तन्मध्ये स्थितः निखिलदिक्चक्रविजय एव राजहंसो यस्य ॥१२॥

तस्या० । यथा वसुदेवस्य पुत्रः कृष्णोऽभवत्तद्वत्तस्य पुत्रो**ऽकब्बरो** जातः । किंभूतः ? भुजपञ्जरमध्ये स्थितः समग्रपृथ्व्या जललक्षणो हंसो यस्य सः ॥१२॥

साम्राज्यमप्यधिगतो निखिलस्य नाक-लोकस्य लोलुपतया पुनरीहमानः ।
भोक्तुं समग्रमपि मध्यमलोकमेतं-द्व्याजादुवास मघवेव वसुंधरायाम् ॥१३॥

(१) ऐश्वर्यम् । (२) प्राप्तोऽपि । (३) समग्रस्य । (४) स्वर्गस्य । (५) लुब्धतया । (६) वाञ्छन् । (७) भूमिमण्डलम् । (८) अकब्बरपातिसाहिमिषात् । (९) वसति स्म । (१०) शक्रः । (११) भूमौ ॥१३॥

यः स्वर्गसाम्राज्यं प्राप्य पुनः पृथ्वीं भोक्तुमिन्द्र उवास-वसति स्म ॥१३॥

[2]यात्रासु यस्य चतुरङ्गचमूप्रचार-प्रोद्धूतधूलिपटलैः परितः प्रसस्त्रे ।
प्रस्थानमस्य दशदिग्विजयाय जाने, यातैरितः कथयितुं हरितां महेन्द्रान् ॥१४॥

(१) प्रयाणेषु । (२) अकब्बरस्य । (३) चत्वारि अङ्गानि गजाश्वरथपत्तिलक्षणाः प्रकाराः स्कन्धा वा यस्यास्तादृश्याः सेनायाः प्रकर्षेण चलनेन प्रकटीभूतपांशुभिः । (४) चतुर्दिक्षु । (५) विस्तृतम् । (६) प्रयाणम् । (७) साहेः । (८) दशसङ्ख्याकानां दिशां पराभवनाय । (९) अहमेवं मन्ये । (१०) गतैः । (११) भूमण्डलात् । (१२) "पतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्रै" रिति नैषधे ॥१४॥

अस्य यात्रासु चमूद्भूतै रजोभिर्व्याप्तम् । उत्प्रेक्ष्यते-दशदिक्पालान् प्रति दिग्यात्राप्रस्थानं कथयितुं यातैः ॥१४॥

---

1. **भास्वान्भूपा०** हीमु० । 2. अथाऽस्य दिग्विजयविधित्सया प्रस्थाने वैरिणामुत्पाताविर्भावः । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]यत्प्रस्थितौ [२]रथहयद्विपपत्तिवीङ्खा-प्रोत्खातपांशुपिहिताखिलदिङ्मुखेषु ।
आक्रन्दि[३] चक्रमिथुनैरथ [४]पांशुलाभिः, प्राह्लादि [५]पल्लवितमन्त[६]रुलूकलोकैः ॥१५॥

(१) अकब्बरस्य चै(जै)त्रयात्रायाम् । (२) चमूचलनोत्थापितरजोभिराच्छादितसमस्त-दिगाननेषु । (३) निशाभ्रमात् चक्रवाकयुगैः परस्प[र]वियोगाशङ्कया मुक्तकण्ठं रुरुदे । (४) व्यभिचारिणीभिः स्त्रीभिः । (५) उत्स्व(च्छ्व)सितम् । (६) घूकनिकरैः । ''आलोकताली(लो)-कमुलूकलोक'' इति नैषधे ॥१५॥

यस्य प्रस्थाने चमूद्धूतरजोभिराच्छादितासु दिक्षु चक्रवाकै रात्रिवियोगाशङ्कया रुरुदे । पुनर्घना-न्धकाराद्व्यभिचारिणीभिः प्रमुमुदे । पुनः स्वैरसञ्चारत्वाद् घूकैरन्तश्चित्ते पल्लवितमुत्स्व(च्छ्व)सितम् ॥१५॥

धत्ते स्म [१]कम्पम[२]भिषेणयति [३]क्षितीन्द्रे, यस्मिन्[४]प्रतीपपृथिवीपुर(रु)हूतपृथ्वी ।
[५]यस्माद[६]तः पर[७]मसौ भविता[८] पतिर्मे, [९]प्रीते[१०]र्हृदन्तरिति [११]निर्मितताण्डवेव ॥१६॥

(१) चलिताम् । (२) रिपून्प्रति सेनया अभिगच्छति । (३) अकब्बरे । (४) प्रत्यर्थिनृपतिभूमीः(मी) । (५) कारणात् । (६) अस्मात्समयादारभ्य । (७) अकब्बरसाहिः । (८) मम भर्त्ता भावी । (९) स्नेहात् । (१०) हृदयमध्ये । (११) कृतनृत्या ॥१६॥

यस्मिन्नृपे यात्रायां गच्छति सति प्रत्यर्थिभूः कम्पिता । उत्प्रेक्ष्यते-यद्वदुल्लासात्कृतताण्डवा इवेति । इतीति किम् ? यदसौ मे-पृथ्व्या भर्त्ता भविष्यति । अद्वैतनीतिमतामग्रणीरकब्बरक्षोणीनभोमणीरिति दर्शितमिति चाऽवसेयम् ॥१६॥

[२]सम्प्रस्थिते [१]वसुमतीविजयाय यस्मिन्, भूपै[३]र्विरोधिभि[४]रदृश्यत [५]दिक्षु दाहः ।
जाने [६]निजव्यसनवीक्षणभूतभू(नू)ता(त्ना)-सातस्वदिग्युवति निःस्व(श्व)-सिताग्निकीलः ॥१७॥

(१) भूमण्डलं जेतुम् । (२) चलिते । (३) वैरिभिः । (४) दृष्टः । (५) ज्वलन्त्यो दिशो दृष्टा इत्यर्थः । (६) निजानामकब्बरारिपूर्वादिक्पतिनृपतीनामात्मनां व्यसनस्य भाविमरणावधि-विपत्तेरवलोकनेनोत्पन्नं नवीनं दुःखं यासां तादृश्यः स्वेषां तत्तन्नृपाणां दिश एव प्रियास्तासां निःस्वा(श्वा)सानलज्वालेव ॥१७॥

सम्प्र० । तस्मिन्प्रस्थिते वैरिभिर्दिक्षु दाहो दृष्टः । उत्प्रेक्ष्यते-स्वविपद्ज्ञानेनोत्पन्ननूतनमसुखं यासां तादृशीनां स्वदिशां निःस्वा(श्वा)[सा]नलज्वाला ॥१७॥

[१]भूपे[२]ऽभिषेणयति यत्र [३]रजोऽभिवृष्ट्या, दृष्टा दिशः [४]परनृपै[५]र्मलिनाः समग्राः ।
[६]स्वस्वामिसङ्कटसमीक्षणमूर्च्छनोर्व्वी-निष्पातधूसरित[1]मूर्त्तिलता इवैताः ॥१८॥*

(१) अकब्बरनृपे । (२) सेनया सह प्रतिनृपतीनभिगच्छति । (३) धूलीवर्षेण । (४)

---

1. ०गात्र० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैरिभूपैः । (५) धूमरीः । (६) आत्मस्वामिनां व्यसनावलोकान्मोहेन मूर्च्छया भूमीलुठनेन पाण्डुरिताः शरीरयष्टयो यासाम् ॥१८॥

नृपैर्दिशो मलिना दृष्टाः । उत्प्रेक्ष्यते-स्वभर्त्तृसङ्कटोद्भूतमूर्च्छया धरापातान्मालिनगात्राः ॥१८॥

यन्मेदिनीकुमुदिनीरमणप्रयाणे, छिद्रं न्यभालि परिपन्थिभिरभ्रपान्थे ।
मद्वंशजक्षितिरथोदयिनी हृदन्त-र्दुःखप्रकर्षत इति स्फुटितोरसीव ॥१९॥[1]

(१) यस्याऽकब्बरसाहेः प्रस्थाने । "इदं तमुर्व्वीतलशीतलद्युतिम्" इति नैषधे । (२) दृष्टम् । (३) वैरिभिः । (४) सूर्ये । "पन्था भास्वति दृश्यते बिलमयः प्रत्यर्थिभिः पार्थिवै" रिति नैषधे । तद्वृत्तौ-म्रियमाणा रणे सूर्ये छिद्रं पश्यन्तीत्यरिष्टवेदिनः । यद्वा- "द्वावैतौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ । परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाऽभिमुखो हतः ॥" इत्युक्त्वा सूर्ये छिद्रदर्शनमिति । (५) ममाऽन्वये-सूर्यवंशे जातानां वीराणां क्षयः । (६) उदेष्यतीत्येवंशीला उदयिनी । (७) मनोमध्ये दुःखातिशयात् । (८) सच्छिद्रीभूतवक्षसीव ॥१९॥

वैरिभिररुणे रन्ध्रं दृष्टं सूर्यवंश्यानां क्षय [इ]ति दुःखा[द्] द्विधाभूतहृदीव ॥१९॥

यस्य प्रसृत्वरयशःशरभूसवित्री, स्वःकूलिनीव करवाललता बभूव ।
यस्यां निमज्य रिपुराजपरम्पराभि-र्येनाऽन्वभावि दितिजद्विषतां विभूतिः ॥२०॥

(१) विस्तरणशीलयश एव स्वामिकार्त्तिकस्तस्य जननी । (२) गङ्गा । (३) खड्गयष्टिः । (४) असिलतायाम् । (५) ब्रूडित्वा शरीरं त्यक्त्वा च । (६) वैरिनृपपङ्क्तिभिः । (७) अनुभूता । (८) देवानाम् । (९) सम्पत्तिः ॥२०॥

कीर्त्तिषण्मुखजननी गङ्गेव खड्गलता जाता । यस्यां ब्रूडित्वा रिपुभिर्देवत्वं प्राप्तम् ॥२०॥

यस्मिन्रणाङ्गणगते प्रहताहिताश्वाः, शौर्योदयाद्दिवि मुहुर्मुहुरि(रु)त्पतन्ति ।
भूमौ निजाभिभवतः सवितुः सगोत्र[2]-तार्क्ष्यानिव श्रयितुमुत्सुकतां वहन्तः ॥२१॥*

(१) नृपे (२) सङ्ग्राममध्यं प्राप्ते सति । (३) शस्त्रघातितरिपुतुरङ्गाः । (४) शूरतायाः प्रादुर्भावात् । (५) गगने । (६) वारंवारम् । (७) उच्छलन्ति । (८) भूमण्डले । (९) स्वस्य सङ्ग्रामादौ पराभवतः । (१०) गगने सूर्यस्य पितुश्च । (११) बन्धूनश्वानाश्रयितुमिव । विपत्तौ स्वजनाः श्रीयन्ते इति श्रुतिः । (१२) औत्सुक्यम् । (१३) दधतः ॥२१॥

हताश्वा रणे उच्छलन्ति । उत्प्रेक्ष्यते-सूर्यस्य पितुर्वा स्वजनानश्वान्मिलितुमुत्सुका इव । विपत्तौ स्वजनाः श्रीयन्ते इति स्थितिः ॥२१॥

एतत्कृपाणनिहताहितकुम्भिकुम्भ-निष्पातिमौक्तिकततिः समरे विरेजे ।
दृष्ट्वा हतान्स्वपतिभूमिपतींस्तदीय-लक्ष्मीक्षणप्रपतदश्रुकणावलीव ॥२२॥

---

1. इति प्रतीपनृपतीनामरिष्टाविर्भावः ॥हील०* । 2. ०त्रांस्तार्क्ष्यां० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) एतेनाऽकब्बरेण खड्गेन व्यापादितवैरिवारणानां कुम्भस्थलेभ्यो निपतनशीला मुक्ताफलमाला । (२) सङ्ग्रामभूमौ । (३) बभौ । (४) निपातितान् । (५) स्वस्वामिनृपान् । (६) तत्प्रत्यर्थिनृपसम्बन्धिन्याः श्रियः नेत्रेभ्यो निःसरद्वाष्पाम्बुबिन्दुमण्डलीव ॥२२॥

मौक्तिकश्रेणी रेजे । उत्प्रेक्ष्यते – स्वभर्तृराज्ञो हतान्दृष्ट्वा तेषां लक्ष्मीनां(णां) नेत्रेभ्यः पतती(न्ती) अश्रुकणश्रेणिरिव ॥२२॥

[१]रोमाङ्कुराः [२]समिति यस्य [३]समुत्स्व(च्छ्व)सन्ति, सं[४]वाससङ्गतगुणप्रगुणीभवन्तः ।
[५]एतद्वदुद्धतविरोधिधराधवानां, [६]हृल्लेखतामिव निशुं[७]म्भकृते [८]वहन्तः ॥२३॥

(१) रोम्णां प्ररोहाः । (२) सङ्ग्रामे (३) ऊर्ध्वीभवन्ति । (४) अकब्बरनृपदेहे सम्यग्वसनेन मिलिताः शौर्योत्साहतादयो गुणास्तैः प्रगल्भा जायमानाः । (५) अकब्बरसाहिरिव मदमत्तप्रत्यर्थिपार्थिवानाम् । (६) उत्कण्ठिताम् । (७) हननार्थम् । (८) दधतः ॥२३॥

रणे यस्य देहे रोमाङ्कुरा उल्लसन्ति । उत्प्रेक्ष्यते-शौर्यसत्त्वाढ्यदेहे सङ्गता ये गुणास्तैः प्रगल्भा जायमानाः सन्तोऽत्युद्धतराज्ञां मारणार्थमुत्कण्ठतां वहन्त इव ॥२३॥

[१]एतद्दिनेशशशिभूदिनयामिनीभ्यां, [२]सृष्टिं वि[३]धातुमखिलां [४]प्रभु[1]ना(णा) न वैं[५]श्वीम् ।
[६]तादृग्दिनेन्दुदयिताकृतये किमे[७]त-त्तेजोयशोरविविधू विधिना [८]प्रणीतौ ॥२४॥*

(१) एताभ्यां विद्यमानाभ्यां रविचन्द्राभ्यामुत्पत्तिर्ययोस्तादृशीभ्यां दिवसनिशाभ्याम् । (२) निर्माणम् । (२) कर्त्तुम् । (४) समर्थेन । (५) विश्वसम्बन्धिनीम् । (६) तादृश्यो विगलितावधिसमयाभ्युदयभाजोः दिवसनिशयोर्निर्माणाय । (७) एतस्य साहेः प्रतापयशसी एव सूर्यचन्द्रौ । (८) कृतौ ॥२४॥

एताभ्यां प्रत्यक्षलक्षाभ्यां सूर्यचन्द्राभ्यां भूरुत्पत्तिर्ययोस्तादृशीभ्यां दिनरात्रिभ्यामष्टयामत्वेन जगत्सृष्टिं कर्तुमक्षमेन(ण) धात्रा तादृशोर्दिनरात्र्योः कृतेऽ**कब्बर**प्रतापयशसी रविचन्द्रौ कृतौ ॥२४॥

[१]यद्वैरिराजकयशोगुणराशिरात्री-प्राणेशतारकगणेन क[२]दाचनाऽपि ।
[३]द्वीपान्तरं [४]परिचरत्यपि य[५]त्प्रताप-प्रद्योतने न स[६]मवाप्यु[७]दयावकाशः ॥२५॥

(१) अकब्बरस्य रिपुनृपगणस्य । 'राज्ञां समूहो राजक'मिति हैम्याम् । तस्य यशस्तद्युक्त-गुणनिकरास्त एव चन्द्रतारकास्तेषां व्रजेन । (२) कस्मिन्नपि प्रस्तावे । (३) अन्यद्वीपम् । (४) भजत्यपि । (५) यस्य महःसहस्रकिरणे । (६) लब्धः । (७) उद्गमनप्रस्तावः । अभ्युदयवेला ॥२५॥

यत्प्रतापेऽष्टादशसु द्वीपेषु गते वैरियशोगुणा एव चन्द्रतारका नोदिता ॥२५॥

[१]अश्रान्तदण्डनिहताहववादनीय-वाद्यस्वरैः प्र[२]सृमरैः [३]समरे [४]धरेन्दोः ।
[५]अस्तम्भि वै[६]रिनृपदोर्युगदण्डदर्पः, [७]सर्पेन्द्र[2]गर्व इव [८]गारुडिकस्य [९]मन्त्रैः ॥२६॥

1. विभुना हीमु० । 2. ०दर्प हीमु० ।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

(१) निरन्तरवाद्यवादनयष्टिभिराहतानि वादितानि तथा सङ्ग्रामाङ्गणे वादनयोग्यानि यानि रणतूराणि तेषां निर्घोषैः । (२) विस्तरणशीलैः । (३) युद्धे । (४) राज्ञः । (५) स्तम्भितः । (६) रिपुनृपतिभुजयुगलपरिघाभिमानः । (७) नागेन्द्रगर्व इव । (८) गारुडं स्थावरजङ्गम-विषमविषनिवारणप्रवणमन्त्रतन्त्रादिशास्त्रमधीते वेत्ति वा इति गु(गा)रुडिकस्तस्य । (९) मन्त्रैर्जाङ्गुलीप्रमुखैः ॥२६॥

रणे दण्डहतवाद्यस्वरैर्वैरिहस्तगर्वः स्तम्भितः ॥२६॥

[१]यत्कीर्त्तिविद्विषदकीर्त्तिहतप्रतीपा-सृक्पङ्क्तिजह्नुतरणिद्रुहिणाङ्गजाभिः ।
[२]जन्यावनी [३]यदवनीशशिनस्त्रि[४]वेणी-सङ्गः[६] किमा[५]विरभवत्त्रि[६]दिवाभिकानाम् ॥२७॥

(१) अकब्बरयशस्तथा अकब्बरवैरिणामपकीर्त्तिः तथा अकब्बरव्यापादितवैरिनृप-रुधिरराजी(ज्यः) ता एव जह्नोर्विष्णोः सूर्यस्य ब्रह्मणः पुत्र्यः । जह्नुतनया गङ्गा तरणितनया यमुना, द्रुहिणतनुजा सरस्वती; सरस्वती हि किञ्चिद्रक्तसलिला परसमये वर्ण्यते, ताभिः । (२) सङ्ग्रामभूमी । (३) अकब्बरपातिसाहेः । (४) त्रिवेणीसङ्गो-गङ्गा-यमुना-सरस्वतीसङ्गम इव । (५) प्रकटीभूतः । (६) स्वर्गकाङ्क्षिणाम् ॥२७॥

स्वयशोरिपुअ(प्व)पयशोवैरिरुधिरैर्जाता गङ्गा यमुना सरस्वती ताभिः कृत्वा यस्य रणभूस्त्रिवेणीसङ्ग इव जाता ॥२७॥

[१]यत्सम्प्रहारहतहास्तिकमस्तकान्त-निष्पाति[1]मौक्तिकततिः [२]समरे विरेजे ।
[३]दन्तावली प्रकटिता [४]शमनेन [५]जन्या-पाने विरोधि[६]रुधिरासवपायिनेव ॥★२८॥

(१) यस्य साहेः सङ्ग्रामे व्यापादितानां हस्तिसमूहानां कुम्भस्थलमध्यान्निःसरन्मुक्तामाला । (२) युद्धे (३) दशनश्रेणिरिव । (४) यमेन । (५) युद्धरूपमदिरापानस्थाने । (६) शोणितान्येव मदिराः पिबतीत्येवंशीलेन ॥२८॥

रणपानगोष्ठीस्थाने यमेन दन्ताः प्रकटीकृताः ॥२८॥

[१]एतद्भुजारणिसमुत्थमहोहुताश-ज्वालाज्वलद्वहु(ह)लबाहुजवंशराशेः ।
[२]उद्गत्वरैः [३]प्रसृमरैरिव धूमवारै-रा[४]विर्बभूव [५]शिति[मा] दि[६]विषत्पदव्याम् ॥२९॥

(१) अकब्बरनृपभुज एवाऽरणिरग्निकाष्ठं तस्मादुद्भूतो यः प्रताप एव वह्निस्तस्य ज्वालाभिर्भस्मीभवन्तो ये भूयिष्ठा राजन्यास्तेषामन्वयानां समूहात् । (२) प्रकटीभवद्भिः । (३) विस्तरणशीलैः । (४) प्रकटिता । (५) श्यामता । (६) आकाशे ॥२९॥

एतद्भुजा एवाऽग्निकाष्ठं तस्मादुद्भूतप्रतापाग्निज्वालाभिर्ज्वलन्तो ये राजन्य वेणवस्तेषां राशेरुद्भूतै-र्धूमौघैर्गगने । उत्प्रेक्ष्यते-श्यामता जाता ॥२९॥

---

१. ०तिशुक्तिजततिर्युधि पौस्फुरीति हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]कल्पावनीरुहवनानि [२]महीमघोना, [३]प्रोद्दामदानललितै[४]रवहेलितानि ।
गु[५]च्छप्रसूनफलभारनमत्शिखानि, [६]व्रीडोदयादिव बभूवु[७]रधोमुखानि ॥३०॥[1]

(१) कल्पतरुविपिनानि । (२) साहिना । (३) प्रबलदानविलासैः । (४) अवगणनां गमितानि । (५) स्तबकानां कुसुमानां फलानां भारेण वीवधेन नमन्त्यो भूमौ लगन्त्यः शाखा येषां तानि । (६) लज्जाप्रादुर्भावात् । (७) अवज्ञाजातमन्दाक्षोद्गमेन नीचैराननं येषां तानि । लज्जाप्राप्तौ हि अधोमुखतैव स्यात् ॥३०॥

श्रीपातिसाहिना दानगुणेनाऽवगणितानि कल्पवृक्षवनानि अधोमुखानि लज्जया जातानि इव ॥४७॥

[१]आकालिकी[२]कुलिशशै[३]वलिनीशवह्नि-वै[४]श्वानराम्बु[५]रुहिणीरमणप्र[६]दीपाः ।
अंशा अमी [७]त्रिजगतीव [८]परिस्फुरन्ति, [९]राशेरिवाऽस्य महसां [१०]रिपुराजघस्य ॥३१॥

(१) विद्युत् । (२) इन्द्रवज्रम् । (३) वडवानलः । (४) वह्निः । (५) रविः । (६) दीपाः । (७) त्रिभुवने । (८) स्फुर्त्ति बिभ्रन्ति(ति) । (९) प्रतापप्रकरस्य । (१०) रिपून् राज्ञः । वैरिनृपान्हन्तीति रिपुराजघस्तस्य । "पाणिघ-ताडघौ शिल्पिनि" एतौ निपात्येते राजघश्चेति ॥३१॥

विद्युद्वज्रार्णवाग्निसामान्याग्निसूर्यदीपा अमी एतत्प्रतापांशाः ॥४९॥

[१]एतन्मह[२]स्त्रिभुवनभ्रमणीविलासं, जै[३]त्राङ्ककारनिकरैरपि [४]दुःप्रधृष्यम् ।
[५]उल्लङ्घितुं स्पृहयतेव [६]सहस्रपादी, [७]निर्मीयते स्म [८]सरसीरुहिणीवरेण ॥३२॥

(१) अकब्बरप्रतापः । (२) त्रिलोके पर्यटनस्य लीला यस्य । "विधेः कदाचिद्भ्रमणी-विलासे" इति नैषधे । (३) जयनशीलप्रतिमल्लानां व्रजैः । (४) दुःखेनाऽऽकलयितुं शक्यम् । "दूरं गौरगुणैरहङ्कृतिभृतां जैत्राङ्कारे चर" इति नैषधे । (५) अतिक्रमितुम् । 'लघुङ् गतौ' अयं भ्वादिर्धातुः । (६) सहस्रसङ्ख्याकाश्चरणाः । (७) कृता । (८) भानुना ॥३२॥

त्रिजगद्व्यासं, पुनः प्रतिमल्लैरजेयमेतत्प्रतापं सत्वरमुल्लङ्घि काङ्क्षता सूर्येण सहस्रपादी निर्मितेव ॥४८॥

[१]यस्या[२]ऽऽशुगः [३]प्रसरदा[४]शुगवन्नि[५]षङ्गात्, [६]कर्ष्यागमेषु [७]लघुहस्ततया [८]कदाचित् ।
[९]नाऽलक्ष्यता[१०]ऽक्षिभिरपि [११]प्रतिपक्षलक्षै-[१२]रङ्गे [१३]लगन्पुन[१४]रबुध्यत [१५]युद्धमूर्ध्नि ॥३३॥

(१) साहेः । (२) बाणः । (३) चलन् । (४) वायुरिव । (५) तूणीरात् । (६) कर्ष आकर्षणेषु - आगमनेषु । (७) शीघ्रवेधितया । (८) कस्मिन्नपि समये । (९) न दृष्टः । (१०) नयनैः । (११) वैरिवारैः । (१२) शरीरे । (१३) वातं कुर्वन् । (१४) जा(ज्ञा)तः । (१५) रणाङ्गणे ॥३३॥

---

१. हीमु० हीलप्रतौ च ३०तमश्लोकादारभ्य ५९तमश्लोकपर्यन्तं यथाक्रममेषोऽनुक्रमो दृश्यते - ४७-४९-४८-३०-४६-३१-३२-३३-३४-५०-३५-३६-५३-३७-३८-५१-३९-४०-५२-४१-४२-४३-४४-४५-५४-५५-५६-५८-५९-५७ इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्बाणो वायुवदाकर्षणे-आगमने शीघ्रवेधितया नेत्रैर्न दृष्टः परं लग्न एव दृष्टः ॥३०॥

[१]उत्कन्धरावनिधराधिकधीरभावै-卐[२]र्भूमीभुजा विगणनां गमिताः समग्राः 卐
[२]एनं निभा[३]त्परिणतोद्धुरसिन्धुराणां, संसेवितुं [४]क्षितिधराः किम[५]मी स[६]मीयुः ॥*३४॥

(१) उच्चैः शिरस्त्वेन भूमेर्धारकत्वेन तथाऽतिशायिधीरत्वेन च । (२) अकब्बरपातिसाहिम् । (३) मदोदयात् ती(ति)र्यक्प्रहारप्रदायिनामुत्कटानां गजानां कपटात् । (४) पर्वताः । (५) प्रत्यक्षाः । (६) समागताः ॥३४॥

उत्क० । कुलाचलाधिकधैर्येणाऽवगणिताः पर्वतास्तिर्यक्प्रहारप्रदायिगजदम्भात्सेवन्ते ॥४६॥

यं [१]स्वर्णकायम[२]रिनागनिपातनिष्णं, दृष्ट्या निपीय [३]हरिवाहनबद्धलीलम् ।
चित्रं[७] किमत्र य[४]दरातिमहीन्द्रबाहु-कुम्भीनसैः [५]समरमूर्ध्नि [६]जडीबभूवे ॥३५॥

(१) स्वर्णवद्गौरदेहः । (२) वैरिषु प्रधाना नृपास्तेषां हनने निपुणम् । (३) अश्व एव यानं तत्र रचिता क्रीडा येन । गरुडस्तु स्वर्णकायस्तथा रिपुभूतसर्पाणां घातने चतुरस्तथा कृष्णस्य याने निर्मितविलासः । (४) यत्कारणाद्वैरिराजभुजभोगीन्द्रैः । (५) रणशिरसि । (६) किंकर्त्तव्यतामूढैर्जातम् । (७) अत्र स्थाने को विस्मयः यद्गरुडदर्शनादेव सर्पा जडीभवन्त्येव ॥३५॥

सुवर्णवर्णं तन्मयं वा, पुनः अरिषु ये नागा उत्तमा वा अरिभूता ये नागाः सर्पास्तन्मारणे दक्षम्, पुनर्हरिरश्व एवोपलक्षणाद्गजोऽपि वाहनं तस्मिन्स्थितं वा कृष्णवाहनत्वेन स्थितं पातिसाहिं गरुडं वा दृष्ट्वा रिपुभुजाभोगिभिः सङ्ग्रामभूमौ निश्चेष्टैरालेख्यलिखितैरिव जातम् । अत्र प्रकारे को विस्मयो यद्गरुडदर्शनादेव व्याला अपि जडीभवन्ति एव ॥३१॥

[१]यस्या[२]ऽऽशुगान्[३]प्रणयतः [४]प्रतिभूपतीनां, [५]प्राणान्[६]सुराध्वनि [७]विधाय रविं [८]शरव्यम् ।
[९]आजिः [१०]सकार्मुककरस्य [११]खलूरिकेव, [१२]रन्ध्रं [१३]रवौ रिपुभिरै[१४]क्षि न चेत्कुतस्त्यम् ॥३६॥

(१) साहेः (२) आशु शीघ्रं गच्छन्तीत्याशुगा बाणा वा । (३) कुर्वतः (४) शत्रुनृपाणाम् । (५) असून् । (६) गगने । (७) कृत्वा । (८) वेध्यम् । (९) युद्धम् । (१०) धनुर्युतपाणेः । (११) शस्त्राभ्यासभूमी । (१२) छिद्रम् । (१३) सूर्ये । (१४) दृष्टम् ॥३६॥

यस्या० । गगने रविं वेध्यं कृत्वा वैरिप्राणान् शीघ्रगान् बाणान् वा कुर्वतः पुनर्धनुर्द्धरस्य यस्य रणं शस्त्राभ्यासभूरिव जातं, न चेत्सूर्ये रन्ध्रं रिपुभिः कथं दृष्टम् ॥३२॥

[१]येना[२]ऽऽहवे [३]प्रणिहतात्मपतिप्रवृत्तिं, कृत्वा [४]स्वकर्णपथिकीं [५]परिपन्थिकान्ताः ।
[६]वक्षःशिला स्म [७]विलिखन्ति [८]नखाग्रटङ्कैः, [९]कीर्त्तिप्रशस्तिमिव भूभृदकब्बरस्य ॥३७॥

(१) अकब्बरेण । (२) सङ्ग्रामे । (३) व्यापादिता ये स्वकीयाः पतयस्तेषां वार्त्ताम् ।

卐卐 एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) श्रवणायाः प्राघुर्णीं विधाय । श्रुत्वेत्यर्थः । (५) वैरिवध्वः । (६) हृदयशिलाः । (७) विदारयन्ति । (८) नखशिखा एव पाषाणदारणान्यायसोपकरणानि तैः । (९) जगद्विजय-करणवर्णनवर्णावली ॥३७॥

मृतपतिवार्त्तां श्रुत्वा तत्स्त्रियो नखटङ्कनकैर्वक्षांसि विदारयन्ति स्म ॥३३॥

एतद्भवन्निजनिशुम्भभविष्णुशङ्का-तङ्काकुलीकृतवनेचरवैरिवध्वः ।
रङ्गत्प्रपा इव पयोधरशातकौम्भ-कुम्भाश्च्युताश्रुजलपूरितनेत्रपात्राः ॥३८॥

(१) एतस्मा<u>दकब्बरा</u>दुत्पद्यमानो य आत्मनां वधस्तम्भाद्भवनशीला या शङ्का-अनिष्ट-सम्भावनं-तस्या भयं, तेन विह्वलीकृता, अत एव विपिनचारिणो ये वैरिणस्तेषां वध्वः । (२) चलन्त्यः पानीयशाला इव । (३) स्तना जलधारिणश्च एव तथा स्वर्णसम्बन्धिनो घटा यासां यासु वा, निःसरन्नयनजलानि बाष्पान्येव पानीयानि तैर्भृतानि नयनान्येव पात्राणि पर्णानि भाजनानि वा यासां यासु वा । "पात्रं तु कूलयोर्मध्ये पर्णे नृपतिमन्त्रिणि । योग्यभाजनयोर्यज्ञभाण्डे नाट्यनुकर्त्तरी"-त्यनेकार्थः ॥३८॥

अकब्बरभूपाद्वधभयाद्वनवासिनामरीणां वध्वः स्तनहेमकुम्भाः पुनरश्रुजलभृतनेत्रपात्राः । रङ्गन्त्यो जङ्गमाः प्रपा इव जाताः ॥३४॥

यस्याऽतिदानवशतः परितोषभाग्भि-र्विश्वार्थिभिः सुरगवामपमानितानाम् ।
भूयोभवद्भिरविसर्जनतः पयोभि-र्निष्पातिभिः किमवभवद्दिवि देवसिन्धुः ॥३९॥

(१) <u>अकब्बरस्य</u> । (२) इच्छाभ्यधिकविश्राणनवशात् । (३) सामस्त्येन स्वास्थ्यभाग्भिः । सन्तुष्टचित्तैः । (४) समस्तयाचकैः । (५) कामधेनूनाम् । (६) अवगणितानाम् । स्वप्नेऽप्य-प्रर्थितानाम् । (७) बहुलैर्जायमानैः । (८) दानाभावात् । (९) दुग्धैः । (१०) निस्सरणशीलैः । (११) गगने । (१२) गङ्गा ॥३९॥

परितुष्टैर्यदर्थिभिरपमानितानां सुरगवां दुग्धैः कृत्वा स्वर्गे गङ्गाऽभवत् ॥५०॥

यस्योऽऽहवोऽजनि घनाघनवत्कृपाण-विद्युत्पतत्समददन्तिमदाम्बुधारः ।
भल्लीनिकृत्तरिपुशोणितसिन्धुवेणि -रुड्डीनपांशुपिहिताखिलदिग्विभागः ॥४०॥

शून्यं सृजन्भुवनमप्यरिकीर्त्तिहंस-श्रेण्या कुले द्विषति दुर्दिनमादधानः ।
विद्रावयन्परवधूवदनाम्बुजानि, शूरद्रुमान्पुलककोरकितान्प्रकुर्वन् ॥४१॥ युग्मम् ॥

(१) सङ्ग्रामः । (२) जातः । (३) मेघ इव । (४) खड्गा एव विद्युतो यत्र । (५) क्षरन्त्यो मदयुक्तानां करिणां दानजलानां धारा वृष्टयो यत्र । (६) भल्लीभिः-शस्त्रविशेषैः । "तिमिरकरिकुम्भभेदनभल्लीष्विवे" ति चम्पूकथायाम् । छेदिता ये वैरिणस्तेषां शोणितानि-रुधिराण्येव नदीप्रवाहा यत्र । (७) ऊर्ध्वं गतैर्गगने विस्तृतै रजोभिराच्छादिताः समग्राणां दिशां प्रदेशो यत्र ॥४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) रिक्तम् । (२) कुर्वन् । (३) विश्वं पानीयं च । (४) रिपूणां कीर्त्तिरेव मरालमाला तया । (५) वैरिणि । (६) वंशे । (७) दौस्थ्य-दौर्भाग्य-वनवास-स्वजनवियोगादिकुदिवसं मेघान्धकारं च । (८) कुर्वाणः । (९) विद्रावयन्-सङ्कोचयन् । गतप्रायाणि सृजन् । (१०) रिपुवनितामुखकमलानि । (१०) वीरवृक्षान् । (१२) रोमाञ्चकुड्मलकलितान् ॥४१॥ युग्मम् ॥

यस्याऽऽजिर्मेघवज्जातः । किंभूतः ? । खड्ग एव तडित् यस्मिन् । पुनर्मदधाराञ्चितः । पुनः [नि]कुत(कृत्तः) छेदितारिरुधिराण्येव नदीप्रवाहा यस्मिन् । पुना रेणुभिराच्छादिता दिक्प्रदेशा यस्मिन् ॥३५॥ पुनः किंभूतः ? । अरिकीर्त्तिरहितं भुवनं कुर्वन् । पुनर्वैरिणि वंशे मेघध्वान्तं कुर्वन् । पुनः परस्त्रीमुखे म्लानिं नयन् । पुनः शूररूपवृक्षान्पुलकमुकुलकलितान् कुर्वन् ॥३६॥

[1]यस्यौजसि [3]स्फुरति जैत्र[4] इव [2]त्रिलोक्यां, [5]त्रासादिवा[7]ऽम्बुनिधिम[6]म्बुधिमन्त्रजिह्वः ।
[8]वज्रः [9]पुरन्दरकरं [10]सरसीजपाणिः, पादं [11]हरेरपि [12]दवो[13]ऽद्रिभुवं बभाज ॥४२॥

(१) अकब्बरप्रतापे । (२) त्रिभुवनमध्ये । (३) भ्राम्यति सति । (४) जयनशीले इव । (५) आकस्मिकभयात् । (६) समुद्रवह्निर्वडवानलः । (७) सागरम् । (८) दम्भोलिः । (९) शक्रहस्तम् । (१०) सूर्यः । (११) विष्णुपदम् । (१२) दवानलः । (१३) पर्वतगहनभुवम् ॥४२॥

जयनशीले यत्प्रतापे दीप्यमाने सति भयादिव वडवाग्निरर्णवं श्रितः । पुनर्वज्रो वज्रिहस्तं श्रितस्तरणिर्गगनं बभाज । दवानलो गिरिवनभूमीं बभाजेत्युत्प्रेक्षा प्रादुष्कारः ॥५३॥

[1]एतत्तुरङ्गमगणा [2]दिवि [3]सम्पराये, प्रो[4]त्तालफालललितं [5]कलयाम्बभूवुः ।
[7]जित्वा [6]धरां [8]विबुधधाम पुनर्जिघृक्षोः, [10]संलक्ष्य तक्षणमिवा[11]ऽऽशयमात्म[12]भर्त्तुः ॥४३॥

(१) अकब्बराश्वाः । (२) आकाशे । (३) सङ्ग्रामे । (४) प्रोत्तालं-शीघ्रं फालाना-मुच्चैर्गतिविशेषाणां विलासम् । "चलद्वलयमुखकरतलोत्तालतालिकारम्भरमणीयरसिकरासकक्रीडा-निर्भराः" इति चम्पूकथायाम् । (५) दधुः । (६) पृथ्वीम् । (७) विजित्य (८) स्वर्गम् । (९) ग्रहीतुमिच्छोः । (१०) ज्ञात्वा । (११) अभिप्रायम् । (१२) स्वस्वामिनः ॥४३॥

एतदश्वाः सङ्ग्रामे गगने उत्पतन्ति । उत्प्रेक्ष्यते - पृथ्वीं जित्वा स्वर्गं ग्रहीतुमिच्छोरकब्बरनृपस्या-ऽभिप्रायं तत्कालं विज्ञाय ॥३७॥

[1]एतद्भवद्भयगृहीतदिशो [2]दिगीशा-न्नि[3]ःस्वाननिःस्वनभरः [4]प्रतिभूरिवाऽन्तः ।
भूत्वा[5]ऽऽत्मना[6]ऽऽह्वयदिवा[7]ऽवनिपद्मिनीश-मेनं[8] पुनः [9]प्रणतिगोचरतां प्रणेतुम् ॥४४॥

(१) अकब्बरादुत्पद्यमानाया भीतेर्वशात्पलायितान्नष्टान् । (२) दिक्पतीन् । (३) राजवाद्यशब्दसमूहः । (४) साक्षीव । (५) विचाले भूत्वा । (६) स्वयम् । (७) आकारयति । (८) अकब्बरपातिसाहिम् । (९) प्रणन्तुम् ॥४४॥

एतदुत्पन्नभयाद्गृहीतदिग्मण्डलान् दिक्पालान् प्रति निःशानारावो मध्ये प्रतिभूः साक्षी भूत्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एनमवनीनाथं नमस्कृतिविषयं निर्मातुम् । उत्प्रेक्ष्यते- दिक्पालान्नाह्वयन्निवाऽऽकारयन्निव ॥३८॥

[१]सम्प्रीणता [२]कुवलयं [३]नृपसूरिराज-श्लोकावनीधनयुगेन [४]महोदयेन ।
[५]द्वैराज्यवज्ज[६]गदभू[७]त्पर[८]मत्र [९]चित्र- [१०]मद्वैतसम्मदपदं [११]दधु[१२]रङ्गभाजः ॥४५॥

(१) प्रीतिमुत्पादयता विकाशयता च । (२) भूमण्डलं उत्पलं च । (३) <u>अकब्बर-साहेर्हीरविजयसूरीशितुश्च</u> यशोनृपयुगलेन । अपरवर्णनौत्सुक्यान्मा ग्रन्थनायको विस्मृतः स्तादिति गुरोरभिधानग्रहणम् । (४) अतिशायी अभ्युदयो यस्य । (५) द्वौ राजानौ यत्र द्विराजं, तस्य भावो द्वैराज्यं, तद्वत् । (६) विश्वमासीत् । (७) केवलम् । (८) द्वैराज्ये । (९) आश्चर्यम् । (१०) न विद्यते द्वैतं - द्वितीयं कारणं यत्रेत्यसाधारणमानन्दास्पदम् । (११) धारयन्ति स्म । (१२) प्राणिनः ॥४५॥

भूतलं उत्पलं च सम्प्रीणता नृपभट्टारकयोरुदयवता कीर्त्तिभूपेन येन जगद्द्वैराज्यमिव जातम् । परमेतच्चित्रं यत्प्राणिनो हर्षस्थानं धारयन्ति स्म ॥५१॥

[१]स्वीयान्ववायभवभूध[1]नराजिमा[२]जौ, [३]येना[४]ऽऽहतां[५]महितपक्षतया [६]समीक्ष्य ।
माऽ[७]भ्येतु जेतु[८]मथ मामपि [९]राजभावा- द्भेजे[१०]ऽद्रिजापतिमितीव [११]पती रजन्याः ॥४६॥

(१) आत्मीये वंशे-चन्द्रवंशे समुत्पन्नानां नृपाणां श्रेणिम् । (२) रणे । (३) <u>अकब्बरेण</u> । (४) निपातिताम् । (५) वैरिवर्गत्वेन । (६) दृष्ट्वा । (७) मा आगच्छ । (८) अथ-मद्वंशजवधानन्तरम् । (९) राजत्वेन । (१०) ईश्वरम् । (११) चन्द्रः ॥४६॥

स्वीया० । वैरिवर्गत्वेन राजकुलोद्भूतभूपश्रेणीं हतां दृष्ट्वा राजत्वेन मां मा हन्यात् इतीव रात्रिपतिरीशं सेवते ॥३९॥

[१]पूर्वापराम्बुनिधिसैकतसीमभूमी-सञ्चारिचञ्चुरचमूचरभूरिभारम् ।
[२]सोढुं न [३]सासहि[४]रहीश्वर [५]एकमूर्ध्ना, [६]शीर्ष्णां सहस्रमिति किं [७]रचयांचकार ॥४७॥

(१) प्राचीप्रतीचीसमुद्रयोर्जलोज्झिततटे एव मर्यादे यस्यास्तादृश्यां भूमौ सञ्चरणशीलानां स्वस्वामिकर्मकरणप्रवणानां सेनाजनानां भूयिष्ठं वीवधम् । (२) उत्पाटयितुम् । (३) समर्थः । 'अहिर्महीगौरवसासहिर्य" इति नैषधे । (४) शेषनागः । (५) एकेन मस्तकेन । (६) मस्तकानाम् । (७) कृतवान् ॥४७॥

आसमुद्रान्तपृथ्वीविचरणशीलानां सुभटानां भारमेकमस्तकेनाऽसहनशीलः शेषनागो मस्तकसहस्रं रचयति स्म ॥४०॥

स्पर्द्धां दध[१]न्निजयशःप्रसरैः [२]स्वलक्ष्म्या, [३]क्षोणीभुजा बहि[४]रितो विहितः स्वदेशात् ।
[५]स्वःसिन्धुरोधसि [६]तदादि मृ[७]गं [८]दधानो, [९]राजा[१०]ऽनिशं [११]मृगयुवत्किमु [१२]बम्भ्रमीति ॥४८॥

---

1. ०धर० हीमु० । ०धव० हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्वकीयकीर्त्तिविस्तारैः । (२) चान्द्रीयशोभया । (३) अकब्बरेण । (४) अस्मात्स्वभूमीमण्डलाद्बहिः कृतो निष्कासितः । (५) गगनगङ्गातटे । (६) तस्माद्दिनादारभ्य । (७) अङ्करङ्कुं कृष्णसारम् । (८) कलयन् । (९) चन्द्रो नृपश्च । (१०) व्याधवत् । (११) अनिशमतिशयेन पूर्वापरयोर्दिशोर्भ्राम्यति ॥४८॥

यशसा स्पर्द्धमानः सन् **अकब्बरेण** निजजनपदान्निष्कासितो राजा-चन्द्रो नृपश्च स्वर्गङ्गातीरे नदीतीरे वा पयःपानागतमृगग्रहणार्थं लुब्धक इवाऽतिशयेन भ्राम्यतीव । प्रायो मृगेनैव मृगा गृह्यन्ते ॥५२॥

[१]पाणौ [२]रणाङ्गणगतस्य [३]कृपाणयष्टिः, [४]क्षोणीमणे[५]स्तृणयतः [६]पृतनां [७]रिपूणाम् ।
भाति [८]प्रचण्डभुजदण्डवसज्जयश्री-केशच्छटा [९]प्रकटतामिव [१०]टीकमाना ॥४९॥

(१) हस्ते । (२) युद्धमध्यप्राप्तस्य । (३) खड्गलता । (४) अकब्बरस्य । (५) तृणीकुर्वतः । तृणप्रायान्मन्यमानस्य । (६) सेनाम् । (७) वैरिणाम् । (८) जानुस्पर्शिनौ प्रतापयुक्तौ बाहावेव दण्डौ, तयोस्तिष्ठन्त्या विजयलक्ष्मीवेणी । (९) स्फुटताम् । (१०) यान्ती । 'टीक गतौ' टीकते ॥४९॥

साहिहस्ते खड्गयष्टिर्भाति । उत्प्रेक्ष्यते - भुजयोर्वसन्त्या जयलक्ष्म्या जनदृग्गोचरत्वं गच्छन्ती कचच्छटा ॥४१॥

[१]खड्गाहतोद्धतमतङ्गजदन्तकुम्भ-प्रोद्धूतपावककणोत्करमुक्तिकाभिः ।
[२]क्षुण्णे [३]तुरङ्गमखुरै [४]रणभूतले य, [५]ओजोयशोऽवनिरुहोर्वपतीव बीजम् ॥५०॥

(१) तरवारिभिः प्रहतेभ्य उत्कटानां गजानां दन्तकोशकुम्भस्थलेभ्यः प्रकटीभूतवह्नि-स्फुलिङ्गगणमुक्ताफलैः । दशनेभ्योऽग्निस्फुलिङ्गात्कुम्भस्थलविदारणान्मुक्ताफलानि तन्मध्यान्निर्गतानि । (२) क्षोदिते-श्वेडिते इत्यर्थः । (३) अश्वानां नखैः (४) सङ्ग्रामभूमीपीठे । (५) प्रतापकीर्त्तिरूप-द्रुमयोः बीजं वपति ॥५०॥

यः साहिरश्वखुरक्षोदिते भूतले खड्गाहतद्विपदन्तकुम्भाभ्यामुद्धूताग्निकणा मुक्ताश्च ताभिः प्रतापकीर्त्तिवृक्षयोर्बीजमुवापेव ॥४२॥

[१]युद्धो[1]द्धते [२]भुवनभीतिकरे [३]नरेशे, [४]त्रासात्[५]स्वकीयवसतेरिव [६]राज[2]शूरौ ।
[७]भ्रष्टौ [८]पुनस्[९]तदनवेक्षणतो[१०]ऽन्तरिक्षे, प्रे[११]क्षाकृते तत[१२] इतो [१३]भ्रमिमादधाते ॥५१॥★

(१) रणाङ्गणे वैरिभिर्द्रष्टुमप्यशक्ये । (२) प्रबलबलितया जगतामपि भयोत्पादके । (३) अकब्बरनृपे । (४) आकस्मिकभयात् । (५) स्वस्थानात् । (६) राजा-चन्द्रो नृपश्च, शूरः-सूर्यः वीरश्च । (७) भ्रंशं प्राप्तौ । अतिभीतेः स्वस्थानं परित्यज्य परत्र कुत्रापि गतावित्यर्थः । (८) [पुन]र्व्याघुट्य । (९) तस्य स्वस्थानकस्याऽनालोकनतः-अदर्शनात् । (१०) आकाशे । (११) दर्शनार्थम् । (१२) इतस्ततः - प्राचीप्रतीच्योः । (१३) भ्रान्तिं कुर्वतः । स्ववासस्थानमलभमानौ

1. ०द्धोद्धुरे० हीमु० । 2. सूरराजौ हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नित्यं भ्राम्यत: ।।५१।।

एतत्त्रासात्सुभटराजानौ सूर्याचन्द्रमसौ स्वस्थानाद्भ्रष्टौ । पुनः स्वस्थानालोकनार्थं नित्यं भ्राम्यत इव ।।४३।।

आकस्मिकं तुमुलमेतदनन्यजन्य-व्याहन्यमानभटकोटिभवं निशम्य ।
आतङ्कितैः किमिदमित्यमरैर्वदद्भि-र्लेभे किमीक्षणयुगेषु निमेषनैःस्व्यम् ।।५२।।[1]

(१) अकस्माद्भवमुत्पन्नम् । (२) व्याकुलशब्दम् । (३) एतेनाऽकब्बरेणा-ऽसाधारणसङ्ग्रामे व्यापाद्यमानानां राजन्यानां कोटिभ्य उत्पन्नम् । (४) श्रुत्वा । (५) चकितैर्भयं प्राप्तैः । (६) इदं किं जातमिदं किं जातममुना प्रकारेण । (७) कथयद्भिः । (८) देवैः । (९) नेत्रद्वन्द्वेषु । (१०) निमीलनदारिद्र्यम् । भीतेरतिशायितया विकाशितनेत्रैरेवाऽभूयत ।।५२।।

एतेनाऽकब्बरसाहिना असाधारणे रणे मार्यमाणभटकोटिभवं आकस्मिकं कोलाहलसशब्दं श्रुत्वा भीतैः किं जातमिति वदद्भिः सुरैर्नेत्रयुग्मेषु निमेषदौःस्थ्यं प्राप्तमिव ।।४४।।

भूमेर्जयाय चतुरम्बुधिमेखलाया, आराध्य पूर्वविधिना किमु जैत्रमन्त्रम् ।
गुप्ते क्वचिन्निजभुजप्रभवत्प्रताप-वह्नौ ततोऽयमरिकीर्त्तिकनीं जुहाव ।।५३।।

(१) चत्वारः पूर्वापरदक्षिणोत्तरलक्षणाः समुद्राः काञ्ची यस्याः । (२) आराधनां कृत्वा । (३) पूर्वसेवया । (४) जयनशीलमन्त्रम् । (५) एकान्ते विजने । (६) कुत्रापि प्रदेशे । (७) स्वबाहूत्पद्यमानप्रतापपावके । (८) वैरिकीर्त्तिकुमारिकाम् । (९) तत्सिद्धये हुतवान् ।।५३।।

चतुस्समुद्राया भूमेर्जयार्थं पूर्णविधिना क्वचिद्गुप्तस्थाने मन्त्रमाराध्य अयं साहिर्निजभुजजातप्रतापाग्नौ तन्मन्त्रसिद्ध्यर्थं रिपुकीर्त्तिनाम्नीं कन्यां जुहोति स्मेवेत्यर्थः । कन्याहोमः कुत्रचिद् दृश्यते । श्रीशत्रुञ्जयमाहात्म्ये केनचित्खेचरेणाऽऽनीता होतुं निबिडनिबद्धा गुणसुन्दरी राजकन्या रोदनश्रवणागतेन महीपालकुमारेण मोचितेति दृश्यते ।।४५।।

अभ्रभ्रमाद्यदभिमात्ययशोलुलाय-मालोक्य भीतिविवशस्य हरेर्हयस्य ।
सन्त्रस्यतो वदननिर्यदमन्दफेनै-र्ज्योतिष्मती[2] किमभवत्पुर(रु)हूतपद्या ।।५४।।*

(१) आकाशे पर्यटन्तं यस्य रिपुनृपाणामपश्लोकमहिषम् । (२) दृष्ट्वा । (३) भयविह्वलस्य । (४) उच्चैःश्रवसः । (५) अकस्मात्तद्दर्शनोद्भूतभीतेर्नश्यतः । "रामालिरोमा-वलिदिग्विगाहि-ध्वान्तायते वाहनमन्तकस्य । यत्प्रेक्ष्य दूरादपि बिभ्यतः स्वानश्वान्गृहीत्वाऽपसृतो विवस्वान् ।" इति नैषधे । (६) मुखान्निःसरद्बहुलडिण्डीरैरश्वमुखलालाभिः । (७) तारककलिता (८) शक्रमार्गः -गगनम् ।।५४।।

अभ्र० । गगने भ्रमन्तं तद्वैरिणामयशोमहिषं दृष्ट्वा भयविह्वलस्याऽतस्त्रस्यत उच्चैःश्रवसो मुखात् पतद्भिः फेनैः कृत्वा । उत्प्रेक्ष्यते-गगनं ग्रहनक्षत्राकलितं जातम् ।।५४।।

1. इत्यकब्बरसाहिसमरवीररसवर्णनम् । 2. ०तीव समभूत्पु० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चाऽपि [1]देवतरवो[2]ऽधरिताः [3]स्वादान-लीलायितैर्व[4]सुमतीकुसुमध्वजेन ।
[5]सम्भूय [6]काञ्चनशिलोच्चयचूलिकायां, किं [7]मन्त्रयन्त्य[8]वनिवृत्रहणं विजेतुम् ॥५५॥

(१) कल्प १-पारिजात २-मन्दार ३-हरिचन्दन ४-सन्ताना ५-ऽख्याः कल्पद्रुमाः । (२) विजिताः । (३) निजविश्राणनविजृम्भितैः । (४) भूमीस्मरेणाऽतिशायिरूपत्वात् । "निषध-वसुधामीनाङ्कस्य प्रियाङ्कमुपेयुष" इति नैषधे । (५) एकत्र भूत्वा । (६) मेरुशिखरे । (७) आलोचं कुर्वन्ति । (८) <u>अकब्बरम्</u> ॥५५॥

वसुमत्याः श्रीनन्दनेन दानेन जिताः स्वर्द्रुमास्तं जेतुमिव स्वर्गिरिशिखरे एकीभूत्वा रहस्यालोचं कुर्वन्तीव ॥५॥

[1]सर्वानुवाद इव [2]यन्महसां [3]विहायः-पान्थः किमु [4]प्रतिनिधिर्हत[5]भुक्पयोधेः ।
[6]वज्रोऽनुकार इव [7]कायलता [8]हुताश-पङ्क्तिः पुनः [9]सहचरस्त[10]डितां विलासः ॥५६॥

(१) सर्वमनुवदतीति । पुनरप्यभिधानमिव । (२) <u>अकब्बर</u>प्रतापानाम् । (३) सूर्यः । (४) प्रतिबिम्बम् । (५) समुद्रवह्निर्वडवानलः । (६) सादृश्यम् । (७) शरीरयष्टिः । (८) अनलमाला । (९) मित्रम् । (१०) विद्युद्वितानम् ॥५६॥

रविर्यत्प्रतापसामस्त्यमनुवदति तादृशः । पुनरप्यभिधानमिव । पुनर्वडवाग्निः(ग्नेः) प्रतिबिम्बतम् । वज्रं(ज्र)सदृशम् । पुनरग्निश्रेणिः कायः । पुनर्विद्युद्विजृम्भितं सखा ॥५६॥

[1]क्षोणीक्षितः [2]क्षितिरुहानिव [3]वायुरंहः, [4]प्राच्यान[5]नामयदकब्बरभूमिपालः ।
तस्माद्दिशो जगृहिरेपि[6] च [7]दाक्षिणात्ये, क्ष्मा[8]भृद्व्रजेन [9]शरभादिव [10]सिन्धुरेण ॥५७॥

(१) नृपान् । (२) वृक्षान् । (३) वातवेगः । (४) पूर्वदिग्भवान् । (५) निजस्य नम्रीचकार । नष्ट इत्यर्थः । (६) पुनः । (७) दक्षिणस्यां भवैः । (८) राजव्रजेन । (९) अष्टापदादिव । "शरभः कुञ्जरातिरुत्पादकोऽष्टपादपी"ति हेमाचार्य : ॥ (१०) गजेन ॥५७॥

अकब्बरः पूर्वदिग्भूपाननामयत् । यथा वातवेगस्तरून्नामयति । पुनर्दक्षिणदिग्भूपेन तस्मात्प्रणष्टम् । यथाऽष्टापदाः कुञ्जरेण प्रपलाय्यते ॥५८॥

आज्ञा [1]यदम्बुनिधिनेमिविधो[2]रधारि, [3]शीर्षेव मूर्ध्नि धरणीरमणै[4]रुदीच्यैः ।
[5]पाश्चात्यभूमिपतयो [6]यतयो ब[7]भूवु-[8]र्भीते[9]र्विरागत इवो[10]ज्झितसङ्गरङ्गाः ॥५८॥[1]

(१) यस्य साहेः । (२) धृता । (३) 'सेस' इति प्रसिद्धिः । (४) उत्तरस्यां भवैर्भूपैः । (५) पश्चिमनृपाः । (६) तापसाः । (७) जाताः । (८) भयात् । (९) वैराग्यात् । (१०) त्यक्तगृहगृहिणीसङ्गमस्य चित्ते सोत्साहो यैः ॥५८॥

---

1. इत्यकब्बरस्य चतुर्दिगाक्रमणम् । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसमुद्रान्तधरा चन्द्रस्य यस्याऽऽज्ञा उत्तराभूपैः शीर्षा । 'सेस' इति लोकोक्ति । तद्वद् धृता । पुनः पश्चिमभूपा यतयः सान्यासिका जाताः । किंभूताः ? । यथा वैराग्यात्त्यक्तगृहादिसङ्गा भवन्ति तथा भयाज्जाताः ॥५९॥

ऐश्वर्यमीशत इव प्रभुतां सुरेन्द्रा-दोजो रवेर्निधिपतेश्च वदान्यभावम् ।
भोगीश्वरादि(द)वनिगौरवसासहित्व-मादाय योऽम्बुजभुवा निरमायि भूमान् ॥५९॥[1]

(१) ईश्वरताम् । (२) ईश्वरात् । (३) स्वामित्वम् सामर्थ्यं वा । (४) शक्रात् । (५) प्रतापम् । (६) सूर्यात् । (७) धनदात् । (८) दातृताम् । (९) शेषनागात् । (१०) भूमिभारसहनशीलताम् । "सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वाच्यौ । सासहिर्वावहिः चाचलिः पापति"रिति प्रक्रियाकौमुद्याम् । (११) गृहीत्वा (१२) धात्रा (१३) कृतः । (१४) नृपतिः ॥५९॥

ईशादैश्वर्यं गृहीत्वा, इन्द्रात्प्रभुत्वं, रवेः प्रतापं, पुनर्धनदाद्दानशीलतां, शेषनागात्पृथ्वीभारं गृहीत्वा धात्रा यः पातिसाहिः कृतः ॥५७॥

सर्वे जनाः सृजति राजनि यत्र राज्यं, प्रह्लत्तिपल्लवितचित्तपथा बभूवुः ।
दुःस्थैरिवोऽऽपि न परं प्रतिपक्षलक्ष-क्षोणीमहेन्द्रमहिलानिवहैः सुखांशः ॥६०॥

(१) यस्मिन्नकब्बरे । (२) राज्यं कुर्वति सति । (३) प्रह्लादेन पल्लविता बहलीभूता मनसां वृत्तयो येषां ते । 'ह्लाद' इति योगविभागात् क्तिनि ह्रस्वः' इति प्रक्रियायाम् - प्रह्लत्तिः । (४) दरिद्रैरिव । (५) प्राप्तः । (६) केवलम् । (७) वैरिभूता लक्षसङ्ख्या ये नृपास्तेषां कान्तासन्तितिभिः । (८) सुखस्य लेशोऽपि ॥६०॥

यस्मिन्भूपे राज्यं कुर्वति सति सर्वे जनाः प्रह्लादपल्लवितमनोवृत्तयो जाताः । परमयं विशेषः यद्वैरिवनितौघैः सातलेशोऽपि न प्राप्तः । यथा दरिद्रैः सुखं नाऽऽप्यते ॥६०॥

मेरुर्गिरिष्विव गभस्तिरिव ग्रहेषु, बर्हिर्मुखेष्विव वृषा प्रमुखो नृपेषु ।
आक्रम्य चक्रिवदसौ क्षितिशक्रचक्रं, शास्ति स्म साहिरखिलां चतुरब्धिकाञ्चीम् ॥६१॥[2]

(१) समस्तपर्वतेषु । (२) स्वर्णाचलः । (३) सूर्य : । (४) मङ्गलादिषु । (५) देवेषु । (६) इन्द्रः । (७) राजसु । (८) मुख्यः । (९) स्वायत्तीकृत्य । (१०) चक्रवर्तीव । (११) समस्तराजव्रजम् । (१२) पालयति स्म । (१३) अकब्बरनृपः । (१४) चत्वारः समुद्रा मेखला यस्यास्ताम् ॥६१॥

मेरु० । यथा मेरुर्गिरिषु मुख्यः, ग्रहेषु रविः, देवेषु वृषा-वज्री तद्वन्नृपेषु मुख्यः स भूपश्चक्रीव राजवृन्दं सेवकीकृत्याऽखिलां धरां पालयति स्म ॥६१॥

1. इत्यकब्बरसाहियशःप्रत्ययदातृतादिगुणाः । हील० । 2. इत्यकब्बरवर्णनम् । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआगरापुरमुपेत्य कियन्ति वर्षा-ण्यम्भोधिनेमिविधुना वसतिर्वितेने ।
भूकश्यपेन मथुरामिव हेमपद्म-निष्पातिपौष्पकपिशार्कसुताकलापाम् ॥६२॥

(१) आगरानामनगरीम् । (२) दिल्लीपुरादागत्य । (३) अकब्बरेण । (४) स्थितिः । (५) कृता । (६) वसुदेवेन । "वसुदेवो भूकश्यपो दु(दि)न्दुरानकदुन्दुभि" रिति हैम्याम् । (७) सुवर्णकमलेभ्यो निःसरद्भिः परागैः पिङ्गीकृताम्बुयमुना एव मेखला यस्याः । "हंसांसाहत-पद्मरेणुकपिशक्षीरार्णवाम्भोभृतै" रिति पद्मानां पीतत्वम् ॥६२॥

स साहिरागरापुरे कियद्वर्षाणि तस्थौ । यथा मथुरां प्राप्य वसुदेवेन कियदब्दं स्थितम् । किंभूतां पुरं मथुरां च ? । हेमसरोजेभ्यः पतन्मरन्दपरागपिङ्गीकृता यमुना एव कटिमेखला यस्याः ताम् ॥६२॥

तस्थौ समाः स कियतीः पुरमागराख्यां, भूमान्विभूष्य मथुरामिव वृष्णिसूनुः ।
भर्त्तुर्वशेव सरसा सरसीरुहास्या, श्यामाङ्कमर्कतनुजा भजते स्म यस्याः ॥६२॥
पाठान्तरम् ॥

(१) स्थितः । (२) वर्षाणि (३) कियत्सङ्ख्याकाः । (४) आगराभिधानाम् । (५) नगरीम् । (६) राजा । (७) अलंकृता(त्य) । (८) वसुदेवः । (९) कान्तस्य । (१०) सह रसेन पानीयेन शृङ्गारादिना वा वर्त्तते या, सा । (११) पद्मान्येव तद्वद्वा वक्त्रं यस्याः । (१२) कृष्णजला । "कालिन्दी कन्हविरहे अज्जवि कालं जलं वहइ" इति वृत्तरत्नाकरवृत्तौ । षोडशवार्षिकी । (१३) समीपमुत्सङ्गं च । (१४) यमुना । अपरपाठः ॥६२॥

यथा वसुदेवः कंसोपरोधेन स्थितः, तथा स्थितः । यस्या अङ्कं-अन्तिकं यमी भेजे । यथा पत्युरुत्सङ्गं पत्नी भजते । किंभूता ?। सजला सशृङ्गारा च । जलजमेव तद्वद्वा मुखं यस्याः । पुनः कृष्णा षोडशवार्षिकी च ॥६२॥

स श्रीकरीपुरमवासयदात्मशिल्पि-सार्थेन [1]डामरसरःसविधे धरेशः ।
इन्द्रानुजात इव पुण्यजनेश्वरेण, श्रीद्वारकां जलधिगाधवसन्निधाने ॥६३॥*

(१) अकब्बरसाहिः । (२) वासयति स्म । (३) स्वकीयविज्ञान(नि)निवहैः । (४) डामरनाम्नस्तटाकस्य सन्निधौ । तदपि साहिना खानितं प्राक् । (५) भूपतिः । (६) विष्णुरिव (७) धनदेन । (८) समुद्रपार्श्वे ॥६३॥

यथा कृष्णोऽर्णवतटे वासयति स्म, तद्वत् स डाबरसरः समीपे श्रीकरीं अवासयत् ॥६३॥

प्रोक्ताश्यपीपतिरकब्बरपातिसाहि-स्तस्याः पुरः प्रतिभटान्प्रचलन्विजेतुम् ।
आशा दशाऽपि कुरुते स्म फते स यस्मा-त्तस्मात्फतेपुरमिति [2]प्रददौ तदाह्वाम् ॥६४॥*

(१) पूर्व-वासनसमये । (२) पृथ्वीनाथः । (३) श्रीकर्या नगर्याः । (४) वैरिणः ।

---

1. डाबर० हीमु० । 2. प्रददे हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) परिभवितुम् । (६) प्रतिष्ठमानः । (७) दश दिशोऽपि । (८) फते-यवनभाषया स्वायत्ता इत्यर्थः । कुरुते स्म । (९) कारणात् । (१०) <u>फतेपुर</u>मिति दत्तवान् । (११) <u>श्रीकर्या</u> नाम ॥६४॥

तस्या नगरीतो विजेतुं प्रचलन् स दश दिशः 'फते' कुरुते स्म । तस्मात् श्रीकर्या अभिधानं **फतेपुरं** स ददौ ॥६४॥

गौरीमहेश्वरगणा स्फटिकावनद्ध-मध्या स[1]सेवधिपतिः प्रचलत्कुमारा ।
कर्णातिथीभवदिभाननधीररावा, कैला[2]शभूमिरिव या नगरी रराज ॥६५॥

(१) गौरी-काञ्चनवर्णा वनिता पार्वती च । तद्युतो महेभ्यव्रजः तथा शंभुस्तथा पार्षदा प्रमथादयो गणा यस्याम् । (२) स्फटिकोपलैः कल्पिता । (३) सह निधीनां नाथैः कोटिध्वजेभ्यैर्वर्त्तते या सधनदा च । "कैलाशौकायक्षधननिधिकिंपुरुषेश्वर" इति हैम्याम् । (४) क्रीडार्थं भ्रमन्तो बालका यत्र तथा गमागमं कुर्वत्स्वामिकार्त्तिको यत्र । पश्चात् कर्मधारयः । (५) श्रवणगोचरा जायमाना गजानां गन्धसिन्धुराणां वक्त्रेभ्यो मेघगम्भीरा गर्जारवा यस्याम् । तथा श्रूयमाणगणनायक-गम्भीररवो यस्याम् । गौरीतनयत्वात् । (६) कैलाशशैलभूमीव ॥६५॥

चण्डी ईश्वरयुक्त(क्ता) गणयुक्ता वा सीमन्तिनी महेभ्यौघयुक्ता । पुनः स्फु(फ)टिकवदुज्ज्वलं रचितं गृहविपणिमध्यं यस्यां वा स्फु(फ)टिकमया । पुनः किन्नरैर्धनिभिश्च युक्ता । पुनः प्रचलन् प्रचलन्तो वा स्वामिकार्तिको बाला वा यस्याम् वा । पुनः श्रूयमाणो विनायकारवो गजगर्जारवो वा यस्यां तादृशी । अत एव कैलाशभूमिरिव या नगरी शशुभे ॥६५॥

भूमीभृतां प्रतिभरं सुमनःसु मुख्यं, जिष्णूग्रधन्वपविपाणिसहस्रनेत्रम् ।
प्रेक्ष्य प्रभुं हरिमिवा[3]ऽवनिमीयिवांसं, प्रीतेरनूपगतवर्त्यमरावतीयम् ॥६६॥*

(१) वैरिभूपानां शैलानां च । (२) घातुकम् । (३) महत्सु देवेषु च । (४) प्रधानं (५) जयनशीलं उत्कटकोदण्डवज्रमाकृत्या हस्ते यस्य । प्रायः पुण्यवतां हस्तपादयोर्वज्रचक्राङ्कुशादि-लक्षणानि स्युः । सहस्राक्षम् । 'सहसंखी'ति लौकिकवाक्यम् । पश्चात्कर्मधारयः । शक्रस्य नामान्येतानि च । (६) दृष्ट्वा । (७) स्वस्वामिनम् । (८) शक्रम् । (९) पृथ्वीं प्रत्युपगतम् । (१०) स्नेहात् । (११) पृष्ठे समेता । (१२) इन्द्रनगरी ॥६६॥

भूमी० । स्वस्वामिनमिन्द्रं धरागतं दृष्ट्वा अनु-पश्चादागतेन्द्रपुरी इयम् । किंभूतं हरिं नृपं च ? । गिरीणां राज्ञां च वैरिणं, देवेषु उत्तमेषु च मुख्यं, पुनर्जयनशीलं प्रचण्डं धनुर्यस्य आकृत्या च करे ज्ञेयं तथा 'सहसंखी' अथवा चारनरनेत्रम् । 'चारैः पश्यन्ति राजानः' इत्युक्तेः ॥६६॥

स्पर्द्धां यया विदधतं त्रिजगज्जयिन्या, दृष्ट्वा बलेर्गृहमियं क्वचिदौचिती न ।
ध्यात्वेति पद्मजनुषा प्रतिघातिरेका-त्क्षिप्ता[4] क्षणात्क्षितितले बलिना किमेषा[5] ॥६७॥*

---

1. सशे० हीमु० । 2. ०लास० हीमु० । 3. ०मिव स्वमुपेतमुर्व्यां हीमु० । 4. ०प्तः हीमु० । 5. ०मेषः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) श्रीकरीपुर्या । (२) विश्वत्रयीपुरीजयनशीलया । (३) नागलोकम् । (४) इयं-स्पर्द्धाकृतिः । (५) क्वापि न युक्तिमती । (६) विचार्य । (७) ब्रह्मणा । (८) कोपातिशयात् । (९) प्रवेशिता । (१०) पाताले । "बलिसद्म दिवं सतथ्यवागुपरि स्माऽऽह दिवोऽपि नारदः" इति नैषधे । (११) बलिदैत्येन । सहेत्यध्याहारः । बलवता विधिना वा ॥६७॥

गृहशब्दः पुंनपुंसकयोः । तथा बलिनाम्ना दैत्येन सार्द्धं वा बलवता पद्मभुवा कोपाधिक्यात् नागलोकोऽधः क्षिप्तः ॥६७॥

[१]निर्वर्ण्य [२]वर्ण्यविभवैः [३]स्वभवैः पुरीं यां, संस्पर्द्धया [४]निजजयाय [५]समुज्जिहानाम् ।
[६]तद्भूतभूरि[1]तमभीतिविहस्तचेताः, किं द्वारिका प्रविशति स्म [७]पयोधिमध्ये ॥६८॥★[2]

(१) दृष्ट्वा । (२) वर्णनार्हश्रीभिः । (३) स्वस्माज्जातैः । (४) आत्मनः पराभवाय । (५) उद्यतां-कृतोद्यमा(मानाम्) । (६) तस्याः स्वजयोत्सुकायाः पर्याभूता उत्पन्ना या अतिशायिनी भीतिस्तया व्याकुलहृदया । (७) समुद्रजलदुर्गे ॥६८॥

वर्णनीयस्वशोभाभिः स्पर्द्धमानां यां पुरीं दृष्ट्वा तद्भयविह्वलचित्ता द्वारकार्णवान्तःप्रविष्टा ॥६८॥

[१]धात्रीधृतौ [२]फणसहस्त्रभृतो[३]ऽभ्यसूयां, [४]बिभ्रद्[५]भुजङ्ग[६]विभुना[७]ऽम्बरचुम्बिमौलिः ।
[७]सालः [८]स्मयेन [९]कपिशीर्षककोटि[१०]मुच्चै-[११]र्धर्तुं मरु[१२]द्गृहमिव स्वयमप्यधत्त ॥६९॥

(१) पृथ्वीधारणविधौ । (२) फटादशशतधारिणा । (३) इ(ई)र्ष्याम् । (४) धारयत् । (५) शेषनागेन । (६) अभ्रङ्कषशिखरः । (७) प्राकारः । (८) गर्वेण । (९) अट्टालककोटिम् । (१०) उपरिष्टात् । (११) धारयितुम् । (१२) स्वर्गः ॥६९॥

धराधारणार्थं सहस्त्रफणधारिणा शेषनागेन सहाऽभ्यसूयां दधानः । पुनरभ्रंलिहशिखरः प्राकारो गर्वेण । उत्प्रेक्ष्यते-देवलोकमुच्चै रक्षितुं कपिशीर्षकाणां कोटिं धृतवान् ॥६९॥

[१]यद्वप्रवज्ररुचिसञ्चितशक्रचाप-चक्राभ्रचुम्बिकपिशीर्षकराजिराभात् ।
युद्धं विधातु[२]महितेन [३]विधुन्तुदेन, [४]मित्रान्तिकं किमु [५]समीयुरमी [६]सगोत्राः ॥७०॥[4]

(१) श्रीकर्याः प्राकारस्य वज्रमणीनां कान्तिभिः पुष्टानि कृतानि इन्द्रधनुर्मण्डलानि यस्यां तादृशी अभ्रंलिहाट्टालकमाला । (२) वैरिणा । (३) राहुणा । (४) सूर्यः सखा च, तस्य समीपम् । (५) समेताः । (६) स्वजनाः ॥७०॥

यत्रगर्या वज्ररत्नरुचिभिः पुष्टीकृतानि इन्द्रचापचक्राणि यस्यां तादृशी अभ्रंलिहा कपिशीर्षकश्रेणी व्यभात् । उत्प्रेक्ष्यते-राहुणा सार्द्धं युद्धं विधातुं-कर्त्तुं सुहृदः सूर्यस्य चाऽन्तिकं समीपमागता अमी-दृश्या वज्रादयः सगोत्राः-स्वजना इव । सगोत्रत्वं तु वृत्ताकरत्वेन रत्नमयत्वेन प्रकाशकत्वेन च नभःपान्थत्वेन

1. ०तर० हीमु० । 2. इति समुदायेन कृत्वा श्रीकरीनगरीवर्णनम् । हील० । 3. अथ पृथग्वर्णनम् । हील० । 4. इति प्राकारः । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाकरत्वेन । सगोत्रा हि सायुधाः सङ्ग्रामसमये सगोत्रसमीपे प्रायः समायान्ति ॥७०॥

[१]यत्रा[२]ऽऽपणेष्व[३]गुरुचन्दनगन्धधूली-चन्द्रप्रकीर्णकमणीसुरदूष्यमुख्याः[1] ।
ज्ञानै[४]र्जिनैस्त्रि[५]जगतीव [६]समस्तवस्तु-वीथी [७]व्यलोक्यत [८]नरै[९]र्निजनेत्रपद्मैः ॥७१॥*

(१) फतेपुरे । (२) हट्टेषु (३) कृष्णागुरु-श्रीखण्ड-मृगनाभि-कर्पूर-चामर-चन्द्रकान्त - कर्केतनादिरत्न-देवदूष्यप्रमुखाः । (४) केवलिभिः । (५) त्रि(त्रै)लोक्ये । (६) निखिलपदार्थपङ्क्तिः । (७) दृष्टा । (८) जनैः । (९) स्वनयनकमलैः ॥७१॥

यत्रा० । यत्र हट्टेषु अगरुचन्दन-कस्तूरी-कर्पूर-चामर-रत्न-देवदु(दू)ष्यप्रमुखा समस्तवस्तुश्रेणी स्वनेत्रैर्नरैर्दृष्टा । यथाऽर्हद्भिस्त्रिजगति वस्तुश्रेणी दृष्टा ॥७१॥

[१]श्रेणीभवन्त्यु[२]भयपक्षवलक्षरत्न-हट्टावली विलसति स्म फतेपुरस्य ।
[३]सुस्वामिसम्मदितयत्पुरपद्मधाम्ना, [४]वक्षःस्थलाकलितमौक्तिकमालिकेव ॥७२॥[2]

(१) द्विपङ्क्त्या जायमाना । (२) द्वयोः पार्श्वयोर्वलक्षरत्नानां स्फटिकमणी बद्धाना-मापणानां श्रेणिः । "शय्यां [3]त्यजन्त्युभयपक्षविनीतनिद्रा" इति रघौ । द्वाभ्यां पक्षाभ्यां पार्श्वपरिवर्त्तनेनाऽपास्ता निद्रा यैरिति तद्वृत्तौ । (३) प्रजाप्रीतिकारिणा नृपेण जातहर्षया नगरलक्ष्म्या । (४) हृदये धृतमुक्ताफलहारयष्टिरिव ॥७२॥

पङ्क्तौ जायमाना उभयपार्श्वयोः स्फु(फ)टिकरत्नरचितहट्टश्रेणिः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते-सुस्वामिना हर्षितया यत्पुरलक्ष्म्या वक्षःस्थले परिहिता मुक्तालता ॥७२॥

[१]वेश्मव्रजाः [२]पुरि विभान्ति [३]मणीमरीचि-सञ्चारचूर्णिततमीतिमिरप्रसाराः ।
[४]स्फुर्त्त्या विजित्य [५]सुमनोनगरीं गृहीता, मन्ये [६]विमाननिवहा [७]अनर्या[८]ऽदसीयाः ॥७३॥

(१) गृहगणाः । (२) फतेपुरे । (३) रत्नकान्तिविस्तारेण खण्डितनिशान्धकारविस्ताराः । (४) शोभाविस्फूर्जितेन । (५) अमरावतीम् । (६) सुरयानव्रजाः । (७) श्रीकर्या । (८) स्वः-पुरीसम्बन्धिनः ॥७३॥

रत्नरुचिप्रसारहतध्वान्ता गृहव्रजाः फतेपुरे भान्ति । उत्प्रेक्ष्यते-स्वविभूषयाऽमरावतीं जित्वाऽस्या विमानौघा गृहीताः ॥७३॥

चित्ते [१]विचिन्त्य भयम[२]भ्रपथे[३]ऽभियाति-स्वर्भाणुतो [४]निजपरिच्छदमप्य[५]शेषम् ।
[६]आदाय [७]यद्विविधरत्ननिकेतकायाः, [८]सातं क्षिताविव वसन्ति [९]सितांशुसूर्याः ॥७४॥

(१) विचार्य । (२) आकाशे । (३) वैरिणो विधुन्तुदात् । (४) ग्रहनक्षत्रतारकादि-परिवारम् । (५) समग्रम् । (६) गृहीत्वा । (७) यन्नगर्या अनेकप्रकाराणां श्वेत-पीत-रक्त-नील-कृष्णानां मणीनां गृहा एव शरीरा येषाम् । (८) सुखेन । (९) चन्द्रभानवः ॥७४॥

गगने वैरिराहुतो भयं ज्ञात्वा यद्देहदम्भाद्भूमौ ससुखं स्थिताश्चन्द्रसूर्याः ॥७४॥

1. ०दुष्य० हीमु० । 2. इति हट्टावली । हील० । 3. जहत्युभ० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]उन्नालमम्बुजमिव[1] श्रियमापदेकं-[२]स्तम्भं निकेतनमकब्बरभूमिभानोः ।
वंश्या [३]रवेरिव परेऽपि गृहा वहन्ते, शोभां [४]मणीघृ[2]णिविभासितदिग्विभागाः ॥७५॥*[3]

(१) उच्चैर्मृणालं यस्य, तादृक्कमलम् । (२) एकस्तम्भगृहम् । (३) एकस्मिन्कुले समुत्पन्ना वंश्या उच्यन्ते । एकवंशजाः प्रायः सदृशा भवन्तीति । सगोत्रा इव सूर्यस्य । सूर्यसदृशा इत्यर्थः । (४) रत्नकान्तिभिः प्रकाशिता दिशां प्रदेशा यैः ॥७५॥

जलाद्बहिर्नालं यस्य तादृशमरविन्दमिवैकस्थ(स्त)म्भं गृहं भाति स्म । रविसदृशा अन्येऽपि गृहा शोभां वहन्ते ॥७५॥

[१]छायापथे [२]निरवलम्बतया [३]वसन्ती, [४]सङ्ख्यातिपातिमखभुग्भरभारितेव ।
[५]पौरस्फुरत्पुरनिभादमरावती[६]यं, भूमौ [७]समं [८]निजजनै[९]र्न्यपतत्[१०]त्रुटित्वा ॥७६॥

(१) आकाशे । (२) निराश्रयत्वेन । (३) वासं कुर्वन्ती(र्वती) । (४) गणा(ण)नां अतिक्रामन्तीत्येवं शीलाः । असङ्ख्याता इत्यर्थः । देवास्तेषां समूहानां वीवधैर्वा भारयुक्ता जाता-नम्रीभूता । (५) नगरलोकैः निर्भरभृतं दृश्यमानं यत्फतेपुरं तस्य कपटात् । (६) इयं-प्रत्यक्षलक्ष्या । (७) सुरैः । (८) सार्द्धम् । (९) अधः पतिता । (१०) स्थानभ्रंशं प्राप्य ॥७६॥

छायारूपे पथे निराधारतया वसन्ती सती असङ्ख्यातसुरौघभरिताऽमरावती इयं सजननगरी-मिषात्पतिता ॥७६॥

→ स्मारावरोधनधियं विदुषां ददाना, यस्मिन्स्मिताम्बुजदृशः श्रियमाश्रयन्ते ।
गोष्ठीं विधित्सव इवाऽत्र चतुर्निकाय-देवाङ्गनाः कुतुकिता मिलिता मिथोऽमूः ॥७७॥
इति नरनार्यः ॥←

स्मरपत्नीभ्रममादधानाः स्त्रियः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते-चतुर्निकायदेवाङ्गना मिलिताः ॥७७॥

[१]स्वर्गे [२]सुरेश इव [४]शेष इवा[३]ऽहिगेहे, चन्द्रो [५]दिवीव [६]निधिनाथ इवा[७]ऽलकायाम् ।
[८]प्रीणन्प्रजा दशदिशां विजयं विधाय, तस्यां [९]पुरि क्षि[१०]तिपतिः स्म करोति राज्यम् ॥७७॥[4]
इति फतेपुरवर्णनम् ।

(१) देवलोके । (२) देवेन्द्रः । (३) नागलोके । (४) नागेन्द्रः । (५) गगने । (६) धनदः । (७) धनपुर्याम् । (८) प्रीतिमुत्पादयन् । (९) श्रीकर्याम् । (१०) अकब्बरः ॥७७॥

यथा चन्द्र आकाशे यथा धनदोऽलकायां तथा तत्पुरि पार्थिवो राज्यं करोति स्म ॥७८॥

[१]गान्धर्विकाः [२]क्वचद(न) [३]घोषवतीं [४]वहन्तो, गायन्ति [५]यत्र [६]नवपञ्चमगर्भगीतिम् ।
[७]प्रस्थापितास्त[८]मुप[९]वीणयितुं [१०]मघोना, [११]स्वर्गायनाः [१२]स्वजयशङ्कितचेतसेव ॥७८॥

(१) गान्धर्वं गीतिं विदन्ति वो गायन्तीति (?गायन्तीति वा) गान्धर्विका गायनाः ।

---

1. उन्नालनीरजमिव हीमु० । 2. ०द्युति० हीमु० । 3. इति नगरनृपगृहाः । हील० । →←एतच्छ्लोको हीसुंप्रतौ नास्ति ।
4. इत्यकब्बरसाहिवासितफतेपुरम् । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) कुत्राऽपि प्रदेशे । (३) वीणाम् । (४) करे धारयन्तः । (५) सभायाम् । (६) नवः- इतर- गायनगानेभ्योऽसाधारणः, अत एवाऽश्रुतपूर्वत्वान्नवीनः पञ्चमरागो गर्भे यस्यास्तादृशीं गीतिम् । (७) प्रेषिताः । (८) अकब्बरम् । (९) वीणया उप-समीपे गातुम् । (१०) इन्द्रेण । (११) देवलोकगायनाः । (१२) निजस्य विजये शङ्का-मा मामसौ स्वर्गे समेत्य जयतादिति शङ्कायुक्तं मनो यस्य ॥७८॥

यत्र गान्धर्वा वीणां वहन्तः सन्तो नवीनपञ्चमरागगर्भितां गीतिं गायन्ति । उत्प्रेक्ष्यते-भयद्रुतेनेन्द्रेण तं गायितुं प्रेषिता हाहाहूहूगन्धर्वाः ॥७९॥

यस्यां [1]महीमदनसंसदि [2]नर्त्तकेषु, नृत्यं [3]मनोनयनवृत्तिहरं [4]सृजत्सु ।
[5]सप्तस्वरैस्[6]तदुदिताप्रमितप्रसत्ति-सप्ताङ्गलक्ष्मिमुदितध्वनितैरिवाऽऽसे ॥७९॥

(१) अतिशायिरूपत्वाद्भूमीमनोभवोऽकब्बरस्तस्य सभायाम् । "निषधवसुधामीनाङ्कस्ये"ति निषधे । (२) नृत्यकारकेषु । (३) मनसां नयनानां च व्यापारं हरतीति मनोनयनहारि । (४) कुर्वत्सु । (५) षड्ज १- ऋषभ २- गान्धार ३- मध्यम ४- पञ्चम ५-धैवत ६-निषध ७- नामभिः स्वरैर्जज्ञे (६) तस्मादकब्बरात्प्रकटीभूता प्रमाणरहिता असाधारणा प्रसन्नता यस्यास्तादृश्याः स्वामि-१-अमात्य २-मित्र ३-कोश ४-देश ५-दुर्ग ६-सैन्य ७-लक्षणानि सप्तसङ्ख्यानाङ्गान्यवयवा यस्यास्तादृश्या लक्ष्म्या-राज्यश्रियः हर्षितशब्दितैरिव । समासमध्ये लक्ष्मीशब्दो ह्रस्वोऽपि दृश्यते - "चरणलक्ष्मिकरग्रहणोत्सवे" इति ऋषभनप्रस्तवे ॥७९॥

मनोनेत्रव्यापारहरं नृत्यं कुर्वत्सु नर्त्तकेषु सप्तभिः-षड्जऋषभादिभिः स्वरैरासे-प्रकटीभूतम् । उत्प्रेक्ष्यते-तस्माद्राज्ञ उदिताऽगणिता प्रसत्तिर्यस्यास्तादृश्याः सप्ताङ्गलक्ष्म्याः प्रमोदशब्दैः प्रकटीभूतम् ॥८०॥

[1]कुत्राऽपि [2]मौरजिकमण्डलवाद्यमान-माद्यन्मृदङ्गनिनदान[3]नुकर्त्तुकामः ।
[4]जैनं [5]पदं [6]परिचरन्[7]विगतावलम्बः, [8]श्रेयो[9]ऽनुतिष्ठति [10]घनः किमु [11]कामवर्षी ॥८०॥

(१) क्वचन प्रदेशे । (२) मृदङ्गवादकानां व्रजेन पाणिभिस्ताड्यमानानां भोजनदानेन मदवतां गम्भीरध्वनिभाजां मर्द्दलानां शब्दान् । (३) सदृशीभवितुमिच्छुः । (४) जैनं-जिनेन्द्र-सम्बन्धि विष्णुसम्बन्धि वा । (५) चरणम् । (६) सेवमानः । (७) गत आश्रयः - स्वजनादिवर्गो यस्य । एकाकीत्यर्थ : । (८) पुण्यम् । (९) कुरुते । (१०) मेघः । (११) काममतिशयेनाऽभिलाषं वा वर्षति-ददातीति ॥८०॥

क्वापि मृदङ्गवादकौघैर्वाद्यमानाद्भुतमर्द्दलशब्दान् सदृशीभवितुं कामोऽभिलाषो यस्य तादृग् घनोऽर्हच्चरणं-गगनं सेवमान एकाकी सन् इही(ईहि)तपूरकः सुकृतं करोति ॥८१॥

[1]स्वर्गे न [2]किञ्चिदपि दानम[3]वाप्नुवद्भिः, [4]प्राप्तै[5]स्तदा[6]शुमवनीं [7]धनदा[8]द्धरेन्द्रात् ।
देवैर्न [9]तुम्बुरुमुखैः [10]क्वचन [11]प्रवीणै-र्वीणा [12]अवादिषत [13]कर्णसुधां [14]किरन्त्यः ॥८१॥

(१) देवलोके । (२) स्तोकमपि । (३) लभमानैः । (४) आगतैः । (५) दानम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) प्राप्तुम् । (७) भूमीधनदतः । (८) नृपात् । (९) देवगायनैः । (१०) क्वापि स्थाने । (११) चतुरैः । (१२) वादिताः । (१३) श्रवणयोरमृतम् । (१४) वर्षन्त्यः ॥८१॥

चतुरैः क्वापि वीणा वादिताः । उत्प्रेक्ष्यते-**अकब्बरा**द्दानमाप्तुमागतैर्गन्धर्वैः । नेत्युत्प्रेक्षार्थे ॥८२॥

एषैव पूस्त्रिजगतीजयिनी निवस्तु-मौचित्यमावहति भो ! हरितां महेन्द्राः ! ।
कुत्राऽपि वैणुरिति वैणविकैः प्रणुन्नो, वस्तुं किमाह्वयति तानिह सान्द्रनादैः ॥८२॥

(१) <u>फतेपुर</u>लक्षणा । (२) पुरी । (३) त्रिभुवननगरीजयनशीला । (४) वासं कर्त्तुम् । (५) योग्यताम् । (६) भो ! - इति सम्बोधने । (७) दिक्पालाः । (८) क्वचन प्रदेशे । (९) वाद्यवंशः । (१०) वंशवादकैर्जनैर्वादितः । (११) आकारयति । (१२) दिगीशान् । (१३) <u>फतेपुरे</u> । (१४) स्नेहलस्वरैः ॥८२॥

एषै० । 'भो दिक्पालाः ! त्रिलोकसारा एषैव पुरी निवस्तुमुचिता' इति वंशवादकैर्वादितवंशशब्द आकारयतीव ॥८३॥

कुत्राऽपि केलिविहगा मगधा इवोर्वी-भानोर्मुदा जय-जयेदमुदीरयन्ति ।
शास्त्राम्बुधेरिव सुधालहरीर्हृदन्तः-स्थास्नोः कथाश्च कथकाः कथयांबभूवुः ॥८३॥

(१) क्वचन प्रदेशे । (२) क्रीडापक्षिणः । (३) मङ्गलपाठकाः । (४) <u>अकब्बरस्य</u> । (५) कथयन्ति । (६) शास्त्रसमुद्रस्य । (७) अमृतलहर्यः(रीः) । समुद्रे सुधासद्भावस्तत्रोत्प्रेक्षा । (८) हृदयमध्ये निवसनशीलस्य । (९) व्याख्यानकारिणः पुरुषाः । (१०) कथयन्ति स्म । राज्ञः पुर इति वाच्यम् ॥८३॥

क्वापि क्रीडापक्षिणो जयजयारवं कुर्वन्ति । पुनश्चित्तस्थस्य शास्त्रार्णवस्य सुधानिभाः कथाः कथकाः कथयन्ति स्म ॥८४॥

यस्यामवीज्यत विभुश्चमरैः सुरेन्द्रः, स्वर्वर्णिनीभिरिव वारविलासिनीभिः ।
रेजे पुनर्नृपतिमूर्ध्नि सितातपत्रं, राजत्वनिर्जित इवोपचरन्मृगाङ्कः ॥८४॥

(१) सभायाम् । (२) वीजितः । (३) साहिः । (४) बालव्यजनैः । (५) शक्र इव । (६) उर्वशीप्रमुखाप्सरोभिः । (७) वारवधूभिः । (८) <u>अकब्बर</u>मस्तके । (९) श्वेतच्छत्रम् । (१०) राजभावेन पराजितः सन् । (११) सेवां कुर्वाणः । (१२) चन्द्र इव ॥८४॥

यस्यां सभायां वारवधूभिश्चामरैर्वीज्यते [स्म] । छत्रं रेजे । उत्प्रेक्ष्यते-राजत्वेन जितश्चन्द्रः सेवमान इव ॥८५॥

→ शृङ्गारिताः क्वचन मत्तमतङ्गजेन्द्राः, विन्ध्याञ्जनावनिभृतोरिव तुङ्गशृङ्गाः ।
वाजिव्रजाः क्वचन सन्ति परैरसह्य-तेजोजितैः कजकरैरुपदीकृताः किम् ॥८६॥

क्वापि वाजिनः सन्ति । उत्प्रेक्ष्यते-असह्यतेजोजितैः शत्रुभिः सूर्यैढौकिताः ॥८६॥

→←एतदन्तर्गतः पाठो (८६तमश्लोकतः ९१तमश्लोकपर्यन्तः) हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शौर्याज्जिगीषुमवलोक्य निजं मृगेन्द्रै, रेजेऽनुनेतुमिव यं प्रहितैर्मृगैः स्वैः ।
स्कन्धेन येन विजितैर्वनजैस्तुरङ्ग-द्वेष्यैर्निषेवितुमिवोपगतैश्च यस्याम् ॥८७॥

मृगै रेजे । उत्प्रेक्ष्यते-शूरत्वेन जयनोद्यतं यमवलोक्य प्रसन्नीकर्त्तुं प्रेषितैः क्वापि तुरङ्गद्वेष्यैर्महिषै रेजे । उत्प्रेक्ष्यते- येनाऽकब्बरेणांऽसेन जितैर्वन्यैः कासारैर्निषेवितुमागतैरिव ॥८७॥

द्वीपाधिपत्वमिह नो वनवासभाजो, यद्द्वीपिनो मम निरर्थकमेव नाम ।
तत्तत्प्रभो ! प्रदिश कल्पितकल्पशाखि-न्द्वीपिव्रजो भजति वक्तुमितीव भूपम् ॥८८॥

द्वीपाधिपत्वमपि नास्ति तर्हि मम द्वीपीति नाम निरर्थकम् । तत्सार्थकं कुरु इति वक्तुं भूपं व्याघ्रव्रजः सेवते ॥८८॥

प्राचीपतिं विबुधराजबलारिघाति-जिष्णुं सहस्रनयनं शतकोटिपाणिम् ।
दृष्ट्वा भ्रमादिव हरेः स्वपतेरुपेताः, स्वःसुभ्रुवो व्यभुरिहाऽमितवारवध्वः ॥८९॥

पूर्वदिक्स्वामिनं पण्डितप्रियं पुनर्बलयुक्तरिपुघातिनं जयनशीलं वज्रकरं दृष्ट्वा इन्द्रभ्रमाद्देवाङ्गनाः समेताः ॥८९॥

ऊर्ध्वंदमा क्वचन मौलिविलासिहस्ता, श्रीकण्ठमित्रमिव शीलति राजराजिः ।
शैला इवैतदभिभूतमहीपतीनां, मुक्तामणीवसुगणाद्युपदाः स्फुरन्ति ॥९०॥

ऊर्ध्वीभूताः मस्तककराः राज्ञां-भूपानां यक्षाणां च श्रेणिर्यं वैश्रवणमिव सेवते । पुनर्गिरय इव प्राभृतानि दृश्यन्ते ॥९०॥

शीलन्ति यं क्वचन संसदि लोकपालाः, शच्या इव प्रियतमं च चतुर्दिगीशाः ।
साङ्गा इव क्वचन वीररसाश्च वीराः, सेनान्यमेव चतुरङ्गचमूरनूना ॥९१॥

यथेन्द्रं सेवन्ते तथा भूपा यं सेवन्ते । वीराः शस्त्रपूर्णा यं सेवन्ते यथा चतुरङ्गसेनाः सेनान्यं सेवन्ते ॥९१॥←

[3]आकाशवत्[1]कंविबुधश्रियमा[2]दधाना, [4]नीरेशितार इव [5]जिष्णुरमाभिरामाः ।
[6]श्रीदा इव [7]प्रदधतोऽत्र [8]वदान्यभावं, [9]सभ्या विभान्ति धि[10]षणा इव [11]वागधीशाः ॥८५॥

(१) काव्यकर्त्तॄणां पण्डितानां च शोभाम् । (२) बिभ्राणाः । (३) आकाशोऽपि शुक्रस्य रोहिणीनन्दनस्य च लक्ष्मीं धारयन् । (४) सागरा इव । (५) जयनशीलत्वेन सुभटतया लक्ष्म्या मनोज्ञाः । "जिते च लभ्यते लक्ष्मी" रिति वचनात् । शत्रुजैत्राणां स्वामिनो ग्रामादि ददते । समुद्रास्तु कृष्णलक्ष्मीभ्यां मनोज्ञाः । तयोः सागरे स्थायुकत्वात् । (६) धनदा इव । (७) धारयन्तः । (८) दानशीलत्वम् । (९) सभायां साधवः । (१०) बृहस्पतय इव । (११) वाग्मिनः । प्रगल्भवाग्विलासाः ॥८५॥

अर्णवा इव कृष्णतत्पत्नीभ्यां वा जैत्रशोभया रम्याः धनदबृहस्पतितुल्याः सभ्या विभान्ति ॥९२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वःस्त्रैणजैत्रमणिकल्पितशिल्पचञ्चु-त्पाञ्चालिकापहृतलोचनचित्तवृत्तिः ।
पूर्वापराम्बुनिधिसीममहीमघोनो, या संसदाप सुषमां बलभित्सभेव ॥८६॥

दशभिः कुलकम् । इत्यकब्बर[1]सभा ।

(१) स्वर्गवनिताव्रजजयनशीलाभिः रत्नैर्निर्मितं विज्ञानं यासां तथा शोभमानाभिः पुत्रिकाभिः स्वायत्तीकृता । अर्थाद्विलोकलोकानां नयनानां चित्तानां व्यापारा यत्र सा । (२) प्राचीप्रतीचीसमुद्रौ मर्यादा यस्यास्तादृश्या भूमेः शक्रस्य । (३) सभा । (४) सतिशायिनीं शोभाम् । (५) प्राप । (६) इन्द्रसभेव । सुधर्म्मा ॥८६॥

देवाङ्गनाजैत्राभिः रत्नरचितविज्ञानदीप्यमानाभिः पुत्रिकाभिरपहृता लोचनचित्रवृत्तिर्यया तादृशी आसमुद्रान्तपृथ्वीन्द्रसभा सातिशायिनीं शोभामाप । यथा सुधर्मा नाम्नी सभाऽभात् ॥९३॥

गोष्ठीं सृजन्क्षितिसितांशुरशेषशास्त्रा-धीतीव तत्सदसि कोविदमेदुरायाम् ।
धर्मं विशिष्य परिचेतुमना इति स्म, सामाजिकाननुयुनक्ति कदाचिदेषः ॥८७॥

(१) विनोदवार्त्ताम् । (२) कुर्वाणः । (३) समस्तेषु शास्त्रेषु अधीतमध्ययनमस्याऽस्तीति सर्वशास्त्राध्येतेव । (४) तस्यां पूर्वव्याख्यातायां सभायाम् । (५) पण्डितमण्डलीमण्डितायाम् । (६) विशेषपरिचयं कर्त्तुकामः । (७) सभ्यान् । (८) पृच्छति स्म । (९) कस्मिंश्चित्प्रस्तावे । (१०) साहिः ॥८७॥

समग्रशास्त्रज्ञ इव गोष्ठीं कुर्वन् एषः -क्षितीन्द्रः कदाचित्समये विशेषेण धर्मं परिचितिगोचरीकर्तुमनाः सभ्यान् प्रश्नयति स्म ॥९४॥

भास्वानिव प्रकटयत्यनवद्यमार्गं, प्राणान्निजानिव पिपर्त्ति समग्रसत्वान् ।
धत्ते स्पृहामिह न सिद्ध इव क्वचिद्यो-ऽनुक्रोशशालिपदवीमिव योजनौघः ॥८८॥

विश्वासुमत्सु समदृक्परमेशितेव, सङ्गं कुसङ्गमिव शान्तमना जहाति ।
यः पोतवत्तरति तारयते परांश्च, संसृत्युदन्वति स कश्चिदिहाऽस्ति साधुः ॥८९॥

युग्मम् ॥

(१) सूर्य इव । (२) निष्पापं पन्थानम् । (३) असून् । (४) पालयति । (५) समस्तान् जङ्गमस्थावरान् प्राणिनः । (६) वाञ्छाम् । (७) मुक्तात्मेव । (८) कुत्राऽपि वस्तुनि । (९) दयया शोभनशीलमार्गं धत्ते । तथा अनुगतैः- परस्परसम्बद्धैः क्रोशैर्गव्यूतैः शोभते इत्येवंशीलं मार्गम् । (१०) चतुःक्रोशात्मकानि योजनानि तेषां गणः ॥८८॥

(१) सर्वप्राणिषु जगज्जन्तुषु वा । (२) समा-स्वपरव्यवसायविमुक्ता दृष्टिर्यस्य । (३) परमेश्वर इव । (४) प्रमदाप्रमुखसंयोगं सम्बन्धं वा । (५) कुत्सितसङ्गमं पाप्मभिर्वा सम्बन्धम् । (६) यानपात्र इव । (७) संसारसमुद्रे । (८) इह-मदाज्ञावर्त्तिनि महीमण्डले । (९) स-सर्वदर्शनेषु भूमौ वा प्रसिद्धः । (१०) महात्मा ॥८९॥

1. ०सभावर्णनम् । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भास्वा० । यः सूर्य इव निष्पापमार्गं प्रकटयति । पुनर्यः स्वप्राणानिव जन्तून्पालयति । यो मुक्तात्मेव वाञ्छां न धत्ते । यथा योजनं अनुगतक्रोशैः कृतां पद्धतिं धत्ते तथा यः करुणाशीलमाचारं धत्ते । पुनः समग्रहितचिन्तकः । पुनर्यः संसृतिसमुद्रे तरति । स एतादृशः साधुरस्ति ॥९५-९६॥

वाचं सुधामिव [१]निपीय [२]ततः समुद्र-नेमीतमीवरयितुः [३]श्रवणाञ्जलिभ्याम् ।
[४]सामाजिकैः [५]स जगदे [६]द्विजचन्द्रिकाभिः, [७]संवर्द्धितस्फुरदुरःस्थलतारहारैः ॥९०॥

(१) पीत्वा । (२) अकब्बरसाहेः । (३) कर्णाञ्जलिभ्याम् । (४) सभ्यैः । (५) साहिः । (६) दन्तकान्तिभिः । चन्द्रिकाशब्देन कान्तिर्यथा रघुकाव्ये-"दशनचन्द्रिकया व्यवभासित"-मिति । (७) वृद्धिं नीतो दीप्यमानो हृदयस्थितोज्ज्वलमुक्ताकलापो यैः ॥९०॥

आसमुद्रान्तपृथ्वीशस्य वाचं श्रुत्वा सभ्यैः स भाषितः । किंभूतैः सभ्यैः ?। द्विजानां-दन्तानां कान्तिभिः संवर्द्धितो -वृद्धिं नीतो वक्षःस्थलस्थस्तारहारो यैस्तादृशैः ॥९७॥

अस्माभिरी[१]शितरदृश्यत दर्शनेषु[४], सर्वेषु [२]शेखर इवा[३]ऽखिलधार्मिकाणाम् ।
[५]एकः [६]स हीरविजयाभिधसूरिराजः, [७]क्ष्मापालपङ्क्तिषु [८]भवानिव भूमिपीठे ॥९१॥

(१) स्वामिन् ! । (२) अवतंसः । (३) समस्तधर्मवताम् । (४) षड्दर्शनेषु । (५) अद्वितीयः । (६) जगद्विख्यातः । (७) राजराजीषु । (८) त्वमिव ॥९१॥

यदुक्तं तत्कविरूचे-हे ईशितः ! अखिलदर्शनेषु धार्मिकमुकुट इव अस्माभिः **श्रीहीरविजयसूरिर्दृष्टः** । यथा भूमिपीठे समस्तभूपालेषु भवान्-श्रीमान् साहीनामपि साहिर्दृश्यते ॥९८॥

[1]अ[१]ध्याप्य [२]देवगुरुणा [३]स्वविनेयवर्गैः, [४][2]प्रख्यातये प्रति भुवं [५]प्रहितैरिवैतैः ।
सभ्यैर्गुणान्क[६]वयितुं कतिचित्त[७]दीया-न्प्रारभ्यते स्म [८]वसुधाधिपतेः पुरस्तात् ॥*९२॥

(१) पाठयित्वा । (२) बृहस्पतिना (३) निजशिष्यवृन्दैः । (४) प्रसिद्धये । (५) प्रेषितैः । (६) स्तोतुम् । "इट्टे कवयति कवते" इति क्रियाकलापे । (७) हीरविजयसूरिसम्बन्धिनः । (८) अकब्बरसाहेरग्रे ॥९२॥

बृहस्पतिना पाठयित्वा भुवं प्रति प्रेषितैरिव सभ्यैस्तदीयान्गुणान्कवयितुं-वर्णयितुं प्रारभ्यते स्म ॥९९॥

श्रीहीरविजयसूरिगुणवर्णनम्-

[१]एतस्य दृष्टि[२]रजनिष्ट विभो ! [३]सदृक्षा, [४]भिक्षाचरेऽ[५]मृतभुजामपि सार्वभौमे ।
[६]भक्तेऽप्य[७]भक्तिकृति [८]वार्षिकवारिदस्य, वृष्टिर्यथे[९]क्षुविपिने [१०]कनकद्रुमे वा ॥९३॥

(१) हीरविजयसूरेः । (२) जाता । (३) तुल्या । (४) भिक्षुके । (५) सुरचक्रिणि-

---

1. अथ हीरविजयसूरिगुणवर्णनप्रारम्भः । 2. ०स्वख्या० हीमु० ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

शक्रे । (६) सेवासक्ते । (७) अवज्ञाकारिणि । (८) वर्षाकालसम्बन्धिमेघस्य । (९) इक्षुक्षेत्रे । (१०) धत्तूरतरौ ॥९३॥

एतस्य० । हे स्वामिन् ! एतदीया दृष्टिः रङ्के देवेन्द्रे च सदृशा । पुनः स्वसेवासक्तेऽवज्ञाकारिणि च पुंसि सदृशा । यथा प्रावृड्मेघस्य इक्षुवने धत्तूरके च वृष्टिः सदृशैव सञ्जायते ॥१००॥

सन्ध्याभ्रविभ्रममिवाऽध्रुवभावभाज-मुद्भावयन्भवमभङ्गुरतां च सिद्धेः ।
आवेदयत्यसुमतः कुलयातयामो, वंश्यानिवाऽऽयतिहितः स हिताहितार्थान्[1] ॥९४*॥

(१) सन्ध्यारागविलासम् । (२) अशास्व(श्व)तपरिणामजुषम् । (३) प्रकटीकुर्वन् । (४) संसारम् । (५) शास्व(श्व)तत्वम् । (६) मुक्तेः । (७) कथयति । (८) प्राणिनः । (९) गोत्रवृद्धः । (१०) गोत्रजातान् । (११) आयतौ-उत्तरकाले परलोकादिषु शुभचिन्तकः । वृद्धोऽप्यग्रेहितान्वेषी । (१२) इष्टानिष्टपदार्थान् ॥९४॥

सन्ध्यारागमिवाऽस्थिरभावं संसारं प्रकटयन्, पुनर्मोक्षस्याऽनश्वरत्वं प्रकटयन् स साधुर्जन्तून् हिताहितं कथयति । यथा गोत्रवृद्धो निजान्प्रति शुभाशुभान्भावान्कथयति ॥१०१॥

यस्मिन्गतावधि वसन्ति परे निमग्ना, मीनव्रजा इव जना वृजिनावगूढाः ।
तस्माद्भवाम्बुनिधितः स पृथग्बभूव, पङ्कान्तराद् घनरसादिव पुण्डरीकम् ॥९५॥

(१) संसारसमुद्रे । (२) अनन्तं कालम् । (३) अन्ये जन्तवः । (४) ब्रूडिताः । (५) मच्छय(त्स्य)गणाः । (६) दुष्कृताश्लिष्टाः-पापभरिताः । (७) कर्दमो मध्ये यस्य । (८) जलात् ॥९५॥

यस्मिन्संसारे पापव्याप्ता जनास्तिष्ठन्ति तस्मात्संसारात्स भिन्नो जातः । यथा पङ्कान्तराज्जलात् पुण्डरीकं भिन्नं भवति ॥१०२॥

सन्त्रस्यदेणरमणीदृगपाङ्गरङ्गो-त्सङ्गप्रन(व)र्त्तितकटाक्षपरम्पराभिः[2] ।
चेतस्यविश्यत मुमुक्षुमणेर्न तस्या-ऽलोकस्य मध्य इव चण्डरुचीरुचीभिः ॥९६*॥

(१) भयात्प्रणश्यन्तीनां मृगाङ्गनानां दृगिव दृग् यासां तासां चञ्चललोचनानां नेत्रप्रान्त एव नर्त्तनस्थानं, तस्य क्रोडे ताण्डविताभिः प्रवर्त्तिताभिः (प्रवर्त्तिताभिः-ताण्डविताभिः) कटाक्षश्रेणीभिः । (२) चित्ते । (३) प्रविष्टम् । (४) साधुरत्नस्य । (५) सूरेः । (६) जीवाजीवानाधारक्षेत्रस्य (७) विचाले । (८) सूर्यकान्तिभिः । रुचीशब्दो दीर्घईकारान्तोऽप्यस्ति । यथा नैषधे- "वरुणगृहिणीमाशामासादयन्तममुं रुचीनिचय" इति ॥९६॥

त्रस्तकुरङ्गीदृशां नेत्रप्रान्तयोरेव रङ्गयोर्नर्त्तनस्थानकयोः क्रोडे नर्त्तितकटाक्षश्रेणिभिः सूरिहृदये न प्रविष्टं यथा अलोकमध्ये रविकरैर्न प्रविश्यते ॥१०३॥

---

1. ०तार्थम् हीमु० । 2. ०प्रणर्त्ति० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]संसृत्यसारसरणिभ्रमणीभवेन, [2]विश्वत्रयीजनिमतां नयता [3]विमोहम् ।
सङ्गेन यद्[4]यतिपतेः पुरतः [5]प्रणेशे, [6]नागेन [7]नागदमनीत इवो[8]द्धतेन ॥९७॥

(१) संसाररूपा असारा निकृष्टा विविधदुःखदायित्वात्सरणिर्मार्गस्तत्र पर्यटनादुत्पन्नेन । (२) त्रिभुवनप्राणिनाम् । (३) मौढ्यं-जडताम् । (४) सूरेः । (५) नष्टम् । (६) भुजङ्गेन । (७) औषधिविशेषात् । (८) उत्कटेन ॥९७॥

संसाररूपासारमार्गभ्रमणोत्थेन, पुनर्जन्तून्मोहयता सङ्गेन यतिपुरः प्रणष्टम् । यथाऽहिना नागदमनीतो नश्यते ॥१०४॥

[1]सङ्क्रान्तशक्रबलिधामधरापदार्थ-सार्थे [2]जिनागमकषोल्लिखितान्तराले ।
[3]सङ्क्रान्ति[4]रापि न क[5]दाऽपि [6]हृदात्मदर्शे, सूरीश्वरस्य किम[7]नङ्गतया[8]ऽङ्गजेन ॥९८॥

(१) प्रतिबिम्बितस्वर्गपातालपृथ्वीपीठोपगतवस्तुजाते । (२) जैनसिद्धान्तरूप-शाणाग्रोत्तेजितमध्ये । (३) प्रतिबिम्बम् । (४) लेभे । (५) कस्मिन्नपि काले समये वा । (६) हृदयदर्पणे । (७) अशरीरत्वेनेव । सङ्क्रमणं तु देहस्यैव । स एव तस्य नास्ति तस्मात्कुतः प्रतिबिम्बम् । (८) कामेन ॥९८॥

सङ्क्रा० । आगमकषेणोत्तेजितेन पुनः सङ्क्रान्तत्रिजगति तच्चित्तदर्पणे स्मरेण न प्रविष्टम् । उत्प्रेक्ष्यते-अशरीरत्वेनेव ॥१०५॥

[1]नीत्वा ब[2]हिर्निजमनःसदना[3]न्निहन्य-मानं [4]विभाव्य विभुना स्व[5]मरातिभावात् ।
नश्यन्निवा[6]ऽन्यजनहृत्परमाणुमध्ये, रागो विवेश [7]विवशाशय[8]मादधानः ॥९९॥

(१) बहिः कर्षयित्वा । (२) स्वहृदयगेहात् । (३) मार्यमाणम् । (४) दृष्ट्वा । (५) वैरित्वात् । (६) अपरलोकमनःपरमाणुमध्ये । नैयाय(यि)कमते मनसः परमाणुत्वम् । यथा नैषधे- "बालया निजमनःपरमाणौ" इति । (७) व्याकुलमनः । (८) दधत् ॥९९॥

निजचित्तान्निष्कास्य हन्यमानमात्मानं दृष्ट्वा रागो नश्यन् विह्वलाशयः सन् अन्यजनचित्ते प्रविष्टः ॥१०६॥

[1]एतेन दुर्गतिरशोष्यत [2]भूपमुख्य !, [3]ग्रीष्मोष्मणेव [4]विगलज्जलपङ्कपङ्क्तिः ।
[5]उल्लङ्घ्यते स्म [6]भवपद्धतिरप्यनेन, [7]पाथोजिनीप्रियतमेन यथा[8]ऽभ्रवीथी ॥१००॥

(१) सूरिणा । (२) नृपश्रेष्ठ !। (४) निदाघतापेन । (४) जलरहितजम्बालावली । (५) अतिक्रान्ता । (६) संसारमार्गः । (७) रविणा । (८) मेघमाला ॥१००॥

हे नृपमुख्य ! सूरिणा दुर्गतिर्निषिद्धा । अनेन संसारमार्ग उल्लङ्घितः । यथा रविणाऽऽकाशमुल्लङ्घ्यते ॥१०७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]वाचंयमावनिभृतः [२]शमनामसाम-योनिप्रतीपकलिताङ्कमनोगुहायाम् ।
[३]स्वालम्भभीलुक इवो[४]त्कटकोपकुम्भी, कर्त्तुं प्रवेशमपि [1]न प्र[५]भविष्णुरासीत् ॥१०१॥*

(१) साधूनां राज्ञः । शैलार्थोऽपि । (२) शान्तरसाभिधानगजरिपुणा पञ्चाननेन युक्तायां हृदयकन्दरायाम् । (३) स्वव्यापादनव्याकुलः । (४) उद्धतक्रोधसिन्धुरः । (५) समर्थः ॥१०१॥

सूरिरुपगिरेः शमगजरिपुयुक्तक्रोडायां-मनोगुहायां स्वमरणशङ्कित इव क्रोधगजो न प्रविष्टः ॥१०८॥

[१]विश्राणयत्यसुमतां [२]क्षितिकान्त ! बोधि-बीजं निधिं [३]जनयितेव [४]निजाङ्गजानाम् ।
[५]सिद्धः [६]स्वसिद्धिमिव[७] भक्तिमतां [८]विनीता-न्तेवासिनामिव गुरुः [९]परमात्मविद्याम् ॥१०२॥

(१) ददाति । (२) राजन् !। (३) पितेव । (४) स्वपुत्राणाम् । (५) विद्यासिद्धिभृत् । (६) मन्त्रादिसामर्थ्यम् । (७) स्वसेवासक्तानाम् । (८) विनयकलितशिष्याणाम् । (९) अध्यात्माम्नायम् ॥१०२॥

यथा वप्ता पुत्राणां निधिं दत्ते, यथा सिद्धो भक्तिव(म)तां सिद्धिं दत्ते, यथा गुरुर्विनीतशिष्यानां(णां) स्वविद्यां दत्ते, तद्वत् हे क्षितिकान्त ! यः प्राणिनां बोधिबीजं प्रददाति ॥१०९॥

[१]मानोऽप[२]मानममुना [३]गमितः क्षितीन्दो !, जेतुं पुनः [४]प्रतिघ[2]तस्त[५]म[६]रातिमिच्छन् ।
[3]सा[७]हायकं किमु चि[८]कारयिषुः स्वकीयं, [९]नक्तंदिनं [१०]वितनुते [११]जगता[१२]मुपास्तिम् ॥१०३॥

(१) अहङ्कारः । (२) अवगणनाम् । (३) नीतः । (४) कोपात् । (५) मानम् । (६) वैरिणम् । (७) साहाय्यम् । (८) कारयितुमिच्छुः । (९) अहोरात्रम् । (१०) करोति । (११) जगज्जनानाम् । (१२) सेवाम् ॥१०३॥

सूरिणाऽपमानितो मानः कोपतस्तं जेतुमिच्छन् अहोरात्रं त्रिजगतां सेवां कुरुते । उत्प्रेक्ष्यते-आत्मीयं साहाय्यं कारयितुमिच्छुरिव ॥११०॥

विद्वेषिणीयमिति[१] [२]येन [३]निहन्यमाना, शिश्राय [४]शम्बरमसौ [५]दितिजं प्रणश्य ।
स्थातुं न तत्र [६]विभुरे[७]तदुदीतभीतेः, [८]प्रत्यङ्गि[९]नं त्रिभुवने भ्रमतीव माया ॥१०४॥

(१) इयं वैरिणी । (२) इति कृत्वा । (३) मार्यमाणा । (४) शम्बरनामानम् । (५) दैत्यम्-स्मरघातिनम् । (६) समर्थः । (७) सूरीश्वरादुद्भूतभयात् । (८) प्रतिजनम् । (९) त्रैलोक्ये ॥१०४॥

विद्वे० । इयं प्रतिभवं वैरिणीति मार्यामाणा माया शम्बरदैत्यं श्रिता । तत्राऽपि तद्भयादस्थाष्णुः-(स्नुः) प्रतिप्राणिनं भ्रमति श्रितवतीव ॥१११॥

[१]सन्तोषतोयनिधिमध्य इवा[२]ऽस्य [३]मग्नो, [४]दग्धः किमु[५]द्धतसितप्रणिधानवह्नौ ।
[६]जग्धोऽथवा [७]चरणकेसरिणा करीव, लोभः प्रभोरिति न चेत्किम[८]नक्षिलक्ष्यः ॥१०५॥

1. नो हीमु० । 2. ०तिहत० हीमु० । स चाशुद्धः । 3. साहाय्यकं हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सन्तोषसमुद्रगर्भे । (२) सूरेः । (३) ब्रूडिताः(तः) । (४) ज्वलितः । (५) प्रज्वलत्शुक्लध्यानाग्नौ । (६) भक्षितः । (७) संयमसिंहेन । (८) किम्-कथम् । (९) न नयनगोचरः ॥१०५॥

श्रीसूरेर्लोभोऽदृश्यो जातः । उत्प्रेक्ष्यते - निर्लोभतार्णवे मग्नो वा ध्यानाग्नौ दग्धो वा चारित्रसिंहेन हस्तिवद्भक्षितः ॥११२॥

[1]तृष्णां [2]महीतलमहेन्द्र ! विभु[3]र्विरत्या, यो [4]वागुरामिव [5]कृपाणिकया [6]न्यकृन्तत् ।
दुःखान्य[7]लम्भिषत [8]मुग्धजनैर्निपत्य, यस्यां मृगैरिव [9]भवं [10]विपिनं भ्रमद्भिः ॥१०६॥

(१) नानाभिलाषस्वरूपाम् । (२) भूमीशक्र ! । (३) निखिलाभिलाषविरमणेन । (४) मृगजालिकाम् । (५) कर्त्तरिकया क्षुरिकया वा । (६) चिच्छेद । (७) प्राप्तानि । (८) अनभिज्ञलोकैः । (९) संसारम् । (१०) वनम् ॥१०६॥

हे महीन्द्र ! क्षुरिकासदृशया विरत्या तृष्णावागुरां यो न्यकृन्तत्-चिच्छेद । भववनभ्रमद्भि-मूर्खजनमृगैर्यस्यां तृष्णायां पतित्वा दुःखानि प्राप्तानि ॥११३॥

[1]विश्वत्रयीश इव [2]निःशरणात्मभाजा-मास्ते महीमिहिर ! यः [3]शरणं [4]शरण्यः ।
[5]मैत्र्यं बिभर्त्ति जगता न कदा[1]ऽप्य[6]मैत्र्यं, भावं स भानुरिव [7]नश्यदशेषदोषः ॥१०७*॥

(१) त्रैलोक्यनायकः-परमेश्वरः । (२) निर्गतं शरणं यस्य तादृशमात्मानं भजन्तीति । (३) गतिः । (४) शरणागतवत्सलः । (५) मित्रताम् । (६) वैरभावम् । (७) पलायमानाः समस्ता अपगुणाः, श्वेताः कृष्णाश्च रात्रयो यस्मात् ॥१०७॥

हे महीरवे ! यो निःशरणानां शरणमास्ते स भानुरिव त्यक्तदोषः ॥११४॥

[1]सम्मोहसन्तमससन्ततिसान्द्रितेषु, [2]मानावनीधरतटीस्थपुटीकृतेषु ।
[3]संसारवर्त्मसु [4]विमोहवतां [6]शिवस्या[5]-ऽऽख्याता [6]पथः स [8]जगतामिव [7]वर्त्मवेदी ॥१०८॥

(१) महामोहान्धकारश्रेणीनीरन्ध्रितेषु । (२) गर्वगिरितटीभिर्विषमीकृतेषु । (३) भवमार्गेषु । (४) मिथ्यात्वादिना मूढभावभाजाम् । (५) कथयिता । (६) मुक्तेर्निरुपद्रवस्य वा मार्गस्य । (७) मार्गज्ञाता । (८) जगज्जनानाम् । तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेशः ॥१०८॥

अज्ञानध्वान्तपूरितेषु पुनरहंकारपर्वतमेखलाविषमेषु संसारमार्गेषु अज्ञानवतां जन्तूनां मोक्षमार्गस्य यः कथयिता । यश्च मार्गज्ञाता मार्गं व्यनक्ति ॥११५॥

[1]अर्थात्[2]क्षमाधरपदं क्वचिदप्रवृत्तं, [3]यस्याऽऽ[4]त्मनस्तु [5]गिरिभूपतिभि[6]र्विभक्तम् ।
दृष्ट्वा [7]तदा[8]मुमिव [9]शीलति [10]शाङ्गर्पाणिं, [11]पर्यङ्कमूर्त्तिधरकुण्डलिचक्रवर्त्ती ॥१०९॥

(१) परमार्थतः । (२) अद्वैतक्षान्तिधरतयाऽन्यत्राऽप्राप्तम् ॥ (३) सूरेः । (४) स्वस्य

---

1. ०दाप्यमित्रभावं० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तु पृथ्वीधरत्वम् । (५) शैलैर्नृपैश्च । (६) भूधरतया विभागीकृतम् । (७) सूरिक्ष्माधरपदम् । (८) प्राप्तुम् । (९) सेवते । (१०) कृष्णम् । (११) पल्यङ्कशरीरधरः-शेषनागः । 'शेषशय्याशायी कृष्ण' इति ख्यातिः ॥१०९॥

परमार्थतः क्षमाधरत्वं केनाऽपि सूरिणा नाऽऽदत्तम् । पुनः शेषनागस्य क्षमाधरत्वं गिर्यादिभिर्गृहीतम् । तस्मात्सूरेः पदं प्राप्तुं शय्यारूपः शेषः कृष्णं सेवते । क्षमा-क्षान्तिर्धरा चेति ॥११६॥

[1]गम्भीरभावं दधता [2]जिनं च, हृदा [3]विगीतः प्रभुणा [4]पयोधिः ।
पादारविन्दे किमु[5]मुष्य [6]लक्ष्म-लक्षादु[7]पास्त्यै स्थितवानु[8]पेत्य ॥११०॥

(१) गाम्भीर्यम् । (२) जिनो-ऽर्हत्कृष्णयोः । (३) तिरस्कृतः । (४) समुद्रः । (५) सूरेः । (६) आकारमिषात् । (७) सेवायै । (८) आगत्य ॥११०॥

गम्भी० । गाम्भीर्यं जिनं-वीतरागं कृष्णं च दधता सूरिणा जितोऽर्णवो लाञ्छनच्छलात्सेवायै आगतः ॥११७॥

धरेश ! येना[1]धरितो [2]महिम्ना, [3]सुजातरूपेण च [4]धीरताभिः ।
महीधरो[5] मन्युभुजामु[6]दीत-व्रीडाज्ज[7]डीभावमिवाऽऽबभार ॥१११॥

(१) हीनीकृतः । (२) माहात्म्येन । (३) सुष्ठु-शोभनं यज्जातं-प्रकटीभूतं रूपं-सौन्दर्यातिशयः शोभनस्वर्णेन च । (४) परीषहादिभिर्निष्प्रकम्पतया धैर्येण वा । (५) देवानां शैलो मेरुः । (६) प्रकटीभूतलज्जायाः । "उदीतमातङ्कितवानशङ्कत" इति नैषधे । व्रीडशब्दो-ऽकारान्तोऽप्यस्ति । (७) जडताम्-निश्चेष्टताम् ॥१११॥

हे धरेश ! येन सूरिणा महिम्ना पुनः सुवर्णवर्णत्वेन धीरत्वेन च हीनीकृतो देवगिरिर्व्रीडातो जडो जातः ॥११८॥

[1]बाह्यं हन्ति [2]तमो द्विधाऽपि स नृणाम[3]स्तङ्ग[4]मी नास्तवान्
विश्वस्यैव[5] विबोधकृत्स [6]जगतां [7]कृत्स्न[8]म्पृणन्कौशिकम् ।
गृह्ण[9]न्सर्वरसानसौ [10]नवरसांश्च[11]न्वन्जनांस्तापयन्
[12]शान्तानेष सृजन्प्रभो ! तदुपमां धत्ते क्व भानुस्ततः ॥११२॥

(१) चक्षुर्गोचरम् । (२) सर्वमप्यज्ञानम् । (३) अस्तगमनशीलः । (४) सर्वदोदयनशीलः । (५) एकस्य जगत उद्योतकर्त्ता । (६) त्रैलोक्यप्रतिबोधविधाता । (७) घूकविहङ्गं पीडयन् । (८) शक्रं प्रमोदयन् । (९) भूमेः पानीयानि गृह्णन् । (१०) शृङ्गारादिशान्तान्तान् नवापि रसान् । (११) व्याख्यानावसरे पुष्टीकुर्वन् । (१२) शान्तरसयुक्तान् ॥११२॥

हे प्रभो ! सूर्यः सूरेरुपमां कथं धत्ते । यतः सूर्यः बाह्यं ध्वान्तं हन्ति, अयं तु अन्तरङ्गमपि हन्ति । स एकस्यैव भूलोकस्य जागरकारकः, अयं तु प्रतिबोधविधाता । स कौशिकमुलूकं कृत्स्नम्पीडयन्, अयं तु इन्द्रं प्रीणयन् । स सर्वपानीयानि गृह्णन्, असौ तु शृङ्गारादीन्पुष्टान्कुर्वन् । स जनान् तापयन्, अयं तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्तान् कुर्वन् ॥११९॥

[1]यद्वाग्विधित्सया धात्रा-[2]ऽऽदत्तां वीक्ष्यो[3]ऽम्बुधिः सुधाम् ।
[4]खेदादिवो[5]र्म्मितुमुलैः, पतितो[7] रटति [6]क्षितौ ॥११३॥

(१) यस्य वाण्याश्चिकीर्षया-कर्त्तुमिच्छया । (२) गृहीताम् । (३) क्षीरसमुद्रः । (४) विषादात् । (५) कल्लोलव्याकुलरवैः । (६) भूमौ । (७) पतितो रोदिति ॥११३॥

यस्य सूरेर्वाग्विधानेच्छया धात्रा सुधां गृहीतां वीक्ष्य समुद्रः कल्लोलकोलाहलैः कृत्वा पृथ्व्यां पतितः सन् रटति-रोदिति-पूत्कुरुत इव । उत्प्रेक्ष्यते-खेदादिव-दुःखादिव ॥१२०॥

न कदाचन [1]गोचरा [2]मनाक्, स्म भजन्ते [3]प्रभविष्णुतां प्रभौ ।
[5]दशना इव [4]दन्तिनां [6]मही-भृति वा [7]भानुमतीव [8]तामसाः ॥११४॥

(१) शब्दादिविषयाः । (२) किञ्चिदपि । (३) सामर्थ्यम् । (४) गजानाम् । (५) दन्ताः (६) गिरौ । (७) सूर्ये । (८) अन्धकारनिकराः कौशिका वा ॥११४॥

न क० । विषयास्तं न प्राभवन् । यथा गजदन्ता गिरौ न प्रभवन्ति । पुनर्यथा रवौ तमांसि न प्रभवन्ति ॥१२१॥

[1]सुधाधामदुग्धाब्धिकर्पूरपारी-कुमुत्कुन्दशुभ्रैर्यशोभिर्यतीन्दोः ।
[2]कुदृक्कोटिसंटीकमानायशोभिः, पुनर्विश्व[3]मीश ![4] प्रयागी(गा)यति(ते) स्म ॥११५॥

(१) चन्द्र-क्षीराब्धि-घनसार-शकल-कैरव-मुचकुन्दकुसुमावदातैः । पार्यः शब्देन शकलानि 'फडसि' इति प्रसिद्धाः । (२) कुमतिकोटीनां प्रस[र]दपकीर्त्तिभिः । (३) स्वामिन् !। (४) प्रयागवद्-गङ्गायमुनासङ्गमभूमिवदाचरति ॥११५॥

चन्द्र-क्षीरार्णव-कर्पूरखण्ड-कुमुद-मुचकुन्दधवलैः सूरियशोभिः पुनः कुमतानां प्रसरणाशैरपय-शोभिर्विश्वं गङ्गायमुनासङ्गवदाचरति स्म ॥१२२॥

राजन् ! यस्य गुणान्[1]गलन्मितिसुधास्पन्दा[2]न्निपीयाऽऽदरा-
न्म[3]द्भोज्या अपि [4]मय्य[5]नादरपरा [6]भोगीश्वरा भाविनः ।
मां [7]तात[8]!ऽनुगृहाण [9]तेन सुधये[10]त्य[11]भ्यर्थितः साग्रहं
[12]तान[13]श्रावयितुं किमम्बु[14]रुहभूरेतान्वि[15]कर्णान्व्यधात् ॥११६॥

(१) अप्रमाणामृतरसान् । (२) सादरं श्रुत्वा । (३) अहमेव भोजनं येषाम् । (४) मयि विषये । (५) अस्वीकारे परायणाः (६) नागेन्द्राः (७) तात !-धातः ! । (८) अनुग्रहं कुरु । (९) तेन कारणेन । (१०) इत्यमुना प्रकारेण । (११) याचितः । (१२) नागान् । (१३) अनाकर्णयितुम् । (१४) ब्रह्मा । (१५) कर्णरहितान् ॥११६॥

हे राजन् ! सूरिगुणान् गलन्ती-निर्यान्ती मितिर्मानं येषु-अगणितान्सुधारसानिव श्रुत्वा सुधाशिनोऽपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषनागाधिपा सुधायामनादरपरा भविष्यन्ति । तेन कारणेन हे तात ! मय्यनुग्रहं कुरु इति सुधया प्रार्थितः पद्मभूर्वेधा नागान् अश्रवणगोचरीकारयितुमकर्णानकरोत् ॥१२३॥

[1]सुरशिखरिणस्[2]तुङ्गे [3]शृङ्गे [4]ध्वनिग्रहपारणां, [5]त्रिदशसुदृशां गायन्तीनां गुणान्[6]श्रमणेशितुः ।
[7]रसिकमनसौ [8]श्यामारामावराम्बरकेतनौ, किम[9]यत [10]इतो गीतिं श्रोतुं [11]तमीदिवसात्यये ॥११७॥

(१) मेरोः । (२) उच्चैः । (३) शिखरे । (४) कर्णतृप्तिः । (५) देवाङ्गनानाम् । (६) हीरसूरेः । (७) गाने रसयुक्तं मनो ययोः । (८) रात्रिस्त्रीप्रियश्चन्द्रः, अम्बरकेतनः-सूर्यः । "यामिनीकामिनीपति" रिति काव्यकल्पलतायाम् । (९) गच्छतः । (१०) एतस्मात्स्थानात् । (११) प्रातः सायं च ॥११७॥

मेरुशृङ्गे सूरिगुणानायन्तीनां देववधूनां गीतिं ध्वनिग्रहाणां जनानां श्रोत्राणां वा पारणातुल्यां श्रोतुं रसिकौ चन्द्रसूर्यौ किमितः स्थानात्सन्ध्यासमये गच्छत इव प्रभाते सन्ध्यायां चेति । यथोपोषितानां पारणा स्यात् ॥१२४॥

[1]धन्यास्ते नृपते ! [2]फलेग्रहि पुनस्तेषामभूज्जीवितं
तैः प्रापे [3]स्वजनुःफलं [4]प्रथमतो [5]गण्याश्च [6]पुण्यात्मनाम् ।
यैर्लावण्यसुधा [7]न्यपीयततमामा[8]कण्ठमु[9]त्कण्ठितैः
सूरेः स्मेरमुखाम्बुजन्मनि शरच्चन्द्रे चकोरैरिव ॥११८॥

(१) पुण्यवन्तः । (२) सफलम् । (३) स्वावतारफलम् । (४) आदितः । (५) गणयितुं योग्याः । (६) पुण्यवताम् । (७) अतिशयेन पीता । (८) कण्ठमर्यादीकृत्य । (९) उत्सुकैः ॥११८॥

हे नृपते ! ते जना धन्याः पुनस्तेषां जीवितममोघम् । तैर्जन्मफलं प्राप्तम् । पुनः पुण्यवज्जनानामादौ ते गणनीयाः यैः सूरिमुखाम्बुजे लावण्यामृतमास्वादितम् । यथा चन्द्रे चकोरैः पीयूषं पीयते ॥१२५॥

[1]ताडङ्का इव कर्ण[2]पूरपदवीमालम्बमानाः पुन-
र्बिभ्राणा हृदये श्रियं त्रिजगतां [3]मुक्ताकलापा इव ।
हर्षादु[4]द्धुषिता वयं [5]स्मृतिवशाद्येषां [6]प्रियाणामिव
[7]क्षोणीभूषण ! भूषणैरिव गुणैस्तैर्भूष्यते स प्रभुः ॥११९॥

(१) कुण्डलाः । (२) निःश्रयन्तः । (३) हाराः । (४) रोमाञ्चिताः । (५) स्मरणप्रभावात् । (६) इष्टानाम् । (७) वसुधालङ्कार ! ॥११९॥

ये गुणाः कुण्डला इव कर्णपूरतां दधानाः । पुनर्ये हारा इव जगज्जनहृदयं शोभां दधानाः । यथेष्टस्मरणादुल्लासः सञ्जायते तथा येषां स्मरणाद्वयमुल्लसिता जाताः स्मः । हे महीमण्डन ! तैर्गुणैः स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरिर्भूषितः ॥१२६॥

[१]पण्डा [२]चित्रस(शि)खण्डिनां तनुजवच्चेत्स्या[३]दसाधारणी
यस्याऽऽस्ये भुजगप्रभोरिव भवेज्जिह्वासहस्रं [४]पुनः ।
यस्याऽप्य[५]स्खलिता [६]सुरेश्वरसरिद्वीचीव वाक्चातुरी
संस्तोतुं [७]प्रभवेन्न सोऽपि सुगुरो[८]र्यावद्गुणान्[९]भूमणे ! ॥१२०॥

(१) तत्त्वानुगा मतिः । (२) सप्तर्षयश्चित्रशिखण्डिनस्तेषां पुत्रो बृहस्पतिः । "विचित्रवाक्चित्रशिखण्डिनन्दन" इति नैषधे । (३) कस्याऽपि न सदृक्षा । "साधारणी गिरमुषर्बुधनैषधाभ्या" मिति नैषधे । (४) कुत्राऽपि वर्णने । (५) अकुण्ठा । (६) गङ्गातरङ्गावली । (७) समर्थीभवेत् । (८) समग्रगुणान् । (९) भूमीरत्न ! ॥१२०॥

यथा वाचपतिवत्पण्डा-तत्त्वानुगा मतिर्भवेत् । पुनर्मुखे शेषाहिवज्जी(ज्जि)ह्वासहस्रद्वयी स्यात् । पुनर्यस्य वाक्चातुरी स्वर्वाहिनी प्रवाहमालेव न क्वापि स्खलति । हे भूमणे ! सोऽपि सूरिगणान्गणयितुं न प्रभवेत् ॥१२७॥

[१]दृशोर्गोचरो न [२]श्रुतेः प्राघुणश्च, [३]प्रणीतः परः कश्चिदस्माभिरी[४]दृक् ।
विधात्रा [५]विधायैन[६]मा[७]रोपि [1]मन्ये, ध्व[2]जोर्वीश [८]सत्सर्गसौधाग्रशृङ्गे ॥१२१★॥[3]

(१) न दृष्टिविषयः । (२) कर्णस्याऽतिथिः । (३) कृतः । (४) सूरिसदृशः । (५) कृत्वा । (६) सूरीन्द्रम् । (७) आरोपितः । (८) महतां सृष्टिरेव गृहं तस्योपरि शिखरे ॥१२१॥

हे अधीश ! अस्माभिरीदृक् न दृष्टो न श्रुतश्च । वयमेवं विद्मः धात्रा एनं निष्पाद्य सतामुत्तमानां सर्गः सृष्टिस्तदेव गृहं तस्य शृङ्गे ध्वजो रोपितः ॥१२८॥

[१]अवनिरजनिजानिः [२]प्रेमरोमाञ्चिताङ्गो, [३]निगदितमिति तेषां [४]कर्णपेयं प्र[५]णीय ।
[६]रणरणकितचेता जायते स्म व्रतीन्दोः, [७]क्रतुभुज इव [८]सिद्धेर्दा[९]यिनो दर्शनाय ॥१२२॥

(१) भूमिचन्द्रः । (२) स्नेहेन पुलकिततनुः । (३) कथितम् । (४) कर्णयोः पातुं योग्यम् । (५) कृत्वा । (६) उत्सुकितमनाः । (७) देवस्य । (८) मनईप्सितस्य । (९) दानशीलस्य ॥१२२॥

महीचन्द्रस्तद्वाक्यमाकर्ण्य सूरेर्दर्शनार्थमौत्सुक्यवान् जायते स्म । यथा सिद्धिदायिनो देवस्य दर्शनार्थं कश्चिदुत्कण्ठितो भवति ॥१२९॥

[१]अवनिवलयवासवो वशीन्दो-र्[२]जगदतिशायिगुणैकतानचेताः ।
[३]वसुपुरुषमिवा[४]ऽऽत्मदिष्टदिष्टं, स्व[५]सविधमे[६]नमुपा[७]निनीषुरासीत् ॥१२३॥

इति पं.देवविमलगणिविरचिते श्रीहीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये दिल्लीमण्डलवर्ण[न]-

1. विद्मो हीमु० । 2. ०जोऽधीश हीमु० । 3. इति हीरविजयसूरिगुणवर्णनम् ॥ हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिल्लीनगरीवर्णन-हमाउं-तत्पुत्राकब्बरसाहिवर्णन-फतेपुराकब्बरसभा-साहिप्रश्न-तत्सभ्यप्रोक्तश्रीहीरविजय-सूरिगुणवर्णनो नाम दशमः सर्गः ॥१०॥ ग्रंथाग्रं २२५ ॥

(१) भूमण्डलशक्रः । (२) जगज्जनानतिशेरते इत्येवंशीलेषु गुणेषु लयानुगमैकाग्रं चेतो यस्य । (३) स्वर्णपुरुषमिव । (४) स्वभाग्येन प्रदर्शितं कथितं वा । (५) निजान्तिके । (६) सूरीन्द्रम् । (७) आनेतुमिच्छुरभूत् ॥१२३॥

इति दशमः सर्गः ॥१०॥ ग्रंथाग्रं ३७५॥

सूरिगुणैकलयोऽवनीन्द्रः एनं-**श्रीहीरविजयसूरि**राजं स्वसमीपमानेतुमिच्छुरासीत् । यथा स्वभाग्येन दिष्टं-दत्तं सुवर्णपुरुषं स्वसमीपं कश्चिदानयति ॥१३०॥

→ यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः
पुत्रं कोविदसिंहसी(सिं)हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।
सञ्जातो दशमोऽत्र देवविमलव्यावर्णिते हीरयु-
क्सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गो रसैरुज्ज्वलः ॥१३१॥ ←

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्निमहाकाव्ये दिल्लीमण्डलनगर-हमाऊ-अकब्बर-दिग्विजय-फतेपुरवासना-साहिसभा-सभ्यप्रश्न-तदुक्तहीरसूरिगुणवर्णनो नाम दशमः सर्गः ॥१०॥

→← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐं नमः

॥ अथ एकादशः सर्गः ॥

अथा[1]ऽऽह्वातुं[2]मीहांबभूवा[3]ऽब्धिनेमी-तमीशो मुनीनां[4] सुनासीरमेनम् ।
[5]प्रबोधाय धर्मात्मनः किं निजस्या[6]-ऽवतीर्णं पुनर्है[7]मचन्द्रं[1] व्रतीन्द्रम् ॥१॥

(१) आकारयितुम् । (२) काङ्क्षति स्म । (३) अकब्बरः । (४) सूरिशक्रम् । (५) प्रतिबोधार्थम् । (६) कृतावतारम् । (७) हेमाचार्यम् ॥१॥

अथाह्वा० – अथ धरेश एनं मुनीन्द्रमाह्वायति स्म । उत्प्रेक्ष्यते–धर्मात्मनः पुण्यवतः **कुमारपालस्य** वा प्रतिबोधाय गृहीतावतारं **हेमाचार्यम्** ॥१॥

ततो[1]ऽजूहवद्दूतयुग्मं[2] वियुग्मी-कृतारातिपक्षः क्षमाकर्मसाक्षी ।
[3]पयोराशिपर्यन्तराष्ट्रप्रतिष्ठा, [4]मनीषीव यद्वे[5]द निः[6]शेषभाषाः ॥२॥

(१) आकारयामास । (२) वियोगं प्रापिता वैरिणां पक्षा येन । (३) समुद्रसीमां यावद्देशेषु प्रतिष्ठाः प्रसिद्धयो यासाम् । (४) विद्वानिव । (५) जानाति । (६) समस्ता भाषाः ॥२॥

तदनन्तरं वियोगं पत्नीभिः प्रापितो वैरिपक्षो येन तादृशः क्षमासूर्यः दूतयुग्ममाह्वयति स्म । समुद्र एव प्रान्तो येषां तादृशा ये राष्ट्रा देशास्तेषु प्रतिष्ठा माहात्म्यं यासां तादृशी(श्यः) भाषाः यद्दूतयुग्मं जानाति । यथा विद्वान् निःशेषाः षडपि संस्कृत १-प्राकृत २-मागधी ३-सौरसेनी ४-पैशाची ५-अपभ्रंशी ६-लक्षणा भाषा वेत्ति । तद्वद्दूतयुग्मं वेद ॥२॥

[1]विपक्षान्क्षितौ [2]क्ष्माभृतो हन्तुमे[3]तो, द्युलोका[4]दिवा[5]ऽखण्डलः [6]स्वर्गिवर्गैः ।
[7]द्विषत्कालरात्रीयितानेकवीरं, द्विषां[8] पर्षदीति स्तवीति [9]प्रभुं यत् ॥३॥

(१) वैरिणः । (२) रिपून् शैलांश्च । (३) आगतः । (४) स्वर्गात् । (५) इन्द्रः । (६) देववृन्दैः । (७) वैरिणां प्रलयनिशा इवाऽऽचरिताः संख्यातिगाः सुभटा यस्य । (८) रिपुसभायाम् । (९) स्वामिनम् ॥३॥

विपक्षा० । यद्दूतयुग्मं रिपुकालसमानानेकप्रतिभटाधिपं यं रिपुपर्षदि स्तौति ॥३॥

[1]हतारातिसारङ्गदृक्कज्जलाङ्क-स्रवद्बाष्पभानूद्भवावारिपूरे ।
अभिष्टौति [2]लीलामरालायमानं, यशो यत्प्रभोर्वै[3]रभाजां [4]समाजे ॥४॥

(१) व्यापादितरिपुस्त्रैणाञ्जनयुक्तगलन्नयनाम्बुयमुनाजलदनवे?(वहने ?) । (२) क्रीडाहंस इवाऽऽचरत् । (३) द्विषाम् । (४) सभायाम् ॥४॥

हतारिस्त्रीस्रवदश्रुयमुनापूरे हंसायमानं यस्य यशः यद्दूतद्वयं रिपुपर्षदि स्तौति ॥४॥

[1]वचोवैदुषीमे[2]तदीयाम[3]धृष्यां, [4]निरूप्य प्र[5]तीपैः क्षितीशैः [6]प्रणेशे ।
य[7]दुर्वीविभोरा[8]गमात्प्राग्ग[9]भस्ते-रिवा[10]ऽनूरुरोचिस्त[11]मिस्त्रप्रसारैः ॥५॥[2] आदिचतुर्भिः कुलकम् ।

---

1. ०न्द्रव्रती० हील० । 2. चतुर्भिः कुलकम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) वचनचातुरीम् । (२) दूतसम्बन्धिनीम् । (३) अनाकलनीयाम् । रिपुमनःक्षोभकराम् । (४) ज्ञात्वेव । (५) अरिभिः । (६) प्रणष्टम् । (७) यस्याऽकब्बरसाहेः । (८) आगमनात्पूर्वम् । (९) सूर्यस्य । (१०) अरुणकान्तिः । (११) तमःप्रसारैः ॥५॥

एतदीयां वाक्चातुरीमवधार्य रिपुभिः प्रणष्टम् । यथा सूर्यात्प्रागरुणाभां विभाव्य तमःप्रसारैः प्रणश्यते ॥५॥

चिरं जीव नन्देति दूतौ नि[१]गद्या[२]-ऽधिपं [३]नेमतुर्मूर्ध्नि पाणी[४] प्रणीय ।
पुनस्तौ [५]सुधासाधिमानं दधत्या, स [६]सम्भावयामास वाचेव दृष्ट्या ॥६॥

(१) उक्त्वा । (२) स्वामिनम् । (३) प्रणमतः स्म । (४) अञ्जलिं कृत्वा । (५) अमृतमिव मनोज्ञताम् । "त्वयादृतः किन्नरसाधिमभ्रमः" इति नैषधे । (६) विलोकयामास ॥६॥

कृताञ्जली दूतौ तं नेमतुः । पुनः स भूपोऽमृतदृष्ट्या तौ प्रति व्यलोकयत् ॥६॥

ततः [१]क्षोणिशक्राशयं तौ [२]बुभुत्सू, स्म [३]युक्तः स्ववक्त्राम्बुजं वाग्विलासैः ।
[४]सरित्प्रेयसश्चे[५]तसस्ता[६]दृशानां, पुनः केन[७] [८]येन [९]प्रतीयेत पारः[१०] ॥७॥

(१) अकब्बराभिप्रायम् । (२) ज्ञात(तु)मिच्छू । (३) योजयतः स्म । (४) समुद्रस्य । (५) हृदयस्य । (६) महात्मनाम् । (७) पुंसा । (८) येन कारणेन । (९) ज्ञायेत । (१०) अन्तः पूर्णाशयभावः ॥७॥

तौ पृथ्वीन्द्राशयं बोद्धुमिच्छू वदतः स्म । यथा समुद्रस्य महतां चित्तस्य केन पारो ज्ञायते ॥७॥

[१]हरिर्वा [२]कृतान्ताः [३]प्रचेताः [४]कुबेरः, किमु [५]त्वद्दिगम्भोजदृग्रक्षकेषु ।
य[६]देतेषु केनाऽपि [७]कृत्यं भवेत्त-त्प्र[८]गल्भीभवावस्त[९]दाह्वाविधासु ॥८॥

(१) इन्द्रः । (२) यमः । (३) वरुणः । (४) धनदः । (५) तव दिक्कान्तारक्षाकारिषु । (६) इन्द्रादिचतुर्षु । (७) कार्यम् । (८) उद्यमं कुर्वः । (९) तस्याः [आ]कारणप्रकारेषु ॥८॥

इन्द्रो वा यमो वा वरुणो वा कुबेरो वा, यद्येतेषु दिक्पालेषु कृत्यं भवेत्तदा तदाकारणार्थमुद्यमं कुर्वः - तमाकारयावः ॥८॥

[१]त्रिलोक्या इवाऽ[२]ध(धी)शितुर्भूमिभर्त्त-[३]र्भवत्तो भवेत्कोऽपि वैमु[३]ख्यभाग्यः ।
[४]पुरस्तादु[५]देष्यन्त्यजानन्व[६]नाङ्के-ष्वनन्तानि दुःखानिः खा[७]निः [८]स्मयानाम् ॥९॥

(१) परमेश्वरादिवं । (२) पराङ्मुखताभाग् । (३) त्वत्सकाशात् । (४) अग्रे । (५) प्रकटीभविष्यन्ति । (६) काननोत्सङ्गे । (७) आकरः । (८) अभिमानानाम् ॥९॥

यथा परमेश्वरात्कोऽपि पराङ्मुखो भवति, तद्वद्भवतश्चेत्कोऽपि पराङ्मुखो भवेत् । योऽभिमानवानग्रे आगच्छन्ति वनवाससम्बन्धीनि दुःखानि अजानन्सन्प्रवर्त्तते ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1][१]असङ्ख्येषु [२]सङ्ख्येषु [३]विद्वेषिलक्षा-विलक्षीकृते[४]र्बिभ्र[५]दुत्सेकभावम् ।
[६]विधित्सु[७]र्मृधं [2]भूधवौ[८]द्धत्यवान्य-स्त्वया [९]पूर्वदेवेशवत्के[१०]शवेन ।।१०।।

(१) सङ्ख्यातीतेषु । (२) सङ्ग्रामेषु । (३) वैरिशतसहस्राणां विजयात् । (४) गर्वम् । (५) दधत् । (६) कर्त्तुमिच्छुः । (७) युद्धम् । (८) उन्मत्ततायुक्तः । (९) दैत्येन्द्रः । (१०) कृष्णेन ।।१०।।

[१]भवच्छिद्रदर्शी भवेद्वा [२]यदन्यः, [३]पुरोभागिवद्भा[४]गधेयैर्विमुक्तः ।
[५]प्रणीया[६]ऽनुकूलीभवन्मानसं तं, पदाब्जे प्रभो[७]र्भृङ्गभूयं नयावः ।।११।।

त्रिभिः [विशेषकम्]।।

(१) तवाऽपगुणावलोककः । (२) यदि कश्चित्परः स्यात् । (३) भुवनदोषदर्शनैकतान-दृष्टिः । (४) भाग्यम्(यैः) । (५) कृत्वा । (६) तव सेवाहेवाकि जायमानं मनो यस्य । (७) भ्रमरभावम् ।।११।।

[१]तपस्वी [२]सभस्मा [३]श्मशानाश्रयो वा, त्रिदण्डी [४]जटी वा [५]मठी [६]रुण्डमाली ।
[७]व्रती [८]वाडवो [९]धूमयः सो[१०]मपो वा, भवेद्येन ते [११]कृत्य[१२]मादिश्यतां सः ।।१२।।

(१) तापसः । (२) विभूतिभृत् । (३) स्मशानवासी । (४) जटाधारकः । (५) मठवासी । (६) कपाली । (७) यती । (८) ब्राह्मणः । (९) धूमपानकृत् । (१०) अमृतवल्लीरसपायी । (११) कार्यम् । (१२) उच्यताम् ।।१२।।

नि[१]र्गद्येति [२]विश्रान्तयो[३]रेतयोस्तां, गिरं [४]श्रोत्रवर्त्माध्वनीनां प्रणीय ।
[५]अगृह्यन्त वाचः [६]पयोराशिकाञ्ची-शचीशेन शङ्के [७]सुधाया [८]वयस्यः ।।१३।।

(१) उक्त्वा । (२) स्थितयोः (३) दूतयोः । (४) कर्णपथपथिकीम् । (५) गृहीताः । (६) अकब्बरसाहिना । (७) अमृतस्य । (८) सख्या(यः) ।।१३।।

[१]घनैरायु[२]रापूर्तिभिश्च प्रजानां, [३]प्रचेतस्तया [४]कोशसम्पूरणैश्च ।
भजन्ते[५]ऽनुकूलप्रवृत्तिं [६]दिगीशाः, प्रवाहा इवा[७]ऽवारपारप्रियाणाम् ।।१४।।

(१) मेघवर्षणैः । "जानामि त्वां प्रवरपुरुषं कामरूपं मघोनः" इति मेघदूतकाव्ये । इन्द्रादिष्टो मेघो वर्षति । (२) यावदायुर्जीवितव्यप्रदानेन । अर्द्धा[यु]ष्कं न कमपि गृह्णाति यमः । (३) प्रकृष्टचित्ततया । मयि प्रीतिविधानेन वरुणः । (४) भाण्डागाराणां रत्नस्वर्णरजतादिभि-र्भरणेन । (५) ममाऽभिलषितां, प्रकर्षे[ण] वृत्तिर्वर्त्तनम् । व्यापारमिति यावत् । (६) चत्वारो दिक्पालाः । (७) नदीनाम् ।।१४।।

---

1. एतच्छ्लोकादारभ्य हील०प्रतौ हीसुंवदेव पाठो दृश्यते । इतः परं हील०टीका न प्राप्यते ।
2. **भूधवौद्धत्यभाग्य०** इति हीमु० दृश्यते । स चाऽशुद्धः पाठः । टीकायां तु 'भूधवौद्धत्यवान्' इत्येव पाठमाश्रित्य टीका कृताऽस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नृपैर्मूर्ध्नि माले[व] दध्रे ममाऽऽज्ञा, पुरोगैरिवाऽभावि भूपैः प्रतीपैः ।
अहं देव[व]त्संस्तुतस्तापसाद्यै-स्ततस्तैर्ममाऽऽस्ते न किञ्चिद्विधेयम् ॥१५॥

(१) मस्तके । (२) पुष्पदामेव । (३) धृता । (४) पदातिभिः । (५) वैरिभिः । (६) कृत्यम् ॥१५॥

पुरे लाटलक्ष्मीललामायमाने, प्रतीरेऽम्बुधेः किं तु गन्धारनाम्नि ।
प्रभावैर्भुवं भासयन्हीरसूरी-श्वरः साधुधर्मस्तनूमानिवाऽऽस्ते ॥१६॥

(१) लाटमण्डलकमलातिलक इवाऽऽचरिते । (२) समुद्रतटे । (३) माहात्म्यैः । (४) दीपयन् । (५) हीरविजयसूरिः । (६) यतिनां धर्मः । (७) मूर्त्तिमान् ॥१६॥

असातस्य लेशोऽपि तेनैकपद्यां, यथाऽवाप्यते नाऽऽत्मना ब्रह्मणीव ।
शिवानामिवाऽऽवासमत्राऽऽनयेतां, भवन्तौ ततः सूरिसारङ्गराजम् ॥१७॥

(१) असुखस्य । (२) अंशोऽपि । (३) मार्गे । (४) प्राप्यते । (५) जीवेन । (६) मोक्षे । (७) कल्याणानाम् । (८) वासस्थानम् । (९) मत्पार्श्वे । (१०) गन्धारनगरात् । (११) सूरिसिंहम् ॥१७॥

मदीयानुगः साहिब[:] खान आस्ते, हितैषी पितेवाऽङ्गिनां गूर्जरेषु[1] ।
ददातां युवां तस्य निःशेषवाच्यं, दधानं स्फुरन्मानमेतन्मदीयम् ॥१८॥

(१) मम सेवकः । (२) अभीष्टाभिलाषुकः । (३) जनक इव । (४) सर्वजनानाम् । (५) गूर्जरदेशेषु । (६) अर्प्यताम् । (७) समस्तसमाचारम् । (८) दधत् । (९) ममेदम् ॥१८॥

यदास्तेऽन्य आत्मेव मे देहभेदात्, स कर्त्ता ततः सर्वमस्मद्विधेयम् ।
निवृत्ते निगद्येति भूसार्वभौमे, परां प्रीतिमन्तर्दधाते स्म दूतौ ॥१९॥

(१) यस्मात्कारणात् । (२) अपराः(रः) (३) जीवः । (४) शरीरपार्थक्यात् । (५) अस्मत्कार्यम् । (६) स्थिते । (७) कथयित्वा । (८) अकब्बरे । (९) चित्ते ॥१९॥

ततो दूतयुग्मं क्षमापूषलेखं, प्रतस्थे समादाय तत्सन्निधानात् ।
अनूनां तनूमुद्वहन्नेतदीया-भिलाषः प्रसर्प्यन्प्रतीव व्रतीन्द्रम् ॥२०॥

(१) अकब्बरस्फुरन्मानम् । (२) प्रचलितम् । (३) साहिपाश्र्वात् । (४) सम्पूर्णाम् । (५) धारयन् । (६) अकब्बरमनोरथः । (७) प्रचलन् । (८) सूरीश्वरं प्रति ॥२०॥

प्रबुद्धैरबोधीति तोत्रालफ(फा)लं, चलद्वीक्ष्य जङ्गालदूतद्वयं तत् ।
स्यदस्फुर्तिरस्थैर्यभाजां मनोभि-स्ततस्तेन तेभ्योऽथवाऽधीयते स्म ॥२१॥

1. गुर्ज० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) विद्वद्भिः । (२) जातम् । (३) उत्ताला त्वरिता फाला गगनगामी गतिविशेषो यस्य । (४) अतिवेगवत्सन्देशहारकद्विकम् । (५) वेगस्फूर्जितम् । (६) चपलाशयानाम् । (७) दूतयुग्मात् । (८) दूतयुगेन (९) मनोभ्यः । (१०) पठिता ॥२१॥

[१]क्रमाभ्या[२]मतिक्रम्य [३]सन्देशहारि-द्विकं [४]ग्राम[1]कूलाचलारामसीमाः ।
मुदाऽहम्मदा[2]वादम[५]गात्क्रमात्त[६]-त्स[७]हाध्यायि कि[८]रंहसां मा[९]रुतानाम् ॥२२॥

(१) पादाभ्याम् । (२) उल्लङ्घ्य । (३) दूतद्वयम् । (४) ग्रामा लघुपुराणि । उपलक्षणान्नगरपत्तनादिग्रहः । नद्यः वनान्यरण्यादीनामपि ग्रहः । ग्रामनगराक्षि(द्रि)क्षेत्रभुवः । (५) आगतम् । (६) दूतद्वयम् । (७) सार्धमेकगुरुसन्निधाने अधीते इत्येवंशीलं सहाध्यायि । (८) वेगानाम् । (९) वायूनाम् ॥२२॥

रणे वैरिणां [१]पार्थिवा येन देहा, हताः पेतुरुर्वीमिवा[२]ऽम्बां मिलन्ति ।
ययौ [३]तत्पुराधीशितुः सन्निधाने, द्वयं दूतयोर्मु[४]द्गलक्षोणिभर्त्तुः ॥२३॥

(१) पृथिवीसम्बन्धिनो बहुपृथिवीविभागाः । "पार्थिवं हि निजमाजिषु वीरा गौरवाद्वपुरपास्य भजन्ते" इति नैषधे । (२) माताम्(तरम्) । तदुत्पन्नत्वात् । (३) अहम्मदावादस्वामिनः । (४) अकब्बरसाहेः ॥२३॥

[१]सुवर्णश्रिया[२]ऽद्वैतया[३]ऽलङ्कृतायाः, [४]सुधास्यन्दिवाग्वैदुषीभूषितायाः ।
कुमार्या इव क्ष्मापतेः पत्रिकाया, [५]असौ तेन [६]पाणिग्रहः कार्यते स्म ॥२४॥

(१) शोभनानामक्षराणां शोभया, हेम्नां लक्ष्म्या, स्वर्णतुल्यया वा शोभया । (२) असाधारण्या । (३) भूषितायाः । (४) अमृतश्राविवचनचातुर्या शोभितायाः । (५) साहिबखानः । (६) पाणौ ग्रहणं विवाहश्च ॥२४॥

ततः [१]कोशव[२]द्भूमहेन्द्रस्य मुद्रां, प्रमोदादु[३]पादाय लेखं दधानम् ।
[४]विमुद्राक्षराण्य[५]क्षिलक्षाव(?)णि कुर्वन्, [६]विवेदा[७]ऽऽशयं [८]तस्य [९]निःशेषमेषः[१०] ॥२५॥

(१) भाण्डागारम् । (२) राज्ञः । (३) गृहीत्वा । (४) उन्मू(मु)द्रयित्वा । (५) दन्दर्श (दर्शयन्) । (६) बुबुधे-ज्ञातवान् । (७) अभिप्रायम् । (८) लेखस्य । (९) समस्तम् । (१०) खानः ॥२५॥

[१]पुरस्तात्त[२]योः प्रीतिमान्मु[३]द्गलेशो, गिरं [४]वासयामास [५]वक्त्रारविन्दे ।
[६]विनिर्यद्द्विजश्रेणिशोचिर्विमिश्र-स्मितेनेव तन्वन्म[७]रालैकलीलाम् ॥२६॥

(१) अग्रे । (२) दूतयोः (३) साहिबखानः । (४) वासयति स्म । (५) मुखकमले । (६) निःसरद्दन्तकान्तिकरम्बितहसितेन । (७) हंसानामद्वितीयां क्रीडाम् ॥२६॥

1. ०कुल्याचला० हीमु० । 2. ०बाद० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुर्भद्रवान्कच्चिदास्ते हमांऊ-सुतोऽकब्बरो बब्बरोर्वीशवंश्यः ।
जिताश्चण्डदोर्दण्डवीर्येण येन, न्यवात्सुर्दिगन्तेषु शङ्के दिगीशाः ॥२७॥

(१) अकब्बरः । (२) श्रेयस्वी । (३) इष्टप्रश्ने । (४) प्रबलभुजदण्डपराक्रमेण । (५) निवसन्ति स्म । (६) हरितां प्रान्तेषु ॥२७॥

चतुर्वाद्धिसंवर्त्तकीभूततेज-स्ततेः सन्ति जैवा[1]तृकास्तस्य पुत्राः ।
महीचारिणः पूषविद्वेषिगोत्र-द्विषद्यक्षराजाङ्गजाता इवैते ॥२८॥

(१) चतुर्षु-पूर्वापरदक्षिणोत्तरसमुद्रेषु । 'सरित्कान्त' इति पाठे तु-समुद्रे वडवानलीभूता प्रतापपटली यस्य । (२) दीर्घायुषः । (३) भुवि संचरणशीलाः । (४) हर-शक्र-धनदानां पुत्राः स्वामिकार्त्तिक-जयन्त-नलकूबरनामानो नन्दना इव ॥२८॥

[2]अयि ! स्वस्तिमन्त्यो नृपाम्भो[3]जनेत्राः, शचीकान्तकान्ता इव क्ष्मामुपेताः ।
परीवार आस्ते शिवः सोऽपि येना-ऽवनीन्दोर्मनो ज्ञानिनेवाऽन्वगामि ॥२९॥

(१) अयि-इत्यामन्त्रणेऽव्ययम् । (२) कल्याणिन्यः । (३) नृपाङ्गनाः । (४) शक्रपत्न्य इव । (५) पृथिवीम् । (६) प्राप्ताः । (७) निरुपद्रवः । (८) साहेः । (९) इङ्गिताकारज्ञातृत्वेन मनसोऽभिलषितं विधीयते, ज्ञानवतेव ॥२९॥

अनीकं शुभं भूभुजो येन जज्ञे, युगान्तान्धकद्वेषिणेवाऽरिचक्रे ।
प्रजा आसते प्रीतिभाजः प्रजाव-न्मुदा प्रश्नयामास तावित्यधीशः ॥३०॥

(१) कटकम् । (२) कल्पान्तकालशिवेन । संहारकत्रा इत्यर्थः । "क्षये जगज्जीवपिबं शिवं वदन्" इति नैषधे । (३) सन्ता[न]वत् । (४) पृच्छति स्म । (५) दूतौ प्रति । (६) साहिबखानः ॥३०॥

स्थितोऽद्रिः सुराणामिवाऽऽक्रम्य सर्वा, दिशः साहिरास्ते प्रभो ! पर्वतायुः ।
सुताः शक्तिभेदा इव स्फूर्त्तिमन्तः, सुखिन्यः सुमुख्योऽपि किं राजलक्ष्म्यः ॥३१॥
कुले धैर्यभाजामिवाऽधीश ! साहेः, परीवारतन्त्रे अनातङ्किनी स्तः ।
महानन्दयुक्ताश्च मुक्तात्मवत्त-त्प्रजा इत्यमुं तद्द्वयं प्रत्यवोचत् ॥३२॥ युग्मम् ॥

(१) मेरुरिव । (२) स्वीकृत्य । (३) दीर्घायुः । (४) प्रभुत्वोत्साहमन्त्रशक्तीनां भेदा इव । (५) ऊर्जस्वलाः । (६) महिष्यः । (७) राज्यश्रिय इव ॥३१॥

(१) धीराणां वंशाविव । (२) परिच्छदसैन्ये । (३) नीरोगे । (४) अतिप्रमोदकलिताः मुक्तियुताश्च । (५) सिद्धा इव । (६) दूतयुग्मम् ॥३२॥

---

1. ०वात्रिका० हीमु० । 2. अये हीमु० । 3. ०नेत्रा उपेता इव क्ष्मां हरेरिन्दुवक्त्राः ॥ हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निपीयेति [1]तद्वाग्विलासामृतं स, [2]ह्रदं [3]दन्तिवत्प्रीतिमन्तर्जगाहे ।
[4]अवेत्य [5]प्रसत्तिं पुनः पातिसाहे-[6]रवैति स्म [7]सम्प्राप्तसर्वस्ववत्स्वम् ॥३३॥

(१) दूतवचनचातुरीसुधाम् । (२) द्रहम् । (३) हस्तीव । (४) ज्ञात्वा । (५) प्रसादम् । (६) जानाति स्म । (७) अधिगताशेषद्रव्यमिव ॥३३॥

[1]अथाऽऽकारिताः [2]श्रावकास्ते[3]न [4]भृत्यै-श्चकोरा इव [5]श्वेतभासा [6]मयूखैः ।
क्रमा[7]त्तेऽपि [8]तेषां गताः [9]सन्निकर्षं, [10]निदेशं प्रभो[11]र्निर्दिशन्ति स्म सर्वम् ॥३४॥

(१) दूतवचनानन्तरम् । (२) अकमिपुरश्राद्धाः । (३) साहिबखानेन । (४) स्वसेवकैः । (५) चन्द्रेण । (६) किरणैः । (७) खानसेवका अपि । (८) श्राद्धानाम् । (९) समीपम् । (१०) आज्ञाम् । (११) कथयन्ति स्म ॥३४॥

समानीयमाना [1]अमीभिर्जनास्ते-ऽप्यराजन्त मध्येपुरं [2]दानशौण्डाः ।
[3]महामात्रवृन्दै[4]र्द्विपेन्द्रा इवो[5]र्वी-पते[6]र्मन्दिरं [7]दानधारां [8]किरन्तः ॥३५॥

(१) नृपभृत्यैः । (२) बहुप्रदानशीलाः । (३) हस्तिपकप्रकरैः । (४) गजेन्द्राः । (५) राजः(ज्ञः) । (६) गृहम् । (७) मदवारिप्रवाहम् । (८) मुञ्चन्तः ॥३५॥

जना [1]जैनपक्षैकदक्षा [2]क्षितिक्षि-त्समाजं विशन्ति स्म [3]सम्भूय सर्वे ।
ततः सोऽप्य[4]नर्घ्योपदापूर्णपाणीन्, स्वबन्धूनिवाऽस्थापयत्ता[5]नुपान्ते ॥३६॥

(१) जिनशासनेऽतिनिपुणाः । (२) राजसभाम् । (३) एकतो मिलित्वा । (४) प्रशस्यप्राभृतहस्तान् । (५) समीपे ॥३६॥

अमी [1]मूलकर्मेव [2]तच्चित्तवृत्तेः, [3]पुरः प्राभृतं [3]भूमिभर्त्तुर्विमुच्य ।
[4]अलीकातिथीभूतहस्तारविन्दाः, [5]प्रमोदप्रगल्भाः स्म भाषन्त इत्थम् ॥३७॥

(१) कार्म्मणमिव । (२) खानमनोवृत्तेः । (३) साहिबखानस्याऽग्रे । (४) भालप्राघुणकीभूतपाणिपङ्कजाः - कृताञ्जलयः । (५) हर्षेणोत्साहभाजः ॥३७॥

नृणां [1]शासिता त्वं वयं [2]शासनीया, वयं सेवकास्त्वं पुनः [3]सेवनीयः ।
नियोज्या वयं त्वं [4]नियोक्ताऽसि यस्मा-त्तदा[5]दिश्यतां कृत्यम[6]स्माकमीश ! ॥३८॥

(१) पालयिता । (२) पालनार्हा वयम् । (३) सेवितुं योग्यः । (४) प्रयोक्ता । (५) कथ्यताम् । (६) श्राद्धानाम् ॥३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स उ[१](ऊ)चेऽथ वाचेति [२]पीयूषवर्षं, [३]किरन्[५]कैतवा[४]द्दन्तनिर्यद्द्युतीनाम् ।
चतुर्दिक्षु [६]चण्डांशुवद्यत्प्रतापो, भ्रमत्य[७]ब्धिनेमीचरोऽकब्बरोऽस्ति ॥३९॥

(१) वक्ति स्म । (२) सुधावृष्टिम् । (३) विस्तारयन् । (४) दशनानां निर्गच्छत्कान्तीनाम् । (५) कपटात् । (६) भानुरिव । (७) आसमुद्रान्तपृथ्वीनाथः ॥३९॥

यया [१]ज्योत्स्नयेवाऽ[२]वदातीक्रियन्ते, दिशः [३]सस्मिता वा [४]स्वभर्त्रा[1] क्रियन्ते ।
[५]स्व[2]सख्या [६]विशिष्येव गो[७]शीर्षचन्द्र-द्रवैः [८]पत्रभङ्गैकतालं क्रियन्ते ॥४०॥
कदाचिज्ज[१]गत्कर्णपूरायमाणां, गुणश्रे[२]णिमाकर्ण्य तां हीरसूरेः ।
तमा[३]ह्वातुकामेन तेनात्मदूतौ(ता)-[४]विह प्रेषितौ [५]दर्शनोत्कण्ठितेन ॥४१॥ युग्मम् ॥

(१) चन्द्रकान्त्येव । (२) श्वेता विधीयन्ते । (३) सहास्या । (४) निजकान्तेन । (५) आत्मीयवयस्या । (६) विशेषप्रकारेण । (७) सर्वाङ्गेषु चन्दनकर्पूरपङ्कैः । (८) पत्रवल्लीभिः भूष्यन्ते ॥४०॥

(१) जगज्जनानां कर्णाभरणमिवाऽऽचरन्तीम् । (२) श्रुत्वा । (३) आकारयितुमभिलाषेन(ण) । (४) अहम्मदावादे । (५) हीरविजयसूरेरवलोकने उत्सुकितेन ॥४१॥ युग्मम् ॥

[१]समुद्रोऽपि भीतिं दधद्वारिपूराद्, [२]विशुद्धोऽपि [३]कार्ष्ण्यं पुनर्बिभ्रदन्तः ।
भुवो वासवेनैष लेखो [४]विशेष-प्रवृत्तिं वह[५]ल्लेखवत्प्रेषितश्च ॥४२॥

(१) मुद्रायुक्तोऽपि, अम्बुधिश्च । (२) उज्ज्वलोऽपि-निर्मलाशयोऽपि । (३) कालिमानम् । (४) विशेषवार्त्ताम् । (५) देव इव ॥४२॥

[१]अनुन्नीतसम्प्राप्तमद्भृत्यवर्गै- [२]र्निजालोकनाविष्कृतातङ्कसर्गैः ।
भविष्यत्य[३]मुष्य व्ययो यत्स[४]माधेः, [५]सरस्या इवा[६]ऽकालामेघैः कजानाम् ॥४३॥
[१]त्रियामाविरामा इवा[२]ऽम्भोजबन्धुं, [३]व्रतीन्द्रं ततो यूयमेवा[४]ऽनयध्वम् ।
[५]निगद्येति खानेन स[६]न्मान्य [७]ते [८]स्वान्, [९]विसृष्टा निवासान्ययुः [१०]प्रीतिमन्तः ॥४४॥
युग्मम् ॥

(१) अवितर्कितैरागतैर्मम सेवकव्रजैः । (२) स्वदर्शनादेव मुद्गलजातित्वेन भीमाशयत्वात्प्रकटीकृतभयसृष्टिभिः । (३) हीरसूरेः । (४) ध्यानस्य स्वास्थ्यस्य वा । (५) सरसः । (६) असमयागतघनैः ॥४३॥

(१) रात्रीणामवसानाः-प्रान्ताः । (२) भानुम् । (३) सूरिम् । (४) गन्धारनगरादकमिपुरे प्रापयत । (५) कथयित्वा । (६) सन्मानं दत्वा । (७) श्राद्धाः । (८) स्वकीयान् । (९)

1. ०कान्तै० हीमु० । 2. सखीभिर्विशि० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चाद्वालिताः । (१०) हृष्टाः ॥४४॥

[१]विचिन्त्याऽऽत्मचित्ते [२]तदादेशम[३]र्ह-न्मतस्यो[४]दयस्वर्द्रुमस्येव बीजम् ।
[५]तपापक्षमुख्याखिलश्राद्धलोका, मिलित्वा [६]मिथः [७]प्रोचुरा[८]नन्दसान्द्राः ॥४५॥

(१) विमृश्य । (२) खानस्याऽऽज्ञाम् । (३) जिनशासनस्य । (४) उदयरूपकल्पतरोः । (५) 'तपा' इति नाम गच्छस्य पक्षः-स्वीकारो येषां तेषु श्रेष्ठाः समस्ताः श्रावकजनाः । "अपक्षपातेन परीक्ष्यमाणः पक्ष" इत्यनेकार्थवृत्तौ । (६) परस्परम् । (७) कथयन्ति स्म । (८) हर्षव्याप्ताः ॥४५॥

[१]इतः [२]शासनं [३]शासितु[४]र्नः प्रजाना-मितो वन्दनीया [५]विभोर्व[६]न्द्यपादाः ।
इदं [७]सौरभारोपणं [८]जातरूपे, [९]त्रिरेखे [१०]पयःपूर्तिरप्याविरासीत् ॥४६॥

(१) अस्मिन्पार्श्वे । (२) आज्ञा । (३) राज्ञः । (४) अस्माकम् । (५) हीरसूरेः । (६) जगद्वन्दनार्हाश्चरणाः । (७) सुगन्धतायाः स्थापनम् । (८) स्वर्णे । (९) शङ्खे । (१०) दुग्धपूरणम् ॥४६॥

[१]हृदन्तर्मुनीन्द्रो[२]र्निनंसा [३]पुरा[1]सीत्, [४]नियुक्ता पुनः [५]स्वामिनेदं तदासीत् ।
[६]प्रतिस्थानमा[७]लोकमाना[८]न्मनुष्या-न्स[९]मेत्य [१०]स्वयं प[११]द्मवासा [१२]वृणीते ॥४७॥

(१) मनोमध्ये । (२) नन्तुमिच्छा । (३) पूर्वम् । (४) आदिष्टा । (५) साहिबखानेन । (६) स्थानं स्थानं प्रति । (७) पश्यतः । (८) जनान् । (९) आगत्य । (१०) स्वेनैव-अनाकारितत्त्वात् । (११) लक्ष्मीः (१२) वरयति ॥४७॥

[१]अलं [२]मन्दव[३]द्वो [४]विलम्बैः [५]सगर्भा-[६]स्त्वरध्वं वज्रामः प्रभोः [७]सन्निधाने ।
[८]विमृश्येति सर्वे[९]ऽभिनिर्याणयोग्यं, मुहूर्त्तं मिथो [१०]निर्णयन्ति स्म पौराः ॥४८॥

(१) पूर्यताम् । (२) मूर्खवत् । (३) युष्माकम् । (४) प्रतीक्षणैः । (५) भ्रातरः !। (६) शीघ्रीभवत । (७) समीपे । (८) विचार्य । (९) प्रयाणोचितम् । (१०) निर्द्धारयन्ति स्म ॥४८॥

अथाऽऽरुह्य [१]वाह्यानि ते श्राद्धलोकाः, पुरे [२]भूमिशृङ्गारगन्धारसंज्ञे ।
प्रभुं वन्दितुं प्रीतिमन्तः प्रचेलु-र्जिनं [३]स्वर्गिवर्गा इव क्षोणिपीठे ॥४९॥

(१) वाहनानि । (२) पृथिव्या भूषणे गन्धारनाम्नि । (३) देवव्रजाः ॥४९॥

[१]शिवश्रीविवाहोत्सुकीभूतचित्तै-र्यथा [२]यात्रिकैः [३]सिद्धधात्रीधरस्य ।
प्रयाणै[४]र्भूयःप्रमाणै[५]रमीभिः, समीपे [६]शमीन्दोः [७]समागम्यते स्म ॥५०॥

1. ०रास्ते हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) मुक्तिलक्ष्मीपाणिग्रहणे उत्कण्ठितमनोभिः । (२) यात्राकारकैः । (३) श्रीशत्रुञ्जयशैलस्य । (४) स्तोकमानैः । अल्पैरित्यर्थः । (५) श्राद्धैः । (६) सूरेः । (७) आगतम् ॥५०॥

[१]स्फुरद्बाहुशाखः [२]सपाणिप्रवालः, [३]प्रबर्हश्रियं बिभ्रद[४]भ्रान्त[1]शोभी ।
[५]नखानूनसूनार्चिरुद्यन्मरन्दो, [६]नमन्नागरीनेत्रविभ्राजिभृङ्गः ॥५१॥
[१]द्विजोद्भासितः [२]सिद्धिसस्यैकधारी, [३]भवग्रीष्मतिग्मांशुतापापहारी ।
[४]शिवाध्वन्यसंसेव्यमानो [५]न्यभालि, [६]व्रतीन्द्रा[2]ध्वशाखी स तैः पौरपान्थैः ॥५२॥
युग्मम् ॥

(१) प्रकटीभवती(न्ती) भुजा एव शाखा यस्य । (२) हस्त एव पल्लवो यस्य । (३) प्रकृष्टानां पत्राणां श्रेष्ठा च शोभाम् । (४) न भ्रमज्ञानत्वेन सत्यज्ञानत्वेन, आकाशेऽवसानत्वेनोच्चैस्तरत्वात् शोभते इत्यवंशीलः । (५) नखा एव सम्पूर्णानि पुष्पाणि, तेषां कान्तिरेव प्रकटीभवन्मकरन्दो यत्र । (६) नमन्तीनां नागराङ्गनानां नेत्राण्येव शोभनशीला भ्रमरा यत्र ॥५१॥

(१) दन्तैः पक्षिभिश्च शोभितः । (२) सिद्धिर्मुक्तिरेव फलं धरतीत्येवंशीलः । (३) संसार एव निदाघभास्करस्तस्य घर्मनिवारकः । (४) मोक्षमार्गप्रस्थितपान्थैरुपास्यमानः । (५) दृष्टः । (६) सूरिरेव मार्गवृक्षः ॥५२॥

[१]नभोम्भोदगर्जोर्जितस्तोत्रराव-प्रतिध्वानितोपान्तपाथोधिमध्याः ।
मुदा हीरसूरीन्द्रपादारविन्दं, व्यधु[२]र्मूर्ध्नि [३]लोहोत्तमोत्तंसवत्ते ॥५३॥

(१) श्रावणमेघध्वनिसदृशस्तुतिशब्दैः प्रतिशब्दयुक्तं कृतं समीपे समुद्रस्य मध्यं यैः । (२) शिरसि । (३) स्वर्णशेखरवत् ॥५३॥

[१]पयःपूरितप्रावृषेण्याम्बुदाना-मिव [२]स्तोककैरु[३]न्मुखत्वं दधानैः ।
स्फुरद्वा[४]ग्विलासामृतं पातुकामैः, पुरस्तात्प्रभोस्तैर[५]गृह्यन्त वाचः ॥५४॥

(१) जलभृतवार्षिकमेघानाम् । (२) चातकैः । (३) उच्चमुखत्वम् । (४) वचनचातुरीपीयूषम् । (५) गृहीताः ॥५४॥

[१]सखीभूतदिक्सुभ्रुवः [२]सौविदल्ली-कृतौदार्यधैर्यादिभास्वद्गुणौघान् ।
[३]चतुर्वीचिमत्खा[3]तिके [४]रत्नगर्भा-विरोधेऽनिशं वासयन्कीर्त्तिदारान् ॥५५॥
[१]विपक्षान्वि[२]पक्षक्षमाभृत्सहस्रान्, सृजन्मुद्गलाखण्डलः पूर्वदेशे ।
विभो ! वर्त्ततेऽकब्बरो द्रष्टुकामः, किमाशां[३] निजामु[४]ग्रधन्वा[५]ऽवतीर्णः ॥५६॥ [युग्मम्]

1. ०शोभा हीमु० । 2. ०न्द्रोऽध्व० हीमु० । 3. ०तिकं हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) वयसीभूता दिगङ्गना येषाम् । (२) अवरोधरक्षकपुरुषी(ष)कृता उदारताधीरता-प्रमुखदीप्यमानगुणगणा येषाम् । (३) चत्वारः समुद्रा एव परिखा यत्र । (४) वसुधारूपान्तःपुरे ॥५५॥

(१) हतगोत्रान् । (२) रिपुनृपसहस्रान् । सहस्रशब्दः पुंक्लीबलिङ्गे । (३) स्वकीयां दिशम्-पूर्वदिशम् । (४) शक्रः । (५) आगतः ॥५६॥

[१]जगन्मानसानामिवाऽऽकृष्टि[1]रज्जून्, [२]सुधाधामवद्बिभ्रतः [३]शुभ्रिमाणम् ।
[४]कदाचित्[५]समाकर्ण्य युष्मद्गुणौघान्, प्रभून्प्रेक्षितुं [६]काङ्क्षता तेन साक्षात् ॥५७॥
[१]तनूमन्त्रिदेशं नृपस्येव लेखं, करे बिभ्रतः प्रेषिताद्दूतयुग्मात् ।
प्रभोः [२]सूक्ष्मदर्शीव शास्त्रस्य [३]हार्दं, [४]विदित्वा मुदा साहिबः खानमुख्यः ॥५८॥
इवा[१]ऽनूरु[२]रर्चिःपतीन्[३]पूर्वशैलं, [४]तदीयान्तिकं पूज्यपादा[५]न्निनीषुः ।
[६]सहायानिवा[७]ऽऽहूय नः[८] श्रीमुनीन्दो !, सुखं प्रेषयामास [९]वः [१०]सन्नि[2]धानम् ॥५९॥

त्रिभि[र्विशेषकम्]॥

(१) भुवनजनानां मानसाकर्षणरश्मीन् । (२) चन्द्र इव । (३) श्वेतताम् । (४) कस्मिन्नपि प्रस्तावे । (५) श्रुत्वा । (६) इच्छता ॥५७॥

(१) मूर्त्तिमतीमाज्ञामिव । (२) कुशाग्रबुद्धिः । (३) रहस्यम् । (४) ज्ञात्वा ॥५८॥

(१) अरुणसारथिः । (२) सूर्यान् । (३) उदयाचलम् । (४) अकब्बरसमीपम् । (५) प्रापयितुमिच्छुः । (६) सखायइ (?)सहचरान् । (७) आकार्य । (८) अस्मान् । (९) युष्माकम् । (१०) पार्श्वे ॥५९॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

[१]सुवर्णो[२]ऽप्यवर्णः [३]सुरावासवासी, न लेखोऽपि [४]मूको[५]ऽप्युदन्तं [६]ब्रुवाणः ।
प्रभो ! गृह्यतां [७]नागरैरित्युदित्वा, स लेखः पुरोऽमोचि [८]वाचंयमेन्दोः ॥६०॥

(१) शोभनो वर्णो-ब्राह्मणादिर्यस्य । पक्षे-शोभनान्यक्षराणि यत्र । (२) न विद्यते पूर्वोक्तवर्णो यस्य । (३) स्वर्गस्थो न । (४) अवागपि । (५) समाचारम् । वाचिकम् । (६) कथयन् । (७) अकमिपुरश्राद्धैः । (८) सूरेः ॥६०॥

[१]प्रदेशीव [२]केशिव्रतिक्षोणिशक्रै-रसौ [३]बोधनीयो नृपः [४]पूज्यपादैः ।
महान्तो हि [५]विश्वोपकृत्यै [६]यतन्ते, [७]घनाः किं न सर्वं जगज्जीवयन्ति ॥६१॥

(१) प्रदेशीनृपः । (२) केशिगणधरः(रैः) । (३) प्रतिबोधयितव्यः । (४) भगवच्चरणैः । (५) भुवनोपकाराय । (६) उद्यमं कुर्वन्ति । (७) मेघाः । ॥६१॥

1. ०रश्मीन् हीमु० । 2. ०धाने हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अपेक्षां च न क्वापि कुर्वन्ति सन्तः, स्वभावेन किन्तूपकुर्वन्ति सर्वान् ।
किम[2]भ्यर्थितानि प्रसूनानि कैश्चि-ज्जनान् सौरभैः[3][स्वै]र्यदा[4]मोदयन्ति ।।६२।।

(१) कश्चिदभ्येत्याऽत्यर्थं मामभ्यर्थयते तत्कृत्यमहं करोमीत्यपेक्षा । (२) याचितानि, यद्यूयमागत्याऽस्मान्सुरभीकुरुतेति किं प्रार्थितानि । (३) स्वपरिमलैः । (४) सुगन्धीकुर्वन्ति ।।६२।।

कदाचिद्वसन्तस्य सन्देशवाचो-ऽ[1]पि च प्रेषिताः क्वापि किं [2]कुञ्जलक्ष्म्या ।
[3]मृगाक्षीमिवो[4]त्कष्टकां [5]मञ्जरीभिः, [6]प्रसूनैरयं [7]हासयामास यत्ताम् ।।६३।।

(१) पुनरर्थे-अपि च । (२) वनश्रिया । (३) कान्तामिव । (४) रोमाञ्चिताम् । (५) कलिकाभिः । (६) श्वेतकुसुमैः । (७) हासयति स्म ।।६३।।

किम[1]भ्यर्थ्यते केनचिच्च[2]ण्डरोचि-र्य[3]दुर्वीदिवौ [4]भासयत्येष यद्वा ।
[5]विपक्षानिवोद्वासयत्य[6]न्धकारान्, पुन[7]र्योजयत्य[8]ङ्गनाभी [9]रथाङ्गान् ।।६४।।

(१) याच्यते । (२) सूर्यः । (३) द्यावापृथिव्यौ । (४) प्रकाशयति । (५) रिपूनिव । (६) तमांसि । अन्धकारः पुंक्लीबलिङ्गे । (७) सङ्गं कारयति । (८) स्त्रीभिः सह । (९) चक्रवाकान् ।।६४।।

अयाच्यन्त किं[1] चाऽम्बुदाः केनचित्किं, यदु[2]र्वीधराणा[3]मपोहन्ति तापम् ।
जलैर्जीवयन्तीह बप्पीहबालान्, [4]स्वनादैश्च [5]वैदूर्यमुद्भावयन्ति ।।६५।।

(१) किं च पुनरर्थे । (२) गिरीणाम् । (३) घ्नन्ति। (४) स्वगर्जितैः । (५) विदूरगिरौ रत्नशलाकाः प्रकटयन्ति । मेघगर्जितैर्वैडूर्यान्युद्भवन्ती[ति] श्रुतिः ।।६५।।

[1]उपाकारि किं कैरवैर्वा चकोरै-र्यदेता[2]न्सितांशुः [3]पृणत्येष किं[4] वा ।
[5]सगोत्राः पुनश्चन्द्रिकाः किं [6]धरित्र्याः, [7]शुचीकुर्वते तां यदेताः [8]सुधावत् ।।६६।।

(१) उपकृतम् । (२) चन्द्रः । (३) 'पृण् प्रीणने' तुदादिः - प्रीणयति । (४) अथ वा । (५) ज्ञातयः । (६) भूमेः । (७) धवलयन्ति । (८) 'च्छोह' इति प्रसिद्धास्तद्वत् ।।६६।।

न चैवं हृदा [1]चिन्तनीयं यतीन्दो !, दधानोऽ[2]सिवत्स्वेन [3]निस्तृं(स्त्रिं)शभावम् ।
[4]तमः [5]श्वेतकान्तेरिव म्लेच्छमौलिः, कदाचित्स मे मा विदध्या[6]द्विरुद्धम् ।।६७।।

(१) विचार्यम् । (२) खड्ग इव । (३) क्रूरस्वभावं तरवारितां च । (४) राहुः । (५) चन्द्रस्य (६) असमीचीनम् ।।६७।।

अपि [1]स्वापकर्त्तुर्जनस्योपकारं, प्रकुर्वन्त्यसा[2]वोचिती [3]सत्तमानाम् ।
कुठारं स्व[4]शाखाविशेषाल्लु[5]नानं, यतो [6]गन्धसारः [7]सुगन्धीकरोति ।।६८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) आत्मनो विरुद्धविधातुः । (२) योग्यता । (३) अतिमहताम् । (४) निजशाखाग्राणि । (५) छिन्दन्तम् । (६) चन्दनतरुः । (७) सुरभयति ॥६८॥

[1]महात्माऽथ वा येन [2]नीयेत [3]तापं, [4]प्रयत्येत [1]तस्यैव तेनोप[5]कर्त्तुम् ।
[6]दहेद्यो निजं [7]चूर्णयित्वा [8]कृशानौ, तमेव स्वयं [9]धूपयेत्का[10]कतुण्डः ॥६९॥

(१) सत्तमः । (२) प्राप्येत । (३) सन्तापम् । (४) प्रयत्नः क्रियेत । (५) उपकारं कर्त्तुम् । (६) ज्वालयेत् । (७) खण्डशः कृत्वा । (८) अग्नौ । (९) सुगन्धयति । (१०) कालागुरुः ॥६९॥

सतां स्वो[1]पकर्त्तापकर्त्ता च चित्ते-ऽथवैकां [2]तुलां [3]प्राप्नुतो [4]निर्विशेषम् ।
[5]विषेन्दू इवा[6]ऽनङ्गदस्योः [7]सुधोर्वा-विर्वा[8]ऽब्धेः पुनश्च[9]न्द्रिका[10]ङ्कविवेन्दोः ॥७०॥

(१) उपकारी अपकारी च । (२) सदृशीभावम् । (३) लभेते । (४) निर्गतो विशेषो यत्र । (५) कण्ठदाहकृत्कालकूटं शोभाकृच्चन्द्रश्च । (६) हरस्य । (७) जगज्जीवातुः - अमृतं, स्वक्षयकृद्वडवानलः । (८) समुद्रस्य । (९) जगदुद्योतं कारिका ज्योत्स्ना, कलङ्ककृल्लक्ष्म । (१०) चन्द्रस्य सदृशीं कोटिं भजतः ॥७०॥

[1]समुत्कण्ठुलं मानसं [2]मेदिनीन्द्रः, [3]प्रभौ यद्विभर्त्त्येष [4]सैष्ये करीव ।
जलस्येव दुग्धेन सङ्गं [5]सिसृक्षो-स्त्वया किं पुनर्वाच्य[6]मस्यो[7]पकृत्यै ॥७१॥

(१) उत्कण्ठितम् । (२) <u>अकब्बरः</u> । (३) श्रीमद्विषये । (४) शिशिरऋतौ । 'शिशिरे करिणां मद' इति वाग्भटकाव्यानुशासने । (५) स्रष्टुमिच्छोः । (६) साहेः (७) उपकाराय ॥७१॥

[1]प्रणिघ्नन्वने [2]व्याधवन्नैकसत्त्वा-न्[3]असत्वीकृताशेषविद्वेषिप[2]र्पक्षः ।
ततो हेमचन्द्रेण [4]चौलुक्यभूमा-निवाऽसौ त्वयाऽकब्बरो बोधनीयः ॥७२॥

(१) व्यापादयन् । (२) लुब्धक इव । (३) दुर्बलाः कृताः समस्ता रिपूणां वंशा येन । (४) <u>कुमारपाल</u>नृप इव ॥७२॥

[1]हिमोर्वीधरोर्वीव सिन्धोः[2] सुराणां, कृपाया [3]उपादान[4]मुक्तिस्त्वदीया ।
[5]महत्वं विभो ! लप्स्यते चित्तवृत्तौ, [6]पयो मौक्ति[7]कत्वं [8]घनस्येव [9]शुक्तौ ॥७३॥

(१) हिमाद्रिमहीव । (२) गङ्गायाः । (३) मूलकारणम् । (४) धर्मदेशना । (५) प्रतिष्ठाम् । (६) जलम् । (७) मुक्ताफलत्वम् । (८) मेघस्य । (९) शुक्तिकायाम् ॥७३॥

[1]पयोदा इव [2]प्रावृषेण्या [3]नमन्तः, प्रभोश्चक्रपाणेः[4] पदं संस्पृशन्तः ।
निगद्येति वाचंयमेन्दोः पुरस्ता-न्न्य[5]षेवन्त [6]जोषं मुखे [7]श्राद्धमुख्याः ॥७४॥

---

1. तेनैव तस्योप० हीमु० । 2. ०वर्गः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) मेघाः । (२) वर्षाकालसम्बन्धिनः । (३) जलभरैरुन्नमन्तः । (४) विष्णोः पदं-नभः । (५) अभजन्त । (६) मौनम् । (७) श्रावकश्रेष्ठाः ॥७४॥

[१] तदीयां गिरं [२] कर्णिकावत्[३]सुवर्णा-ङ्कितां [४] सूक्तिमुक्तावलीशालमानाम् ।
[५] विमुक्ताङ्गभोगोऽपि [६] भोगीव [७] योगी-श्वरः [८] कर्णपूरी[1]करोतीति [९] चित्रम् ॥७५॥

(१) श्राद्धसम्बन्धिनीम् । (२) कर्णभूषणमिव । (३) शोभनाक्षरैः हेमभिश्च युक्ताम् । (४) सुष्ठु वचनचातुर्यैव मौक्तिकपङ्क्तिस्तया शोभमानाम् । (५) त्यक्ताः शरीरस्य स्नानोद्वर्त्तनविलेपन-भूषणादयो येन । (६) भोगभागिव । (७) योगभाजां राजा । (८) कर्णौ पूर्यते अनयेति कर्णपूरा । अकर्णपूरा कर्णपूरा कृतवानिति । (९) आश्चर्यम् ॥७५॥

[१] महीमण्डलान्तः किमा[२]विर्भवन्तं, पुनः शासनस्योदयं श्रीजिनेन्दोः ।
[३] अशेषावनीशासितुः [४] शासनं त-[५]न्निशम्ये[६]त्यसौ चिन्तयामास चित्ते ॥७६॥

(१) भूपीठमध्ये । (२) प्रकटीभवन्तम् । (३) समस्तक्षितिपालयितुरकब्बरस्य । (४) आज्ञाम् । (५) श्रुत्वा (६) अग्रे वक्ष्यमाणम् ॥७६॥

अयं हन्ति [१] दावाग्निव[२]द्वन्यजन्तून्, [३] प्रचण्डाशयो [४] दण्डभृद्वद्यदास्ते ।
क्षितौ स्वं निधानं [५] धनीवा[६]ऽवनीन्दो-स्तदेतस्य चित्ते कृपां [७] निक्षिपामि ॥७७॥

(१) दावानल इव । (२) काननजातसत्त्वान् । (३) रौद्रपरिणामः । (४) यम इव । (५) धनवानिव । (६) अकब्बरसाहेः । (७) स्थापयामि ॥७७॥

दधानेन [१] धर्म्यां धुरं किं क्षितीन्द्रः, कृतः [२] सम्मुखीनः स केना[३]ऽपि धर्मे ।
[४] फलाभ्युद्गमे वि[५]श्वलोकम्पृणेन, [६] प्रसूनव्रजेनेव [७] विस्मेरशाखी ॥७८॥

(१) धर्मसम्बन्धिनीम् । (२) सन्मुखः । (३) धर्मिणा । (४) फलानां प्रादुर्भवने । (५) समस्तजनानन्ददायिना । (६) कुसुमप्रकरेण । (७) विनिद्रतरुः । प्रायः कुसुमेभ्यः फलानि भवेयुरिति प्रसिद्धिः । यतः-[2]'अहो अकुसुमजं फल'मिति वचनात् ॥७८॥

किमाविर्बभूवे [१] स्वभावेन [२] धर्मे, धिया शाम्भवे [३] काश्यपीशासितुर्वा ।
यद[४]न्तर्म[५]दीयागमं [६] लिप्सतेऽसौ, [७] विलासीव [८] पुंस्कोकिलः [९] पुष्पकालम् ॥७९॥

(१) सहजेन । (२) जैने । (३) अकब्बरस्य । (४) चित्ते । (५) ममाऽऽगमनम् । (६) वाञ्छति । (७) क्रीडालोलः । (८) पुमान् पिकः । (९) वसन्तम् ॥७९॥

1. ०चकारेति हीमु० ।
2. अहो अमेघजा वृष्टि-रहो अकुसुमजं फलम् ।
अहो पुराकृतं पुण्यं, यद्दृष्टो नाथलोचनैः ॥ इति जिनस्तुतौ । हीमु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथो [1]जल्पतस्तान्[2]प्रति श्रीव्रतीन्दोः, [3]क्षितीन्दोर्दधानस्य [4]निर्देशम[5]न्तः ।
ध्वनि[6]र्निर्बभौ ढौकितो [7]वाहिनीनां, धवेनेव [8]गम्भीरिमश्रीजितेन ॥८०॥

(१) भाषमाणान् । (२) श्राद्धान् । (३) साहेः । (४) आदेशम् । (५) चित्ते । (६) शुशुभे । "अक्षबीजवलयेन निर्बभौ" इति रघुवंशे । (७) वाहिन्यः-सेनानद्यः । (८) गाम्भीर्य-शोभयाऽभिभूतेन ॥८०॥

[1]निनंसोर्[2]जिनाधीशकल्याणकोर्वी-मभूत्पूर्वमेवा[3]ऽऽशयः पूर्वदेशे ।
विहर्त्तुं ममा[4]ऽर्हन्मताम्भोजभृङ्गा !, [5]यियासोरिवाऽऽ[6]शा विजेतुं नृपस्य ॥८१॥

(१) नन्तुमिच्छोः । (२) जिनेन्द्रकल्याणभूमीम् । (३) अभिप्रायः । (४) जिनशासनैकतानाः! । (५) गन्तुमिच्छोः । (६) दिशः ॥८१॥

[1]समागान्ममाऽऽ[2]ह्वाननं भूमिभानोः, पुन[3]र्बप्पभट्टेरिवाऽऽ[4]मस्य राज्ञः ।
[5]दिनारम्भवन्मो[6]हनिद्राशयालुं, ततस्तत्र गत्वा [7]तमु[8]द्बोधयामि ॥८२॥

(१) आगतम् । (२) आकारणम् । आह्वाननशब्दोऽपि दृश्यते । यथा चम्पूकथायाम् - "तत्तातस्य कृतादरस्य रभसा[दा]ह्वाननं दूरतः' इति । "समाह्वानमुर्वीमघोन" इति वा पाठः । (३) बप्पभट्टिसूरेः । (४) आमराजस्य । (५) प्रातरिव । (६) अज्ञानतन्द्रया शयनशीलम् । (७) घूर्णितम् । (८) प्रतिबोधयामि जागरयामि च ॥८२॥

ततः [1]पूर्वसूरीन्द्रवत्प्रा[2]च्यदेशे, [3]प्रणम्या मया [4]श्रीजिनाधीशितारः ।
मयी[5]तः प्रयाते यतस्तत्र[6] धर्मो-ऽ[7]धिगन्ता विवृद्धिं [8]मृगाङ्के कलावत् ॥८३॥

(१) पूर्वाचार्यैरिव । (२) पूर्वमण्डले । (३) नमस्कार्याः । (४) जिननायकाः । (५) एतेभ्यो गूर्जरेभ्यः । (६) मेवातमण्डले । (७) प्राप्स्यति । "अधिगतं विधिवद्यदपालयत्" इति-प्राप्तम् । इति रघुकाव्ये । स्व(श्व)स्तनीप्रयोगस्ता-तारौ-तारम् । (८) चन्द्रे ॥८३॥

[1]प्रतिष्ठासमानस्य मे [2]वाङ्निषेध्री[1], हितं काङ्क्षता केनचिन्नो [3]निगद्या ।
यद[4]त्रा[5]न्तरा[यी]भवन्नम्बुदाना-मिवाऽवग्रहः कस्य न स्यादनिष्टः ॥८४॥

(१) प्रस्थातुकामस्य । (२) वाणी निषेधप्रतिपादयित्री । (३) वाच्या । (४) अस्मिन्कार्ये । (५) विघ्नं कुर्वन्मेघानाम् । वृष्टिविघ्न इव द्वेषकारणमेव ॥५४॥

अ[1]नाध्यायि[2]काऽऽस्ये तिथिर्वा[3]स्यते स्मा[4]-ऽऽश्रये प्राघुणीवेत्युदित्वाऽथ तेन ।
[5]निजास्यामृतांशोस्ति[6]थीनां प्रणीत्वं, तदा [7]सार्थकं स्वेन [8]निर्मित्सतेव ॥८५॥

1. ०ध्री इति हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) यस्यां तिथौ नाऽधीयते साऽनाध्यायिका-प्रतिपत् । (२) वक्त्रे । (३) वासिता-स्थापिता । मौनं कृतमित्यर्थः । (४) गृहे । (५) स्वमुखचन्द्रस्य । (६) तिथिकारकत्वम् । 'तिथिप्रणी' इत्यभिधानत्वात् । (७) सत्यम् । (८) कर्त्तुमिच्छता ॥८५॥

प्रभो[१]र्वाक्सुधासारमाकण्ठमेते, [२]सकर्णा निपीय [३]स्वकर्णाञ्जलिभ्याम् ।
[४]सृजन्तो [५]निमेषानपि [६]क्ष्मां [७]स्पृशन्तो, दधुः [८]सौमनस्यं तदा[९]श्चर्यमेतत् ॥८६॥

(१) वचनामृतानां वेगवतीं वृष्टिम् । (२) प्राज्ञाः । (३) श्रवणाञ्जलिभ्याम् । (४) कुर्वन्तः । (५) दशां निमीलनोन्मीलनानि । (६) भूमीम् । (७) पादाभ्यां सङ्घट्टयन्तः । (८) शोभनमनस्त्वम् - देवत्वम् । (९) विस्मयः ॥८६॥

[१]किरन्त्याऽमृतं [२]प्रीणितानेकजन्तो-र्गिरा तस्य [३]धाराकदम्बा इवाऽमी ।
[४]समुल्लासिलोमावलीकोरकाङ्गा, [५]इदं [६]व्यांहरन्ति स्म[७] पौराः प्रमोदात् ॥८७॥

(१) विस्तारयन्त्या । (२) प्रीतिं प्रापिताः समस्ताः सत्वा येन । (३) वर्षाकाल-मधिगत्योज्जृम्भिता नीपा धाराकदम्बाः । रजसि ये पुष्यन्ति ते धूलीकदम्बाः । वर्षासु ये पुष्यन्ति ते धाराकदम्बाः । इति टिप्पनके । "किरन्त्याऽमृतं तस्य लोकंपृणस्या-ऽम्बुवाहस्य वृष्ट्येव धाराकदम्बाः । गिरोल्लासि०" इति वा पाठः । यथा धनस्य वृष्ट्या धाराकदम्बाः सकोरका भवन्ति । (४) समुल्लसनशीलरोमराज्य एव कोरकाः - कलिका अङ्गे-वपुषि येषाम् । (५) वक्ष्यमाणम् । (६) कथयन्ति स्म । (७) पुरलोकाः । धाराभिर्मेघवृष्टिभिराहताः कदम्बाद्रुमा-धाराकदम्बाः । धाराहताः किल कदम्बाः पुष्यन्ति-इत्यन्यशास्त्रे-सिद्धान्तेष्वपि दृश्यते ॥८७॥

[१]जडिम्ना निजां [२]दूषितामङ्गयष्टीं, तपोभिस्त्यजन्नू[३]र्ध्वसंस्थानमुख्यैः ।
[४]सुमेरुः किमा[५]दत्त सूरीन्द्रदेहं, न चेद[६]प्रतीकाशधैर्यः स कस्मात् ॥८८॥

(१) दूषत्तया जाड्येन । (२) कलङ्किताम् । (३) ऊर्ध्वीभूय यत्समीचीना स्थिति-स्तत्प्रमुखैस्तपोभिः । (४) मेरुपर्वतः । (५) गृहीतवान् । (६) असाधारणधैर्यः ॥८८॥

[१]यदुद्यच्छते [२]भूधवस्योपकर्तुं, स्वयं [३]सूरिकण्ठीरवस्त[४]द्धि [५]साधु ।
[६]विनैतं कथं [७]सो[८]ऽवबुध्येत [९]धीमान्, यथा [१०]कार्त्तिकैकादशीमब्धिशायी ॥८९॥

(१) यस्मात्कारणादुद्यमं कुरुते । (२) साहेः । (३) सूरिसिंहः । (४) हि-निश्चितमत् । (५) सम्यक् । (६) एनं सूरीन्द्रं विना । (७) पातिसाहिः । (८) प्रतिबोधं प्राप्नुयात् । (९) प्रज्ञावान् । (१०) कार्त्तिकमासस्य एकादशीं तिथिं विना समुद्रशायी-कृष्णः कथं जागृयात ॥८९॥

[१]अहो ! पश्यताऽस्य प्रभोः [२]साहसिक्यं, [३]परं [४]येन [५]नाऽपेक्षते कञ्चनाऽपि ।
[६]द्विजेशद्विपद्वेषिपूषप्रदीपैः, [७]प्रतीक्ष्येत किं क्वाऽपि [८]साहायकाय ॥९०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अहो इति परस्परसम्बोधने। (२) साहसताम्। "अहो महीयस्तव साहसिक्य"-मिति नैषधे। (३) अन्यम्। (४) येन कारणेन। (५) न वाञ्छति। (६) चन्द्र-सिंह-सूर्य-दीपाः(पैः)। (७) परापेक्षा क्रियेत। (८) साहाय्याय ॥९०॥

ततो[१]ऽन्यैः समं साधुभिः सूरिसिंहः, [२]समुद्दिश्य पूर्वां दिशं स [३]प्रतस्थे।
[४]जिगीषुः [५]समग्रान्दिगन्ताननेकै-[६]रिवाऽखण्डलोऽम्भोधिनेमे[७]रनीकैः ॥९१॥

(१) स्वपारिपार्श्वकभूतैरपरैर्मुनिभिः समम्। (२) मनसि कृत्वा। (३) प्रचलितः। (४) जेतुमिच्छुः। (५) सर्वान्-दशाऽपि हरितामवसानभूमीर्यावत्। (६) भूशक्रः। (७) कटकैः ॥९१॥

[१]अलङ्कारमालां [३]दधाना वसाना, [२]दुकूलानि [४]पुष्पाणि [५]पाणौ [६]प्रणीय।
[७]कनी [८]प्रागभूत्[१०]सम्मुखीना[1] [९]जयश्रीः, पुरः प्रादुरासेव मूर्त्ता मुनीन्दोः ॥९२॥

(१) आभरणश्रेणीम्। (२) क्षौमानि(णि)। (३) परिदधाना। (४) कुसुमानि। (५) करे। (६) कृत्वा। (७) कुमारिका। (८) प्रथममेव। (९) जयलक्ष्मीरिव। (१०) सम्मुखागता ॥९२॥

[१]विधास्यामि [२]सान्निध्यम[३]भ्यास(श) एवा-ऽनिशं [४]तस्थुषी ते किमेतद्वि[५]वक्षुः।
[६]असौ [७]शासनस्वर्मृगाक्षी समेता, पुरः [८]सौरभेयी बभूव व्रतीन्दोः ॥९३॥

(१) करिष्यामि। (२) अवसरे कार्यम्। (३) समीप एव। (४) स्थिता। (५) वक्तुमिच्छुः। (६) सिद्धायिकानाम्नी। (७) शासनदेवी। (८) धेनुः ॥९३॥

[१]प्रशान्तै रसैः [२]पूरितः [३]पूर्णकामो, भवांस्तू[४]र्णमेवाऽस्तु [५]मद्वन्मुनीन्दो !।
[६]सकान्तोत्तमाङ्गे स्थितः पूर्णकुम्भः, पुरोऽभूदितीव प्रभोर्व[७]क्तुकामः ॥९४॥

(१) प्रकर्षेण शान्तनामभिः शमैः रसैः। (२) भृतः। (३) सिद्धाभिलाषः। (४) शीघ्रमेव। (५) ममेव। यथाहं जलैर्भृतः पूर्णकामोऽस्मि। (६) सधववशा शिरसि स्थितिः। (७) कथयितुमिच्छुः ॥९४॥

[१]प्रणीयो[२]ऽभिभूतिं [३]सुधास्वःस्रवन्ती-तमीकान्तमुख्याखिलद्वेषभाजाम्।
किमु [४]श्लोक [५]एतस्य [६]मूर्त्तः समेतो, दधि [७]व्यालुलोके पुरस्तादनेन ॥९५॥

(१) कृत्वा। (२) पराभवम्। (३) अमृत-सुरसरि-च्चन्द्रप्रमुखाणां शुभ्रश्रिया स्वेनाऽखिलानां वैरिणाम्। (४) यशः। (५) सूरेः। (६) दृग्गोचरः। (७) दृष्टम् ॥९५॥

---

1. मुनीन्दोः पुरः प्रादुरासेव मूर्त्ता जयश्रीः। हीमु०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]यदोजोजितः किं [2]प्रसत्त्यै समेतः, पुरो [3]हव्यवाहो गल[4]द्वायुवाहः ।
यतीन्द्रेण [5]गर्जन्गजोऽप्यालुलोके, प्रयाणे प्रभोर्दुन्दु[6]भीं दन्ध्वनन् किम् ॥९६॥

(१) यस्य प्रतापैर्जितः । (२) प्रसन्नीकरणाय । (३) वह्निः । (४) धूमरहितः । (५) गर्जारवं गलगर्जितं कुर्वाणः । (६) शब्दायमानः ॥९६॥

त्वयाऽऽरोपि केतुः कुले [1]योगभाजा-मितीवा[2]ऽऽलपन्तं क्वणैः किङ्किणीनाम् ।
[3]स्वमूर्ध्ना [4]विहायः स्पृशन्तं स केतुं, मुमुक्षुक्षितीशो[5]ऽक्षिलक्षीचकार ॥९७॥

(१) योगीन्द्राणाम् । (२) कथयन्तम् । (३) निजमस्तकेन । (४) नभः-अत्युच्चा-(च्चम्) । (५) ददर्श ॥९७॥

[1]सशब्दानिवा[2]ऽब्दान्पतद्वारिधारान्, ध्वन[3]द्भृङ्गनिर्यद्रसान्सा[4]न्द्रसालान् ।
[5]निरीक्ष्य क्षणं नृत्यतः [6]क्लृप्तकेका-रवा[7]न्केकिनो [8]दक्षिणानै[9]क्षताऽसौ ॥९८॥

(१) गर्जायुक्तान् । (२) मेघान् । (३) शब्दमयाना भ्रमरा यत्र तादृग्मकरन्दैर्व्याप्तान् । (४) द्रुमान् । (५) दृष्ट्वा । (६) रचितकेकाशब्दान् । (७) मयूरान् । (८) प्रभुदक्षिण-दिग्भागवर्त्तिनः । (९) ददर्श ॥९८॥

[1]अवामेव वामाऽप्यमुष्यो[2]ऽनुकूलं, [3]चुकूज द्रुमे [4]भैक्ष्यमादाय [5]देवी ।
[6]त्रिलोकीमिवाऽऽकारयन्से[7]वनायै, विभो[8]र्दक्षिणीभूय [9]चाषोऽप्युवाच ॥९९॥

(१) अनुकूलेव । (२) हितकृत् । (३) बभाषे । (४) भिक्षासमूहम् । 'चूणि' इति प्रसिद्धम् । (५) पोतकीनामा लोके देवीति प्रसिद्धा । (६) विश्वत्रयीम् । (७) सेवाकरणाय । (८) अपसव्यभागे भूत्वा तोरणं बद्ध्वा । (९) नीलपक्षी ॥९९॥

ममाऽग्रे [1]द्विजिह्वा यथा यान्ति[2] दूरे, [3]तवाऽपीति [4]बभ्रुर्वद[5]न्दक्षिणोऽभूत् ।
तवाऽधीश ! [6]वामोऽप्य[7]वामोऽस्तु मद्व-त्खर[8]स्य स्वरः किं ब्रवीतीव वामः ॥१००॥

(१) भुजगाः । (२) दूरीभवन्ति । (३) तथा तवाऽपि द्विरसना-मत्सरिणः-पिशुना दूरे यान्तु । (४) नकुलः । (५) वामाद्दक्षिणो जगाम । (६) प्रतिकूलोऽपि ! (७) अनुकूलः । (८) गर्दभः भुच्चकार ॥१००॥

यतो [1]जन्मिनामी[2]प्सितं [3]शर्म्म [4]दत्से, प्रभो ! [5]भिन्धि नस्तेन ती(ति)र्यक्त्वदुःखम् ।
इतीव स्म विज्ञप्यते[6] तित्तिरैणैः, स [7]सव्यापसव्योद्भवद्ध्वानयानैः ॥१०१॥

(१) प्राणिनाम् । (२) वाञ्छितम् । (३) सुखम् । (४) ददासि । (५) भेदय-

1. ०भिं हीमु० । 2. भक्ष्य० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाशय। (६) खरकोणः लोके 'गणेश' इति प्रसिद्धाः । मृगाश्च [तैः]। (७) वामदक्षिण-प्रकटीभवच्छब्दगमनैः ॥१०१॥

[१]व्यपोहै[२]कदृक्त्वं त्वम[३]स्मद्विगानं, [४]रसन्तीति किं [५]वायसास्तस्य [६]वामाः ।
[७]शुभायाऽमरी[८] भैरवी वाऽभ्यु[पे]ता-ऽप्य[९]वामाऽभवद्[१०]भैरवी [११]निःस्वनन्ती ॥१०२॥

(१) निवारय । (२) काणत्वम् । (३) अस्माकमपवादम् । (४) शब्दायन्ते । (५) काकाः । (६) [अ]दक्षिणाः । (७) कल्याणाय । (८) भैरवी-भवानी सुरी वाऽऽगता । (९) दक्षिणा । (१०) पक्षिविशेषः । लोकप्रसिद्धा 'भैरव' इति नामा । (११) शब्दायमाना ॥१०२॥

अमुष्य [१]मुख्याः शकुनाः [२]परःशताः, [३]परेऽप्यभूव[४]ञ्शुभशंसिनः पथि ।
[५]तदर्थसिद्धे[६]रुपगन्तुकाया-[७]श्चिह्नानि किं प्राक्प्रकटीभवन्ति ॥१०३॥

(१) श्रेष्ठाः । (२) शतशः । (३) अन्येऽपि । (४) शुभोदर्ककथयितारः । (५) सूरेः कार्य[सि]द्धेः । (६) आगन्तुकायाः । भविष्यन्त्या इत्यर्थः । (७) लक्षणानि ॥१०३॥

[१]वाचोऽनुबिम्बाभिरिवाऽङ्गनाभि-[२]राशीर्भिरध्व[३]न्यैभिनन्द्यमानः ।
[४]महोदयोदर्क्कविधायिनो [५]धिया, [६]विमृश्य सूरिः शकुनान्पु[७]रो[८]ऽचलत् ॥१०४॥

इति शकुनाः ॥

(१) सरस्वतीदेवीप्रतिबिम्बाभिरिव । (२) मङ्गलवाग्भिः । (३) स्तूयमानः । (४) अतिशयोदयो मोक्षश्च तत्फलकारकान् । (५) स्वबुद्ध्या । (६) विचार्य । (७) अग्रे । (८) चचाल ॥१०४॥

[१]द्विवेललीलाप्रविसारिवेला-पयोभुजाभ्यां [२]परिरभ्य [३]भूम्ना ।
[४]मत्तेभयानामिव [५]वल्लभेना-[६]ऽम्भोराशिना [७]स्वाङ्क[८]मवाप्यमानाम् ॥१०५॥

[१]महीयसीं नाम [२]महीस्रवन्तीं, [३]विजृम्भिहैमाब्जरजःपिशङ्गाम् ।
[४]वेणीमिव स्वर्णमयीं [५]नदीश-नेमीन्दिरायाः प्रभु[६]रुल्ललङ्घे ॥१०६॥ युग्मम् ॥

(१) द्विर्वारं लीलया प्रसरणशीलवेलाजलरूपबाहुभ्याम् । (२) आलिङ्ग्य । (३) बाहुल्येन । (४) वशामिव । (५) कान्तेन । (६) समुद्रेण । (७) निजोत्सङ्गम् । (८) नीयमानाम् ॥१०५॥

(१) अतिमहतीम् । (२) महीनामनदीम् । (३) विकचकाञ्चनकमलपरागपिङ्गाम् । (४) स्त्रीशिरा(रो)भूषणम् । संयतानां केशानामुपरि परिधीयते । प्रलम्बा हैमी च सा वेणी कथ्यते । (५) भूमिलक्ष्म्याः । (६) उल्लङ्घयति स्म ॥१०६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्वापि [1]स्थपुटितां क्वापि, [2]द्रुमद्रोणीसमाकुलाम् ।
क्वचि[3]द्वहद्वाहिनीकां, [4]किराताकलितां क्वचित् ॥१०७॥
[5]द्विपद्विपिद्विपद्वेष्य-मुख्यजन्तूचितां क्वचित् ।
[6]पदवीं [7]क्षोणिभृत्क्षोणी-मिव सूरिरलङ्घयत् ॥१०८॥ युग्मम् ॥

(१) विषमोन्नतीभूताम् । स्थपुटत्वं सञ्जातमस्यामिति । (२) तरुराजीव्याप्ताम् । 'द्रोण'शब्दः श्रेणिवाची । "भिल्लीपल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु" इति चम्पूकथायाम् । तथा 'द्रोणी'शब्दः दीर्घोऽप्यस्ति । (३) प्रसरन्नदीयुताम् । (४) भिल्लावलीयुक्ताम् । (५) हस्ति-व्याघ्रसिंहप्रमुखसत्त्वानां वासयोग्याम् । (६) मार्गम् । (७) गिरिभूमीम् ॥१०७-१०८॥

क्रमा[1]द्वटदले [2]फुल्ला-म्भोजे भृङ्ग इवाऽऽ[3]गमत् ।
स्तम्भतीर्थस्य सङ्घेन, तस्मिन्प्रभुरवन्द्यत ॥१०९॥

(१) वडदलाख्ये ग्रामे । (२) स्मेरकमले । (३) आगतः ॥१०९॥

[1]भक्तिप्रह्वमना [2]जिनाधिपमताधिष्ठायिनी [3]निर्जरी
[4]तस्मि[5]न्नक्त[6]मवाकिरद्[7]व्रतिपतिं [8]नीरन्ध्रमुक्ताफलैः ।
श्रुत्वा [9]तीर्थकरानुकारिभगवन्माहात्म्य[10]मुत्कण्ठिता
[11]विद्मो वन्दितुमागताः [13]प्रियतमा [12]राज्ञः [14]स्वतारोत्करैः ॥११०॥

(१) भक्तितत्परमानसा । (२) शासनाधिष्ठायिका । (३) देवी-सिद्धायिका । (४) तत्र-ग्रामे । (५) रात्रौ । (६) वर्द्धापयति स्म । (७) सूरीन्द्रम् । (८) छिद्ररहितमौक्तिकैः । (९) जिनेन्द्रसदृशं सूरिमहिमानम् । (१०) उत्कण्ठायुक्ता जाताः सन्त्यः (सत्यः) । (११) वयं एवं जानीमहे । (१२) राज्ञश्चन्द्रस्य नृपस्य वा । (१३) स्त्रियः । (१४) स्वमन्दिरीभूततारकनिकरैः सार्द्धम् ॥११०॥

तत्राऽऽ[1]नन्द्य जनान्दिनानि कतिचि[2]द्वाचंयमाधीशिता,
[3]वर्त्मा[4]ऽतिक्रमितुं क्रमात्[5]प्रववृते [6]भूमेः समं साधुभिः ।
[7]वाचा चन्द्रिकया [8]तमः प्रशमयन्नेत्रांश्चकोरान्[9]पृणन्
[10]ताराणां निवहै[11]र्विहायस इव [12]श्यामाङ्गनानायकः ॥१११॥

(१) आनन्दयित्वा । (२) सूरीन्द्रः । (३) मार्गम् । (४) उल्लङ्घयितुम् । (५) प्रारभत । (६) पृथिव्याः । (७) वाण्या । (८) अज्ञानमन्धकारं च । (९) आनन्दयन् । (१०) तारक-निकरैः । (११) आकाशस्य मार्गम् । (१२) चन्द्रः । "यामिनीकामिनीपति' रिति कविशिक्षावृत्तौ ॥१११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्वचित्[1]पवनवर्त्मवन्[2]मृगपतङ्गचित्रान्वितं
क्वचिन्[3]मदनमेदुरं कुलम्[4]इवैणकान्तादृशाम् ।
क्वचित्[5]कुरुनिकेतवत्[6]ससहदेवभीमार्जुनं
[7]विराटनृपगेहवत्क्वचन [8]कीचकैरञ्चितम् ॥११२॥

क्वचिन्[1]नृपसमीपवद्द्विविधवाहिनीमण्डितं
क्वचित्[2]कलित[3]मग्नि[1]चिद्भवन[4]वच्छिखिस्फूर्जितम् ।
[5]करीन्द्रकुलसङ्कुलं [2]क्वच[न] [6]विन्ध्यभूमीध्रवद्
[7]व्यलङ्घत [8]यतिक्षितिद्विजपतिः स [9]वर्त्म क्रमात् ॥११३॥ युग्मम् ।

(१) आकाशमिव । (२) मृगशिरः सूर्यचित्रानक्षत्रयुतम् । (३) 'मींढहल' इति लोकप्रसिद्धैस्तरुभिर्भृतम् । पक्षे - स्मरोपचितम् । (४) स्त्रीणाम् । (५) पाण्डुराजगृहमिव । (६) सहदेव-औषधीविशः(शेषः), भीम-आम्लवेतसः, अर्जुनतरुभिः सहितम् । पक्षे-सहदेवभीमार्जुनाः पाण्डवाः । (७) विराटराजसौधवत् । (८) सुदेष्णाभ्रातृभिः ॥११२॥

(१) नृपसाककैर्नानाप्रकाराभिः सेनाभिर्नदीभिश्च भूषितम् । (२) युक्तम् । (३) अग्निहोत्रिगृहमिव । (४) वह्नीनां मयूराणां च स्फूर्त्तयो यत्र । (५) गजराजीविराजितम् । (६) विन्ध्याचलवत् । (७) उल्लङ्घितवान् । (८) सूरिराजः । (९) मार्गम् ॥११३॥

[1]विबुधपतिपुरन्ध्रीबन्धुरारब्धलीलं, [2]जिनपदकृतशोभं [3]सञ्चरच्छ्वेतदन्ति ।
तटमिव [4]वरटाया [5]वल्लभः [6]स्वर्वहाया, अकमिपुरसमीपं भूषयामास सूरिः ॥११४॥

(१) शक्रकान्त(न्ता)भिः र(भिर्म)नोज्ञा रचिता क्रीडा यत्र । "अखिलपुरपुरन्ध्री-नेत्रनीलोत्पलानी"ति नैषधे । (२) तीर्थकृतां स्थानैः विष्णोस्त्रिभिस्ताराारूपैः पदै रचिता शोभा यत्र । (३) प्रचलन्तो भद्रगजा ऐरावणश्च यत्र । (४) हंस्याः । (५) कान्तः-हंसः । (६) गङ्गायाः ॥११४॥

प्रभोर्[1]आगमनोदन्तः, प्रससार पुरान्तरे ।
[2]चान्दनीय इवा[3]ऽऽमोदः, क्षितौ [4]मलयभूभृतः ॥११५॥

(१) आगमनसमाचारः । (२) चन्दनसम्बन्धी । (३) परिमलः । (४) मलयाचलस्य ॥११५॥

[1]विज्ञायाऽऽगमनं यतिक्षितिपते[2]रामोदमेदस्विता
प्राप्ताः [3]पौरपरम्परा [4]मधुक्र[3]तौ व्यूहा [5]इवोर्वीरुहाम् ।

1. ०मग्निविद्ध० हीमु० । टीकायामपि एवमेव पाठः । स चाऽशुद्धः ।
2. क्वचिद्विन्ध्य० हीमु० । स चाशुद्धः छन्दोभङ्गकारित्वात् ।   3. ०ऋतोर्व्यू० हीमु० ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

गन्तुं सम्मुखमस्य [६]नश्यदतनोः सज्जीबभूवुस्ततः
[८]श्राद्धा [७]राजगृहोद्भवा इव [९]मृगारातिध्वजस्याऽर्हतः ॥११६॥

(१) ज्ञात्वा । (२) आनन्दमेदुरताम् । (३) अकमिपुरश्राद्धवर्गाः । (४) वसन्तऋतौ । (५) तरुसमूहाः परिमलोपचयं प्राप्नुवन्ति । (६) पलायमानः कामो यस्य । (७) राजगृह-वास्तव्याः । (८) श्रावकाः । (९) श्रीमहावीरदेवस्य ॥११६॥

[१]पर्याण्यन्ते स्म [२]वाहा हरिहरय इवोत्तीर्णवन्तः [३]क्षमायां
[४]क्वाऽप्यप्राप्तावलम्बाम्बरचरणभवद्भूमनिर्वेदभाजः ।
[५]शृङ्गार्यन्ते गजेन्द्रा [६]गिरिगुरुवपुषः [७]क्लृप्तसिन्दूरपूरा
विद्मः [८]प्रातस्त्यसन्ध्याः [९]कुनयसमुदयज्योतिरस्तं नयन्त्यः ॥११७॥

(१) पर्याणयुक्ताः क्रियन्ते स्म । (२) इन्द्राश्वाः सूर्याश्वा वा । (३) भूमौ । (४) कस्मिन्नपि देशेऽनासादितावलम्बा गगने सञ्चरणादुद्भूतबहुलखेदभाजः । (५) शृङ्गारयुक्ताः सृज्यन्ते । (६) पर्वतप्रायाः । (७) रचितं सिन्दूरपूरं येषु । (८) प्रभातकालसन्ध्या इव । (९) कुमतिततितारकान् ॥११७॥

भूम्या [१]व्योमेर्ष्ययेवा[२]ऽधृषत रविरथाः [३]पद्महस्तैः [४]श्रिताङ्काः
कैश्चित्सज्जीक्रियन्ते कनकमणिमयाः [५]सत्तुरङ्गाः [६]शताङ्गाः ।
पङ्क्तिः पादातिकानां [७]विविधमणिगणालङ्कृतीरुद्वहन्ती
[८]राभस्यादस्पृशन्ती भुवमपि [९]सुमनःश्रेणिवत्सज्जति स्म ॥११८॥

(१) गगनेन सार्द्धमीर्ष्यया । (२) धृताः । (३) पद्मानि रेखाकाराणि कमलानि वा हस्ते येषां, तैर्नरैः सूर्यैः । (४) आश्रितमध्याः । (५) शोभनाश्वाः । (६) रथाः । (७) बहुप्रकाररत्नावलीनामलङ्कारान् । (८) औत्सुक्यात् । (९) देवराजीव ॥११८॥

[१]प्रसाधिकाभिः [२]परमाणुमध्या, विभूषिताङ्ग्यः पुपुषुर्विभूषाम् ।
[३]निनंसयेवो[४]पनता व्रतीन्दो-[५]र्भुजङ्गलोकाद्[६]भुजगेन्द्रवध्वः ॥११९॥

(१) मण्डनकारिणीभिः । (२) स्त्रियः । "अध्यापयामः परमाणुमध्या" इति नैषधे । (३) नन्तुमिच्छया । (४) आगताः । (५) नागलोकात् । (६) नागेन्द्राङ्गनाः ॥११९॥

[१]सुदृशां शिरसि [२]व्यलीलसत्, कलशाली मणिहेमनिर्मिता ।
[३]स्तनवैभवभर्त्सितेव तं[४]-द्विजिगीषुः [1]पुन[५]र[६]भ्युपेयुषी ॥१२०॥

(१) स्त्रीणाम् । (२) रेजुः । (३) कुचशोभाभिरभिभूता । (४) तेषां कुचानां

1. परम० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेतुमिच्छया । (५) व्याघुट्य । (६) आगता ॥१२०॥

[१]विहायोऽङ्गणालिङ्गिगेहाग्रशृङ्गा-निलालोलकेतुक्वणत्किङ्किणीभिः ।
[२]पुरी [३]प्रेक्ष्य सूरिं किमायान्त[४]मन्त-र्भव[५]त्प्रीतिरातन्तनीतीव गीतिम् ॥१२१॥

(१) गगनाङ्गणाश्लिष्टगृहोपरिशिखरेषु पवनचञ्चलपताकानां शब्दायमानघुर्घुरिकाभिः । (२) राजनगरम् । (३) दृष्ट्वा । (४) चित्ते । (५) प्रकटीभवत्प्रेमा ॥१२१॥

[१]तुमुलैर्ब[२]न्दिवृन्दानां, [३]तूरस्वरकरम्बितैः ।
[४]भूपरीरम्भकाम्भोद-निर्ह्रादैरिव निर्बभे ॥१२२॥

(१) कोलाहलैः । (२) मङ्गलपाठकगणानाम् । (३) वाद्यध्वनिमिश्रैः । (४) भूमीरामालिङ्गनकृन्मेघगर्जाभिरिव ॥१२२॥

केऽपि [१]कुतूहलकलिता, वन्दितुमितरे विलोकितुं केचित् ।
[२]विकसितसुरतरुसुममिव, [३]मधुपास्त[४]मुपागमन्पौराः ॥१२३॥

(१) कौतुकयुक्ताः । (२) स्मितकल्पद्रुपुष्पमिव । (३) भृङ्गाः । (४) समेताः ॥१२३॥

प्रभोः [१]पदाम्भोजयुगं पुरीजना, [२]नमस्कृतेर्गोचरतां नयन्तः ।
[३]प्रमोदनिर्यन्नयनाश्रुबिन्दुभिः, [४]श्रान्तं [५]पथा संस्नपयन्ति मन्ये ॥१२४॥

(१) चरणकमलयुगलम् । (२) प्रणमन्तः । (३) आनन्देन निस्सरल्लोचनसलिलकणैः । (४) प्राप्तश्रमम् । (५) मार्गातिक्रमणेन ॥१२४॥

[१]मुमुक्षुक्षोणीन्द्रक्रमकमलभक्तिप्रणमन-
क्रियाश्लिष्यत्यांशुप्रसरविलसद्भालफलकाः ।
व्यराजन्त [२]स्वः(श्वः)श्रेयसविहितये [३]क्लृप्ततिलकाः
[४]व्यवस्यन्तः [५]सिद्धिश्रियमिव [६]वरीतुं पुरजनाः ॥१२५॥

(१) सूरिराजचरणकमलनमस्क्रियाकाले मिलद्रजःप्रसरशोभमानललाटपट्टाः । (२) कल्याणकृतये । (३) रचिततिलकाः । (४) उद्यमं कुर्वन्तः । (५) मुक्तिलक्ष्मीम् । (६) परिणेतुम् ॥१२५॥

[१]प्राघुणः [१]श्रवणयोः [३]श्रमणेन्दो-रागमोऽ[४]कमिपुर्[१]राधिभुवोऽथ ।
[५]वह्निबीजविदलद्दलमाला-शालिवारिजवतंसवदासीत् ॥१२६॥

(१) अतिथिः । (२) कर्णयोः । (३) सूरीन्द्रस्य । (४) साहिबखानेन (खानस्य) । (५) स्वर्णस्य विकसत्पत्रपङ्क्तिशोभनशीलकमलोत्तंस इव ॥१२६॥

1. ०पुरोऽधि० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]चतुरङ्गचमूचलनप्रसृतै, [२]रजसां निवहैर्हरितां[३] दयितान् ।
[४]सममाह्वयतीव [६]पुराधिपति-[७]र्यतिराजनिनंसुरसौ प्रचलन् ॥१२७॥

(१) गज-हय-रथ-पदातिलक्षणानि चत्वारि अङ्गानि स्कन्धा यस्यास्तादृश्याः सेनायाश्चलनेन प्रस्थानेन विस्तृतैः । (२) धूलीपटलैः । (३) दिक्पालान् । (४) एककालम् । (५) आकारयतीव । (६) साहिबखानः । (७) सूरिं नन्तुमिच्छुः ॥१२७॥

[१]तत्पुराधिपतिसाधुधरित्री-नाथयोः [२]पथि [३]युगं मिलति स्म ।
[४]कौमुदीदयितनिर्जरराजा-चार्ययोर्द्वयमिवैक[५]कराशौ ॥१२८॥

(१) साहिबखानसूरीन्द्रयोः । (२) मार्गे । (३) युगलम् । (४) चन्द्रबृहस्पतिद्वन्द्वमिव । (५) एकस्मिन् राशौ ॥१२८॥

नमति स्म मुनीश्वरं [१]पुरी-पुर(रु)हूतो[२]ऽमितभक्तिनिर्भरः ।
[३]शिखरीव [४]गरीयसीं श्रियं, फलपङ्क्तेः [५]कलयन्[६]निलातलम् ॥१२९॥

(१) खानः । (२) अतिभक्त्या सोत्सुकः । (३) वृक्ष इव । (४) अतिगुर्वीम् । (५) धारयन् । (६) भूमण्डलम् ॥१२९॥

[१]प्रेक्षाप्रस्खलिताखिलाम्बरचरव्राते [२]प्रणीते क्षणे
पौराणां प्रकरैः [३]प्रवेशितमतिप्रीत्या पुरस्याऽन्तरे ।
[४]आगृह्याऽऽ[५]नयति स्म [६]तत्पुरपतिः सूरीश्वरं [७]स्वान्गृहा-
न्नेतं [८]संप्रतिकाश्यपीपतिरिव [९]श्रीमत्सुहस्तिप्रभुम् ॥१३०॥

(१) तदुत्सवदर्शनात्कौतुकेन स्थिरीभूताः समस्ता विद्याधराणां देवानां वा समूहा यत्र । (२) कृते । (३) प्रवेशं कारितम् । (४) आग्रहं कृत्वा । (५) आनीतवान् । (६) खानः । (७) निजगृहान्प्रति । (८) सम्प्रतिनृपः । (९) सुहस्तिसूरिम् ॥१३०॥

शृङ्गै[१]रम्बरचुम्बिभिर्वि[२]दधतं विघ्नं [३]विवस्वद्गतेः
प्रासादं [४]त्रिदशार्चयेव परमं [५]प्रापय्य भूषाभरम् ।
[६]भूभर्त्रेव [७]हिरण्मयं [८]प्रदलितप्रोन्मादिभावद्विषा
[९]रम्योर्णायुमयं [१०]विनेयनिहितं [११]तेनाऽऽसनं [१२]शिश्रिये ॥१३१॥

(१) अभ्रंलिहैः । (२) कुर्वाणम् । (३) सूर्यगमनस्य । (४) देवप्रतिमया । (५) प्रापयित्वा । प्रापय्येति क्रियारत्नसमुच्चये । (६) राज्ञेव । (७) सुवर्णरचितम् । (८)

1. ०नाथ० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्छिन्नोन्मत्तान्तरङ्गवैरिणा । (९) रम्यं कम्बलिकारूपम् । (१०) शिष्येण प्रस्तृतम् । (११) सूरिणा । (१२) आश्रितम् ॥१३१॥

[१]उपायनीकृत्य [२]मणीहिरण्य-दुकूलदामाभरणादि [३]भूमान् ।
[४]कृताञ्जलिः [५]सम्मदमेदुराङ्गः, स [६]भृत्यवत्[७]कृत्यविदित्युवाच ॥१३२॥

(१) ढौकयित्वा । (२) रत्न-स्वर्ण-क्षौम-मुक्ताहार-भूषणप्रमुखम् । (३) खानः । (४) कृतहस्तयोजनः । (५) हर्षोपचीयमानवपुः । (६) सेवक इव । (७) कार्यज्ञ इव ॥१३२॥

सो[१]ऽहिश्रीमदकब्बरावनिभुजेत्या[२]दिष्टमास्ते मम
[३]द्युम्नस्यन्दनवा[जि]वारणमुखं सम्पूर्य [४]तत्कामितम् ।
[५]श्रीसूरीश्वरहीरहीरविजयं सम्प्रापयेस्त्वं [६]ममा-
ऽभ्यासं(शं) [७]स्वीयमिवाऽऽ[८]द्रियस्व त[९]दिदं विश्रा[१०]ण्यमानं मया ॥१३३॥

(१) अकब्बरपातिसाहिना । (२) कथितम् । (३) द्रव्य-रथा-ऽश्व-गजादिकम् । (४) सूरीणां वाञ्छितम् (५) सूरीन्द्रम् । (६) मम समीपम् । (७) आत्मीयमिव । (८) गृह्णीथ । (९) इदं-प्रत्यक्षं पुरो मुक्तम् । (१०) मया दीयमानम् ॥१३३॥

स्वामिन्*! मे [१]गन्धवाहा इव [२]धृततनवः [३]स्वान्तवेगास्तुरङ्गाः
[४]सोदर्याः [५]कज्जलाद्रेरिव [६]मदमुदितभ्रान्तभृङ्गाः करीन्द्राः ।
[७]त्वष्ट्रेव [८]स्वेन [९]सृष्टा [१०]यदुपतय [११]ईवोद्यद्रथाङ्गाः शताङ्गाः
पत्तिव्राताश्च मूर्ति दधत इव रसा वीरनामान एते ॥१३४॥

(१) वाता इव । (२) मूर्त्तिमन्तः । (३) मनोवेगाः । (४) भ्रातरः । (५) अञ्जनगिरेः । (६) मदवारिपानेन हृष्टा अत एव परितो भ्रमन्तो भ्रमरा येषाम् । (७) विश्वकर्मणा । (८) आत्मना । (९) कृता । (१०) कृष्णा इव । (११) दीप्यमानचक्राः । चक्रम् - आयुधं रथपादश्च । उत्प्राबल्येन यच्चलद्रथाङ्गं रथपादा यत्र । * "मित्र ! ते मोदते मनः" इति वाक्यप्रकाशोक्तवाक्यादत्रापि स्वामिन्निति सम्बोधनाग्रे मे इति आदेशपदम् । विक्रमस्तुतावपि वैतालिककृतौ "स्वच्छेऽन्तर्मानसेऽस्मिन्कथमवनिपते ! तेऽम्बुपानाभिलाष" इत्यपि दृश्यते ॥१३४॥

स्वर्णं [1]तदास्ते [१]भवदङ्गिचङ्गिम-श्रीस्पर्द्धि[2]शिक्षां [२]विवितीर्षवो [३]रुषा ।
निक्षिप्य [४]वह्नौ च [५]घनै[६]र्निहत्य, च्छिन्दन्ति [७]टङ्कैरिव यत्क[८]लादाः ॥१३५॥

(१) श्रीमद्वपुषश्चारित्रलक्ष्मीपरिस्पर्द्धि राजते । "जिनवचनपद्धतिरुक्तिचङ्गिममालिनी"ति पद्मसुन्दरकृतिः । (२) दातुमिच्छवः । (३) कोपेन । (४) अग्नौ । (५) घनप्रहारैः । (६) हत्वा । (७) आयसटङ्कनकैः । (८) स्वर्णकाराः ॥१३५॥

1. तदेतद्भवद० हीमु० । 2. ०शिक्षाविवितीर्षवो हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]स्फूर्जज्योतिर्जलदपथवद्वृन्दमेतन्मणीनां
मुक्तापङ्क्तिस्ततिरिव सतां [३]शुद्धिमत्तां वहन्ती ।
यानव्राता यतिपशिबिकाद्या [४]विमाना इवाऽमी
वासांस्येतान्यपि [५]सुमनसामंशुकानीव सन्ति ॥१३६॥

(१) दीप्यमाना दीप्तिर्नक्षत्रराजी च यत्र । (२) गगनमिव । (३) अतिनिर्मलताम् । (४) विमानशब्दः पुंक्लीबलिङ्गः । (५) देवदूष्यानीव ॥१३६॥

[१]अनुगृहाण गृहाण [२]पुरस्कृतं, त्वमिद[३]मन्यदपीहितमात्मनः ।
विफलयन्ति यतः [४]सुजनाः सुर[५]-वनिरुहा इव न क्वचिदर्थनाम् ॥१३७॥

(१) अनुग्रहं कुरु । (२) अग्रे ढौकितम् । (३) पुनरन्यदपि स्वस्येप्सितं कथयित्वा गृहाण । (४) सज्जनाः । (५) कल्पवृक्षा इव ॥१३७॥

[१]अलिकचुम्बिकराम्बुरुहद्वयः, प्रकटयन्विनयं स [२]विनेयवत् ।
इदमु[३]दीर्य [४]वचोव्यवहारतो, [५]निववृते श्रमणाधिपतेः पुरः ॥१३८॥

(१) भालस्थलस्थायिकरकमलयुगलं यस्य । कृताञ्जलिरित्यर्थः । (२) शिष्य इव । (३) कथयित्वा । (४) वाग्व्यापारात् । (५) निवृत्तः ॥१३८॥

[१]गृह्णतो गिर[२]मुदीत्वरदन्त-व्रातदीधितिरभासत सूरेः ।
निर्गता बहिरिव [३]प्रणिधान-क्षीरनीरधिलसल्लहरीव ॥१३९॥

(१) वदत इत्यर्थः । (२) उद्गच्छन्ती दशनव्रातानां कान्तिः । (३) ध्यानसमुद्रस्फुरद्वीचीव ॥१३९॥

[१]कलिक्षितीन्द्रानिव [२]दुर्बलश्रुती[1]-न्व[३]क्रीकृतास्यान्धृ[४]तचापलान्पुनः ।
[५]क्षमां सकोपानिव निघ्नतस्त्यजे-द्दूरं तुरङ्गान्स्पृहय[६]ञ्शिवश्रियः ॥१४०॥

(१) कलिकालभूपालानिव । (२) परापवादश्रृण्वतः पिशुनवचनाकर्णनपरान्, लघुकर्णान् । (३) नक्रीकृतमुखान् । परोपकारादिकरणे विमुखान् । (४) वक्रगामिनः । परदारगमनादिचापल्यभृतः । (५) पृथ्वीं क्षान्तिं च । (६) कल्याणलक्ष्मीं सिद्धिलक्ष्मीं च ॥१४०॥

[१]मदोद्धतत्वं [२]मधुपानुषङ्गितां, [३]मातङ्गताम[४]श्रयशाखिघातिताम् ।
यस्माद्[५]वहन्ते नृपते ! मतङ्गजाः, सतां तदेषां न [६]शु[2]भाय सङ्गमः ॥१४१॥

(१) उन्मत्तताम् । (२) मद्यपायिभिः भृङ्गैश्च सङ्गिताम् । (३) चाण्डालतां गजत्वं च ।

1. ०तींश्चक्री० हीमु० । स चाशुद्धः पाठः । 2. शिवाय हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) पदं स्थानं ददते तेषां पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रादिविस्तारवतां कुटुम्बभाजां तरुणां च हननशीलताम् । (५) बिभ्रते । (६) न मोक्षाय ॥१४१॥

[1]द्यूतकृदिवाऽ[2]क्षविलस-[3]न्नरियुक्तः [4]पिशुनवत्पुराधीश ! ।
[5]निर्वृण्यद्भिः सद्भिः, [6]शताङ्गराशिर्न [7]काम्येत ॥१४२॥

(१) अक्षदेवी । (२) अक्षेन रथावयवविशेषेण प्रासकैर्वा विलसन्-शोभमानः क्रीडंश्च । (३) आराः सन्त्यस्मिन्नित्यरिचक्रं तेन युक्तः, वैरिभिश्च कलितः । (४) प्रायः पिशुनानां बहवो वैरिणः । (५) मोक्षं गच्छद्भिः । (६) रथपङ्क्तिः । (७) नाऽभिलष्येत ॥१४२॥

राजन् ! [1]हुताशा इव [2]हेतिभीषणाः, पुनर्[3]गिरीशा इव [4]रुद्रताङ्किताः ।
[5]शान्तात्मनामा[6]र्द्रहृदां महात्मनां, [7]नौचित्यमेते दधते पदातयः ॥१४३॥

(१) अग्नय इव । (२) हेतिभिः शस्त्रैर्ज्वालाभिश्च भयङ्कराः । (३) ईश्वरा इव । (४) रुद्रत्वेन चण्डतया युताः । (५) शमवानात्मा स्वरूपं येषाम् । (६) दययार्द्रं मनो येषाम् । (७) न योग्यताम् ॥१४३॥

माद्यन्त्य[1]ष्टापदैः पृथ्वी-कान्त ! [2]कैतवजीविनः ।
सन्तः [3]संयमसाम्राज्या, न पुन[4]र्नयचक्षुषः ॥१४४॥

(१) स्वर्णैः शारिफलैश्च । (२) द्यूतकाराः । (३) चारित्रस्य सम्यगाधिपत्यं येषाम् । (४) न्याय एव दृग्येषाम् ॥१४४॥

[1]धामसाधिमभृतः [2]कलयन्त्यः, [3]स्त्रीत्वमात्मनि पुनर्वनितावत् ।
[4]त्यक्तगेहगृहिणीद्रविणानां, [5]प्रीणयन्ति न मनो [6]मणिमालाः ॥१४५॥

(१) कान्तीनां चारिमाणं बिभ्रतीति, गृहेषु साधुतां दधते । (२) स्त्रियः । (३) स्त्रीलिङ्गतां वनितात्वं च । (४) मुक्तगृहस्त्रीद्रव्यानाम्(णाम्) । (५) तोषयन्ति । (६) रत्नश्रेणी ॥१४५॥

बिभ्राणा अपि [1]बाह्यतो [2]विशदतां [3]छिद्रं दधत्यन्तरा
तेनाऽमी [4]उचिता न मौक्तिकगणा [5]द्वेधाऽपि [6]शुद्धात्मनाम् ।
भूप ! [7]स्तम्भजुषो [8]जडात्मवदमी यानव्रजा [9]वीवधै-
[10]र्बाधन्ते च परां[11]स्ततो मतिमतामेभिर्न कृत्यं पुनः ॥१४६॥

(१) बहिः । (२) उज्ज्वलत्वम् । (३) दोषमपगुणम् । (४) योग्या । (५) अन्तर्बहिरपि । (६) निर्मलस्वरूपाणाम् । (७) स्तम्भो-जाड्यं स्थूणा च । (८) मूर्ख इव । (९) भारैः । (१०) पीडयन्ति । (११) तस्मात्कारणात् ॥१४६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमीन्दो![१]ऽसिचया एते, उचिता एव [२]शस्त्रिणाम् ।
भवादृशां न वाऽस्माकं, [३]शमसौहित्यशालिनाम् ॥१४७॥

(१) वस्त्राणि खड्गगणाश्च । (२) शस्त्रधारिणाम् । (३) शान्तरसतृप्त्या शोभ[न]शीला-नाम् ॥१४७॥

[१]एष [२]निपीय [३]कवेरिव [1]वाणीं, [४]श्लेषविशेषवतीं व्रतिभर्त्तुः ।
[५]प्रीतमना इति तं प्रति वाणीं, [६]वासयति स्म पुन[७]र्वदनाब्जे ॥१४८॥

(१) खानः । (२) सादरं श्रुत्वा । (३) काव्यकर्तुः । (४) श्लिष्टार्थातिशयकलिताम् । (५) हृष्टचेताः । (६) वासितवान् । (७) मुखपद्मे ॥१४८॥

याच्ञा मे क्रियतां [१]फलेग्रहिरसौ [२]द्रोणिद्रुमाणामिव
[४]प्रोन्निद्रा [३]मधुना स तुष्यति [५]यथा [६]पृथ्वीमहेन्द्रो [७]मयि ।
[८]इत्यावेद्य [९]निवृत्तिमीयुषि पुराधीशे [१०]वशीन्द्रो [११]गिरं
जग्रा[१२]होष्णऋतौ [१३]कृतव्यवसितौ मेघो[१४]ऽम्बुधारामिव ॥१४९॥

(१) सफला । (२) तरुराजीव । (३) वसन्तेन फलयुक्ता क्रियते । (४) सस्मिता विकस्वरा । (५) येन प्रकारेण । (६) साहिः । (७) मयि सन्तुष्टिमाधत्ते । (८) इति कथयित्वा । (९) निवृत्ते सति । (१०) सूरिः । (११) बभाषे (१२) निदाघसमये । (१३) रचिता आत्मना तापकरणादिका व्यापृतिर्येन । (१४) जलवृष्टिम् ॥१४९॥

[१]रक्षामो [२]जगदङ्गिनो न च [३]मृषावादं [४]वदामः क्वचि-
[५]न्नाऽदत्तं [६]ग्रहयामहे [७]मृगदृशां [८]बन्धूभवामः पुनः ।
[१०]गृह्णीमो न [९]परिग्रहं [११]निशि पुन[१२]र्नाऽश्नीमहि [१३]ब्रूमहे
[१४]ज्योतिष्कादि न [१५]भूषणानि न पुन[१६]र्दध्मो नृपैतान्व्रतान् ॥१५०॥

(१) स्वात्मवत्पालयामः । (२) सर्वप्राणिनः । (३) असत्यम् । (४) ब्रूमः । (५) केनाऽप्यविश्राणितम् । (६) न गृह्णीमः । (७) सर्वासां वनितानाम् । (८) सहोदरीभवामः । विश्वास्त्रियो भगिनीतुल्याः । (९) द्रव्यादिधान्यादिवस्तूनां सङ्ग्रहम् । (१०) न कुर्मः । (११) रात्रौ । (१२) न भुञ्जामः । (१३) न कथयामः । (१४) निमित्तलक्षणचन्द्रग्रहादिकस्याऽपि । (१५) आभरणानि । (१६) न परिदध्मः ॥१५०॥

[१]वाहाः पञ्चमहाव्रतानि [२]करिणः [३]क्षान्त्यादिधर्माः पुनः
[४]शीलाङ्गाख्यरथा [५]नवद्वयमिताः पार्श्वे सहस्राः सदा ।

1. वाचं हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६]मुक्तास्वर्णमणीगणाः पुनरमी येषां [७]मुनीनां [८]गुणा
[९]यानान्य[१०]द्भुतभावनाश्च [११]यशसां पुञ्जाः [१२]पुरोगामिनः ॥१५१॥
[१]विश्वस्फूर्जदमारिशिष्टपटहा [२]मोहाद्यरिध्वंसिनः
[३]साम्राज्यं दधतेऽनिशं [४]दशदिशां ये [५]सार्वभौमा इव ।
ये [६]श्वेतांशुकशालिनः [७]कुमुदिनीकान्ता इव क्ष्मापते !
ते [८]प्राप्ताखिलकामिता इव वयं नाऽऽशास्महे किञ्चन ॥१५२॥ युग्मम् ॥

(१) अश्वाः । (२) गजाः । (३) 'खंती मद्दवअज्जवे'त्यादि दशप्रकारसाधुधर्माः । (४) शीलाङ्गनामानः स्यन्दनाः । (५) अष्टादशसहस्राः । (६) मौक्तिक-कन[क]-रत्नव्रजाः । (७) साधूनाम् । (८) सप्तविंशति गुणाः:- षड्व्रतपालनं, षट्कायरक्षा, पञ्चेन्द्रियनिग्रहः, निर्लोभता १, क्षमा १, भावसत्यम् १, क्रियाविशुद्धिता १, मनोवाक्कायजयः ३, संयमयोगयुक्तता १, शीतादिवेदनासहनं १ उपसर्गसहनानि च । (९) वाहनानि । (१०) अनित्यादिद्वादशभावनाः । (११) यशोराशयः । (१२) अग्रे गमनशीलाः ॥१५१॥

(१) त्रिभुवने वाद्यमाना दयाशिक्षारूपा आनकाः । (२) मोहप्रमुखरिपुघातकाः । (३) राजराजत्वम् । (४) दशानामप्याशानाम् । (५) चक्रवर्तिन इव । (६) श्वेतैर्वसनैः किरणैश्च शालन्ते इत्येवंशीलाः । (७) चन्द्राः । (८) अधिगतसमग्रकामाः । (९) न काङ्क्षामः ॥१५२॥

[१]श्रीरामे [२]भरतेनेव, [३]भक्तेन [४]स्वामिनि त्वया ।
[५]इदं युदुच्यते सर्वं, तद[७]र्ह[६]त्यौचितीं यतः ॥१५३॥

(१) रामचन्द्रे । (२) केकयीतनयेन । (३) सेवासक्तेन । (४) अकब्बरे । (५) प्रदानादि । (६) योग्यताम् । (७) प्राप्नोति ॥१५३॥

[१]उपकर्तुं [२]जलदा इव, [३]परपुष्टा इव पुनः [४]प्रियं [५]वक्तुम् ।
[६]स्नेहितुमिव [७]दृग्पद्माः, प्रायः [८]प्रभवन्ति भुवि सुजनाः ॥१५४॥

(१) उपकारं कर्त्तुम् । (२) मेघा इव । (३) कोकिला इव । (४) मिष्टम् । (५) भाषितुम् । (६) स्नेहं कर्त्तुम् । (७) नयनकमलाः । उक्तं च - "पाण्योरुपकृति सत्त्वं स्त्रिया भग्नशुनो बलम् (?) । जिह्वाया दक्षतामक्ष्णोः, सखितां शिक्षयेत्सुधीः" ॥ इति वचनात् । (८) समर्थीभवन्ति ॥१५४॥

[१]किं बहुनाऽऽ[२]शुगसूनो-रि[३]वा[५]ऽऽत्मभर्त्तुर्विधातुरा[४]देशम् ।
[६]नीतिमतो [७]दाशरथे-रिव [८]राजन् ! [९]धर्मलाभस्ते ॥१५५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) किं बहूक्तेन ? । (२) पवनपुत्रस्य-हनुमत इव । (३) स्वस्वामिनः । (४) आज्ञाम् । (५) कर्त्तुः । (६) न्यायवतः । (७) रामस्येव । (८) हे साहिबखान ! (९) धर्मला[भ]नाम्ना अस्माकं तवाऽऽशीरस्तु ॥१५५॥

[1]तदुदि[2]तमधिगत्य [3]चित्रम[4]न्त-र्दधता तेन [5]पुरीपुरन्दरेण ।
इव [6]कज[7]मलिनाऽथ चुम्बता, [8]तच्चरणयुगं [9]यतिकुञ्जरो [10]व्यसर्जि ॥१५६॥

(१) श्रीहीरविजयसूरिप्रोक्तम् । (२) ज्ञात्वा । (३) विस्मयम् । (४) मनसि । (५) खानेन । (६) कमलम् । (७) भृङ्गेन(ण) । (८) सूरिपदयुग्मम् । (९) सूरीन्द्रः । (१०) विसर्जितः ॥१५६॥

[1]वसति[2]मसुमच्चेतांसीव प्रविश्य महोत्सवं
[3]वचनविषयातीतं [4]स्फीतं वितन्वति पूर्जने ।
[5]सरसिरुहभूः [6]प्रोज्जृम्भाम्भोरुहीव सुखं स्थितः
कतिचन दिनांस्तस्मिन्सूरीश्वरोऽगमयत्पु[7]रे ॥१५७॥

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये अकब्बर-साहिपुरस्तदाकारितदूतद्वन्द्वागमनविज्ञपनतत्प्रेषणाकमिपुरपतिपाश्र्वागमनश्राद्धाकारणसूरिपार्श्वप्रस्थापनतदागमनकथनसूरिप्रस्थानशुभशकुनावलोकानाकमिपुरागमनखानसम्मुखागमनात्ममन्दिरप्रापणगजाश्वादिढौकनतन्निषेधखानचमत्कृतिकरणवसतिप्रवेशनादिदिवर्णन एकादशः सर्गः ॥११॥ ग्रन्थाग्रं २६०॥

(१) उपाश्रयम् । (२) जनमनांसीव । अत्र एकवचनस्य बहुवचनोपमाऽस्ति । रघुकाव्येऽपि "वैदर्भनिर्दिष्टमथो कुमारो नारीमनांसीव चतुष्कमन्त"रिति । (३) अतिशायित्वाद्वाग्गोचरमतिक्रान्तम् । वक्तुमशक्यम् । (४) उपचीयमानम् । (५) विधाता । (६) स्मेरकमले । खण्डप्रशस्तौ इत्युक्तमस्ति-"ताम्यंस्तामरसान्तरालवसतिर्देवः स्वयंभूरभू" दिति । (७) अहम्मदावादे ॥१५७॥

इत्येकादशः सर्गः ॥११॥ ग्रन्थाग्रं - २८७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐँ नमः

अथ द्वादशः सर्गः ॥

[१]सूरिराजोऽथ [२]सम्प्रस्थितस्[३]तत्पुरात्, [४]मेवडाभ्यां [५]पुरोगामुकाभ्यां युतः ।
[६]श्लोकचन्द्रातपश्वेतिताशामुखो, [७]यामकाभ्यां शशी [८]पूर्वशैलादिव ॥१॥

(१) सूरीन्द्र[:]। (२) प्रचलितः । (३) <u>अकमि</u>पुरात् । (४) <u>मेवडा</u> इति लोकप्रसिद्ध-नामाभ्याम् । (५) अग्रे चलद्भ्याम् । गमनशीलाभ्याम् । [1]सर्गारम्भप्रथमकाव्यस्येदम् (काव्यमिदम्) । (६) कीर्त्तिचन्द्रिकया विशदीकृतदिङ्मुखः । (७) पुनर्वसूभ्यां नक्षत्राभ्याम् । (८) उदयगिरितः ॥१॥

कुत्रचि[१]द्द्रोणिनी [२]स्त्रग्विणी [३]शालिनी, यत्र [४]लोकंपृणा क्वापि [५]वातोर्मिका ।
[६]हंसमाला क्वचित् क्वापि [७]कन्या [८]मृगी, कुत्रचिन्[९]मालती [१०]पुष्पिताग्रा पुनः ॥२॥

क्वापि [२]शार्दूलविक्रीडितं दृश्यते, क्वापि [१]दृप्यद्भुजङ्गप्रयातं पुनः ।
[३]सूरिशीतद्युतेः [४]सर्पतः [५]पद्धतौ, [६]छन्दसां जातिवत्[७]कुञ्जभूमिः [८]स्म भूत् ॥३॥ युग्मम् ॥

(१) छेका मत्ता च स्त्री वाणिनी छन्दोजातिश्च । (२) पुष्पानां(णां) मुक्तानां वा मालाहारस्तद्युता स्त्री वा सृग्विणीजातिश्च । (३) शोभनशीला जातिश्च । (४) लोकान्पृणतीति । (५) वायुकल्लोलः जातिश्च । (६) मरालानां राजी । क्वचित् जातिश्च । (७) कुमारिका जातिश्च । (८) मृगाङ्गना जातिश्च । (९) पुष्पजातिः । (१०) कुसुमितशिखरा जातिश्च ॥२॥

(१) दर्पवद्भवतां सर्पाणां गमनं जातिश्च । (२) सिंहानां चित्रकायानां वा खेलितं जातिश्च । (३) सूरीन्द्रस्य । (४) प्रचलतः । (५) मार्गे । (६) छन्दोजातिवत् । (७) वनभूः । (८) स्म भूत्-बभूव । स्मयोगेऽप्यटो लोपमिच्छन्ति केचिदिति । स्म भूदिति सारस्वतव्याकरणे ॥३॥

[१]निम्बजम्बीरजम्बूकदम्बद्रुमान्, [२]स्मेरमाकन्दकारस्करं [३]कीरवत् ।
लङ्घयन्ग्रामसीमापुरीः स प्रभुः, प्राप्तवान्[४]पत्तनस्योप[५]कण्ठं प्रभुः ॥४॥

(१) पिचुमन्दः, जम्बीरः-प्रसिद्धः, जम्बू-श्यामफलः, कदम्बो-नीपः एत एव तरवस्तान् । (२) विकचाम्रतरुम् । (३) शुकः । (४) <u>अणहिल्लपत्तन</u>स्य । (५) उपान्तम् ॥४॥

[१]श्रोत्रपत्रैर्निपीय प्रभोरा[२]गमा-मेयपीयूषमा[३]नन्दमेदस्विनः ।
[४]तत्पदाम्भोजम[५]भ्येत्य भेजुर्जनाः, [६]पान्थसार्था इव [७]स्मेरदुर्वारुहम् ॥५॥

---

1. इयं पङ्क्तिः टिप्पण्याः पूर्वं स्यादिति सम्भाव्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कर्णपर्णैः । (२) आग[म]नरूपमप्रमेयममृतम् । (३) प्रमोदोपचिताः । (४) सूरिचरणकमलम् । (५) आगत्य । (६) पथिकव्रजाः । (७) विकसत्तरुम् । "स्मेरदम्भोरुहारामपवमानमिवालिनः(निलः)" इति पाण्डवचरित्रे ॥५॥

[1]आजगामाऽथ [2]कम्माङ्गजन्मा यति-क्ष्मातलाखण्डलः सम्मुखं तत्प्रभोः ।
सूरिणाऽप्य[3]र्णवेनेव [4]शीतद्युतेः, [5]पिप्रियेऽ[6]द्वैतमस्योद[7]यं पश्यता ॥६॥

(१) आगतः । (२) श्रीविजयसेनसूरिः । (३) समुद्रेणेव । (४) विधोः । (५) प्रमुदितम् । (६) असाधारणम् । (७) वैभवप्रादुर्भावम् ॥६॥

[1]हीरसूरिक्रमद्वन्द्वनम्रीभव-त्तन्मुखं [4]प्राप कामप्य[2]नन्यां [3]श्रियम् ।
[5]कल्पितानल्पसख्यः कथञ्चिन्मिथः, [6]सङ्गतः [7]पङ्कजेनेव [8]शीतद्युतिः ॥७॥

(१) श्रीहीरविजयसूरिचरणयुगले नमनशीलं भवद्विजयसेनसूरिमुखम् । (२) असाधारणाम् । (३) शोभाम् । (४) लेभे । (५) निर्मितं मिथोऽतिशायि मैत्र्यं येन । (६) मिलितः । (७) कमलेन सार्द्धम् । (८) विधुः ॥७॥

[1]प्रश्नयामास [2]भट्टारकाधीश्वरो-[3]ऽनामयादि [4]स्वयं तस्य [5]सूरीशितुः ।
[6]तेन रेजे पुनः [7]सोऽधिकं [9]सूनुना, [8]यौवराज्यान्वितेनेव [10]भूवासवः ॥८॥

(१) पृच्छति स्म । (२) श्रीहीरविजयसूरीश्वरः । (३) नीरोगताप्रमुखम् । (४) आत्मना । (५) विजयसेनसूरेः । (६) आचार्येण । (७) हीरविजयसूरिः । (८) यौवराज्ययुक्तेन । (९) पुत्रेण । (१०) भूशक्रः ॥८॥

[1]ने(नै)ककायान्प्रणीय स्वयं दर्शयन्, द्वा[2]दशार्चिः [3]स्वचातुर्यमुर्व्यामिव ।
[4]शिष्यसार्था मिथो नव(व्य)काव्यैस्ततः, संस्तुवन्ति स्म[1] तौ [5]सूरिशार्दूलयोः(लकौ) ॥९॥

(१) अनेकान्देहान् विधाय । "[2]निषेधार्थवाची(चि)नकारस्यान्नादेशो न स्यान्नैकधेत्यादौ" इति प्रक्रियाकौमुद्याम् । (२) बृहस्पतिः । (३) निजनिपुणताम् । (४) विनेयवर्गाः । (५) द्वयोः सूरीन्द्रयोः (द्वौ सूरीन्द्रौ) ॥९॥

[1]तत्समीक्षोत्सुकीभूतदिङ्नायके, पौरपुञ्जैः प्रणीते महाडम्बरे ।
[2]द्यामिवे[3]न्द्रो [4]जयन्तेन [5]भट्टारक-स्तत्र [6]सूरीन्दुना प्राविशत्पत्तनम् ॥१०॥

(१) पौरकृतमहोत्सवालोकनोत्कण्ठितीभूता दिक्पाला यत्र । (२) स्वर्गमिव । (३) शक्रः । (४) इन्द्रपुत्रेण । (५) हीरसूरिः । (६) आचार्येन(ण) ॥१०॥

---

1. तौ सूरिभूभास्करौ हीमु० ।
2. हीमु०टीकान्तर्गतं 'निषेधार्थनकारस्य०' इति प्रक्रियाकौमुद्युद्धरणं संशोधनार्हम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]देशनामन्दिरं श्रीजिनेन्दोः पुरो, व्यालुलोके [२]वसत्यां व्रतीन्द्रस्ततः ।
[३]आप्तमा[४]राद्धुकामेव [५]लोकत्रयी, [1]यत्र [६]वप्रत्रयी कैतवादी[७]युषी ॥११॥

(१) समवसरणम् । (२) उपाश्रयमध्ये । (३) जिनम् । (४) सेवितुमभिलषन्ती । (५) त्रिलोकी । (६) प्राकारत्रिकदम्भात् । (७) आगता ॥११॥

यत्र वापीषु पश्यन्ति [१]शंभुश्रियं, [२]वारिदेव्यः [३]स्मिताम्भोजनेत्रैरिव ।
[४]अर्हतेव [५]स्ववाचामृतं तर्जितं, सेवितुं [६]तं पुनस्ता[७]सु [८]संतिष्ठते ॥१२॥

(१) जिनलक्ष्मीम् । (२) जलदेवताः । (३) विकचकमलरूपैर्नयनैः । (४) जिनेन्द्रेण । (५) निजगिरा । (६) अर्हन्तम् । (७) वापीषु । (८) तिष्ठति ॥१२॥

यत्र सोपानपङ्क्तिः [१]शिवाह्वं [२]महा-गेहमारोढुमूहे[३]ऽधिरोहिण्य[४]भात् ।
[५]निम्नगेत्यात्मकौलीननिर्मृष्टये, [६]जाह्नवीवो[७]त्तरङ्गा[८]गताऽर्हत्पदे ॥१३॥

(१) मुक्तिनाम । (२) प्रौढभवनम् । (३) निःश्रेणिका । (४) शुशुभे । (५) नीचगामिनीति निजनिन्दानिवारणाय । (६) गङ्गा । (७) उच्चैरुच्चैस्तराः कल्लोला यस्याः । (८) जिनस्य चरणे स्थाने वा ॥१३॥

[१]यत्र [२]सृष्टैरिव [३]श्रेयसे तोरणैः, [४]सार्वविश्वाधिपत्याभिषेकक्षणे ।
[५]येन [६]नेतुं जनान्मु[७]क्तिपुर्यामिवो[८]द्घाटितैर्द्वारवारैः पुनः पुस्फुरे ॥१४॥

(१) समवसरणे । (२) रचितैः । (३) कल्याणाय । (४) जिनस्य त्रैलोक्यस्य अधिपतिताया अभिषेकस्य प्रस्तावे । (५) जिनेन । (६) प्रापयितुम् । (७) मोक्षनगरे । (८) मुत्कलीकृतैः ॥१४॥

[१]शंभुमु[२]द्दिश्य मुक्तैः [३]स्मरेणा[४]ऽऽशुगै-र्मोघ[५]तां किं [६]गतैरन्त[७]रेऽवस्थितैः ।
[८]ढौकितैरा[९]त्मनः किं [१०]वपुर्लिप्सया, [११]पुष्पचापेन वा[१२]ऽभ्राजि [१३]यस्मिन्सु[१४]मैः ॥१५॥

(१) शंभुर्जिनः शिवश्च । (२) ईश्वरे वि(वै)रितया तदुद्देशेन मुक्ताः(क्तैः) । (३) कामेन । (४) बाणाः(णैः) । (५) निष्फलताम् । (६) प्राप्तैः । (७) अर्धमार्ग एव स्थितैः । (८) प्राभृतीकृतैः । (९) स्वस्य । (१०) शरीरस्य प्राप्तुमिच्छया । (११) स्मरेण । (१२) शुशुभे । (१३) समवसरणैः(णे) । (१४) कुसुमैः ॥१५॥

[१]धीरिमाधःकृते [२]शीलतीव [३]त्रपा-सङ्कुचद्गौरवे [४]स्वर्गिरौ [५]विष्टरे ।
यत्र [६]शौर्येण [७]निर्जित्य बन्दीकृतः, श्रीजिनेनेव [८]पञ्चाननोऽधः स्थितः ॥१६॥

---

१. वप्रत्रितयीकैतवात्समीयुषी हीमु० । एतत्पाठो न योग्यः प्रतिभाति, छन्दोभङ्गकारित्वात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) धैर्येणाऽधरिते । (२) सेवमाने इव । (३) लज्जया लघूभवदुच्चैस्तरत्वं यस्य । (४) सुमेरौ । (५) सिंहासने । (६) शूरतया । (७) परिभूय । (८) सिंहः । (९) नीचैर्विभागे ॥१६॥

अर्हता [1]त्रातुमा[2]त्माश्रितान्[3]संसृते-[4]र्भीलुकान्किं [5]चतुर्दिक्समेतान्जनान् ।
यत्र [6]तेषां [7]चतस्त्रो गतीर्वा [8]निरा-कर्त्तुमेताश्चतस्त्रः कृता [9]मूर्त्तयः ॥१७॥

(१) रक्षितुम् । (२) स्वशरणीभूतान् । (३) संसारात् । (४) बिभेतीत्येवंशीलाः-(लान्) । (५) चतसृभ्यो दिग्भ्य समागतान् । (६) जनानाम् । (७) नरकादिकाः । (८) नाशयितुम् । (९) देहाः ॥१७॥

भाति भामण्डलं [1]राजवैरादिवा-ऽऽ[2]प्तस्य पृष्ठे प्रविष्टः प्रणश्या[3]ऽरुणः ।
ब्रह्मणा यत्र मुक्तः किम[4]र्चिर्व्रजो, [5]विश्वकृत्तक्षिताङ्गस्य वा [6]भास्वतः ॥१८॥

(१) राज्ञा-नृपेण चन्द्रेण च विरोधात् । (२) विस्व(श्व)स्तस्य मित्रस्य वा । (३) सूर्यः । (४) कान्तिपूरः । (५) देववर्द्धकिनोल्लि[खि]तवपुषः । (६) भास्करस्य । "आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लि[खि]तो विभाती"ति रघुकाव्ये ॥१८॥

किं [1]प्रिये [2]पूर्णिमाशर्वरी [3]चन्द्रिका, [4]वक्त्रचन्द्रस्य [5]पत्युर्द्विपार्श्वीं श्रिते ।
[6]कुन्तलैर्न्य[7]क्कृते वा[8]ऽनुनेतुं स्वयं, राजतोऽभ्यर्णयो[9]श्चा[10]मराली प्रभोः ॥१९॥

(१) स्त्रियौ । (२) राकारात्रिः । (३) ज्योत्स्ना । (४) वदनविधोः । (५) भर्त्तुः । (६) केशैः । (७) तिरस्कृते । (८) प्रसादयितुम् । (९) समीपयोः । (१०) चामरश्रेणिः ॥१९॥

[1]आतपत्रत्रयी यत्र रेजे प्रभोः, [2]क्ष्माम्बरोद्योतकृत्त्वं[3]त्प्रसत्त्याऽभवम् ।
मां त्रिलोक्यां पुन[4]र्द्योतकं त्वं [5]सृजे-तीव वक्तुं [6]त्रिमूर्त्तिः श्रितोऽयं शशी ॥२०॥

(१) छत्रत्रयी । (२) पृथ्वीगगनयोरुद्योतकृतम् । (३) तव प्रसादेन । (४) उद्योत-कारकम् । (५) कुरु । (६) तिस्त्रो मूर्त्तयो देहो यस्य ॥२०॥

[1]बिभ्रतीभिः [2]खगान्यत्र [3]विभ्राजिन-[4]श्चन्द्रहासप्रसूनप्रताना[5]न्वहन् ।
[6]चैत्यशाखी शिखाभिः [8]श्रिताभि[7]र्नभः, [9]स्वर्गिवृक्षान्विजेतुं किमु[10]द्यच्छते ॥२१॥

(१) धारयन्तीभिः । (२) पक्षिणो बाणांश्च । (३) शोभनशीलान् । (४) शशिनो हसितस्य श्वेतिम्ना तुल्यानां कुसुमानां स्तबकान् । पक्षे-चन्द्रहासः खड्गः । (५) धारयन् । (६) चैत्यतरुः । (७) गगनम् । (८) गताभिः । (९) कल्पतरून् । (१०) उद्यमं कुरुते ॥२१॥

[1]देशनामन्दिरे यत्र [2]जाम्बूनदः, [3]शक्रकेतुः [4]पुरश्चुम्बति[5] स्माऽम्बरम् ।
कौतुकान्ना[6]किलोकं [7]दिदृक्षुः क्षिते-स्तीर्थभर्त्तुः [8]प्रसर्पन्प्रतापः किमु ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) समवसरणे । (२) स्वर्णमय: । (३) इन्द्रध्वज: । (४) अग्रे । (५) आकाशमाश्रयति । (६) स्वर्गम् । (७) द्रष्टुमिच्छु: । (८) गच्छन् ॥२२॥

[1]विप्रलब्धं विधात्रेव [2]रूपश्रिया, स्वं [3]त्रिदश्यो[4]ऽवयान्ति स्म [5]यद्वीक्षणात् ।
यत्र भान्ति स्म ते शालभञ्जीभरा:, [6]श्रीसुताम्भोजदृग्विभ्रमभ्राजिन: ॥२३॥

(१) वञ्चितम् । (२) स्वरूपशोभया । (३) देवाङ्गना: । (४) जानन्ति । (५) पुत्रिकालोकनात् । (६) रतिवद्विलासेन शोभनशीला: ॥२३॥

[1]आत्म(प्त)लक्ष्मीलताया इवो[2]द्यत्फलं, वीक्ष्य [3]विश्वेशितुर्दे[4]शनावेश्म तत् ।
[5]गोचरीस्यान्न [6]वाक्चेतसोर्य: क्वचित्-[7]संमदं [8]विन्दति स्म व्रतीन्द्र: स तम् ॥२४॥

(१) जिनश्रीवल्ल्या: । (२) प्रकटीभवत्फलम् । (३) जिनस्य । (४) समवसरणम् । (५) विषयो न स्यात् । (६) वाङ्मनयो:(सो:) । (७) हर्षम् । (८) प्राप्नोति स्म ॥२४॥

[1]तीर्थकृद्वक्त्रचन्द्रेक्षणोद्वेलिता-नन्दसिन्धोरिवोद्भूतनूता(त्ना)मृतै: ।
[2]स्वेन [3]तत्रा[4]ऽभिनोनूय नव्यै: स्तवै:, श्रीजिनं [5]नेमिवान्हीरसूरीश्वर: ॥२५॥

(१) तीर्थङ्करस्य मुखेन्दोरवलोकनोद्वेलद् उत्प्राबल्येन वेलामतिक्रान्त:-वृद्धिं प्राप्तो य: प्रमोदसागरस्तस्मात्प्रकटीभूतैर्नवीनपीयूषै: । (२) आत्मना । (३) समवसरणे । (४) स्तुत्वा । (५) प्रणमति स्म ॥२५॥

[1]सृष्टसर्वज्ञसङ्ग: [2]सुधाधामव-द्वासरान्कांश्चिदत्रा[3]ऽतिवाह्य प्रभु: ।
साधुवर्गैस्ततो[4]ऽन्वीयमान: पुरात्, प्रस्थित: पूर्वदेशं प्रति [5]प्रीतिमान् ॥२६॥

(१) कृतस्तीर्थकरेण शङ्करेण च सङ्गो येन । (२) चन्द्र इव । (३) अतिक्रम्य । (४) अनुगम्यमान: । (५) हृष्टचित्त: ॥२६॥

[1]सीमभूमौ [2]वटात्पल्लिकायास्ततो, [3]भावडस्याऽऽत्मभूसूरिशीतद्युते: ।
[4]चैत्यम[5]र्चामिव [6]श्रीजिनेन्दो[7]र्गुरो:, पादुके[1] स्तूप[8]मभ्येत्य स [9]प्राणमत् ॥२७॥

(१) पत्तनोपान्तदेशे । (२) वटपद्वि(ल्लि)कायाम् । (३) श्रीविजयदानसूरे: । (४) प्रासादम् । (५) प्रतिमाम् । (६) तीर्थकृत: । (७) स्वगुरोर्विजयदानसूरे: पादुके स्तूपम् । (८) आगत्य । (९) नमति स्म ॥२७॥

[1]ब्रह्मपुत्री [2]स्मिता नेकपद्माङ्किता, [3]यत्पुरश्रीमणीमेखलेवाऽजनि ।
सूरीकण्ठीरवो[4]ऽकुण्ठलोकोत्सवै:, [5]सिद्धपूर्वं पुरं [6]पावनं तद्व्यधात् ॥२८॥

---

1. ०कां० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सरस्वतीनदी । (२) विकचैर्बहुभिः कमलैः कलिता । (३) सिद्धपुरलक्ष्म्या रत्नकाञ्चीव । (४) उद्दामैर्महाजनमहोत्सवैः । (५) पवित्रीचकार । (६) सिद्धपुरम् ॥२८॥

[1]श्रीमदाचार्यपादा [2]उषित्वा [3]किय-द्वासकांस्ता[4]तपादैः [5]समं [6]वर्त्मनि ।
ते [7]न्यवर्त्तन्त तेभ्यस्त[8]दादेशतः, [9]सैकतेभ्यः [10]पयोधेरिवा[11]ऽम्भःप्लवाः ॥२९॥

(१) श्रीविजयसेनसूरयः । (२) स्थित्वा । (३) कियत्सङ्ख्याकान्वासकान्-वासरान् । (४) श्रीहीरविजयसूरिभिः । (५) सार्द्धम् । (६) मार्गे । (७) पश्चाद्वलन्ते स्म । (८) सूरीन्द्रादेशात् । (९) तटेभ्यः । (१०) सागरस्य । (११) पयःपूराः ॥२९॥

[1]एष [2]निघ्नंस्त[3]मो विश्वमु[4]द्बोधयन्, कैश्चिदु[5]द्यन्महोभिर्मुनीन्द्रैः समम् ।
तत्पुरात्प्रस्थितिं तेनिवान्पद्धतौ, सार्वभौमो[6] ग्रहाणामिवा[7]ऽभ्र(भ्रे) ग्रहैः ॥३०॥

(१) सूरिः । (२) हिंसन् । (३) अज्ञानमन्धकारं च । (४) प्रतिबोधयन् जागरयंश्च । (५) प्रकटीभवद्भिस्तेजोभिः । प्रतापैश्च । (६) ग्रहचक्री-सूर्यः । (७) आकाशे ॥३०॥

[1]भीरुभावा[2]न्निजं [3]व्यालमालाकुलं, [4]भीष्म[5]मौज्झ्या[6]ऽऽश्रयं [7]नागपूरागता ।
किं [8]महीमण्डलं भिल्लपल्ली पुरो, हीरसूरीन्दुना [9]व्यालुलोके क्रमात् ॥३१॥

(१) बिभेतीत्येवंशीलत्वेन-भीरुकतया । (२) आत्मीयम् । (३) भुजङ्गमभरभृतम् । (४) रौद्रम् । (५) त्यक्त्वा । (६) स्थानम् (७) नागनगरी । (८) भूमण्डलम् । (९) दृष्टा ॥३१॥

क्वापि [1]शक्तिं वहद्भिः [2]कुमारैरिवा[3]-ऽम्भोजनाभैरिवोद्यद्[4]गदाधारिभिः ।
[5]याऽ[6]भिरूपैरिवाऽऽभाति [7]कादम्बरी-सादरीभूतचित्तैः किरातैर्भृता ॥३२॥

(१) शक्तिः-प्रहरणविशेषः । आयसः कुन्तः इति लोके प्रसिद्धः । (२) स्वामिकार्त्तिकैरिव । (३) कृष्णैरिव । (४) गदाधरैः । (५) या-पल्ली । (६) पण्डितैरिव । (७) मदिरापाने आदरपरमनोभिः प्राज्ञैः । कादम्बरीनामग्रन्थ आदरोपेतमानसैः ॥३२॥

तत्र [1]वित्रासयन्[1] [2]शात्रवा[3]नर्जुनो, भाति पल्लीपतिः [4]कङ्कपक्षाश्रितः ।
[5]जिष्णुभावं [6]सुभद्रानुषङ्गं पुन-र्बिभ्र[7]दद्वैतधानुष्कतां [8]पार्थवत् ॥३३॥

(१) भयव्याकुलान्कुर्वन् । (२) रिपून् । (३) अर्जुननामा पल्लीपतिः । (४) बाणयुक्तः । पक्षे-कङ्कस्य युधिष्ठिरस्य पक्षं-पार्श्वमाश्रितः । (५) जयनशीलतां अर्जुनत्वं च । (६) शोभनैर्मङ्गलैः सङ्गो यस्य । पक्षे-सुभद्रया जायया सह सङ्गो यस्य । (७) असाधारणधनुर्द्धरताम् । (८) अर्जुन इव ॥३३॥

---

1. ०यन्नर्जुनः शात्रवानस्ति पल्ली० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्द्धया [1]यन्मुखालोकनप्रोल्लस-त्सम्मदेनेव [2]वर्द्धिष्णुभिर्भक्तिभिः ।
[3]सूरि[4]मभ्येत्य [5]नत्या [6]निजं [7]पावय-[8]न्नात्मगेहान[9]नैषी[10]न्निषादाधिपः ॥३४॥

(१) सूरिवदनवीक्षणप्रकटीभवत्प्रमोदेन । (२) वर्द्धनशीलाभिर्भक्तिभिः । (३) प्रभुपार्श्वम् । (४) आगत्य । (५) प्रणमे(मने)न । (६) आत्मानम् । (७) पवित्रीचकार । (८) स्वगृहान् । (९) प्रापयामास । (१०) भिल्लेन्द्रः ॥३४॥

[1]स्मेरपद्मेक्षणा [2]भृङ्गगुञ्जारवा, [3]हंसकोद्भासिनीः [4]सुस्मितश्रीभृतः ।
[5]कर्णिकामादधाना [6]रसोल्लासिनीः, पद्मिनी[7]र्नीलभासः किमा[8]मोदिनीः ॥३५॥

(१) विकचानि कमलानि तद्वत्तान्येव वा ईक्षणानि-नयनानि यासाम् । (२) भ्रमराणां गुञ्जा इव रवो यासाम् । "वाण्या भृङ्गीपिकीरवा" विति काव्यकल्पलतोक्तेः। तथा भृङ्गानां(णां) गुञ्जारवो यासु । (३) मञ्जीरैर्मरालैर्वा अतिशयेन भासनशीलाः । (४) शोभनस्मितस्य विकचताया वा श्रियं दधातीति । (५) कर्णभूषणं बीजकोशं च । (६) शृङ्गारादिभिर्जलैर्वा उल्लसनशीलाः । (७) तमालश्यामाः । (८) आमोदः-प्रमोदः परिमलश्च अस्ति आसु ॥३५॥

[1]मेखलामालिनीः [2]शालिपादाः [3]स्फुर-द्दन्तका [4]दन्तियानास्[5]तमालत्विषः ।
[6]गण्डशैलोल्लसत्पत्रवल्लीभृतो, [7]विन्ध्यशैलाञ्जनोर्वीधरोर्वीरिव ॥३६॥

(१) काञ्चीं अद्रेर्मध्यभागं धारयन्तीत्येवंशीलाः । (२) शोभनाश्चरणाः पर्यन्तपर्वताश्च यासाम् । (३) स्फुरन्तो दन्ता गिरिबहिर्निर्गतती(ति)र्यक्प्रदेशा यासाम् । (४) गजवद्गजानां यानं यासां यासु वा । (५) तमालवत्तमालानामिव कान्तिर्यासाम् । (६) गण्डा एव शैलास्तेषु उल्लसन्त्यः पत्रलतास्ता बिभ्रतीति । पक्षे-गिरेः पतितेषु स्थूलपाषाणेषु प्रकटीभवन्तीः पर्णयुक्त-वल्लीर्बिभ्रतीति । (७) विन्ध्याचलः कज्जलाचलस्तयोर्भूरिव । "देव भवद्वैरिवधूवदनं वने च भान्ति गण्डशैलस्थलालङ्कारिण्यो रोध्रलता" इति चम्पूकथायां गण्डयोः शैलोपमानम् ॥३६॥

[1]भृङ्गनेत्रा [2]मृणालीभुजा [3]जृम्भिता-म्भोजवक्त्रास्[4]तरङ्गोल्लसत्कुन्तलाः ।
[5]बन्धुरावर्त्तनाभी [6]रथाङ्गस्तनी, [7]हंसयाना [8]यमीवारिदेवीरिव ॥३७॥

(१) भ्रमरास्तद्वत्त एव वा नेत्राणि यासाम् । (२) पद्मनीलास्तद्वत्त एव वा बाहवो यासाम् । (३) विकचकमलानि तद्वत्तान्येव मुखानि यासाम् । (४) कल्लोलास्तद्वत्त एव वा उल्लसन्तः केशा यासाम् । (५) मनोज्ञावर्त्तीस्तद्वत्स एव नाभिर्यासाम् । "नाभीमथैष श्लथवाससोऽस्या" इति नैषधे । (६) चक्रवाकास्तद्वत्ता एव वा कुचा यासाम् । (७) राजहंसास्तद्वत्तेषां यानं यासां यासु वा । (८) यमुनाजलदेवता इव ॥३७॥

[1]विष्टरोद्भासिनीश्[2]चन्दनामोदिनीः, [3]पल्लवोल्लासिजिह्वाः [4]प्रसूनस्मिताः ।
[5]बिम्बदन्तच्छदाः [6]कुन्दमालाः [7]पिकी-व्याहृता [8]मूर्त्तिमत्कुञ्जलक्ष्मीरिव ॥३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) आसनैर्द्रुमैश्च भासनशीलाः । (२) श्रीखण्डतरवस्तद्वत्तेषां वा परिमलोऽस्त्यासु । (३) प्रवालास्तद्वत्त एव वा उल्लसनशीला रसज्ञा यासाम् । (४) पुष्पाणि तद्वत्तान्येव वा विशदं हसितं यासाम् । (५) बिम्बीफलानि पक्वगोह्लकानि-अतिरक्तत्वात्तद्वत्तान्येव वा औष्ठौ यासाम् । (६) मुचकुन्दानां पुष्पस्त्रजो यासाम् । श्रेणी वा यासु । (७) कोकिलकान्तास्तद्वत्तासां वा वचनविलासो यासां यासु वा । (८) शरीरवतीर्वनदेवीरिव ॥३८॥

[१]कञ्चुकिप्राञ्चिताः [२]शेषगेहा इवा-ऽ[३]ऽरामदेशा इवोत्फुल्लपुष्पाङ्किताः ।
[५]केकिमाला इवाऽलङ्कृता[६]श्चन्द्रकैः, [७]पूर्णचन्द्रानना: पौर्णमासीरिव ॥३९॥

(१) सौविदल्लैर्भुजङ्गैश्च प्रकर्षेण कलिताः । (२) नागेन्द्रसौधा इव । (३) वनभूमय इव । (४) विकचकुसुमकलिताः । (५) मयूरराजीरिव । (६) वृत्ताकारतिलकैः । लोके 'चांदलउ' इति प्रसिद्धैः । पक्षे-मेचकैः । "मेचकश्चन्द्रकसमा"विति हैमनाममालायाम् । (७) सम्पूर्णचन्द्रस्तद्वत्स एव वा मुखं यासाम् ॥३९॥

[१]मञ्जुसिञ्जानमञ्जीरविस्फूर्जितैः, [२]स्पर्द्धमाना [३]ध्वन[४]द्भिर्मरालैरिव ।
[५]केलिवातायुपोतान्क्वचित्कुर्वती[६]-र्गीतिभिर्योगिवद्[७]ध्यानलीनानिव ॥४०॥

(१) मनोज्ञानां शब्दायमानानां नूपुराणां स्फूर्त्तिभिः । (२) स्पर्द्धां कुर्वाणाः । (३) ध्वनिं कुर्वद्भिः । (४) राजहंसैरिव । (५) क्रीडामृगबालकान् । (६) मधुरध्वनिगानैः । (७) ध्याने लीनानिव - निश्चलाङ्गानित्यर्थः ॥४०॥

[१]स्वीयरूपश्रिया [२]मानमा[३]तन्वतीः, [४]प्रेक्ष्यमाणा [५]मुहुः [६]स्मेरदम्भोरुहम् ।
[७]भूषयाऽहं [८]विशिष्ये किं[९]मेतद्गृहा, श्रीरुतेतीव चित्ते वि[१०]जिज्ञासया ॥४१॥

(१) आत्मीयरूपलक्ष्म्या । (२) गर्वम् । (३) कुर्वतीः । (४) पश्यन्तीः । (५) वारं वारम् । (६) विकचकमलम् । (७) वपुःशोभया । (८) विशिष्टा भवामि । "कथं च स देशः स्वर्गाद्विशिष्यते ने"ति चम्पूकथायाम् । (९) कमलवासा । एतस्मिन्गृहं यस्याः-अथवा । (१०) ज्ञातुमिच्छया ॥४१॥

[१]निर्जित[1][२]स्त्वत्सुहृ[३]न्मन्मुखेन [४]ह्रिया, [५]पश्य [६]पाण्डूभवन्भ्राम्यती[७]न्दु[८]र्दिवि ।
[९]वीक्ष्यमाणा [१०]वपुर्विभ्रमं [११]दर्पणे, [१२]सूचयन्तीरितीव [१३]स्मितं [१४]तन्वतीः ॥४२॥

(१) पराभूतः । (२) तव मित्रम् । "जलाच्च तातान्मुकुराच्च मित्राद(त् । अ)भ्यर्थ्य धत्तः खलु पद्मचन्द्रा" विति नैषधे । (३) मदीयवदनेन । (४) लज्जया । (५) विलोकय । (६) वपुषा पाण्डुरा भवन् । (७) शशी । (८) शून्यनभसि । (९) विलोकयन्तीः । (१०) शरीरशोभाम् । (११) आदर्शे । (१२) कथयन्तीः । (१३) हसितम् । (१४) कुर्वतीः ॥४२॥

---

1. ०तस्त्वत्सखास्मन्मु० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]निष्कुहा(टा)नोकहोत्फुल्लपुष्पोच्चये, [2]षट्पदान्[3]पाणिभिर्दूरतः कुर्वती: ।
[4]स्पर्द्धितां बिभ्रते [5]वाग्विलासैः सहा-ऽस्माकमे[6] ते हृदीतीव [7]रोषोदयात् ॥४३॥

(१) गृहारामद्रुमविनिद्रत्कुसुमप्रकरे । (२) हस्तैः । (३) भृङ्गान् । (४) स्पर्द्धनशीलताम् । (५) वचनैः । (६) भृङ्गाः । (७) कोपि(प)प्रादुर्भावात् ॥४३॥

[1]नाभिदघ्ने [2]हृदे[3]ऽम्भोविहारालसा-[4]स्त्रा[5]समुत्पादयन्ती [6]रथाङ्गान्क्वचित् ।
[7]तद्विभूषां स्तनाभ्यां गृहीत्वा [8]पुरा, किं पुनस्तद्व[9]पुःपीतिमादित्सया ॥४४॥

(१) नाभिप्रमाणे । "नीलतमालका नाभिरस्या" नाभिदघ्ना इत्यर्थः । इति चम्पूकथा-टिप्पनके । (२) द्रहे । (३) जलकेलिलम्पटाः । (४) आकस्मिकं भयम् । (५) जनयन्तीः । (६) चक्रवाकान् । (७) रथाङ्गशोभाम् । (८) पूर्वम् । (९) रथाङ्गशरीराणां गौरिम्न आदातुमिच्छया । पीतवर्णताया गृहीतुं वाञ्छया ॥४४॥

क्वापि [1]विश्लेषयन्तीर्[2]बकाञ्जी[3]वना-द्धा[4]र्त्तराष्ट्रान्पुन[5]र्भीमबाहा इव ।
राक्षसीवत्क्ष[6]पारागिणीरु[7]त्पला-काङ्क्षिणीः [8]क्लृप्तकीलालपानाः पुनः ॥४५॥

(१) वियोगं प्रापयन्तीः । (२) चकोटान् बकनामराक्षसांश्च । (३) जलात् जीवितव्याच्च । (४) हंसान् धृतराष्ट्रपुत्रान्-दुःशासनप्रमुखान् [च]। (५) भीमभुजा इव । (६) क्षपायां-हरिद्रायां निशायां च रागवतीः । "हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वरवर्णिनी"ति हैम्याम् । (७) कुवलया-नामभिलाषणशीलाः । पक्षे - उत्कृष्टमांसाभिलाषिणीः । (८) कृतं जलस्य पानं याभिः । "कीलालं भुवनं वनं घनरसो यादोनिवासा(सोऽ)मृत" मिति हैम्याम् । पक्षे-निर्मितरुधिरपानाः ॥४५॥

[1]केलिवापीपयोमज्जनव्याजतो, [2]नागनारी[3]र्विजेतुं [4]व्रजन्तीरिव ।
[5]नागगेहोपसीदत्तदम्भोजदृ-ग्विभ्रमं [6]कुर्वती[7]र्निस्सरन्तीः पुनः ॥४६॥

(१) क्रीडादीर्घिकासु जले बूडनस्य च्छलात् । (२) नागवधूः । (३) रूपश्रियाऽभि-भवितुम् । (४) यान्तीरिव । (५) नागगृहादागच्छन्नागाङ्गनाभ्रान्तिम् । (६) सृजन्तीः । (७) निर्गच्छन्तीः ॥४६॥

[1]भास्वतः [2]कान्तिवद्वा[3]रुणीरागिणीः, [4]शालिपत्रावलीः शाखिशाखा इव ।
[5]नन्दनानन्दिनीर्मन्दरोर्वीरिव, प्रीणयन्तीर्मनः [6]साधुगोष्ठीरिव ॥४७॥

(१) सूर्यस्य । (२) कान्तिरिव । (३) मदिरायां रागवतीः प्रतीच्यां च रागयुक्ताः । सायं सूर्यकान्तिः प्रतीच्यां सरागा स्यादिति । (४) शालिन्यः शोभनशीलाः पत्रवल्ल्यः वर्णमालाः

---

1. ०ङ्गात्क्व० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च यासु । (५) पुत्रैः वनेन च प्रमोदवतीः । नन्दनाशब्द आकारान्तोऽपि दृश्यते । "विशेषतीर्थैरिव जह्नुनन्दना" इति नैषधे । (६) सतां सङ्गतीरिव ॥४७॥

[1]आश्मगर्भीयसन्दर्भविभ्राजिनीः, [2]शालभञ्जीरिव [3]स्वैरसञ्चारिणीः ।
[4]सूरिपादान्[5]प्रणम्यान्प्रणन्तुं [6]निजा-स्तत्र कान्तां [7]किराते[8]शितांऽजूहवत् ॥४८॥

चतुर्दशभिरन्त्यकुलकम् । इति भिल्लीवर्णनम् ॥

(१) मरकतमणिसम्बन्धिन्या रचना(न)या शोभनशीलाः । (२) पुत्रिकाः । (३) स्वतन्त्रं दिव्यानुभावात्सञ्चरशीलाः । (४) प्रभोश्चरणान् । (५) प्रणमनयोग्यान् । (६) आत्मीयाः । (७) अर्जुनः । (८) आकारयामास ॥४८॥ चतुर्दशवृत्तानि ॥

[1]जङ्गमं [2]सार्वभौमं किमु[3]र्वीभृतां, [4]सूरिशीतांशु[5]मायान्तमालोक्य तम् ।
[6]अर्जुनाम्भोजनेत्रास्त[7]दंह्रिद्वयं, नेमुरा[8]नन्दसान्द्रीभवन्मानसाः ॥४९॥

(१) वसुधाविहरणशीलम् । (२) चक्रिणम् । (३) गिरीणाम् । मेरुम् । (४) सूरिचन्द्रम् । (५) आगच्छन्तम् । (६) अर्जुनप्रियाः । (७) सूरिपादद्वन्द्वम् । (८) प्रमोदेन नीरन्ध्रीभवनाला[न्नात्मा] यासाम् ॥४९॥

कामिनीभिः [1]किराताधिभर्त्तुस्ततो, मौक्तिकौघै[2]रवाकीर्यत श्रीप्रभुः ।
सोऽप्य[3]वैश्वस्त्यलक्ष्मीमिवा[4]ऽनश्वरीं, [5]स्वेन [6]ताभ्यो ददौ धर्मलाभाशिषम् ॥५०॥

(१) भिल्लपतेरर्जुनस्य । (२) वर्द्धापितः । (३) अवैधव्यश्रियमिव । "विश्वस्ता विधवा समे" इति हैम्याम् । तथा - "नलात्स्ववैश्वस्त्यमनाप्तुमानता" इति नैषधे । (४) शाश्वताम् । (५) सूरिरात्मना । (६) अर्जुनप्रियाभ्यः ॥५०॥

[1]देशनाम्भोदधारां [2]सुधाया इव, [3]ज्येष्ठजामिं मुनीन्द्रस्य [4]पीत्वाऽऽदरात् ।
[5]भिल्लभर्त्तु[6]र्जजृम्भे [7]मनःकानने, [8]बोधिफुल्लल्लताश्लेषिहर्षद्रुमः ॥५१॥

(१) धर्मदेशनामेव मेघवृष्टिम् । (२) अमृतस्य । (३) वृद्धभगिनीम् । (४) सादरं श्रुत्वा । (५) अर्जुनस्य । (६) विकसितः । (७) चित्तारामे । (८) सम्यक्त्वरूपविस्मेर-वल्ल्यालिङ्गितः प्रमोदपादपः ॥५२॥

[1]वर्णयामः किम[2]स्या[3]ऽमृतस्त्राविणीं, बिभ्रतो भारतीं [4]वज्रसूरीन्द्रवत् ।
[5]वङ्कचूलो [6]यथा [7]धर्मघोषेन(ण) य-द्येन [8]रौद्रोऽपि [9]भिल्लप्रभुर्बोधितः ॥५२॥

(१) स्तुमः । (२) सूरीन्द्रस्य । (३) सुधावर्वि(र्षि)णीम् । (४) वज्रस्वामीव । (५) वङ्कचूलनामा पल्लीपतिः । (६) यथेत्युपमानार्थः । (७) धर्मघोषनामसूरिणा । (८) चण्डाशयोऽपि (९) अर्जुनः ॥५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]उत्पथे [२]प्रस्थितांस्[३]तन्वतश्[४]चापलं, तत्र सूरिः [५]किरातान्परानप्यसौ ।
[६]सत्पथेऽतिष्ठिपत्[७]सत्त्वरक्षाव्रतै, [८]रश्मिभिः [९]शूकलान्[१०]सादिवद्वाजिनः ॥५३॥

(१) उन्मार्गे । (२) प्रचलतः । (३) कुर्वतः । (४) चञ्चलताम् । (५) सर्वव्यसनान्याद्रियमाणान् भिल्लान् । (६) सन्मार्गे । (७) जीवदयादिनियमैः । (८) रज्जुभिः । (९) दुर्विनीतवाहान् । (१०) अश्ववारः ॥५३॥

[१]सूरिशीतांशुरा[२]पृच्छ्य [३]भिल्लाधिपं, [४]सम्प्रणिन्ये पुरस्तादथ [५]प्रस्थितिम् ।
तावदग्रे दद[६]र्शाऽर्बुदोर्वीधरं, [७]विन्ध्यम[८]भ्येतमे[९]तं [१०]विनन्तुं किमु ॥५४॥

(१) सूरिचन्द्रः । (२) आज्ञामादाय । (३) अर्जुनम् । (४) चक्रे । (५) प्रस्थानम् । (६) अर्बुदाचलम् । (७) विन्ध्याचलम् । (८) आगतम् । (९) सूरिम् । (१०) नमसितुम् ॥५४॥

[1][१]भूभृतस्[२]तुङ्गिमश्रीभिरन्[३]यान्[४]परा-भूय [५]शृङ्गाग्ररङ्गत्पयोदोपधेः ।
छत्रमा[६]धत्त [७]मायूरमूर्वीधरा-धीशितु[८]र्नन्दनस्[९]तज्जयाङ्कं किमु ॥५५॥

(१) पर्वतान्नृपांश्च । (२) महिमलक्ष्मीभिः । उच्चत्वस्य पराक्रमस्य करितुरगादेः परिवारस्य जात्यादेर्वा महत्त्वस्य श्रीभिः । (३) अपरान् । (४) विजित्य । (५) शिखरोपरि सञ्चरज्जलधरघटाकपटात् । (६) दधार । (७) मयूरपिच्छसम्बन्धिशैलेन्द्रस्य चक्रवर्त्तिनो वा। (८) पुत्रः । अर्बुदनामा । (९) तेषां गिरीणां नृपाणं च जयचिह्नम् ॥५५॥

[१]अध्वरोद्धुः [२]सुधाधामचण्डद्युतो-[३]र्विन्ध्यधात्रीधरस्येव संस्पर्द्धया ।
[४]शृङ्गलेखाभि[५]रभ्रङ्कषाभि[६]र्नभः-पद्धतिं [७]रुद्धवान[८]र्बुदोर्वीधरः ॥५६॥

(१) मार्गरोधविधातुः । (२) चन्द्रसूर्ययोः । (३) विन्ध्याचलस्य । (४) शिखरराजीभिः । (५) अम्बरचुम्बिनीभिः । (६) गम(ग)नमार्गम् । (७) रुरोध । (८) अर्बुदशैलः ॥५६॥

[2]मौलि[१]लीलायमानामृतांशुक्षर-न्निर्भराम्भःप्रवाहस्वरूपैरसौ ।
[२]सातपत्रस्फुरच्चामरै[३]र्भूभृतां, [४]राजभावं [५]बिभर्त्तीव [६]भूमीधरः ॥५७॥

(१) मौलि(लौ)-शिखराग्रे लीलया आचरन् यश्चन्द्रस्तथा निस्सरतां निर्भराणां पयसां धारास्त एव स्वरूपमात्मा येषां तैः । (२) छत्रेण सहितैश्चञ्चलीभवद्भिश्चामरैः । (३) भूभृतां-शैलानां नृपाणां च । (४) स्वामित्वम् । (५) धरतीव । (६) अर्बुदगिरिः ॥५७॥

[3]क्वापि शृङ्गे [१]विनीले [२]तमालैः शशी, यस्य [३]चूडामणीवत्[४]कचानां चये ।
[५]क्वापि [६]शोणाश्मशृङ्गे पुन[७]र्भानुमान्, प्रा[८]ग्गिरेः [९]सानुनीवो[१०]दयन् लक्ष्यते ॥५८॥

1. यो गिरिस्तु० हीमु० । 2. हीमु. एतच्छ्लोकः ५८तमोऽस्ति । 3. हीमु. एतच्छ्लोकः ५७तमोऽस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) श्यामलीभूते । (२) तापिच्छतरुभिः । (३) शिखामणिरिव । (४) केशपाशे । (५) कुत्राऽपि प्रदेशे । (६) रक्तमणिनिर्मितशिखरे । (७) सूर्यः । (८) पूर्वाचलस्य । (९) शृङ्गे इव । (१०) उदयं लभमान इव । तत्र सङ्क्रान्तरक्तमणिकान्तत्वात् रक्त एव ज्ञायते ॥५८॥

[१]कुन्दरुङ्[२]नीरमुङ्नीलकण्ठः पुन-[३]श्चन्द्रचूडः शिवः [४]सिंहयानाङ्कितः ।
[५]वातवेल्लल्लताक्लृप्तलास्यः [६]सरि-त्स्वःसरिद्यो[७]ऽनुयातीव [८]दिग्वाससम् ॥५९॥

(१) मुचकुन्दानां कान्तिर्यत्र तथा कुन्दवत् श्वेता कान्तिर्यस्य । (२) मेघैः कृत्वा नीलः - श्यामवर्णः कण्ठ-उपत्यकाप्रदेशो यस्य । पक्षे -मेघवन्नीलकण्ठो यस्य । (३) चूडायामग्रभावे-शिखराग्रभागे चन्द्रो यस्य । चूडायां-जटाजूटे चन्द्रो यस्य । (४) केसरिणां गमनेन पार्वत्या च कलितः । (५) पवनचञ्चलीकृतवल्लीभिर्निर्मितनाटकः । (६) सरित्तदुद्गतनद्येव गङ्गा यस्य । 'शिरःस्वःसरित्' इति वा पाठः । तत्राप्युच्चैस्तरत्वान्मस्तकशृङ्गे गगनगङ्गा यस्य । (७) अनुकरोति । सदृशा भवति । (८) महेश्वरम् ॥५९॥

[१]रत्नसान्वौषधीप्रस्थमुख्यश्रिया, [२]मन्दराद्यावनीभृज्जयादर्जिताम् ।
[३]शृङ्गनिर्गत्वराणां झराणां निभात्, कीर्त्तिमेतां बिभर्त्तीव [४]मूर्तां गिरिः ॥६०॥

(१) मणीनां शिखराणां तथा औषधीनां-फलपाकावसानिकानां प्रस्थानां-शृङ्गाणां प्रधानलक्ष्म्या तत्प्रमुखशोभया वा । मेरौ मणिशृङ्गाणि, हिमाचले औषधीप्रस्थं शृङ्गम् । तदादिगिरीन् च विशिष्टश्रिया । (२) मेरुप्रमुखशैलविजयकरणादुपार्जिताम् । (३) शिखरेभ्यो निःसरणशीलानां पयःप्रवाहानां मिषात् । (४) तनुमतीम् ॥६०॥

[१]अर्जुनश्रीदधो [२]मर्त्यमालास्फुर-त्कन्दरो [३]भद्रसालोल्लसन् [४]ऋक्षभूः ।
[५]बिभ्रतः [६]स्वःसुमेरोरिव स्पर्द्धया, यः पुरं क्वापि धत्ते धरित्रीधरः ॥६१॥

(१) अर्जुनानां ककुभद्रुमाणां स्वर्णानां लक्ष्मीं दधातीति । (२) नराणां सुराणां च श्रेणीभिः शोभमाना दरीप्रदेशा यस्य । (३) कल्याणयुक्ताः । न केऽपि तान्कदापि खण्डयन्ति, तादृशास्तरवस्तैर्भद्रसालनामवनेन च शोभमानः । (४) भाल्लूकानां महत्केशावृततनूनाम् । 'रींछ' इति लोके प्रसिद्धानां वनश्वापदानां तथा नक्षत्राणां च भूः-स्थानं स्वर्गम् । (५) धारयतः । (६) 'मेरुः स्वर्गाधार' इति परसिद्धान्ते तथा च नैषधे - 'दिवमङ्कादमराद्रिरागता' मिति ॥६१॥

[१]अम्बरालिङ्गिशृङ्गावलीपल्वलो-पाश्रयाः [२]स्मेरदम्भोजिनी [३]रागिणीः ।
[४]योऽ[५]भिकेनाऽ[६]भ्रपान्थेन साकं [1][७]सदा, [८]सङ्गमं [९]मित्रवत्[१०]कारयामासिवान् ॥६२॥

(१) नभःपरीरम्भिणां शिखराणां श्रेणीषु लघुसरांसि, तेषूपाश्रयो-वसतिः स्थानं यासाम् । 'केलती मदनयोरुपाश्रये' इति नैषधे । (२) विकचकमलिनीः । (३) सरागा अनुरक्ताश्च ।

1. सदा मित्रवत्कारयामासिवान्सङ्गमम् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) अर्बुदाद्रिः । (५) कामुकेन । (६) भानुना । (७) नित्यम् । (८) संयोगम् । (९) सखा इव । (१०) कारयति स्म ॥६२॥

[1]सिन्धुशैलोद्भवद्वौरवै[2]र्दुर्वहां, बिभ्रतो [3]भूतधात्रीं [4]फणामण्डलैः ।
भोगिनां[5] वासवस्येव [6]विश्रान्तये, [7]निर्मितो [8]नाभिजातेन यः क्ष्माधरः ॥६३॥

(१) समुद्रगिरिभ्यः प्रकटीभवद्भिर्भारैः । (२) दुःखेन वोढुं शक्याम् । (३) भूमीम् । (४) फणगणैः । (५) शेषनागस्य । (६) विश्रान्तिं दातुम् । (७) कृतः । (८) विधात्रा ॥६३॥

[1]कण्ठपीठीलुठत्पार्वणश्वेतरुक्-तारकानायकोदात्तमुक्तालता ।
[2]व्योम निर्भिद्य [3]यातेन येनो[4]च्चकै-[5]र्धार्यते [6]भूभृतेवाऽऽ[7]त्मभूषाकृते ॥६४॥

(१) कण्ठपीठरां कन्धरायामुपत्यकायां च लुठन्त-इतस्ततो भवन्तः पूर्णि(पौर्ण)मासी-सम्बन्धी शशी तथा च तारका नक्षत्राणि त एव मध्यमणियुक्तो महार्घ्यो हारो यस्य । पीठशब्दः स्त्रीक्लीबः । तथा - जयत्युदरनिःसरद्वरसरोजपीठीपठच्चतुर्मुखमुखावलीरचितसामनामस्तुति''-रिति चम्पूकथायाम् । 'उदात्तनायकोपेता' इति चम्पूकथायाम् । तथा- ''उदात्तो महात्मा महार्घ्यश्चे''ति तट्टिपनके । (२) आकाशम् । (३) गतेन । (४) अत्यूर्ध्वम् । (५) ध्रियते । (६) अर्बुदेन । (७) स्वस्य शोभार्थम् ॥६४॥

[1]अभ्रविभ्राजियन्मेदिनीभृद्गु-व्रातनिष्पातिपाथःप्रवाहोत्थितैः ।
[2]उत्पतद्भिः पतद्भि[3]र्नभःपद्धतौ, [4]बिन्दुवृन्दैरिवाऽ[5]भावि ताराभरैः ॥६५॥

(१) आकाशे शोभनशीलेभ्योः, अभ्रंलिहैरिभ्या इत्यर्थः; यस्याऽर्बुदस्य शृङ्गसमूहेभ्यो निष्पतनशीलनिर्झरेभ्यः प्रकटीभूतैः । (२) उच्चैरुच्छलद्भिः । (३) अत एव गगनमार्गे पतद्भिः । (४) जलकणनिकरैः (५) जातम् ॥६५॥

[1]मित्रपुत्र्या [2]सह [3]स्थातुमप्य[4]म्बरे, [5]तामुपा[6]दाय भूमेः पुनः [7]स्वःसरित् ।
[8]यद्गिरेर्वर्त्मना [9]शालितालीमिल-त्कुन्दमालाच्छलाद्गच्छतीवाऽम्बरम् ॥६६॥

(१) सख्युर्भानोर्वा पुत्र्या, सख्या-यमुनया च । (२) एकत्र । (३) वस्तुम् । (४) नभसि । (५) यमुनाम् । (६) गृहीत्वा । (७) स्वर्गगङ्गा । (८) अर्बुदमार्गेण । (९) शोभनशीलताडतरुमालाभिर्मिलन्तीकुन्दद्रुमश्रेणीकपटात् ॥६६॥

[1]रोहिणीरागिभावा[2]न्निजत्यागिनं, [3]कान्तमे[4]णाङ्कमु[5]त्सृज्य [6]कोपाकुला ।
औषधीसन्तति[7]र्निर्मि[मी]ते[8]ऽनिशं, [9]तापसीवत्तपांसीव [10]यस्मिन्गिरौ ॥६७॥

(१) रोहिणीविषयेऽत्यनुरक्तत्त्वेन । (२) आत्मनः-स्वस्य त्यजनशीलम् । (३) भर्त्तारम् । (४) चन्द्रम् । (५) त्यक्त्वा । (६) रोषकलुषाः । (७) करोति । (८) नित्यम् । (९) परिव्राजिकेव । (१०) अर्बुदाद्रौ ॥६७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भासते [१]शातकुम्भाश्मगर्भोपल-श्रेणिसङ्क्लृप्तशृङ्गद्वयं कुत्रचित् ।
[२]यस्य [३]विश्वातिशायिश्रियं वीक्षितुं, मेरु[1]विन्ध्यौ किम[४]ल्पीभवन्तौ [५]स्थितौ ॥६८॥

(१) एकं स्वर्णेनाऽपरमिन्द्रनीलमणिश्रेणिभिः कृतं शिखरयुगलम् । (२) अर्बुदाचलस्य । (३) सर्वपर्वतेभ्योऽप्यधिकां शोभाम् । (४) लघूभवद्वपुषौ । (५) आगत्य तिष्ठतः स्म ॥६८॥

[१]बिभ्रतो [२]वाहिनीर्यस्य [३]वार्धिप्लवा-प्लाविनीः [४]श्रीपराभूतभूमीभृतः ।
तिष्ठतः [५]क्षोणिमा[६]क्रम्य [७]पूषार्चिषा, [८]वेदगर्भः करोतीव [९]नीराजनाम् ॥६९॥

(१) धारयतः । (२) नदीः सेनाश्च । (३) समुद्रपूरानप्यतिक्रामन्तीत्येवंशीलाः । (४) लक्ष्मीभिर्विजिता गिरयो नृपाश्च येन । (५) भूमीम् । (६) सर्वात्मना व्याप्य । (७) पूषा-सूर्य एवाऽग्निस्तेन । (८) धाता । (९) आरात्रिकाम् ॥६९॥

[१]यन्नभःसङ्गिशृङ्गाङ्गणालिङ्गिनां, किंनराणां समं [२]यौवनै[३]र्गायताम् ।
गीतिमा[४]कर्ण्य [५]रङ्कुर्मृ[६]गाङ्कं [७]तदा-क्षिप्तचेता व्रजन्न[८]ग्रतोऽ[९]खेदयत् ॥७०॥

(१) यस्याऽर्बुदस्य गगनस्य सङ्गोऽस्त्येषाम् । अभ्रङ्कषाणामित्यर्थः । तादृशैः शृङ्गैरालि-ङ्गनशीलानाम् । शिखरोपरि सुखविनिष्ठानामित्यर्थः । (२) युवतीसमूहैः सह । (३) गानं कुर्वताम् । (४) श्रुत्वा । (५) अङ्कमृगः । (६) शशिनम् । (७) तया गीत्या आकृष्टं मनो यस्य । (८) पुरः महता कष्टेन गच्छन् । (९) खेदमुत्पादयति स्म ॥७०॥

[१]यत्र [२]चन्द्रोदयश्च्योतदिन्दूपल-प्रस्थसंस्थायुकोन्निद्रकुन्दद्रुमे ।
[३]राजते [४]राशिरि[५]न्दिन्दिराणां [६]सुधा-सागरे [७]शेषशायीव [८]शक्रानुजः ॥७१॥

(१) अर्बुदाचले । (२) चन्द्रस्योदये चन्द्रांशुसम्पर्केण गलतां = जलं क्षरतां चन्द्रकान्तानां, शृङ्गाग्रतिष्ठ(स्था)नशीले स्मेरे मुचकुन्दुद्रुमे । (३) भाति । (४) समूहः । (५) भ्रमराणाम् । (६) क्षीरसमुद्रे । (७) नागेन्द्रशय्यायां शेते इत्येवंशीलः । (८) कृष्णः ॥७१॥

[2]मन्द[१]राद्याखिलोर्वीधराणामिवो[२]पात्तसारैरसौ [३]वेधसा[४]ऽसृज्यत ।
एष [५]निश्शेष भूमीभृतां [६]निर्जयं, [७]निर्मिमीते न[८] चे[९]द्वैभवैः स्वैः कुतः ॥७२॥

इत्यर्बुदाद्रिवर्णनम् ।

(१) मेरुप्रमुखसमस्तगिरीणाम् । (२) गृहीतैः सारैर्दलैः । (३) विधिना । (४) कृतः । (५) सर्वपर्वतानाम् । (६) जयम् । (७) करोति । (८) एवं चेन्न स्यात्तदा । (९) स्वस्फूर्त्तिभिः ॥७२॥

---

1. ०विन्ध्याविवाल्पी० हीमु० । 2. मेरुमुख्याखिलो० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]आरुरुक्षुर्[2]मुमुक्षुक्षितीन्द्रस्ततो-[3]ऽलङ्करोति स्म देशं [4]सवेशं गिरेः ।
[5]गौरवेणाऽधिकोऽहं गिरिर्वाऽस्त्यसौ, चे[6]तसीतीव [7]हृल्लेखवान्वीक्षितुम् ॥७३॥

(१) अध्यारोढुमिच्छुः । (२) सूरिराजः । (३) भूषयामास । (४) पार्श्वप्रदेशम् । (५) गुरुतया-माहात्म्येन, अहं वा गिरिर्वा । (६) चित्ते । (७) उत्कण्ठाङ्कितः । परमशम-रससुधापयोनिधिमध्यमग्नमनसां कदाचिदप्यनुत्सेकभाजां तेषां सूरीणां स्वप्नेऽपि नाऽभिप्रायः । किन्तु, कवेरियं कल्पितोत्प्रेक्षा ॥७३॥

[1]अर्बुदाधित्यकाम[2]भ्रविभ्राजिनीं, सूरिसिंहः समारोढु[3]मारब्धवान् ।
किं [4]व्यवस्यन् [5]जगन्मूर्द्धसंस्थायिनी[6]-मुद्विवक्षुर्[7]महानन्दसीमन्तिनीम् ॥७४॥

(१) अर्बुदाचलोपरिभूमिः (मिम्) । (२) आकाशं स्पृशन्तीम् । (३) प्रारभत । (४) उद्यमं कुर्वन् । (५) त्रिभुवनमस्तके तिष्ठतीत्येवंशीलाम् । (६) परिणेतुमिच्छुः । (७) मुक्तिकामिनीम् ॥७४॥

[1]तद्गुणश्रेणिनिर्वर्णनानन्दितो, [2]वातपूर्णीभवत्कीचकानां [3]क्वणैः ।
अद्रि[4]रभ्यागतस्येव [5]तस्याऽन्तिका-गामिनः प्रीतिमान्पृच्छति [6]स्वागतम् ॥७५॥

(१) सूरिगुणावलीविलोकनेन हृष्टः । (२) पवनैरन्तर्भरितीभवतां सच्छिद्रवंशानाम् । (३) शब्दैः । (४) प्राघुणस्येव । (५) स्वसमीपे आगमशीलस्य । (६) सुखागमनादिवार्त्ताम् ॥७५॥

[1]लोलरोलम्बकोलाहलप्रस्तुत-स्फीतकीर्त्तिस्तवा[2]ऽऽमोदमेदस्विनी ।
[3]यत्र [4]सस्यैर्नताङ्गी [5]लताविग्रहा-ऽ[6]वीकिरत्[7]कुञ्जदेवी [8]प्रसूनैः प्रभुम् ॥७६॥

(१) चपलमधुकरगुञ्जाकलकलैः प्रारब्धा वर्द्धमानयशसां स्तुतिर्यया । (२) परिमलेन प्रमोदेन च पुष्टा । (३) अर्बुदाचले । (४) फलभारैरानततनुयष्टिः । (५) वल्लयेव शरीरं यस्याः । (६) वर्धापयति स्म । (७) वनदेवी । (८) पुष्पैः ॥७६॥

यत्र [1]कल्लोलयन्[2]नैककल्लोलिनी-[3]र्मन्दमा[4]न्दोलयन्[5]स्मेरदुर्वीरुहान् ।
[6]स्वर्णदीपद्मपौष्पैः [7]करम्बीकृतः, [8]गन्धवाहो[9]ऽनुगामीव तं [10]भेजिवान् ॥७७॥

(१) तरङ्गयुक्ताः कुर्वन् । (२) बह्व्यस्तरङ्गिणीः । (३) शनैः । (४) तरलीकुर्वन् । (५) विकसद्वृक्षान् । "स्मेरदम्भोरुहारामे"ति पाण्डवचरित्रे । (६) गगनसरित्कमलमकरन्दैः । (७) मिश्रितः । शीतो मन्दः सुरभिस्त्रिधाऽपि वर्णितः । (८) पवनः । (९) सेवक इव । (१०) सेवे ॥७७॥

कुत्रचित्तो[1]रणस्रग्विलासश्रियं, बिभ्रति [2]व्योमसञ्चारिणः सारसाः ।
[3]सिद्धिपुर्यां [4]यियासोः पुरस्तात्प्रभो[5]-र्विश्वकर्त्रेव मा[6]ङ्गल्यमाला कृता ॥७८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) तोरणमालालीलालक्ष्मीम् । (२) गगनमण्डलोड्डीयमानाः । (३) मुक्तिनगर्याम् । (४) गन्तुमिच्छोः । (५) विधिना । (६) वन्दनमालिका ॥७८॥

क्वापि [1]झात्कारिणो [2]निर्झराम्भःप्लवाः, [3]प्लावयन्ति स्म [4]तत्पर्वतोपत्यकाम् ।
[5]सिद्धसिन्धुर्[6]नभस्तो [7]निरालम्बना, [8]निष्पतन्ती[9]ह [10]क्लृप्तावलम्बा किमु ॥७९॥

(१) 'झात्कार' इति शब्दोऽस्त्येष्विति झात्कारिणः । निर्झराणां ध्वनेर्झात्कार इति संज्ञास्ति । यदुक्तं च "झरन्निर्झरझात्कारी"ति । (२) निर्झरपयःप्रवाहाः । (३) निर्भरं भरन्ति स्म । (४) अर्बुदाचलोपरिभूमीम् (५) गगनगङ्गा । (६) आकाशात् । (७) निर्गतावलम्बना । (८) भ्रश्यन्ती दिवः । (९) इह-पर्वते । (१०) निर्मितालम्बा ॥७९॥

[2][1]कुत्रचित्पर्वते कुर्वतेऽन्तर्[2]मदै-र्मेदुराः [3]सि[3]न्धुरा [4]गर्जिविस्फूर्जितम् ।
[5]यज्जितेनेव [6]विन्ध्याद्रिणा प्राभृतं[7], प्रापिताः [8]शक्रनागानुवादा इमे ॥८०॥

(१) कस्मिन्नपि प्रदेशे । (२) मध्ये मदो येषाम् । (३) गजाः । (४) गर्जारवस्फूर्त्तिम् । (५) अर्बुदाचलपराभूतेन । (६) विन्ध्याचलेन । (७) ढौकिताः । (८) ऐरावणानुकारिणः ॥८०॥

[1]आशुगोलालसालाङ्गहारो [2]भ्रम-द्भृङ्गवाग्गीतिवेल्लल्लताहस्तकः ।
[3]सूरिपादाम्बुजस्पर्शमा[4]साद्य [5]यो, नृत्यतीव प्रमोदं दधद्भूधरः ॥८१॥

(१) वातैश्चञ्चलीकृतैस्तरुभिरङ्गविक्षेपो नाट्यावसरे यस्य । (२) मकरन्दपानार्थमितस्ततः पर्यटतां भ्रमराणां वाग्गुञ्जारः, सैव गानं यस्य चञ्चलीभवत्यो[र]थाद्वातैरेव तरला वल्ल्यस्ता एव हस्तका चातुरीदर्शनाय हस्तदर्शनानि यस्य । (३) प्रभुपादपद्मानुषङ्गम् । (४) प्राप्य (५) अर्बुदः ॥८१॥

यः [1]परान्[2]कौतुकैः [3]काममु[4]त्कण्ठय-[5]न्नास्य [6]जह्रे मनश्चित्रमत्राऽस्ति किम् ।
[7]स्मेरयन्नप्य[8]शेषं [9]कुमुत्काननं, [10]पद्ममुद्बो[11]धयेत्पौ[12]र्वणेन्दुः किमु ॥८२॥

(१) अन्यजनान् । (२) कुतूहलस्थानावलोकनैः । (३) अतिशयेन । (४) उत्कण्ठां-उत्सुकतां प्रापयन् । (५) सूरेः । (६) हरति स्म । (७) विकाशयन् । (८) सकलम् । (९) कैरववनम् । (१०) सूर्यविकाशिकमलम् । (११) किं विनिद्रीकुर्यात् । (१२) राकामृगाङ्कः ॥८२॥

[1]मन्दमन्दं [2]चलन्न[3]र्बुदोर्वीधरा-धित्यका[4]मध्यरोह[5]द्यतीनां पतिः ।
[6]शम्भुसौधैः [7]पवित्रीकृतोर्वीतलां, [8]रूप्यशैलस्य [9]चूलामिवे[10]च्छावसुः ॥८३॥

1. झाङ्का० हीमु० । 2. पर्वते कुत्रचित्० हीमु० । 3. कुञ्जरा हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) शनैः शनैः । (२) अधिरोहन् । (३) अर्बुदाचलोपरिभूमीम् । (४) बभाज । (५) मुनीन्द्रः । (६) शम्भूनां-जिनानां ईश्वरस्य च गेहैः । (७) पावनीकृतभूमण्डलाम् । (८) कैलाशस्य । (९) शृङ्गाग्रभूरिव । (१०) धनदः । "गगनमवजगाहे मन्दमन्दं मृगाङ्क" इति चम्पूकथायाम् ॥८३॥

[१]पुण्यभाजां [२]हृदाकृष्टिमन्त्रानिव, [३]श्रीमदर्हद्गृहान्[४]निर्जितस्वर्गृहान् ।
[५]अर्बुदश्रीवतंसायमानान्प्रभु-[६]र्नेत्रपत्रैरसौ [७]प्रीतचेताः पपौ ॥८४॥

(१) सुकृतवताम् । (२) हृदयाकर्षणमन्त्रान् । (३) शोभायुक्तप्रासादान् । (४) पराभूतस्वर्गगेहान् । (५) अर्बुदाचललक्ष्म्या उत्तंसवदाचरितान् । (६) नयनपुटकैः । (७) हृष्टमनाः ॥८४॥

यत्र [१]विश्वत्रयीश्रीनिवासा [२]जिना-धीशसौधाः [३]स्वशृङ्गाग्रदण्डोपधेः ।
[४]स्वर्गृहानु(नू)[५]र्ध्वमुत्तम्भ्य पाणीन्निजान, [६]भर्त्सयन्तीव [७]भूषाभि[८]रुत्सेकिनः ॥८५॥

(१) त्रैलोक्यलक्ष्मीवाससौधाः (२) जिनगृहाः । (३) निजशिखरोपरिनिबद्धदण्डदम्भात् । (४) स्वर्गसौधान् । (५) उच्चैःकृत्वा । (६) तिरस्कुर्वन्तीव । (७) शोभाभिः (८) गर्ववन्तः ॥८५॥

[१]निक्कणत्किङ्किणी[२]र्मारुतान्दोलिता, [३]यत्पताका विलोक्ये[४]न्दुकुन्दोज्ज्वलाः ।
किं [५]वहत्यु[६]र्मिनिर्घोषहुङ्कारिणी, स्पर्द्धया [७]सिद्धसिन्धु[८]र्नभःपद्धतौ ॥८६॥

(१) शब्दायमानाः क्षुद्रघण्टिका यासु । (२) पवनेन चञ्चलीकृताः । (३) प्रासाद-वैजयन्तीः । (४) शशिमुचकुन्दत्कुसमवदुज्ज्वलाः । (५) प्रसरति । "स्रोतःसारस्वतं वहत्" इति चम्पूकथायाम् । "वहत्प्रवर्त्तमानं प्रसरच्चे"ति तट्टिपनके । (६) कल्लोलानां कोलाहलैः कृत्वा एता किं मत्पुरः अहमेवाऽस्मि नाऽपरेति स्पर्द्धामादधती सती हुङ्करोतीत्येवंशीला । अथा(थवा) इयं मां जेष्यतीति गर्वात् हुङ्करोतीत्येवंशीला । (७) गङ्गा । (८) गगनमार्गे ॥८६॥

[१]वैमलीयवसतिं व्रतीशिता, [२]दुग्धसिन्धुवयसीमिवैक्षत ।
[३]श्वेतदन्तितुरगान्वितां [४]सुधा-शालिनीं [५]जिनपवित्रान्तराम् ॥८७॥

(१) विमलामात्यसम्बन्धिनीं वसतिम्-जिनप्रासादम् । (२) क्षीरसमुद्रसखीमिव । (३) शुभ्रगजाश्वैस्तथा एरावणोच्चैःश्रवोभिर्वा कलिताः(ताम्) । "पयोनिलीनाभ्रमुकामुकावली" तथा "सहस्रमुच्चैःश्रवसां वसन्निवे"ति नैषधे । क्षीरसमुद्रे ऐरावणोच्चैःश्रवसां बाहुल्यम् । (४) सुधया पक्वचूर्णकलेपेनाऽमृतेन च शोभनशीलाम् । (५) जिनेन-तीर्थकृता कृष्णेन च पवित्रीकृतमध्याम् ॥८७॥

[१]कुक्षिसात्कृत[२]मवेक्ष्य [३]सिंहिका-सूनुना [४]स्वपतिशीतदीधितिम् ।
[५]चैत्यकैतववतीव [६]कौमुदी, [७]यद्[1]द्रया[८]दिह [९]समेत्य [१०]तस्थुषी ॥८८॥

1. त० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) गिलितं-भक्षितम् । (२) दृष्ट्वा । (३) राहुणा । (४) निजकान्तं विधुम् । (५) प्रासाददम्भा । (६) चन्द्रज्योत्स्ना । (७) राहुभीत्या । (८) अर्बुदाचले । (९) आगत्य । (१०) स्थिता ॥८८॥

[1]चैत्यमूर्द्धविधुकान्तनिष्पत-त्पाथसि [2]प्रतिमितै[3]र्निभाद्विधुः ।
[4]लक्ष्मपङ्क[5]मपनेतुमात्मनः, [6]स्नाति [7]दुग्धजलधेर्धिया किमु ॥८९॥

(१) प्रासादशृङ्गे सन्दृब्धेभ्यश्चन्द्रकान्तमणिभ्यो निस्सरद्वारिणि । (२) प्रतिबिम्बस्य । (३) कपटात् । (४) कलङ्ककर्दम् । (५) मार्ष्टुम् । (६) स्नानं कुरुते । (७) क्षीरसमुद्रबुद्ध्या ॥८९॥

[1]यन्मणीमयशिखासु [2]बिम्बितं, [3]बिम्बम[4]म्बरमणि[5]र्वहन्व्य[6]भात् ।
[7]ईयिवा[8]नयमि[9]यत्तया [12]श्रियः, कौतुका[10]दनुमिमीषया[11]ऽस्य किम् ॥९०॥

(१) यस्या विमलवसते रत्नरचितशिखरेषु । (२) प्रतिबिम्बितम् । (३) मण्डलम् । (४) भास्करः । (५) कलयन् । (६) भाति स्म । (७) आगतः । (८) भानुः । (९) एतावत्प्रमाणत्वेन । (१०) अनुमातुं प्रमाणीकर्त्तुमिच्छया । (११) प्रासादस्य । (१२) लक्ष्म्याः ॥९०॥

[1]इह [2]जिनालयवज्रविनिर्मिता-म्बरविलम्बिशिखाग्रनिघर्षणात् ।
[3]उरसि [4]रन्ध्र[5]मजायत [6]यामिनी-प्रणयिनः कपटादिव [7]लक्ष्मणः ॥९१॥

(१) अर्बुदे । (२) प्रासादस्य हीरककल्पिताया आकाशमाश्रयन्त्या-अभ्रङ्कषाया इत्यर्थः - शिखायाः शिखरस्याऽग्रेण शिखरविभागेन सङ्घर्षात् । (३) हृदये । (४) छिद्रम् । (५) जातम् । (६) चन्द्रस्य । (७) लाञ्छनस्य ॥९१॥

[1]अभितः [2]सितयद्वसते[3]र्विशदः, शुशुभे लघु[4]देवगृहप्रकरः ।
[5]उडुयौवतमे[6]तदि[7]हो[8]पगतं, [9]शशिना सह [10]रन्तुमिवाऽम्बरतः ॥९२॥

(१) चतुर्ष्वपि पार्श्वेषु । (२) विशदाया यस्या विमलवसतेः । (३) श्वेतः । (४) देवकुलिकानिकरः । (५) तारका एव युवतीनां समूहः । (६) एतत्प्रत्यक्षम् । (७) अर्बुदाचले । (८) आगतम् । (९) विधुना । (१०) क्रीडितुम् ॥९२॥

[1]निग्रन्थपृथिवीनाथ-[2]श्चैत्यं विमलमन्त्रिणः ।
[3]वैजयन्तमिव प्रीत्या, प्राविशत्त्रि[4]दशेश्वरः ॥९३॥

(१) सूरीन्द्रः । (२) विमलवसतिम् । (३) इन्द्रप्रासादम् । (४) शक्रः ॥९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]वप्ताऽब्धि[२]र्मथितो[३]ऽनवाप्तपदवत्कुत्राऽपि [४]बन्धु[५]र्विधुः
[६]शून्ये [७]व्योमनि [८]बम्भ्रमीति [११]विपिनेऽ[९]प्यन्यः [१०]स्थितः [१२]स्वस्तरुः ।
[१७]क्षिप्तै[१६]का तु [१३]जनार्दनेन [१७]सदने [१५]पुंसा [१४]पुराणेन मे
[१६]जामिं श्री[१८]रपरा [१९]सुधाऽपि च सुरैः पानेन [२०]निष्ठाप्यते ॥९४॥

[२]दुखं [३]कामगवी [१]परा [४]चरति च [५]प्रोत्तानयानाऽ[६]म्बरे
[७]धत्ते [८]कौशिक[1] एष [९]गोत्रदमनो [१०]मन्मूर्ध्नि पादं पुनः ।
[११]इत्याद्यर्त्ति[१२]मधीश ! [१३]भिन्धि किमिदं [१४]वक्तुं जिनं [१५]सप्रजः
[१६]स्वर्दन्तीव समागतो [१७]गजग[१८]णै[१९]स्तेनाऽऽलुलोके पुरः ॥९५॥ युग्मम् ॥

(१) पिता क्षीरसमुद्रः अर्थाल्लभ्यते । (२) मेरुणा कृत्वा विलोडितः । (३) अप्राप्तवासस्थान इव । (४) भ्राता । (५) चन्द्रः । (६) निर्मानुषस्थाने । (७) नभसि । (८) पुनः पुनर्भ्राम्यति । (९) अन्यो भ्राता । (१०) वने स्थितिं चकार । (११) नन्दने कानने । (१२) कल्पवृक्षः । (१३) लोकानां पीडाकारकेण । (१४) वृद्धेन । (१५) पुरुषेण । (१६) एका भागिनी । (१७) स्वगृहे क्षिप्ता । (१८) अपरा स्वसा । (१९) सुधा-अमृतम् । (२०) क्षयं प्राप्यते ॥९४॥

(१) तृतीया जामिः । (२) महाकष्टेन कृत्वा । (३) कामधेनुः । (४) प्रचलति गोचरं वा कुरुते । (५) ऊर्ध्वं पादा अधो वपुरेवंविधगमना । "कस्या नोत्तानगाया दिवि सुरसुरभेरास्यदेशं गताग्रै"रिति नैषधे । (६) तदप्यनवलम्बने नभसि । (७) दधाति । (८) कौशिकः-शक्रः घूकश्च । कुत्रापि देशे यदा तिरस्कारवचनमुच्यते तदा अरे ! उलूक ! इत्युच्यते - लाभपुरादौ मेवातमण्डले च - तस्मान्निन्द्यः । (९) तत्राप्ययं गोत्रस्य-वंशस्य गिरीणां च ध्वंसकृत् । (१०) मम मस्तके । (११) इत्यादिकां चिन्ताम् । (१२) जिन ! । (१३) नाशय । (१४) कथयितुम् । (१५) पुत्रपौत्रादियुतः । (१६) ऐरावणः । (१७) गजघटा । (१८) सूरिणा । (१९) दृष्टः ॥९५॥

[१]विमलाभिधधीसखः [२]पुरो, ददृशे तेन [३]हयं [४]विभूषयन् ।
किमु [५]सार्व[2]निनंसया [६]शत-क्रतु[७]रुच्चैःश्रवसं [८]समीयिवान् ॥९६॥

(१) विमलनामा प्रधानः । (२) अग्रे । (३) अश्वम् । (४) आरूढः । (५) जिनं नन्तुमिच्छया । (६) इन्द्रः । (७) उच्चैःश्रवोनामानं तुरङ्गं अध्यास्य । (८) समेतः ॥९६॥

[१]प्रभुतोपगतः [२]प्रभुभक्तिभरैः, [३]स्पृहयन्निव [४]मुक्ति[3]पदाय पुनः ।
[५]सचिवो विमलोऽ[६]ञ्जलिशालिशय-द्वितयः स्थितवान्भगवत्पुरः ॥९७॥

---

1. ०कपत्यगो० हीमु० । अशुद्धो भाति । 2. सार्थ० हीमु० । अशुद्धोऽयं पाठः । 3. सिद्धि० हिमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) प्रभुतामाधिपत्यं प्राप्तः । (२) जिनभक्तिप्रभावैः । (३) काङ्क्षन् । (४) सिद्धिस्थानाय राज्याय वा । (५) मन्त्री । (६) हस्तयोजनेन शोभमाने(नं) हस्तयोर्द्वन्द्वं यस्य ॥९७॥

[१]हरिन्मणीनिर्मितं(त)सन्निधिद्वया, [२]सिताश्मसोपानततिर्[३]व्यलोक्यत ।
[४]उपान्तविस्मेरवनीव [५]जाह्नवी, जिनं भजन्ती विजिता[६] समज्ञया ॥९८॥

(१) नीलरत्नै रचितं उपान्तयोर्युग्मं यस्याः । (२) स्फटिकानां सोपानानां श्रेणिः । (३) दृष्टा । (४) उभयोस्तटसमीपपार्श्वयोर्विनिद्रा वनी-काननं यस्याः । "स्ववनीसम्प्रवदत्पिकापिका" इति नैषधे । (५) गङ्गा । (६) कीर्त्याभिभूता ॥९८॥

[१]व्रतीश्वरेणैक्ष्यत [२]तोरणावली, [३]जिनालयद्वारि [४]शुभस्य शंसिनी ।
जिनाधिभर्तुः किमु [५]मुक्तिकन्यया, [६]कृतेयमु[७]द्वाहविधौ [८]विरञ्चिना ॥९९॥

(१) सूरिणा । (२) तोरणमाला । (३) प्रासादद्वारे । (४) कल्याणकारिणी । (५) सिद्धिनामकन्यकया सार्द्धम् । (६) रचिता । (७) पाणिग्रहणसमये । (८) ब्रह्मणा ॥९९॥

[१]श्रीभिर्ज[२]गन्मूर्द्धविधूननीभि-श्चैत्येऽत्र [३]वैचित्र्यदिदृक्षयेव ।
[४]रूप्याचलो[५]ऽनल्पतनुः [६]समीयिवान्, [७]तेनै[८]क्ष्यत [९]स्थ(स्त)म्भततिः [१०]सिताश्मनाम् ॥१००॥

(१) शोभाभिः । (२) आश्चर्यातिशयेन जगज्जनानां मस्तकानां धूनयित्रीभिः । "अद्भुतकरी परमूर्द्धविधूननी" इति नैषधे । तथा- "परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिर" इति चम्पूकथायाम् । 'लग्नं मर्मप्रविष्टं चमत्कृतं च सन्मस्तकं न कम्पयति' इति तट्टिपनके । (३) नानास्वरूपाना-(णा)माश्चर्याणामालेख्यानां च द्रष्टुमिच्छया । (४) कैलाशः । (५) बहुरूपः । (६) समेतः । (७) सूरिणा । (८) दृष्टा । (९) स्तम्भश्रेणी । (१०) श्वेतपाषाणानां स्फटिकानाम् ॥१००॥

[१]महाव्रतिप्राप्तमृतिं [1]पतिं निजं, [२]समीक्ष्य [५]कामं [३]श्वसुरं [४]जिनं श्रितः ।
[६]स्मरावरोधः किमु यत्र पुत्रिका-चयोऽमुना लोचनगोचरीकृतः ॥१०१॥

(१) ईश्वराल्लब्धमरणम् । (२) दृष्ट्वा । (३) भर्त्तुः पितरम् । (४) जिनं-तीर्थकरं कृष्णं च । (५) कृष्णपुत्रः काम इति श्रुतिः । (६) कन्दर्पान्तःपुरम् । "स्मरावरोधभ्रममुद्वहन्ती"-ति नैषधे ॥१०१॥

[१]ताण्डवं [२]तन्वती[३]विभ्रमैर्हस्तकान्-दर्शयन्ती[४]रिहाऽने[५]कपाञ्चालिकाः ।
[६]पाणिमु[७]त्तम्भ्य [८]शम्भुं प्रणन्तुं जना-नाह्वयन्तीरिवाऽसौ ददर्श प्रभुः ॥१०२॥

1. निजं पतिं हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) नृत्यम् । (२) कुर्वती: । (३) विलासैः । (४) प्रासादे । (५) बह्व्यः पुत्रिकाः । (६) हस्तम् । (७) ऊर्ध्वीकृत्य । (८) जिनम् । (९) आकारयन्तीः ॥१०२॥

[१]यत्र [२]पाञ्चालिकाशिल्पं, [३]विभाव्य[1] [४]सुरसुभ्रुवः ।
[५]मेनिरे [६]पद्मजन्मानं, [७]स्वभूषापरिमोषिणम् ॥१०३॥

(१) प्रासादे । (२) पुत्तलिकानां रचनाचातुर्यम् । (३) दृष्ट्वा । (४) सुराङ्गनाः । (५) जानन्ति स्म । (६) धातारम् । (७) आत्मनः शोभानां तस्करम् । अस्माकं समग्रामपि शोभामादाय विधिना एताः सृष्टा इति ॥१०३॥

[१]चण्डरुक्किरणमण्डलस्मयं, [२]खण्डयन्[३]समवलोकि सूरिणा ।
मण्डपो [४]विमलकीर्त्तिनर्तकी-नर्त्तनाय [५]नवरङ्गभूरिव ॥१०४॥

(१) सूर्यस्य कान्तिनिकराहङ्कारम् । (२) शकलीकुर्वन् । (३) दृष्टः । (४) विमलमन्त्रिणः कीर्त्तिरेव नृत्यकृद्वधूस्तस्या नृत्यस्य करणाय । (५) नर्तनस्थानकभूमिरिव ॥१०४॥

[१]वैजयन्तं विजेतुं [२]विभूषाभरै-र्व[३]ज्ररोचिःस्फुरच्चा[पच]क्रायुधः ।
यः [४]स्वशृङ्गेण गर्वाद्दिवो[५]गाहिना, गन्तुमुच्चै[६]र्व्यवस्यन्नि[७]वोर्ज्जस्वलः ॥१०५॥

(१) इन्द्रप्रासादम् । (२) शोभातिशयैः । (३) वज्राणां वज्रमणीनां कान्तिभिः कृत्वा प्रकटीभवद्धनुर्मण्डलमेवाऽऽयुधं-शस्त्रं यस्य । अथ च दम्भोलिः कान्त्या दीप्यमानश्चापो धनुः चक्रं रथाङ्गः आयुधानि [यस्य]। (४) निजशिखरेण । (५) अभ्रंलिहेन । (६) स्वर्गलोके व्यवसायमुद्यमं कुर्वन् । (७) प्रबलबलवान् ॥१०५॥

आलुलोकेऽमुना [१]गर्भगेहः पुना, [२]राजधानीव [३]धर्मावनीभास्वतः ।
[४]चित्रिता[५]मर्त्यमर्त्योरगाणां [६]निभा-[७]द्भूर्भुवःस्वस्त्रयेणेव [८]संसेवितः ॥१०६॥

(१) 'गभारो' इति लोकप्रसिद्धिः । (२) निवासनगरीव । (३) धर्मनामनृपस्य । "पाण्डोरवनिमार्त्तण्डस्याऽवदातान्गुणानह" इति पाण्डवचरित्रे । (४) आलेख्यं प्रापितानाम् । (५) सुरनरासुराणाम् । (६) कपटात् । (७) त्रिभुवनेन । (८) संसेव्यते स्म ॥१०६॥

चैत्यस्य [१]पु(प)रितो [२]देव-कुलिकाः पश्यति स्म सः ।
[३]अर्बुदाद्रिश्रिया[४]श्चूडा-भरणस्येव मुक्तिका ॥१०७॥

(१) चैत्यस्य चतसृष्वपि दिक्षु । (२) लघुदेवगृहाणि । (३) अर्बुदाचललक्ष्म्याः । (४) शिखामणेः-लोके 'वाक' इति प्रसिद्धस्य-भूषणस्य । अर्थात्प्रासादस्य परितो मुक्तिका लघुमुक्ता-फलानीव । "सिता वमन्तः खलु कीर्त्तिमुक्तिकाः" इति नैषधे ॥१०७॥

---

1. निरूप्य हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैत्यं [१]प्रदक्षिणीचक्रे, समं [२]सङ्घेन स प्रभुः ।
[३]ज्योतिषां [४]मण्डलेनेव, [५]मन्दरं [६]कौमुदीपतिः ॥१०८॥ इति विमलवसतिवर्णनम् ॥

(१) प्रासादस्य प्रदक्षिणां प्रदत्ते स्मेत्यर्थः । (२) श्राद्धवर्गेण । (३) ग्रहनक्षत्रताराकाणाम् । (४) निकरेण । (५) मेरुम् । (६) चन्द्रमाः ॥१०८॥

[१]विवेश [२]वशिनामीशो, [३]गर्भ[1]गेहं [४]जिनौकसः ।
[५]स्तम्बेरमीविवोढेव, [७]गह्व[2]रं [६]विन्ध्यभूभृतः ॥१०९॥

(१) प्रविशति स्म । (२) जितेन्द्रियाणां योगिनां स्वामी । (३) गर्भागारे । (४) प्रासादस्य । (५) हस्तीव । (६) विन्ध्याचलस्य । (७) गुहाम् ॥१०९॥

[१]जा[3]तोक्षलक्ष्मा [२]भगवानदर्शि, सूरीन्दुना [३]सम्मदमेदुरेण ।
[४]जगन्[५]महानन्दपदं [६]निनीषुः, [७]स्वयं [८]ततः किं [९]कृपयो[१०]ऽवतीर्णः ॥११०॥

(१) वृषभाङ्कः । (२) ऋषभदेवः । (३) प्रमोदपुष्टेन । (४) सर्वजगज्जनम् । (५) मुक्तिस्थानम् । (६) प्रापयितुमिच्छुः । (७) आत्मना । (८) महानन्दपदात् । (९) सीदतां लोकानामनुकम्पया । (१०) आगतः ॥११०॥

अपि [१]प्रपन्नो [२]भुवने [३]धुरीणतां, पुनस्त[४]दीयस्पृहयेव [५]निर्वृतौ ।
[६]शीलन्त[७]मङ्कच्छलतः [८]क्रमाम्बुजं, जिनस्य [९]जातो[१०]क्षमवैक्ष्यत प्रभुः ॥१११॥

(१) प्राप्तः । (२) भूमण्डले । (३) सुरासुरभुवनयोस्तु सुरद्रुमेषु तृप्तृषु क्षेत्राणामभावात्तदभावे वृषभाणामप्यभावः । धुरन्धरतां- धुर्वहत्वम् । (४) धुरीणतायाः काङ्क्षया । (५) मोक्षेऽपि । (६) सेवमानम् । (७) लाञ्छनस्य कपटात् । (८) पादकमलम् । (९) वृषभम् । (१०) पश्यति स्म ॥१११॥

[१]पायं पायं [२]विभोर्व[३]क्त्र-विधौ [४]लवणिमामृतम् ।
[५]तदुद्गारैरिवा[६]ऽस्तावि, [4][७]संस्तवैरिति सूरिणा ॥११२॥

(१) पीत्वा पीत्वा । अतिशायिभक्तिमत्तया वारं वारम् । 'पौनःपुन्ये णम्पदं द्विश्चे'ति णमुप्रत्ययः । धातोः प्रत्ययसहितस्य द्विर्भावश्च -पायं पायम् । (२) जिनस्य । (३) वदनचन्द्रे । (४) लावण्यसुधारसम् । (५) अमृतोद्गारैरिव । (६) स्तुतवान् । (७) स्तवनैः । अग्रे कथ्यमानैः ॥११२॥

जय [१]त्रिजगदीहितामरतरो ! [२]सरोजानन !
[३]प्रसूनविशिखासनद्विरदभेदपञ्चान[न]! ।

---

1. ०गेहे हीमु० । 2. गह्वरे हीमु० । 3 जातोऽक्ष० हीमु. । स चाशुद्धः । 4. स स्तवै० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय [४]त्रिदशसुन्दरीविकचनेत्रनीलोत्पलै-
[५]र्निपीतमुखशीतरुग्लवणिमैकपीयूष ![६] हे ! ॥११३॥

(१) त्रैलोक्यकामितपूरणे कल्पवृक्ष ! । (२) कमलवदन ! । (३) पुष्पमेव विशिखासनं धनुर्यस्येति स्मरः, स एव गजस्तद्विदारणे केसरी(रिन्!) । (४) देवाङ्गनाविनिद्रनयन-कुवलयैः । (५) पीता(तं) सादरमवलोकितं वदनचन्द्रस्य लावण्यरूपमद्वैतममृतं यस्य । (६) हे जगदीश ! त्वं जय ॥११३॥

जय [१]प्रणतपूर्वदिक्प्रणयिमौलिमालागल-
न्मरन्दकणधोरणीस्नपितपादपद्मद्वय ! ।
जय [२]त्रिभुवनेन्दिराभरण ! [३]नाभिभूमीधना-
न्ववायगगनाङ्गणाम्बरमणे ! महोक्षध्वज ! ॥११४॥

(१) नतशक्रमुकुटपुष्पदामनिःसरन्मकरन्दबिन्दुसन्दोहधौतचरणकमलयुग्म!। (२) त्रैलोक्यलक्ष्मीभूषण ! । (३) नाभिनृपवंशव्योमभानो ! ॥११४॥

जय [१]त्रिभुवनाशिवप्रशमनात्मगम्भीरिमा-
पहस्तिततरङ्गिणीप्रियतमावलेप ! प्रभो ! ।
[२]महोदयपयोरुहोदरविनोदपुष्पव्रता !-
[३]ऽम्बुजासन इव [४]स्फुटीकृतविशिष्टसृष्टिक्रम ! ॥११५॥

(१) त्रिजगदरिष्टनिवारणस्वगाम्भीर्यविजितसमुद्रगर्व ! । (२) मोक्षाम्बुजमध्यक्रीडन-भ्रमर ! । (३) विधातेव । (४) प्रकटीकृतप्रधानसर्गक्रम ! ॥११५॥

जय [१]प्रमथितान्तराहितपताकिनीनायको-
[२]ल्लसत्कनककेतकीकमलगर्भगौरद्युते ! ।
[३]भवाम्बुनिधिनिष्पतन्मनुजयान[1]पात्र ! प्रभो !
[४]यशःसुमसुगन्धितत्रिभुवनोऽत्र जीयाश्चिरम् ॥११६॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

(१) निर्दलितान्तरङ्गरिपुसेनापते ! । (२) विकसत्काञ्चनकेतकीपद्मानां गर्भवन्मध्यप्रदेश इव गौरा-पीता - "गौरः श्वेतपीतयो"रित्यनेकार्थः - कान्तिर्यस्य । (३) संसारसमुद्रे निमज्जनानां त्राणाय प्रवहण ! । (४) यशःकुसुमसुरभीकृतत्रिलोक ! । (५) जगति ॥११६॥

[१][2]कैलाशलक्ष्मीतिलकायमान-[२]मिवेन्द्रभूतिर्व्र[३]तिनां बिडौजाः ।
[४]तमित्यभि[५]ष्टुत्य[६] मुदं दधानः, [७]प्रणेमिवान्प्राञ्[८]जलिरादिदेवम् ॥११७॥

1. ०पात्रोच्छ्वसद्यशः० हीमु० । 2. ०लास० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अष्टापदश्रियास्तिल[क]वदाचरितम् । (२) गौतमस्वामी । (३) सूरीन्द्रः । (४) ऋषभम् । (५) पूर्वोक्तप्रकारेण । (६) स्तुत्वा । (७) नमति स्म । (८) भालस्थलयोजितहस्तः ॥११७॥

[१]आनन्दवृन्दारकनिर्झरिण्यां, [२]निमज्ज्य जम्भद्विषतः [३]करीव ।
[४]निरस्तनिश्शेषरजाः स सूरि-[५]र्निरीयिवाञ्श्री[६]जिनराजधाम्नः ॥११८॥

(१) प्रमोदगङ्गायाम् । (२) स्नानं कृत्वा । (३) ऐरावण इव । (४) निवारितानि समस्तानि स्वपररजांसि पापानि धूवलयश्च येन । (५) निर्गतः । (६) प्रासादात् । विमलवसतेरित्यर्थः ॥११८॥

[१]पिण्डीभवद्[२]र्बुभृति [३]वस्तुपाल-यशः किमालोक्य परं [४]जिनौकः ।
तस्मिन्[५]नलीव स्मितपुण्डरीके, [६]श्रेयोरसं [७]संस्पृहयन्विवेश ॥११९॥

(१) पिण्डाकारं सम्पद्यमानम् । (२) अर्बुदाचले । (३) वस्तुपालनाम्नः सचिवस्य यशः । (४) जिनगेहम् । (५) भ्रमर इव । (६) मोक्षमकरन्दम् । (७) वाञ्छन् ॥११९॥

[१]चुचुम्बेऽम्बरं [२]यन्मणीमण्डपेन, [2][३]द्युतिद्योतिताशेषदिङ्मण्डलेन ।
किमु स्नातुमाकाङ्क्षता [४]स्वर्वहायाः, प्रवाहे [५]विहायोमणीतापितेन ॥१२०॥

(१) स्पृशति स्म । (२) वस्तुपालवसतिरत्ननिर्मितमण्डपेन । । (३) कान्तिभिः प्रकाशितनिखिलाशाप्रदेशगणेन । । (४) गङ्गायाः । (५) सूर्यतापतप्तीकृतेन ॥१२०॥

[१]विभाव्य [२]यत्रा[३]ऽद्भुतशालभञ्जी-राजीस्त्रि[४]लोकीयुवतीर्जय[५]न्तीः ।
सुरै[६]र्मरुद्यो(द्यौ)वतरूपशिल्पी, स्म [७]कल्प्यते कारुरिवा[८]ऽनधीतिः ॥१२१॥

(१) दृष्ट्वा । (२) प्रासादे । (३) प्रधाना आश्चर्यकारिण्यो वा पुत्रिकापङ्क्तीः । (४) त्रिभुवनाङ्गनाः । (५) स्वरूपेण पराजय(भव)न्तीः । (६) देवाङ्गनागणवपुश्चारिमकारकः । (७) कल्पितस्तर्कितः । (८) न विद्यते सम्यक्शिल्पकलानामध्ययनं शिक्षा यस्य सोऽनधीतिः - निकृष्टशिल्पी ॥१२१॥

[१]असूयता [२]शुभ्रिमविभ्रमाय, [३]युयुत्सु [४]यच्चैत्यम[५]चण्डभासा ।
[६]बिभर्त्ति [७]विद्वेषिजिगीषयैता-म[८]मोघशक्तिं किमु दण्डदम्भात् ॥१२२॥

(१) ईर्ष्यां कुर्वता । (२) शुभ्रत्वस्य श्रिया(यै) । (३) योद्धुमिच्छु । (४) यः प्रासादः । (५) चन्द्रमसा । (६) धत्ते । (७) रिपूणां जेतुमिच्छया । (८) क्वापि न निष्फलीभवन्तीं शक्तिमायुधविशेषम् । 'सांगि' इति नाम्नीम् ॥१२२॥

1. विहारम् हीमु० । 2. जगन्नेत्रजैवात्रिकेणाऽऽत्ममूर्ध्ना हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]यच्चान्द्रचैत्योपरि [2]शातकौम्भः, कुम्भो [3]विभूषां [4]बिभरांबभूव ।
[5]सुधासरःसम्भ्रमतः [6]समेतो, [7]रथाङ्गनामा किमु [8]रन्तुकामः ॥१२३॥

(१) यदेव शुभ(भ्र)त्वेनोपमानीकृतं चन्द्रकान्तमयं चैत्यं, तस्योपरि । (२) सुवर्णसम्बन्धी कलशः । (३) शोभाम् । (४) धत्ते स्म । (५) अमृतभृततटाकभ्रान्त्या । (६) समागतः । (७) चक्रवाकः । (८) क्रीडां कर्त्तुमिच्छुः ॥१२३॥

[1]यद्वैजयन्त्या [2]सितिमश्रियाः [3]स्वः-पाथोधिपत्नी [4]गमिता [5]विगानम् ।
[6]निम्नं [7]व्रजन्ती [8]त्रपयो[9]ऽसिताब्जैः, [10]श्यामीकृतास्येव [11]जडाशयो[12]ऽऽसीत् ॥१२४॥

(१) प्रासादध्वजेन । (२) शुभ्रत्वस्य लक्ष्म्या । (३) गगनगङ्गा । (४) प्रापिता । (५) अवहेलनाम् । (६) नीचैः । (७) यान्ती सती । (८) लज्जया । (९) नीलोत्पलमालाभिः कृत्वा । (१०) कृष्णं कृतं वक्त्रं यया सा । (११) किंकर्त्तव्यतायां मूढचित्ता । (१२) जज्ञे ॥१२४॥

[1]तं [2]रैवतोर्वीधरवत्[3]पवित्री-चिकीर्षयेवा[4]ऽर्बुदम[5]भ्युपेतम् ।
[6]निरीक्ष्य [7]तस्मिन्न[8]यनाभिरामं, [9]ननाम [10]शे(शै)वेयजिनं [11]यतीन्द्रः ॥१२५॥

(१) अर्बुदाचलम् । (२) गिरिनारिगिरिमिव । (३) पावनं कर्त्तुमिच्छया । (४) हिमाद्रिपुत्रं प्रति । (५) समागतम् । (६) विलोक्य । (७) वस्तुपालप्रासादे । (८) लोचनयोर्मनोहरम् । यां जिनप्रतिमामालोक्य तद्दर्शनातृप्ततया न पश्चादागच्छतो नेत्रे । अतो नयनाभिरामम् । (९) नमति स्म । (१०) नेमिनाथम् । (११) सूरिचन्द्रः ॥१२५॥

[1]नमनेन [2]मुनीशिता [3]परे-ष्वपि [4]चैत्येषु [5]जिनेन्द्रसन्ततेः ।
[6]धनकामयितेव [7]सम्मदं, [8]दधते स्मा[9]ऽधिगमेन [10]सेवधेः[1] ॥१२६॥

(१) प्रणामेन कृत्वा । (२) सूरिः । (३) अन्येषु । (४) प्रासादेष्वपि । (५) भागवत्प्रतिमापङ्क्तेः । (६) द्रव्याभिलाषुक इव । (७) हर्षम् । (८) 'दधि धारणे' केवलमात्मनेपदी । (९) प्राप्त्या । (१०) निधानस्य ॥१२६॥

[1]चौलुक्यचैत्यं [2]विधृतामृतश्रि, [3]धर्मप्रपास्थानमिवैष मार्गे ।
[4]नत्वा मुनीन्द्रो[5]ऽचलदुर्गमध्ये, [6]चतुर्मुखे [7]नाभिसुतं [8]व्यनंसीत् ॥१२७॥

(१) अचलदुर्गस्य मार्गे गच्छन्नर्वाग्मार्गे कुमारविहारम् । (२) आकलिता-आश्रिता वा मोक्षलक्ष्मीर्येन । पक्षे-धृता पानीयानां शोभा येन, तादृशम् । (३) धर्मस्य-पुण्यस्य पानीयशालागृहम् । लौकिकधर्मेणोपलक्षितं पानीयशालासदनमिव । (४) प्रणम्य । अर्थात्तत्र श्रीजिनं नत्वा ।

1. शेवधेः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) अचलनाम्नः कोट्टस्याऽन्तराले । (६) चत्वारि मुखानि मण्डपा[नि] यस्य, तादृशे प्रासादे । (७) ऋषभदेवम् । (८) प्रणमति स्म ॥१२७॥

[1]दिनानि कतिचित्सूरि- [2]र्गिरीन्द्रतनुजे [3]गिरौ ।
[4]स्थितोऽ[5]र्हद्ध्याननिध्यान-[6]श्चारणश्रमणेन्द्रवत् ॥१२८॥

(१) कियतो वासरान् । (२) हिमाचलसुते । (३) अर्बुदशैले । (४) तिष्ठति स्म । (५) भगवतां ध्यानं-स्मरणं प्रणिधानं तथा निध्यानं-पौनःपुण्ये(न्ये)न दर्शनं यस्य । (६) जङ्घाचारण-विद्याचारणादिमहामुनिवत् ॥१२८॥

[1]उदयशिखरिणीव [2]श्रीमदम्भोजबन्धु-
[3]र्विषमविशिखवैरी [4]स्फाटिकोर्व्वीधरे[1] वा ।
[5]त्रिदशपतिरिव [6]स्वर्भूधरे सूरिसिंहो
[7]हिमशिखरिसुतेऽस्मिन्का[8]ञ्चनाभां बभार ॥१२९॥

इति पं.देवविमलगणिविरचिते श्रीहीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये अकमिपुर-प्रस्थान-श्रीविजयसेनसूरिसम्मुखागमन-पत्तनसमवसरण-तत्प्रस्थान-श्रीविजयसेनसूरिपश्चाद्वलन-सिद्धपुरागमन-मार्गोल्लङ्घना-र्जुनपल्लीपतिस्त्रीनमनादि-अर्बुदाचल-तदधिरोहण-विमलवसतिप्रमुखचैत्य-भगवत्प्रणमनस्तवना-दिवर्णनो नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥ ग्रन्थाग्रं० २०० ॥

(१) उदयाचले । (२) श्रीमान्भास्करः । (३) स्मररिपुः शङ्करः । (४) कैलाशे । (५) इन्द्रः । (६) सुरगिरौ । (७) अर्बुदाचले । (८) वचनगोचरातीतां शोभाम् ॥१२९॥

इति द्वादशः सर्गः ॥ ग्रन्थाग्रं० ३०७ ॥

---

1. ०र्वीभृतीव हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐं नमः ॥

अथ त्रयोदशः सर्ग : ॥

अथाऽर्बुदाद्रे[1]रवतीर्य भूमीं, विभूषयामास स [2]सूरिभूमान् ।
[3]वचस्तरङ्गै[4]स्त्रिजगत्पुनानो, [5]रयो हिमाद्रेरिव [6]देवनद्याः ॥१॥

(१) अथ समेत्य । (२) सूरिराजः । (३) वाक्कल्लोलैः । (४) त्रैलोक्यजनान् । गङ्गापि त्रिभिः प्रवाहैस्त्रिभुवनं पवित्रीकुर्वाणः । (५) प्रवाहः । (६) गङ्गायाः ॥१॥

[1]यस्यां [2]द्विपेन्द्रैः [3]स्वमदप्रवाहै-रारा[4]मिकौघैरिव [5]वारिपूरैः ।
वृक्षा [6]अवर्द्धयन्त विभु[7]र्व्यहार्षी-[8]त्तत्रा[1]ऽर्बुदाभ्यर्णवसुन्धरायाम् ॥२॥

(१) अर्बुदाद्रेरधोधात्र्यांम् । (२) मत्तगजेन्द्रैः । (३) निजदानवारिश्रेणिभिः । (४) वनपालकगणैः । (५) पयोभरैः । (६) वृद्धिं नीयन्ते स्म । (७) विहारं कृतवान् । (८) तस्यामर्बुदाभ्यर्णभूमौ ॥२॥

मित्रं [1]महिम्ना किमनुव्रजन्तं, [2]स्वदीर्घभावेन [3]सहाय[व]त्तम् ।
इ[4]वाऽचलं [5]शैवलिनीप्रवाहः, क्रमान्मुनीन्द्रोऽर्बुदमु[6]ल्ललङ्घे ॥३॥

(१) माहात्म्येन तुङ्गतया । (२) स्वस्य आयामतया अतिलम्बत्वेन । (३) सखायमिव । यथा प्रस्थितस्य पुंसः सुहृत्सार्द्धमायाति । (४) मार्गपर्वतमिव । (५) नदीरयः । (६) उल्लङ्घितवान् ॥३॥

प्रतिष्ठमानः[1] पुरतो व्रतीन्दु-[3]र्भूषाम[4]नैषीत् [2]शिवपूःसमीपम् ।
[5]स्वपादसंस्पर्शनतः [6]पयोज-कुञ्जं यथा [7]पङ्कजिनीविवोढा ॥४॥

(१) प्रचलन्नग्रे । (२) श्रीरोहिणी श्रीरोही वा तस्याः समीपम् । (३) शोभाम् । (४) प्रापयति स्म । (५) निजचरणानां किरणानां च संपर्केण । (६) कमलवनम् । (७) भानुः ॥४॥

[1]जनारवै[2]रागमनं मुनीन्दो-स्ततः [3]सुरत्राणनृपो [4]निपीय ।
[5]कलापिकेकाभिरिवा[6]ऽम्बुदस्य, [7]नभोम्बुपः [8]सम्भ्रमदमेदुरोऽभूत् ॥५॥

(१) लोकवार्त्ताभिः । (२) पादावधारणम् । (३) सुरत्राणनामा शिवपुरीस्वामी राजा । (४) सादरं श्रुत्वा । (५) मयूरकेकारवैः । (६) मेघस्य । (७) चातकः । (८) हर्षपुष्टः ॥५॥

[1]भक्त्या [2]सुरत्राणनृपो[3]ऽभिगम्य, [4]वेत्रीव दण्डं दधद[5]ग्रगामी ।
प्रवेशयामास [6]पुरीं स सूरिं, [7]पुराङ्गनागीतयशः प्रशस्तिम् ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सेवासक्त्या । (२) सुरत्राणभूपः । (३) सन्मुखमागत्य । (४) प्रतीहार इव । (५) पुरश्चरणशीलः । (६) श्रीरोहिणीम् । (७) नगरनारीभिर्गानगोचरीकृता विविधावदाता यस्य ॥६॥

[१]आलेख्यशेषीकृतकामदस्यो-[२]रुपास्यमानस्य [३]महीमहेन्द्रैः ।
[४]चक्रीव [५]चक्रस्य पुरे [६]पुरीन्द्रो, [७]महामहं कारयति स्म सूरेः ॥७॥

(१) हतः कामः स्मर एव वैरी येन । पक्षे-व्यापादिता अतिशयेन वैरिणो येन । (२) सेव्यमानस्य । (३) राजभिः । (४) चक्रवर्त्तीव । (५) प्रथमोत्पन्नस्य चक्रस्य । (६) शिवपुरीस्वामी । (७) महोत्सवम् ॥७॥

[१]दिदृक्षु[२]रेतन्महिमानमभ्र[३]-सरित्[४]सहस्रं [५]दधती [६]मुखानाम् ।
[७]यत्राऽऽगता किं [८]सितकेतुकाया, पुरीं स तां सूरिरलंचकार ॥८॥

(१) द्रष्टुमिच्छुः । (२) सूरिमहिमानम् । (३) आकाशनदी । सहस्रमुखी गङ्गेति जने प्रसिद्धिः । (४) दशशतीम् । (५) धारयन्ती । (६) वक्त्राणाम् । (७) शिवपुर्याम् । (८) प्रतिहट्टं प्रतिगृहं श्वेतध्वजदम्भात् ॥८॥

[१]द्वितीयराशौ [२]शतमन्युसूरि-रिव [३]क्रमेणो[४]पगतः स [५]तस्याम् ।
[६]प्रकाशयन्बो[७]धिनिधीन्विदग्धान्, [८]महोदयस्यो[९]ऽभिमुखीचकार ॥९॥

(१) यस्य कस्यचित्पुंसः स्वराशितो द्वितीयो राशिः । यत उक्तं च - "द्वितीये नवमे राशौ बृहस्पतिरुपागतः । कुर्यान्महोदयं पुत्रगोत्रवृद्धिः धनं पुनः ॥१॥" इति वचनात् । (२) बृहस्पतिः । (३) परिपाट्या । (४) समागतः । (५) शिवपुर्याम् । (६) प्रकटीकुर्वन् । (७) सम्यक्त्वनिधानानि । (८) मोक्षस्य, अतिशयाभ्युदयस्य । (९) सम्मुखीकुरुते स्म ॥९॥

[१]स [२]प्रस्थित[३]स्तत्पुरतः पुरस्ता-[४]त्स्मितप्रसूनादिव [1]चिञ्चरीकः ।
[६]गण्डे गजस्येव वि[७]लङ्घ्य मार्गं, स सादडीनाम्नि पुरे जगाम ॥१०॥

(१) सूरिः । (२) प्रचलितः । (३) तन्नगरात् । (४) विकचकुसुमात् । (५) भृङ्गः । (६) कपोले । (७) अतिक्रम्य ॥१०॥

[१]प्राग्[२]वागडावन्तिविराटखान-महादिराष्ट्रापरमण्डलेषु ।
[३]सार्थाधिपेनेव [४]सुतेन [५]सातं, [६]विहृत्य लाभांश्च[७] बहूनुपार्ज्य ॥११॥

[१]कल्याणराजद्विजयाभिधानो-पाध्यायचन्द्रेण [२]समेत्य [३]तत्र ।
[४]क्रमाद[५]विच्छिन्नतमप्रयाणैः, [६]श्रीतातपादाः [७]प्रणताः [८]प्रमोदात् ॥१२॥ युग्मम् ॥

1. चिञ्चिरीकः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) पूर्वम् । (२) वागडनामा मालवनामा विराटनामा खाननामा महाराष्ट्रनामा देशः, एतेषु अन्यदेशेषु । (३) सार्थनायकीभूतेन । (४) पुत्रेणेव । (५) सुखं यथा स्यात्तथा । (६) विहारं कृत्वा । (७) द्रव्योपार्जनाय । बहुषु स्थानेषु गत्वा पुण्यानि अधिकधनानि च स्वसात्कृत्वा आदायेत्यर्थः ॥११॥

(१) कल्याणेन कृत्वा राजमानं यद्विजयाभिधानम् । एतावता कल्याणविजय इतिनाम्ना उपाध्यायेषु चन्द्रसदृशेन । (२) समागत्य । (३) सादडीनगरे । (४) विहारपरिपाट्या । (५) अतिशयेनाऽखण्डितैः प्रस्थानैः । (६) श्रीहीरविजयसूरयः पितृचरणाश्च । (७) नमस्कृताः । (८) हर्षात् ॥१२॥ युग्मम् ॥

विभूषयद्वि[1]न्ध्यधराभृतोऽ[2]ष्टा-पदस्य [3]साकेतमिवो[4]पकण्ठम् ।
[5]स [6]वाचकेन्द्रानुगतस्ततः श्री-व्रतीश्वरो राणपुरं बभाज ॥१३॥

(१) विन्ध्याचलशैलस्य । (२) कैलाशस्य । (३) अयोध्यामिव । (४) समीपम् । (५) सूरिः । (६) कल्याणविजयोपाध्यायेन सहितः ॥१३॥

विन्ध्याचलं [1]तुङ्गतया [2]वयस्य-भावं भज[न्तं] [3]प्रविभाव्य विद्यः ।
[4]गिरीशशैलं मिलितुं [5]समेतं, स [6]प्रैक्षता[7]ऽस्मिन्[8]धरणस्य चैत्यम् ॥१४॥

(१) उच्चैस्तरत्वेन । (२) मित्रताम् । (३) दृष्ट्वा । (४) कैलाशम् । (५) विन्ध्याचल-समीपमागतम् । (६) ददर्श । (७) राणपुरे । (८) धरणविहारम् ॥१४॥

[1]विनिद्रनीलाञ्जनिकानमेरु-वनीविनीलालकशालमाने ।
[2]मौलो [3]प्रणीतं [4]द्रुहिणेन [5]चान्द्र-चूडामणिं किं [6]धरणीन्दिरायाः ॥१५॥

(१) स्मेरा नीलाञ्जनिकास्तापिच्छास्तमालतरवस्तथा नमेरवो नीलच्छविवृक्षविशेषास्ते-षामारामवन्मेचककचैः शोभमाने । "नीलाञ्जनिकाकुसुमकान्तिनि तमसि" तथा "नीलाञ्जनिका-कुसुमकान्तयः किरातयुवतयः" इति चम्पूकथायाम् । तट्टिप्पनके-नीलाञ्जनिका तापिच्छ इति । (२) मस्तके । (३) कृतम् । (४) विधिना । (५) चन्द्रकान्तमणिमयं शिखारत्नं 'चाक' इति नाम्नाऽधुना लोके प्रसिद्धम् । (६) भूमीश्रियः ॥१५॥

भू[1]मीन्द्रकुम्भाभिधराणकस्य, [2]स्तम्भान्दधानं [3]निजमण्डपान्तः ।
[4]अनेकपस्फूर्त्तिभुवः [5]समज्ञा-स्तम्भानिवैतान् [6]शिवगोत्रजैत्रान् ॥१६॥

(१) मेदपाटदेशाधिपस्य कुम्भानाम्नो राणकस्य । (२) सप्तस्तम्भान् । (३) स्वस्य मण्डपमध्ये । (४) गजानां स्फूर्त्तीनां विलसितानां स्थानानि । पक्षे-अनेकान्पातीति तत्त्वेन या स्फूर्त्तयस्तासां भुवः । (५) कीर्त्तिस्तम्भाः(भान्) । (६) कैलाशशैलजयनशीलान् ॥१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]स्वतुङ्गिमाधःकृतरत्नसानुं, [२]विगाहमानं [३]शिखरै[४]र्विहायः ।
[५]प्रगल्भमानं [६]वपुषैव तेना-[७]ऽऽश्रितानिव प्रापयितुं [८]द्युलोकम् ॥१७॥

(१) निजोच्चत्वेन तिरस्कृतमेरुम् । (२) स्पृशत् । (३) शृङ्गैः । (४) गगनम् । (५) उद्यमं कुर्वाणम् । (६) शरीरेणैव । (६) स्वस्य संश्रितान् । (८) स्वर्गम् ॥१७॥

[१]चेतश्चमत्कारकरीस्त्रिलोक्या, लक्ष्मीः समालोक्य [२]रसातिरेकात् ।
[३]संस्तम्भिताङ्गीभिरि[४]वाऽमरीभिः, [५]पाञ्चालिकाभिः [६]प्रविभासमानः ॥१८॥

(१) चित्तस्य चमत्कृतेर्विधायिनीः । (२) दर्शनरसातिशयात् । (३) निश्चलीभूत-तनूलताभिः । अथवा विमुक्तगमागमाङ्गस्फुरणनिमेषादिव्यापारशरीराभिः । (४) देवीभिः । (५) पुत्रिकाभिः । (६) शोभमानम् ॥१८॥

[१]पाञ्चालिकाप्रौढविलासवीक्षा-हृणीयमानद्युधवावरोधम् ।
[२]अष्टापदोत्तीर्णवृषाङ्कगेह-[३]मसासही[४]वाँऽद्रिनिवासजार्त्तिम् ॥१९॥

(१) पुत्रिकाणां प्रगल्भविभ्रमाणां दर्शनेन लज्ज्यमाना शक्रान्तःपुर्यो यत्र । (२) कैलाशाद्भूमौ समेतं ऋषभस्य सिंहनिषद्यानामप्रासादमिव । (३) सोढुमप्रभुः । "अहिर्महीगौरव-सासहिर्य" इति नैषधे । (४) शैले-शिखरे नित्यवसतिसञ्जातपीडाम् ॥१९॥

[१]ध्रुवं दधानं [२]चतुराननीं च, [३]हिरण्यगर्भं [४]भवसूदनं च ।
[५]पद्मासनं [६]स्वःसदुपास्यमानं, पतिं [९]प्रजाना[८]मपरं किमु[७]र्व्याम् ॥२०॥ सप्तभिः कुलकम् ॥

(१) नित्यस्थायुकम् । (२) चत्वारि मुखानि । (३) सुवर्णं मध्ये यस्य । (४) संसार-निवारणम् । (५) कमलानां पूजादिभिराकृतिभिर्वा स्थानम् । (६) सुरैः संसेव्यमानम् । (७) भूमण्डले । (८) अन्यम् । (९) धातारम् । सर्वाणि विधेरभिधानानि । सुरज्येष्ठत्वाद्देवैः सेव्यमान इति ॥२०॥

[१]चातुर्गतीयार्त्तिमहान्धकूपो-द्दिधीर्षया[२]शेषशरीरभाजाम् ।
मूर्त्तीश्चतस्रः [३]कलयन्नि[४]वाऽस्मिन्, [५]मुनीन्दुना[६]ऽदर्शि युगादिदेवः ॥२१॥

(१) चतसृभिर्य इन्द्र-नरक-नर-सुराणां गतयस्तत्सम्बन्धिन्यो याः पीडा दुःखानि त एव महान्तस्तमःकूपास्तेभ्य उद्धर्तुमिच्छया । (२) समस्तप्राणिनाम् । (३) धारयन् । (४) धरणविहारे । (५) सूरिणा । (६) दृष्टः ॥२१॥

[१]निःश्रेयसस्येव [२]सुखं [३]जिनेन्द्रं, [४]प्रदक्षिणीकृत्य पतिर्यतीनाम् ।
[५]सुधासनाभीभवदुक्तियुक्ते-र्भक्तेः [६]स्तुतेर्गोचरतां चकार ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) मोक्षस्य । (२) सातम् । (३) ऋषभदेवम् । (४) प्रकर्षेणाऽनुकूलीकृत्य । (५) अमृतस्य बन्धूभवन्तीनामुक्तीनां-वाक्प्रपञ्चानां युक्तयो-रचनाचातुर्यं यस्याम् । (६) स्तौति स्म ॥२२॥

[1]संप्राप्तयो[2]र्निर्जरनागधाम्नो-[3]रिवाऽन्तिके[4]ऽर्हत्क्रमसेवनाय ।
[5]शिरोगृह क्ष्मागृहयोः प्रणम्य, जिनान्[6]मुनीन्दुः स [7]ततः [8]प्रतस्थे ॥२३॥

(१) आगतयोः । (२) स्वर्गपातालयोः । (३) समीपे । (४) भगवत्पादपद्मपरिचरणाय । (५) ऊर्ध्वगेहाधोगृहयोः । (६) सूरिः । (७) राणपुरात् । (८) अग्रे चचाल ॥२३॥

[1]आउआपुरेशो [2]जगडूः किमन्य-स्ताह्वाभिधः साधु[3]रनन्यदानैः ।
[4]पीरोजिकाभिः [5]स्वपुरप्रवेशे, [6]प्रभावनाद्युत्सवमस्य [7]चक्रे ॥२४॥

(१) आउआनाम्नः पुरस्य स्वामी । (२) भद्रेश्वरपुरवास्तव्यः परः जगडूनामा । (३) असाधारणविश्राणनैः । (४) पीरोजिकानामनाणकैः । (५) आत्मनः पुरमध्ये प्रवेशसमये । (६) धर्मस्थाने प्रतिजनं यत्किञ्चित्पूगाद्यर्प्यते सा प्रभावना, तत्प्रमुखमुत्सवम् । (७) कृतवान् । प्रभावनायां प्रतिजनं मरुदेशप्रसिद्धां पीरोजिकां ददावित्यर्थः ॥२४॥

[1]प्राप्या[2]ऽनुशास्तिं [3]प्रभुतो[4]ऽशुलक्ष्मीं, [5]पर्वात्यये [6]चन्द्रमसेव [7]भानोः ।
[8]कल्याणचञ्चद्विजयाभिधानो-पाध्यायशक्रेण ततो [9]न्यवर्त्ति ॥२५॥

(१) लब्ध्वा । (२) शिक्षाम् । (३) सूरीन्द्रात् । (४) किरणश्रियम् । (५) अमावास्या-व्यपगमे । (६) विधुना । (७) सूर्यात् । (८) कल्याणविजयोपाध्यायेन्द्रेण । (९) निवृत्यते स्म ॥२५॥

[1]ग्रामक्षमाभृद्वनदेशदुर्गा-[2]नुल्लङ्घ्य [3]दुर्लङ्घ्यभुवो बभाज ।
स [4]मेदिनीनाम पुरं यतीनां, पतिर्यथा [5]तक्षशिलां [6]वृषाङ्कः ॥२६॥

(१) लघुपुराणि शैलाः काननानि जनपदाः कोट्टाः, तान् । (२) अतिक्रम्य । (३) दुःखेन लङ्घयितुं शक्या भूमयो येषाम् । (४) मेडतानाम नगरम् । (५) बाहुबलिपुरम् । (६) ऋषभदेवः ॥२६॥

[1]मरुस्थलीविक्रमनागपूर्व-पुरीयभव्यै[2]र्भगवा[3]न्निहैत्य[4] ।
[5]वैताढ्यशैलोत्तरदक्षिणाख्य-श्रेणीनभोगैरिव स प्रणेमे ॥२७॥

(१) मरुस्थल्यां यद्विक्रमनाम पुरं तथा नागपुरम्, तदीयैः श्राद्धैः । (२) सूरिः । (३) मेडतापुरे । (४) आगत्य । (५) वैताढ्यपर्वतस्य उत्तरश्रेणिदक्षिणश्रेणिविद्याधरैः भगवांस्तीर्थकरः नतः ॥२७॥

---

१. ०त्ययाच्चन्द्र० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३]तं [१]सादिमाद्यः सुरताण[1]नामा[४]-ऽभ्युपेत्य [२]भूपो [५]बहुमन्यते स्म ।
मणिः[६] सुराणां [७]गुणगौरवेण, [८]कुत्रा[९]ऽर्चनागोचरतां न गच्छेत् ॥२८॥

(१) सादिमासुरताणनामा । (२) मेदिनीपुरस्वामी । (३) प्रभुसम्मुखम् । (४) आगत्य । (५) बहु बहुमानं दत्ते स्म । (६) चिन्तामणिः । (७) मनोभिलषि[त]साधिकप्रदानादिगुण-माहात्म्येन । (८) कस्मिन्स्थाने । (९) पूजाया विषयत्वं यायात् ॥२८॥

[१]पुरं [२]पुनाने[३]ऽम्बरवन्मुनीन्द्रे, [४]महामहो[५]ऽभूदि[६]ह मा[७]नवानाम् ।
[८]तदास्यलावण्यसुधाधयानां, [९]ज्योत्स्नाप्रियाणामिव [१०]रोहिणीशे ॥२९॥

(१) मेदिनीपुरम् । (२) पवित्रीकुर्वाणे । (३) गगनमिव । (४) महोत्सवः । (५) जातः । (६) पुरे । (७) जनानाम् । (८) सूरिवदनलवणिमामृतपिबानाम् । (९) चकोराणाम् । (१०) चन्द्रे ॥२९॥

[१]एकोऽहमेव [२]त्रिजगज्जनानां, [३]पिपर्मि [४]कामानप[५]रानपेक्षः ।
इति [६]स्मयावेशवशादिवा[७]ऽन्तः, परान[८]पास्य स्थित[९]मेकमेव ॥३०॥

[१]मरौ सुराणामिव[२] शाखिनं स, [३]प्रणेमिवान् श्रीफलवर्द्धिपार्श्वम् ।
[४]अवग्रहो [५]वृष्टिमिवे[६]ष्टसिद्धिं, [७]बध्नाति तीर्थव्यतिलङ्घनं यत् ॥३१॥ युग्मम् ॥

(१) अहं एक एव । (२) त्रैलोक्यलोकानाम् । (३) पूरयामि । (४) अभिलाषान् । (५) परान्नन्यान्न अपेक्षते काङ्क्षतीति । अथवा परेषां न अपेक्षा यस्य । (६) गर्वाटोप-स्याऽऽयत्तत्वादिव । (७) मनसि । (८) मुक्त्वा । (९) परां प्रतिमां पार्श्वे स्थापयितुं न दत्ते-इत्यर्थः ॥३१॥

(१) धन्वनि । (२) कल्पतरुम् । (३) नमति स्म । (४) वृष्टिविघ्नः । (५) वर्षणम् । (६) अभिलषितनिष्पत्तिम् । (७) विघ्नयति ॥३१॥ युग्मम् ॥

[१]भट्टारकेन्द्रो [२]विमलादिहर्षो-पाध्यायशक्रं [३]नगरादमुष्मात् ।
[४]श्रीसी(सिं)हराजद्विमलाह्वविज्ञो-त्तंसेन [६]साक्षाद्गुरुणेव युक्तम् ॥३२॥[2]
[१]प्रेषीत्पु[२]रो[३]ऽसौ मिलितुं [४]क्षितीन्द्रं, [६]ज्ञातुं [५]तदीयाशयमा[७]त्मनाऽपि ।
[८]प्रज्ञात्मदर्शप्रतिबिम्बिविश्व-पदार्थसार्थं [९]स्वमिव [१०]प्रधानम् ॥३३॥[2] युग्मम् ॥

(१) हीरविजयसूरिः। (२) विमलहर्षोपाध्यायम् । (३) मेदिनीपुरात् । (४) सी(सिं)हविमलप्रज्ञांशेन । (५) बृहस्पतिना । (६) प्रज्ञया । शङ्कस्तावत्प्रायो वाचस्पतिना युक्त एव स्यादिति ॥३२॥

1. ०तान० हीमु० । 2. हीमु० ३२-३३-३४ तम श्लोका अपूर्णाः सन्ति । तत्र तेषां त्येव । तेषां मध्ये ३२तमः श्लोकः हीसुंप्रतौ नास्ति. ३३-३४ तमश्लोकौ च पूर्णौ स्तः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) प्रस्थापयति स्म । (२) अग्रे । (३) सूरिः (४) पातिसाहिं मिलितुम् । (५) साहेः स्वाकारणोऽभि(णाभि)प्रायम् । किमर्थमह्नि(ह)माकारितोऽस्मीति साहिमनोऽभिप्रायं च । (६) बोद्धुम् । (७) स्वेन । (८) वाचकद्वारा निर्मलप्रतिभादर्पणे प्रतिबिम्बतीत्येवंशीलाः समस्ता जगतां वा वस्तुव्रजा यस्य । (९) स्वकायम् । (१०) सचिवममात्यमिव ॥३३॥ युग्मम् ॥

[1]प्रतिष्ठमानस्य [2]ततो व्रतीन्दोः, पदे पदे [3]पौरपरंपराभिः ।
[4]महामहश्रीः [5]समतानि भानो-[6]रहःसमूहैरिव [7]शारदीनैः ॥३४॥

(१) प्रचलतः । (२) मेडतानगरात् । (३) नागरराजीभिः । (४) अत्युत्सवशोभा । पक्षे-अतिकिरणशोभा । महः किरणवाची शब्दप्रभेदनाममाला[या]मकारान्तोऽप्यस्ति । यथा- "महं तु महसा साकं" इति । तथा सकारान्तोऽप्युत्सववाची महस्शब्दोऽस्ति । यथा नैषधे- "एनं महस्विनमुपैहि सदारुणोच्चैः" इति । तथा तद्वृत्तौ-महस्विनमुत्सववन्तं तेजस्विनं वा । उत्सववाची महस्शब्दः सकारान्तोऽप्यस्तीति । (५) प्रकाशिता । (६) दिवसगणैः । (७) शरत्कालसम्बन्धिभिः ॥३४॥

फतेपुरं [1]सागरमेखलाया, [2]वस्वोकसारामिव गन्तुमिच्छुः ।
यावत्स [3]साङ्गा[1]नगरं [4]पवित्री-करोति [5]वाचंयम[2]सार्वभौमः ॥३५॥

भूपं प्रति [1]प्राक्प्रहितोऽथ तावत्, श्रीवाचकेन्द्रो[2] विमलादिहर्षः ।
[3]सैन्येन [4]सैन्येश इवाऽ[5]नुयातो, [6]विदग्धवृन्देन [7]फतेपुरेऽ[8]गात् ॥३६॥ युग्मम् ॥

(१) भूमेः । (२) धनदपुरीम् । (३) सांगानेयरनाम पुरम् । (४) पुनाति । (५) यतीन्द्रः ॥३५॥

(१) साहेर्मिलनाय प्रस्थापितः । (२) विमलहर्षोपाध्यायः । (३) सेनया । (४) सेनापतिरिव । (५) सहितः । (६) पण्डितगणेन । (७) श्रीकर्याम् । (८) जगाम ॥३६॥

[1]संस्निह्यत[2]श्चक्षुरिव [4]प्रियं [3]स्वं, श्रीपतिसाहिं मिलति स्म पूर्वम् ।
[5]गोष्ठीमनुष्ठाय पुनः [6]सधर्म्यां, [7]प्रामोदयत्प्रीतमना महीन्द्रम् ॥३७॥

(१) स्नेहभाजः । (२) नयनमिव । (३) स्वस्य । (४) इष्टम् । यथा स्नेहातिशयं भजमानस्य जनस्य स्वप्रियं निजमनोरुचितं प्रति गत्वा प्राग्नेत्रं मिलति तथा । (५) धर्मवार्त्ताम् । (६) धर्मसम्बन्धिनीम् । (७) हर्षमुत्पादयति स्म ॥३७॥

कल्याणवान्[1]कुत्र [2]कियत्परे[3] वा, [3]कदाऽ[4]ऽयियासुः पुनरस्ति सूरिः ।
[5]साहिस्त[6]दो[7]दन्त[8]ममुं [9]मुनीन्दोः, स [10]प्राश्नयत्स[11]ख्युरि[12]वाऽतिहृष्यन् ॥३८॥

1. साङ्गां नगरं हीमु० । 2. ०चक्रवर्ती हीमु० । 3. १. कियच्च दूरे हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कुत्र पुरे । (२) कियद्दूरप्रदेशे । (३) कस्मिन्काले । (४) आगन्तुमिच्छुः । (५) नृपः । (६) तस्मिन्प्रस्तावे । (७) समाचारम् । (८) वार्त्ताम् । (९) सूरेः । (१०) पृच्छति स्म । (११) मित्रस्येव । (१२) तुष्टिं प्राप्नुवन् ॥३८॥

प्रभुः शुभंयुर्वरिवर्त्ति नीति-शालीव साङ्गानगरं पुनानः ।
वितिष्ठिते वर्त्मनि नाऽतिदूरे, विभूषितो वर्ष्मणि वार्द्धकेन ॥३९॥
शनैः शनैस्तत्पथि सञ्चरिष्णुः, स्वल्पैर्दिनैरेव विभो ! समेता ।
स वाचकेन्द्रं विससर्ज तेने-त्युक्तः प्रभोरागममीहमानः ॥४०॥ युग्मम् ॥

(१) कल्याणवान् । (२) प्रवर्त्तते । (३) न्यायनिष्ण इव । (४) सांगानेरम् । (५) पवित्रीकुर्वाणोऽस्ति । (६) तिष्ठति । (७) मार्गे । (८) समीपप्राये । (९) अलङ्कृतः । (१०) शरीरे । (११) वृद्धावस्थया ॥३९॥

(१) मन्दं मन्दम् । (२) तत्तस्माद्वृद्धत्वात् । (३) मार्गे । (४) सञ्चरणशीलः । (५) स्तोकैरेव दिवसैः । (६) समेष्यति । (७) साहिः । (८) विमलहर्षोपाध्यायम् । (९) पश्चात्प्रेषयति स्म । (१०) वाचकेन । (११) इत्यमुना प्रकारेण । (१२) प्रोक्तः । (१३) सूरेरागमनम् । (१४) काङ्क्षन् ॥४०॥

तां वाचकेन्द्रादधिगम्य वार्त्तां, श्राद्धैर्निनंसोत्सुकितैः प्रमोदात् ।
अभ्येत्य भव्यैरिव तुङ्गिकायाः, पुरो जिनेन्द्रः स ततः प्रणेमे ॥४१॥

(१) उपाध्यायात् । (२) ज्ञात्वा । (३) उदन्तम् । (४) सूरेर्नन्तुमिच्छया उत्कण्ठितैः । (५) अभिमुखमागत्य । (६) यथा तुङ्गिकानगरीश्राद्धैः । (७) सूरिः । (८) प्रणतः ॥४१॥

दत्तां सुरेभ्यो हरिणाऽम्बुनाथ-माथेऽधिगत्येव सुधां सुरेन्द्रः ।
प्रीतेभ्य एभ्यः प्रभुरप्यवेत्यो-दन्तं तमन्तर्मुदमादधार ॥४२॥

(१) देवेभ्यः । (२) नारायणेन । (३) समुद्रमथनावसरे । (४) लब्ध्वा । (५) शक्रः । (६) प्रीतिं प्राप्तेभ्यः । (७) प्रथमागतश्रावकेभ्यः । (८) ज्ञात्वा । (९) वार्ताम् । (१०) मनसि । (११) प्रीतिम् । (१२) धत्ते स्म ॥४२॥

पवित्रयंस्तीर्थं इवाऽध्वजन्तून्, पुरेऽभिरामादिमवादनाम्नि ।
यावत्समेतः प्रभुरेत्य तावत्, श्रीवाचकेन्द्रेण नतः स तेन ॥४३॥

(१) निष्पापान् कुर्वन् । (२) मार्गजनान् । (३) अभिरामावादनाम्नि पुरे । (४) आगतः । (५) आगत्य । (६) विमलहर्षोपाध्यायेन । (७) वन्दितः ॥४३॥

---

1. हीमु० एतच्छ्लोकोऽपूर्णोऽस्ति । 2. तद्वाच० हीमु० । 3. ०गत्य हीमु. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]मधोः [२]पिकीकान्त इवैष [३]युष्म-त्समागमं काङ्क्षति [४]भूमिकान्तः ।
श्रीवाचकेनेत्यु[५]दितो व्रतीन्दुः[1], [६]फतेपुरोपान्तभुवं बभाज ॥४४॥

(१) वसन्ते(तस्य) । (२) कोकिलः । (३) युष्माकं आगमनम् । (४) साहिः । (५) विज्ञप्तः । (६) फतेपुरस्य समीपस्थानम् ॥४४॥

[१]अश्रावि सङ्घेन ततः [२]प्रवृत्ति-र्जना[३]ननात्सू[४]रिसमागमस्य ।
[५]द्वीपान्तरोपागतपण्यपूर्ण-पोतव्रजस्य [६]व्यवहारिणेव ॥४५॥

(१) श्रुता । (२) वार्ता । (३) वर्द्धापनिकादायकानां मुखात् । (४) प्रभुपादावधारणस्य । (५) अन्यद्वीपादागतस्य क्रियाणकैर्भृतस्य यानपात्रगणस्य । (६) व्यापारिणा ॥४५॥

[१]उपायनीकृत्य नृपैरिवैत-न्म[२]हीमघोनः [३]कनकांशुकादि ।
[४]तदागमोऽ[५]भाष्यत थानसिंहा-मीपालमानूमुख[६]सङ्घमुख्यैः ॥४६॥

(१) ढौकयित्वा । (२) साहेः । (३) स्वर्णवस्त्रादि । (४) सूरिसमागमनम् । (५) उच्यते स्म । (६) प्रकृष्टैः श्रावकैः ॥४६॥

[१]आज्ञां तवा[२]ऽऽसाद्य [३]समग्रभूमी-पालाङ्घ्रिपङ्केरुहभृङ्गितांह्रेः ।
कुर्मो जिनस्येव वयं प्रवेश-महं [४]मुनीन्दो[५]र्महनीयकीर्त्तेः ॥४७॥

(१) आदेशम् । (२) प्राप्य । (३) समस्तराजोत्सङ्गरूपकमले भ्रमरवदाचरितौ चरणौ यस्य । (४) सूरेः । (५) त्रिजगज्जनैः प्रशस्या कीर्त्तिर्यस्य ॥४७॥

[१]प्रभो[२]र्निपीयो[३]पगमं [४]प्रमोद-प्रोत्फुल्लवक्त्राम्बुरुहो महीन्द्रः ।
सुधां [५]स्वगाम्भीर्यजिताब्धिनेवो[६]-पदीकृतामुच्चरति स्म वाचम् ॥४८॥

(१) सूरेः । (२) सादरं श्रुत्वा । (३) आगमनम् । (४) हर्षेण विस्मेरं मुखकमलं यस्य । (५) निजगम्भीरिम्ना(म्णा)ऽभिभूतेन सागरेण । (६) ढौकिताम् ॥४८॥

[१]यस्मिन्म[२]हाश्चर्यरसे [३]निमग्नी-भूता [४]त्रिलोकीजनता यथा स्यात् ।
[५]विनिर्मिमीध्वं [६]तमिह प्रवेश-महं [७]महीयांसम[८]हो मुनीन्दोः ॥४९॥

(१) प्रवेशोत्सवे । (२) अतिविस्मयरसे । (३) निलीनीभूतेव । (४) त्रैलोक्यलोकावली । इयं गर्भोपमा । (५) कुरुध्वम् । (६) सर्वविख्यातम् । (७) अतिशायिनम् । (८) जनाः ! ॥४९॥

1. ०न्द्रः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरं [१]धरेन्दोर्हृदये [२]निधाय, [३]नालीकनेत्रामिव नैं[४]गमास्ते ।
[५]वाचस्पतेर्गोच[६]रयन्ति वाचो, न यां कदाचिन्मु[७]दमादधुस्ताम् ॥५०॥

(१) साहेः । (२) स्थापयित्वा । (३) पद्माक्षीमिव । (४) वणिजः । (५) बृहस्पतेः । (६) विषयीकुर्वन्ति । (७) हर्षम् ॥५०॥

[१]निवृत्य [२]पृथ्वीपुर(रु)हूतपार्श्वात्, सङ्घस्य [1]तेऽथाऽकथयन्नु[३]दन्तम् ।
सोऽपि [४]प्रसर्पत्प्रमदामृताब्धौ, [५]मराललीलायितमाततान ॥५१॥

(१) पश्चादागत्य । (२) साहिसमीपात् । (३) वार्त्ताम् । (४) प्रवर्द्धमानहर्षसुधासमुद्रे । (५) हंसविलसितम् ॥५१॥

सङ्घः प्रतस्थेऽभिमुखं मुनीन्दो-[१]रुत्कण्ठतामाकलयन्न[२]कुण्ठाम् ।
[३]कूलङ्कषाकान्त इव [४]प्रवृद्ध-कल्लोलशाली [५]रजनीश्वरस्य ॥५२॥

अथ सङ्घसम्मुखागमनवर्णनम्-

(१) उत्सुकताम् । (२) अतिशायिनीम् । (३) समुद्र इव । (४) वृद्धिं प्राप्तैस्तरङ्गैः शोभते इत्येवंशीलः । (५) चन्द्रस्य ॥५२॥

[१]सुवर्णकायान[२]तिवातवेगान्, [३]वीङ्खाविशेषैः क्षितिम[४]स्पृशन्तः ।
[५]कृष्णा इवाऽध्यारुरुहुर्वहन्तः, [६]श्रियं [७]हरीन्केचन [८]चक्रहस्ताः ॥५३॥

(१) शोभनवर्णा रक्तनीलश्वेतादिकान्तयः शरीराणि येषाम् । गरुडस्य स्वर्णमयः कायः । (२) पवनादि(द)तिशायिवेगाः(गान्) । (३) धारागतिविशेषैः । (४) शीघ्रगामितया भुवनं सङ्घट्टयन्तः । (५) नारायणाः । (६) शोभां लक्ष्मीं च । (७) गरुडान् । (८) आकृत्या चक्रं सुदर्शनं च पाणौ येषाम् ॥५३॥

बभुर्वि[१]भूषांशुतडिद्वितानान्, [२]गर्जोर्जितस्पन्दिमदाम्बुधारान् ।
शक्रेण [३]कायाः कुतुकात्कृताः किं, [४]यानाम्बुदान्केचिदि[५]भान्भजन्ते ॥५४॥

(१) विशिष्टा भूषा आभरणानि तेषां किरणा एव विद्युद्वृन्दानि येषु । "विनैव भूषामवधिः श्रियामिय"मिति नैषधे । भूषा आभरणानीति तद्वृत्तिः । (२) गर्जाभिर्गर्जारवैः प्रबलाः तथा पतनशीला दानवारिधारा येषु । (३) शरीराणि । (४) वाहने मेघान् । "सङ्क्रन्दनाखण्डलमेघवाहना" इति हैम्याम् । (५) गजान् ॥५४॥

[१]रथ्यैः [२]सनाथान्म[३]णिशातकुम्भ-सन्दर्भगर्भान् [४]रथिकैः [५]श्रिताङ्कान् ।
[६]मरुद्रथान्स्वः[७]सदना इवाऽत्र, व्य[८]भूषयत्केऽपि पुनः [९]शताङ्गान् ॥५५॥

---

१. चाऽथाकथ० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) रथवाहिभिरश्वैः । (२) सहितान् । (३) रत्नस्वर्णरचनाजुषः । (४) सारथिभिः । (५) युक्तोत्सङ्गान् । (६) देवस्यन्दनात् । (७) देवाः । (८) शोभां नयन्ति स्म । (९) रथान् ॥५५॥

[1]स्थलप्रफुल्लन्नवहेमपद्म-लेखाविभूषामिव लम्भयन्तः ।
[2]क्रमद्वयीचङ्क्रमणक्रमेणा[3]-ऽलंचक्रिरे [5]केचन [4]वार्द्धिकाञ्चीम् ॥५६॥

(१) जलरहितस्थाने विकसन्तीनां नूतनकनककमलश्रेणीनां शोभाम् । (२) पादद्वन्द्व-सञ्चरणपरिपाट्या । (३) भूषयन्ति स्म । (४) भूमीम् । (५) जनाः ॥५६॥

दधुस्तदा जन्मजुषो [1]विभूषां, [2]भूषाविशेषान्[3]वपुषा वहन्तः ।
श्रिया जितेना[4]ऽमरसद्मने[5]वो-पदीकृताः [6]स्वीयसुरा [7]नगर्याः ॥५७॥

(१) विशिष्टाभरणानि । (२) शोभातिशयान् । (३) शरीरेण । (४) स्वर्गेण । (५) ढौकितः(ताः) । (६) आत्मीया देवाः । (७) फतेपुरस्य ॥५७॥

आरुह्य [1]बाहं [2]पितुरिन्द्र[3]सूनुः, [4]स्निग्धै[5]र्निखेलन्किमनेकमूर्त्तिः ।
[6]पर्याणितप्रौढहयाधिरूढाः, [7]शृङ्गारिता भान्ति तदा कुमाराः ॥५८॥

(१) अश्वम् । उच्चैःश्रवोनामानम् । (२) इन्द्रस्य । (३) जयन्तः । (४) सहचरैर्मित्रैः । (५) क्रीडन् । (६) पर्याणं जातमेष्विति पर्याणिताः-सज्जीकृताः प्रगल्भा पुरुषप्रमाणा वाजिनस्तेष्वाश्रिताः । "जवेऽपि मानेऽपि च पौरुषाधिक"मिति नैषधे । (७) विविधाभरणैरलङ्कृताः ॥५८॥

तदा कुमारीभि[1]रभासि [2]भास्व-न्मुक्तामणीस्वर्णविभूषणाभिः ।
इवाऽनुजाभिः[3] सुरराजसूनो, [4]रिरंसयो[5]र्वीतलशालिनीभिः ॥५९॥

(१) शुशुभे । (२) दीप्यमानानां मुक्ताफलानां रत्नानां सुवर्णानामाभरणानि यासाम् । (३) लघुभगिनीभिः इन्द्रपुत्रस्या । जयन्तीभिरित्यर्थः । (४) क्रीडितुमिच्छया । (५) भूवलय-सेवनशीलाभिः ॥५९॥

[1]परम्पराभिः [2]पुरसुन्दरीणां, राजी जनानामन[3]नुगम्यते स्म ।
महे मुनीन्दोः [4]शरदीव [5]राज-मरालमाला कलहंसिकाभिः ॥६०॥

(१) श्रेणिभिः । (२) नगराङ्गनानाम् । (३) अनुगता । (४) शरत्काले । (५) राजहंसपङ्क्तिः । "महानन्दसरोराज-मरालायाऽर्हते नम" इति सकलार्हत्प्रतिष्ठाने ॥६०॥

[1]भूषामणिद्योतितदिङ्मुखाभि-श्चा[2]पल्यचञ्चत्कुलबालिकाभिः ।
बभे[3]ऽभ्रखेदाद्भु[4]वमीयुषीभि-रिवा[5]ऽर्भकाभि[6]र्जल[7]बालिकाभिः ॥६१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) आभरणरत्नैः प्रकाशितसमस्ताशावदनाभिः । (२) चपलतया क्रीडन्तीभिः सुकुलोत्पन्नकुमारिकाभिः । (३) आकाशे निरालम्बतया क्रीडास्थानकाभावतया निर्वि(र्वे)दात्-विषादात् । (४) भूमण्डलम् । (५) आगताभिः । (६) बालिकाभिः । (७) विद्युद्भिः ॥६१॥

[१]सगर्भभावं विधुना दधानाः, [२]सारस्वता मर्त्यनिषेव्यमानाः(णाः) ।
तदा स्म रङ्गन्ति पुरस्तुरङ्गाः, [३]क्ष्मायामि[४]वोच्चैःश्रवसोऽनु[५]बिम्बाः ॥६२॥

(१) भ्रातृतां तुल्यताम् । (२) वर्णैः कश्मीरदेशोद्भवास्तथा स(सा)मस्त्येन नरैः सम्यग्लक्षणयुक्ततयोपास्यमानाः । पक्षे-सरस्वति-समुद्रे भवास्तथा देवैः सेव्यमानाः । (३) भूमौ । (४) इन्द्राश्वस्य । (५) प्रतिमाः ॥६२॥

यस्मिन्जयन्त्यः [१]कलकण्ठकण्ठान्, [२]जगुः [३]समुत्कण्ठितकम्बुकण्ठ्यः ।
[४]सिद्धाङ्गनाः [५]स्वर्गिगिरे[६]र्धरायां, गुणान्[७]गणेन्दोरिव गातुमे[८]ताः ॥६३॥

(१) कोकिलानां स्वरान् । "कण्ठो ध्वनौ सन्निधाने ग्रीवायां मदनद्रुमे" इत्यनेकार्थः । (२) गायन्ति स्म । (३) उत्कण्ठायुक्ताङ्गनाः । (४) सिद्धा देवविशेषास्तेषां प्रियाः । (५) मेरुः सुरावासः, सर्वेषां देवानां साधारणावासत्वात्सिद्धानामप्यावासः । तस्मात्तत आगमनमुक्तम् । (६) भूमौ । (७) सूरेः । (८) आगताः ॥६३॥

[२]द्विपै[१]र्व्यतायन्त [३]पटिष्ठघण्टा-टङ्कारवाव्याहतबृंहितानि ।
[४]महीतलोद्वासितदुर्नयस्य, [५]प्रस्थानढक्का क्वणितानि मन्ये ॥६४॥

(१) विस्तारितानि । (२) गजैः । (३) अतिशयेन पटुभिर्घण्टाटङ्कारवैर्न निह्नुतानि बृंहितानि-गर्जाः । (४) भूमण्डलान्निष्कासितस्याऽन्यायस्य । (५) प्रयाणभेर्या ध्वनितानीव ॥६४॥

[१]भाङ्कारिभेरीनिनदन्नफेरी-[२]र्नादैर्[३]दिगन्तानपि [४]पूरयन्तीः ।
[५]कर्णातिथीकृत्य [६]कुपक्षलक्षै-[७]र्निर्घोषिवर्षाशरभीबभूवे ॥६५॥

(१) भांकुर्वन्तीत्येवंशीला भेर्यस्तथा शब्दामयाना नफेर्यस्ताः । (२) स्वध्वनिभिः । (३) दिग्विभागानपि । (४) निर्भरं भरन्तीः । (५) श्रुत्वा । (६) मिथ्यादृग्भिः । (७) गर्जन्त्या वर्षायाः प्रावृषः वर्षाकालस्याऽष्टापदीभावं भेजे । यथा वर्षागर्जितं श्रुत्वाऽष्टापदो गर्वादुत्पत्योत्पत्य म्रियते तथा प्रभुप्रवेशमहे भेरीनफेरीध्वनीनाकर्ण्य मृतप्राया इवाऽऽसन् ॥६५॥

[१]सन्ध्याद्रुहः केऽप्यवहन्[२]विहायो-लिहः [३]शयाम्भोरुहि [४]वैजयन्तीः ।
[५]प्रकाशयन्तः प्रति [६]मुक्तिकान्तां, [७]मूर्त्तानुरागानिव रन्तुकामाः ॥६६॥

(१) सन्ध्यारागाय द्रुह्यन्तीति तत्स्पर्द्धिनीः । (२) आकाशं यावदुच्चैस्तराः । (३) पाणिपद्मे । (४) ध्वजान् । (५) प्रकटीकुर्वन्तः । (६) सिद्धिवधूं प्रति । (७) तनूमतो रागानिव ॥६६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]मृगीदृशः काश्चन [2]शातकौम्भान्, [3]कुम्भान् शिरोभि[4]र्बिभरांबभूवुः ।
[5]प्राक्स्वां[6] गृहीतां [7]सुषमां [8]स्तनेभ्यः, पश्चा[9]ज्जिघृक्षू[10]नुपजग्मुषः किम् ॥६७॥

(१) स्त्रियः । (२) हेममयान् । (३) कलशान् । (४) दधुः । (५) पूर्वम् । (६) स्वकीयाम् - कुम्भसम्बन्धिनीम् । (७) सातिशायिशोभाम् । (८) कुचेभ्यः सकाशात् । (९) ग्रहीतुमिच्छून् । (१०) आगतान् ॥६७॥

[1]रोप्या [2]निपा [3]नीलकजापिधाना, [4]मूर्धस्व[5]धीयन्त तदा [6]पराभिः ।
महामहन्तं [7]क्वचनाऽप्य[8]दृष्टं, द्रष्टुं [9]मृगाङ्काः किमु[10]पेयिवांसः ॥६८॥

(१) रूप्यघटिताः । (२) कुम्भाः । (३) नीलोत्पलपिधानाः । 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' अवगाहः-वगाहः, अपिधानं-पिधानमिति प्रक्रियायाम् । तथा- "व्रजति कुमुदे मोदं दृष्ट्वा दृशोरपिधायके" इति नैषधे । (४) शिरस्तु । (५) अधार्यन्त । (६) अन्याभिः । (७) कुत्रापि स्थाने । (८) पूर्वमदृष्टम् । (९) शशिनः । "राकामृगाङ्काः संभूय विभान्ति शरणागता" इति पाण्डवचरित्रे । (१०) आगताः ॥६८॥

पुरश्चरन्तः पथि [1]हर्षहेषा-मिषात्तदा [2]वल्गितवेल्लिताङ्गाः ।
गायन्ति [3]गन्धर्वगणा गणेन्द्र-गुणा[4]न्वितन्वन्त इवा[5]ऽङ्गहारम् ॥६९॥

(१) हर्षयुक्तानां हेषारवानां(णां) कपटात् । (२) वल्गितेन गतिविशेषेण चपलीकृतकायाः । (३) गन्धर्वगणा-अश्वव्रजा गायनौघाश्च । (४) कुर्वन्तः । (५) अङ्गविक्षेपं-नृत्याङ्गविशेषम् ॥६९॥

[1]व्यसीसृपत् [2]श्रोत्रसुधायमान-गाना तदा वैणिकपङ्क्तिरग्रे ।
[^1]किमागता[3]ऽतीन्द्रपुरीं पुरीं तां [4]रसाद् [5]दिदृक्षुस्[6]तुरगास्यसंसत् ॥७०॥

(१) प्रचलति स्म । (२) कर्णयोरमृतवदाचरन्ती गीतिर्यस्याः । (३) अतिक्रान्ता स्वलक्ष्म्या विजिताऽमरावती यया । (४) आश्चर्यरसात् । (५) द्रष्टुमिच्छुः । (६) किन्नरसभा । "उडुपरिषदः किं नार्हन्ती निशः किमनौचिती"ति नैषधे ।

[1]निःस्वानवृन्दे प्रददुः प्रहारान्, केचिद्द्वि[2]पक्षव्रजवक्षसीव ।
[3]अताडयन्केऽपि पुनर्मृदङ्गा-नमी [4]सरन्ध्रा [5]द्विमुखा इतीव ॥७१॥

(१) निःस्वानान् वादयन्ति स्मेत्यर्थः । (२) वैरिगणहृदये इव । (३) कुट्टयन्ति स्म । (४) सरन्ध्रा रन्ध्रं-छिद्रं दोषश्च । (५) कर्णेजपवद्द्वे मुखे येषाम् ॥७१॥

---

1. किमागतामिन्द्र० हीमु० । एषः पाठोऽशुद्धो भाति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]वनप्रदेशा इव केऽप्येलाबू-[2]व्यालम्बिवंशाः [3]सविराविताला: ।
केचिन्मुकुन्दा इव [4]कम्बुहस्ता, [5]वीणाकराः केऽपि गणा इवाऽऽसन् ॥७२॥

(१) विपिनविभागाः । (२) तुम्बकैस्तुम्बिणीभिर्वल्लीभिर्विशेषेणाऽऽलम्बनशीला वेणवो येषां येषु च । (३) विशेषेण शब्दायन्ते इत्येवंशीलाश्चञ्चुपुटास्तालद्रुमाश्च येषां येषु च । (४) शङ्खाः पाञ्चजन्यश्च पाणौ येषाम् । (५) वीणा हस्तेषु येषाम् ॥७२॥

[1]अपूरयन्केऽपि तदा [2]त्रिरेखान्, हंसायमानान्[3]मुखपङ्कजाङ्के ।
[4]विघ्नाधिपं किं [5]विधृतावधानं, [6]जिघांसया [7]विघ्नततेः [8]सृजन्तः ॥७३॥

(१) वादयन्ति स्म । (२) शङ्खान् । (३) वक्त्रकमलक्रोडे । (४) गणेशम् । (५) सावधानम् । (६) हन्तुमिच्छया । (७) प्रत्यूहव्यूहस्य । (८) कुर्वन्तः ॥७३॥

गीतिं[1] जगुः केचन रासकांश्च, सूरेर्यशः केऽपि जयारवांश्च ।
कैश्चिन्[2]मुदा[3]ऽनर्त्ति [4]तमोऽप्य[5]कर्त्ति, [6]प्रावर्त्ति पुण्ये [7]कुपथान्[8]न्यवर्ति ॥७४॥

(१) गायन्ति स्म । (२) हर्षेण । (३) नृत्यं प्रारब्धम् । (४) पापम् । (५) छेदितम् । (६) प्रवर्त्तितम् । (७) कुमार्गात् । (८) निवृत्तम् ॥७४॥

[1]खुरै[2]रखानि [3]प्रचलत्तुरङ्गै-[4]र्धात्री [5]खनित्रैः [6]खनकैरिवा[7]ऽत्र ।
[8]गलन्मदाम्भोभिरि[9]भैरिवा[10]ऽम्भो-धरै[11]र्धरा [12]पङ्किलयांबभूवे ॥७५॥

(१) चरणनखैः । अश्वानां नखाः खुरः प्रोच्यन्ते । (२) क्षोदिता । (३) प्रसर्पद्वाजिभिः । (४) भूमिः । (५) खननोपकरणैः । (६) पूर्त्तकृद्भिः । 'उड' इति प्रसिद्धैः । (७) महोत्सवे । (८) निःसरद्दानवारिभिः । (९) गजैः । (१०) मेघैः । (११) भूमिः । (१२) कर्दमयुक्ता कृता ॥७५॥

[1]सङ्ख्यातिगैतद्गजवाजिपत्ति-शताङ्गभारोद्वहनाप्रभूष्णुम् ।
धात्रा कृता [2]धारयितुं [3]धरित्रीं, स्तम्भा इवा[4]ऽहीन्द्रफणासहस्रम् ॥७६॥

(१) गणनामतिक्रान्तानां सङ्घस्य गजाश्वपादातिरथानां भारोद्वहने-वीवधोद्धरणे ऽशक्ताम-समर्थाम् (२) धारणाय । (३) धराम् । (४) शेषनागफणानां सहस्रम् । तद्भारं धर्त्तुमशक्नुवतीं भूमीं धारयितुं सहस्रं स्तम्भाः कृता विधिनेत्यर्थः ॥७६॥

[1]तद्धास्तिकाश्वीयरथोद्धुताभि-र्धूलीभि[2]रस्तारिषताऽखिलाशाः ।
[1]क्रीडां सृजद्भिर्हरितां महेन्द्रैः, [3]क्षिप्तैरिवा[4]ऽद्वैतरसेन [5]चूर्णैः ॥७७॥

1. क्षिप्तैर्दिगीशैरिव दिग्वधूभिः क्रीडद्भिरद्वैत० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सङ्घस्य गजगणाश्वसमूहरथैः ऊर्ध्वं क्षिप्ताभिः । (२) आच्छादिताः समस्ता दिशः । (३) प्रक्षिप्तैः । (४) असाधारणशृङ्गारादिरसेन । (५) वासयोगैः । 'अबीर' इति लोकप्रसिद्धैः ॥७७॥

[१]चलद्बलाकं [२]कलधौतकुम्भैः, [३]कल्याणकुम्भैः [४]सतडिद्विलासम् ।
[५]रजोभिर[६]भ्राङ्क[७]मुदीतगर्ज्जं, [८]तूरस्वरै[९]रभ्रमिव [१०]ब्रुवे तम् ॥७८॥

(१) चलन्त्य उड्डीयमाना बकाङ्गना यत्र । (२) रूप्यकलशैः । (३) स्वर्णघटैः । (४) विशुद्धविलसितेन कलितम् । (५) धूलीभिः । (६) अभ्रकाणि 'आभा' इति प्रसिद्धान्युत्सङ्गे यस्य । (७) प्रकटीभवद्गर्जारवम् । (८) वाद्यरवैः । (९) मेघम् । (१०) कथयामि ॥७८॥

[१]उद्धर्षनिध्यानधृतावधान-सौधाग्रजाग्रत्पुरसुन्दरीणाम् ।
[२]वीथी [३]दिवो [४]वक्त्रसहस्रपत्रैः, सहस्रचन्द्रेव तदा [५]दिदीपे ॥७९॥

(१) महोत्सवविलोकने दत्तचेतोभिः गेहोपरिस्थितानां नगरनारीणां-नागरीणाम् । (२) मार्गः । (३) आकाशस्य । (४) वदनकमलैः । (५) शुशुभे ॥७९॥

[१]असर्जि [२]सृष्टिर्विधिना नवा किं, [३]गर्भा[४]द्भुवो वा किममी [५]निरीयुः ।
[६]समं [७]निपेतुः किमुताऽम्बराद्वा, [८]विज्ञैर्जनान्वीक्ष्य [९]तदे[१०]त्यतर्कि ॥८०॥

(१) कृता । (२) रचना । (३) कुक्षेः । (४) भूमेः । (५) निर्गताः । (६) समकालम् । (७) पतिताः । (८) पण्डितैः । (९) तस्मिन्सम्मुखावगमनावसरे । (१०) विचारितम् ॥८०॥

[१]नभोऽम्बुपानो[२]ब्द इवा[३]ऽनधीता-र्थनान्[४]सृजन्न[५]र्थिजनान्[६]परेषु ।
[७]स्वगौरवोर्वीवहनप्रणीत-संशीतिशेषः स चचाल सङ्घः ॥८१॥

(१) बप्पीहान् । (२) मेघ इव । (३) न पठितयाचनान् । (४) कुर्वन् । (५) याचकलोकान् । (६) परेषु विषये । अयाञ्च्यान् कृतानित्यर्थः । (७) आत्मनो भारेण भूमेरुद्धरणे कृतः संशयो येन तादृग्नागराजो यत्र ॥८१॥

[१]धात्रीपवित्रीकृतये [२]प्रणीत-जनिं पुनः किं [३]वसुभूतिसू[fn1]नुम् ।
सङ्घो मुनीनां मघवानमेनं, स्वचक्षुषो[४]र्गोचरयांचकार ॥८२॥

(१) पृथिवीपावनीकरणाय । (२) कृतावतारम् । (३) गौतमम् । (४) ददर्श ॥८२॥

[१]प्रक्षाल्य [२]दुग्धाम्बुधिना [३]पयोभिः, कृतं [४]निरङ्कं [५]तनुजन्ममोहात् ।
[६]पुरीदिदृक्षोपगतं [७]मृगाङ्क-मिवैन[८]मन्विष्य [९]तुतोष सङ्घः ॥८३॥

1. ०पुत्रम् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्नपयित्वा । (२) क्षीरसमुद्रेण । (३) स्वदुग्धैः कृत्वा । (४) निर्गतकलङ्कपङ्कम् । (५) पुत्रप्रेम्णा । (६) फतेपुरस्य द्रष्टुमिच्छया समागतम् । (७) चन्द्रम् । (८) दृष्ट्वा । (९) जहर्ष ॥८४॥

[1]स्वाहान्वितं वह्निमिवो[2]पयन्ता, श्रीसङ्घलोकः [3]सुमुखीसखस्तम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य [4]समाधिपद्मा-नुषङ्गभाजं प्रणनाम भक्त्या ॥८४॥

(१) स्वाहया वह्निपत्न्या सहितम् । "अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुज" मिति रघुवंशे । तथा- "हा स्वा[हा]प्रियधूममङ्गजममुं सूत्वा न किं दूयसे" इति सूक्ते । (२) परिणेता । (३) स्त्रीयुक्तः । (४) ध्यानलक्ष्मीसङ्गिनम् ॥८४॥

[1]रेणु[2]र्जिघांसु[3]र्लघिमान[4]मेत-त्क्रमौ किमा[5]श्लिष्य [6]वितिष्ठमानः ।
[7]प्रणेमुषां [8]जन्मजुषा[9]मलीक-ललामलीला श्रिय[10]मश्नुते स्म ॥८५॥

(१) रजः । रेणुशब्दस्त्रिलिङ्गः । (२) हन्तुमिच्छुः । (३) लघुतां स्वाम् । (४) सूरिपादौ । (५) लगित्वा । (६) स्थितः । (७) नतानाम् । (८) प्राणिनां जनानाम् । (९) भालतिलक-विलासशोभाम् । (१०) लभते स्म ॥८५॥

[1]नम्राङ्गभाजां [2]भगवन्नखेषु, [3]दृग्दन्तपङ्क्तिस्मितबिम्बितानि ।
[4]बालेन्दुबिम्बेषु [5]चकोरतारा-चन्द्रातपाः किं [6]मिलिता विभान्ति ॥८६॥

(१) नमनशीलजनानाम् । (२) सूरिचरणनखेषु । (३) नयनदशनमला(नालौ) हसितानां प्रतिबिम्बितानि । (४) बालचन्द्रमण्डलेषु । (५) चकोरतारकज्योत्स्नाः । (६) एकत्रभूताः ॥८६॥

प्रभोर्नखैर्न[1]म्रनितम्बिनीनां, [2]कचच्छटानां [3]प्रतिमा ध्रियन्ते ।
[4]स्वर्भाणुविद्वेषिजिगीषया[5]ऽर्भ-मार्त्तण्डबिम्बैरिव [6]मण्डलाग्राः ॥८७॥

(१) नमनशीलाङ्गनानाम् । (२) केशश्रेणीनाम् । (३) प्रतिबिम्बानि । (४) राहुरूपवैरिणो जेतुमिच्छया । (५) बालभानुमण्डलैः । (६) खड्गः ॥८७॥

[1]जहेषिरेऽश्वाश्च गजा [2]जगर्जु-र्नि[3]ध्यानतः [4]साधुसुधामरीचेः ।
[5]जम्भद्विषद्वाजिगजानिवाऽऽ[6]त्म-गोत्रेषु वृद्धान्[7]पवितुं [8]ह्वयन्तः ॥८८॥

(१) हेषन्ते स्म । (२) गर्जन्ति स्म । (३) दर्शनादेव । (४) सूरीन्द्रस्य । (५) इन्द्राश्वद्विपानुच्चैःश्रवऐरावणान् । बहुत्वं तत्सन्तानापेक्षया महत्त्वाद्वा । (६) वंशेषु वृद्धान् । प्राक् पयोधिमथनावसरे उच्चैःश्रवा-अश्वः ऐरावणश्चगजः समुत्पन्नस्तत्सन्तानानि परेऽश्वा गजाश्च । यथा चम्पूकथायाम्-सकलसुरासु[र]करपरिघपरिवर्त्यमानमन्दरमन्थानमथितदुग्धाम्भोधेरजनि जनित-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]जगद्विस्मया लक्ष्मीमृगाङ्कसुरभिसुरतरुधन्वन्तरिकौस्तुभोच्चैःश्रवसा सहभूः शशधरकान्तिरैरावतस्तत्प्रसूतिरियमशेषवनान्यलङ्करोति इति । यथा ऐरावणस्य प्रसूतिस्तथोच्चैःश्रवसोऽपि प्रसूतिरिति । (७) पवित्रीकर्त्तुम् । (८) आकारयन्तः ॥८८॥

[१]उत्कण्ठुलास्[२]तन्दुललाजमुक्ता-पङ्क्त्या [३]प्रमोदात्[४]पथि [५]पौरकन्याः ।
[६]अवाकिरंस्तं[७] [८]पृषतैः [2][९]पयोधि-प्रवृद्धवेला इव [१०]शर्वरीशम् ॥८९॥

(१) उत्कण्ठायुक्ताः । (२) चोक्षाः कलमा भ्रष्टा यवा मौक्तिकानां राज्या । (३) हर्षात् । (४) मार्गे । (५) नागरिककुमारिकाः । (६) वर्द्धापयन्ति स्म । (७) सूरिम् । (८) जलबिन्दुभिः । (९) समुद्रस्य चन्द्रोदयदर्शनाद्वृद्धिं प्राप्ताऽम्बुमाला । "वेला स्याद्वृष्टिरम्भस" इति । (१०) चन्द्रम् ॥८९॥

वि[१]शां [२]दृशः [३]प्रीणति [४]शक्रकेता-विव [५]क्षणे[६]ऽस्मिन्ब[७]हलीभविष्णौ ।
[८]निशाम्यता [९]वर्त्मनि [१०]पौरवृद्धा-विश्वस्तकान्ताशुभशंसितानि ॥९०॥
[१]एकत्र [२]जाग्रत्त्रिजगद्विभूति-दिदृक्षया[३]ऽत्रो[४]पगता [५]प्रभेव ।
शनैः शनैः [६]सञ्चरताऽथ तेन, फतेपुरस्यो[७]पपुरं प्रपेदे ॥९१॥ युग्मम् ॥

इति सङ्घसंमुखागमनवर्णनम् ॥

(१) जनानाम् । (२) नयनानि । (३) तर्पयत्याह्लादयति । (४) इन्द्रध्वजे । (५) इन्द्रमहोत्सवे । (६) महोत्सवे । (७) बहुतरे जायमाने । (८) आकर्णयता । (९) मार्गे । (१०) नागरिकानां(णां) मध्ये ये मुख्यास्तासां सुवासिनीनां प्रियाणामाशीर्वचनानि ॥९०॥

(१) एकस्मिन्स्थाने । (२) स्फुरन्त्यास्त्रैलोक्यलक्ष्म्या द्रष्टुमिच्छया । (३) फतेपुरपार्श्वे । (४) आगता । (५) अलकापुरी । "पुरी प्रभा, अलका वस्वोकसारा" इति हैम्याम् । (६) प्रचलता । (७) शाखापुरम् ॥९१॥ युग्मम् ॥

स [१]श्रीकरीं [२]गन्तुमपी[३]हमानः, [४]शाखापुरं [५]भूषयति स्म सूरिः ।
[६]आश्लेषितुं [७]केवलपद्मवासां, श्रेणीमिवा[८]ऽऽत्मा [९]क्षपकाभिधानाम् ॥९२॥

(१) साहिनाऽलङ्कृतां श्रीकरीं नाम नगरीम् । (२) यातुम् । (३) वाञ्छन्नपि । (४) तदुपपुरम् । (५) पवित्रयति स्म । (६) आलिङ्गितुम् । (७) केवलज्ञानश्रियम् । (८) जीवः । (९) क्षपकश्रेणीमिव ॥९२॥

[१]विधातृपुत्रीतनयैरिवाऽयं, [२]तोस्तूयमानो[३]ऽनुपदं कवीन्द्रैः ।
[४]तत्राऽपि [५]निर्बन्धवशाद्वशीन्द्रः, [६]सामन्तभूभृद्भवने [७]न्यवात्सीत् ॥९३॥

1. ०जगद्विस्मया स्मरजननी लक्ष्मीमृगाङ्कसुरतरु० हीमु० । 2. प्रवृद्धपयोधिवेला हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सरस्वतीपुत्रैः । (२) अतिशयेन वर्ण्यमानः । (३) पदे पदे । (४) शाखापुरेऽपि । (५) अत्याग्रहतया । (६) अकब्बरसामन्तस्य जगन्मल्लकच्छवाहकस्य 'जगमालकछवाहु' इति नाम्नो राज्ञो गृहे । (७) तस्थौ ॥९३॥

[1]पचेलिमान्[2]प्राक्तनकर्मरोगान्, [3]रसायनं [4]दिव्यमिवो[5]ऽपनेतुम् ।
[6]तत्राऽपि शक्रः शमिनां [7]सदस्या-नुद्दिश्य[8]धर्मं [9]कथयांचकार ॥९४॥

(१) परिपाकं प्राप्तान् । (२) पूर्वजन्मसम्बन्धिनः कर्मरूपरोगान् । (३) औषधविशेषम् । (४) देवतासम्बान्धि । (५) नाशयितुम् । (६) सामन्तनृपगृहेऽपि । (७) सभालोकानुद्दिश्य । (८) जिनप्रणीतदयामूलं धर्मम् । (९) कथयति स्म ॥९४॥

[1]निपीयमाना [2]श्रवणाञ्जलिभ्यां, [3]तद्देशनासारसुधा बुधानाम् ।
[4]दन्तांशुमिश्रस्मितमूर्त्तिरन्त-[5]रमान्त्यु[6]पेयाय बहिः किमेषा ॥९५॥

(१) पीत्वा । (२) कर्णावेव योजितपाणिभ्याम् । (३) व्याख्यानमेव प्रकृष्टामृतं देशनारूपं वेगवद्वृष्टेरमृतं वा । (४) दन्तज्योत्स्नाकरम्बितस्मितदेहा । (५) हृदये बहुलामृततया अमान्ती-स्थातुमशक्नुवन्ती(वती) । (६) आगता ॥९५॥

[1]निशम्य [2]वाचंमयवासवस्य, तां देशनां [3]स्त्रैणसखा मनुष्याः ।
[4]परस्परस्पर्द्धितया [5]ववर्षु-[6]र्दानैरमा[7]नैरिव [8]वारणेन्द्राः ॥९६॥

(१) श्रुत्वा । (२) सूरेः । (३) स्त्रीसहिताः । (४) अन्योन्यं स्पर्द्धाभावेन । (५) वर्षन्ति स्म । (६) दानैः विश्राणनैर्मदवारिभिश्च । (७) अप्रमाणैः । (८) गजेन्द्राः ॥७६॥

[1]वदान्यविश्राणन[2]मीक्षमाणो, [3]मालिन्यमा[4]लम्बत राज[5]राजः ।
[6]अन्वर्थनामा [7]प्रथितस्त्रि[8]लोक्यां, [9]कुबेर इत्येष [10]तदादि विद्मः ॥९७॥

(१) तत्समये दातॄणां दानम् । (२) पश्यन् । (३) मलिनताम् । (४) बभाज । (५) धनदः । (६) सत्यार्थाभिधानः । (७) ख्यातः । (८) त्रिभुवने । (९) कुत्सितबेरं-शरीरमस्येति । (१०) तं समयमारभ्य ॥९७॥

[1]तदो[2]ऽर्थिवाञ्छावचनानुरूपं, [3]विहापितं [4]सप्तहयो[5]ऽवसाय ।
करा[6]न्सहस्त्रं [7]प्रविसार्य [8]वाह-मिवाऽष्टमं [9]तत्पुरतो [10]वृणीते ॥९८॥

(१) तस्मिन्नवसरे । (२) याचकानां वाञ्छाया-याञ्चावाक्यस्य तुल्यम् । (३) दानम् । (४) रविः । (५) ज्ञात्वा । (६) सहस्त्रसङ्ख्यान् हस्तान् । (७) विस्तार्य । (८) अश्वम् । (९) तेषां श्राद्धानामग्रे । (१०) याचते ॥९८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हन्तुं [1]तपत्तोंरिव [2]तापम्[1][3]उर्व्यां, [4]तदा[5]ऽम्बरे[6]ऽम्भोधर [7]उल्लास ।
[8]पुरन्दरः सूरिपुरन्दरस्य, [9]विवन्दिषुः [10]पत्कजमागतः किम् ॥९९॥

(१) ग्रीष्मस्य । (२) तप्तिम् । (३) भूमौ । (४) यदैव, हीरविजयसूरयः समेत्य सामन्तगृहे स्थितास्तस्मिन्नैव दिने । (५) आकाशे । (६) मेघः । (७) उत्तम(ल्लस)ति स्म । (८) पुरन्दरो मेघः शक्रश्च । यदुक्तम्- "एक एव खगो मानी, चिरं जीवतु चातकः । पिपासितो वा म्रियते, याचते वा पुरन्दरम् ॥" इति । (९) नमस्कर्तुकामः । (१०) चरणकमलम् ॥९९॥

[1]अम्भोभृताभ्रभ्रमदभ्रलेखा, [2]विभूषयन्ति स्म [3]सुपर्व वीथीम् ।
शङ्के [4]त्रिलोकीजयजागरूक-सूनध्वजोर्वीधवगन्धनागाः ॥१००॥[2]

(१) जलैः पूर्णास्तथा नभसि पर्यटन्त्यः अभ्रकाणां 'आभलां' इति प्रसिद्धानां श्रेण्यः । (२) शोभां नयन्ति स्म । (३) गम(ग)नमार्गम् । (४) त्रिजगज्जनविजयव्यवसाये निर्निद्रस्य स्मरभूपस्य गन्धगजेन्द्राः ॥१००॥

[1]प्रवासिहृद्वारिधिमाथमन्था-चलोपमं वारिधरो [2]जगर्ज ।
[3]वीरावतंसालससूनशस्त्रं, [4]प्रोत्साहयन्[5]विश्वजिगीषयेव ॥१०१॥

(१) पान्थजनानां हृदयसमुद्रस्य मथने मन्दराद्रिसदृशम् । (२) गर्जति स्म । (३) सर्वसुभटानां मध्ये शेखरायमाणमथ ग्रीष्मसमये त्वन(?) जगज्जये आलसयुक्तं तादृशं कन्दर्पम् । (४) प्रागल्भ्यम् । (५) जगद्विजयोद्यतं कुर्वन् ।

[1]पौष्पेन(ण) [2]चापेन जये त्रिलोक्याः, स्मरेण दुः[3]खीभवता[4]ऽर्थितेन ।
[5]अमोघम्[6]अम्भोजभुवेव चक्रे, [7]तदर्थम्[8]आखण्डलचापचक्रम् ॥१०२॥

(१) कुसुमसम्बन्धिना । (२) धनुषा । (३) कष्टं प्राप्नुवता । (४) याचितेन । (५) अनिष्फलम् । (६) धात्रा । (७) स्मरार्थम् । (८) इन्द्रधनुर्मण्डलम् ॥१०२॥

[1]विश्लेषियोषाविरहोष्मशुष्य-त्तनूर्निहन्तुं [2]दयितेन रत्याः ।
[3]कार्शानवं [4]शस्त्रमिव [5]प्रयुक्तं, [6]व्यलीलसद्[7]द्योम्नि [8]तडिद्वितानम् ॥१०३॥

(१) वियोगिनीरङ्गनाः [तासां] वियोगतापेन शोषं प्राप्नुवन्ती(वती)-कृशीभवन्तीत्यर्थः -तनूः-शरीरं यासाम् । (२) स्मरेण । (३) वह्निसम्बन्धि । (४) आयुधम् । (५) मुक्तम् । (६) विकसति स्म । (७) आकाशे । (८) विद्युद्वृन्दम् ॥१०३॥

[1]आक्रम्य [2]दैत्यारिपदं स्थितस्या-ऽम्भोदस्य [3]माहात्म्यम्[4]उदीर्यते किम् ।
[5]कृतान्ततातो [6]दशदिक्प्रसारि-करोऽपि [7]येना[8]ऽधरितो महस्वी ॥१०४॥

---

1. ०मुर्व्यांस्तदा० हीमु० । 2. हीमु. एषः श्लोकः १०९तमक्रमेण दृश्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्वायत्तीकृत्य । (२) दैत्यानां दानवानामपि यो वैरी तस्य स्थानं गगनं च । (३) महिमा । (४) किं कथ्यते । (५) जगत्संहर्त्तुरपि पिता । (६) दशस्वपि दिक्षु प्रसरणशीलाः करा राजादेयांशभागः किरणाश्च यस्य । "करः प्रत्यायशुण्डयोः रश्मौ वर्षोपले पाणौ" इत्यनेकार्थः । प्रत्यायो राजग्राह्यो भाग इति तदवचूरिः । (७) मेघेन । (८) तिरस्कृतः । आच्छादितः । मेघे समुन्नते रविः कस्याऽपि न स्वमास्यं दर्शयति-इत्यधरीकरणम् ॥१०४॥

[1]प्राप्ते [2]प्रियेऽ[4]ब्देऽ[3]जनि [5]भूजनी[6]यं, [7]बप्पीहरावैः [8]कृतचाटुकेव ।
[9]प्रोद्भिन्नकन्दैः [10]पुलकाङ्किते[11]वा-ऽऽरब्धाङ्गहारेव [12]कलापिलास्यैः ॥१०५॥

(१) प्रतापवानपि आगते । (२) भर्त्तरि । (३) जाता । (४) मेघे । (५) भूमिरेव जनी-जाया । (६) मेघपत्नी । (७) चातकानां प्रिय प्रिय इति कूजितैः । (८) चटुवाक्या प्रियप्रायवचना । (९) प्रकटितकन्दलैः । (१०) रोमाञ्चकलिता । (११) निर्मितताण्डवा । (१२) मयूरनृत्यैः ॥१०५॥

[1]प्रेक्ष्य [2]क्षणं [3]कामरसोन्मदिष्णू-[4]र्घनानुषङ्गेन(ण) [5]तरङ्गिताङ्गीः ।
[6]पुत्रीः [7]स्रवन्तीः [8]पितरो [9]गिरीन्द्राः, [10]प्रस्थापयन्तीव [11]पतिं [12]पयोधिम् ॥१०६॥

(१) दृष्ट्वा । (२) मुहूर्त्तम् । (३) अतिशयेन पानीयैस्तरीतुमशक्याः । पक्ष-स्मरसेनोन्मत्ताः । (४) मेघानां बहूनां जनानां च सङ्गेन-मिलनेन । (५) उपचितवपुषः । (६) पर्वतोत्पन्नत्वात्पुत्रीः । (७) नदीः । (८) पितरस्ताताः । (९) शैलेश्वराः । (१०) प्रेषयन्ति स्म । (११) भर्त्तारम् । (१२) समुद्रम् ॥१०६॥

[1]स्वयं [2]धरित्रीधरताभिषेको-त्सवे [3]प्रयुक्तान्[4]कजजन्मनेव ।
[5]तदो[6]न्नमन्नीरदमुक्तधारा-पयःप्रवाहान[7]वहन्[8]महीध्राः ॥१०७॥

(१) आत्मनैव । (२) गिरित्वस्य राजत्वस्य वा अभिषेकः स्नपनं, तस्योत्सवे । (३) प्रेरितान् । विमुक्तानित्यर्थः । (४) विधिना । (५) तस्मिन्समये । (६) जलभारैर्नम्रीभवद्भिर्मेघैर्मुक्तानां धारापयसां वृष्टिपानीयानां प्रवाहानोघान् । (७) वहन्ते स्म । (८) गिरयः ॥१०७॥

किमम्बुमुक्चक्रिण[2]मैक्ष्य [3]वात-चमूपतिक्रान्तदिगन्तचक्रम् ।
तदा [4]मुधाभूतनिजप्रयत्ना, [5]विशश्रमु[6]र्जिष्णुनृपाः प्रयाणात् ॥१०८॥

(१) मेघनामानं चक्रवर्त्तिनम् । (२) दृष्ट्वा । (३) औत्तराहपवननामसेनापतिना आत्मीयायत्तीकृतं स्वामिमेघाभ्रकाशावृतं कृतं दिशां मण्डलं येन । (४) निष्फलीभूतात्मव्यवसायाः । (५) विश्रान्ताः-स्थिताः । (६) जयनशीला राजानः ॥१०८॥

[1]नभःस्थलीसंवलिताम्बुवाहान्, समीक्ष्य [2]रासा [3]ददिरे प्रमोदात् ।
[4]कुटुम्बिनीभिः किमु [5]शूरराजा-भिभूतिजायास्त[6]दुपज्ञकीर्त्तेः ॥१०९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) गगनमण्डले निर्भरीभूतान्मेघान् । (२) रासकाः । (३) दत्ताः । (४) कौटुम्बिक-कान्ताभिः । (५) शूराणां सुभटानां रवीणां च - राज्ञां - नृपाणां चन्द्राणां पराभवनोद्भूतायाः । (६) मेघ एवोपज्ञा - आद्यं ज्ञानं यत्र तादृश्या कीर्त्तेः । मेघयशसो रासका इत्यर्थः ॥१०९॥

तदा [१]वराणां [२]द्विजवत्कनीनां, [३]गर्जात्तवेदध्वनि[४]रम्बुवाहः ।
[५]शाखाकरैर्ग्राहयति स्म [६]भूमि-रुहां [७]प्रवालाग्रकरान्[८]र्लतानाम् ॥११०॥

(१) परिणेतॄणाम् । (२) पुरोहित इव । (३) गर्जारव एव गृहीत उच्चरितो वेदपाठस्य ध्वनिर्येन । (४) मेघः । (५) शाखारूपैर्हस्तैः । (६) वृक्षाणाम् । (७) पल्लवरूपानग्रहस्तान् । (८) वल्लीनाम् ॥११०॥

[१]अभ्रै[२]रनीकैरिव [३]दिग्विभागा[४]-नाक्रामत[५]श्छिन्नतपर्त्तुदस्योः ।
[६]केकारवैः किं [७]क्रियतेऽम्बुदस्य, [८]जयध्वनि[९]श्चन्द्रकिबन्दिवृन्दैः ॥१११॥

(१) अभ्रकैः । (२) कटकैरिव । (३) आशाप्रदेशान् । (४) व्याप्नुवतः । (५) व्यापादितग्रीष्मद्विषः । (६) मयूराणां वाक् केका । (७) प्रयोज्यते । (८) जयजयारवः । (९) मयूरैरेव मङ्गलपाठकपटलैः ॥१११॥

[१]विषप्रदोऽस्थास्नु [२]जडाशयश्री-[३]त्र्यपाचिकीर्षुः [४]स्वमिवाऽपवादम् ।
[५]तदा[६]ऽम्बुदस्तं ककुदं मुनीना[७]-मुपासनागोचरतां निनाय ॥११२॥

(१) 'विषं जलक्ष्वेडयो'रित्यनेकार्थः । तस्य दाता । (२) चपलाशयः जाड्यवान् । डलयोरैक्याज्जलानामाश्रयः । "आशय आश्रयेऽभिप्रायपनसयोरपि" इत्यनेकार्थः । (३) हर्त्तुकामः । (४) आत्मनो निन्दाम् । (५) तस्मिन्नवसरे । (६) मेघः । (७) सेवते स्म ॥११२॥

[१]निजौजसैर्वा[1]ऽमदयन्मनांसि, [२]यो [३]योगिनां यौवनवत्पयोदः ।
[४]अहो [५]व्यनंसीत्[६]स्तनितैः [७]स्तवौघै-रिव स्तुवन्[८]सोऽप्य[९]नगारशक्रम् ॥११३॥

(१) स्वप्रतापेनैव । (२) मेघः । (३) शमवतामपि । (४) आश्चर्ये । (५) विशेषेण नमति स्म । (६) गर्जितैः । (७) स्तोत्रस्तोमैः । (८) मेघोऽपि । (९) सूरीन्द्रम् ॥११३॥

[१]भोगीव [२]योगी [३]स तदा [४]शमश्री-सङ्गी प्रविश्य [५]प्रणिधानसौधम् ।
दिनं तद[६]र्हत्गुणकीर्त्तनेन, [७]व्यतीत्य सान्ध्यं[८] विधि[९]मन्वतिष्ठत् ॥११४॥

(१) स्त्र्यादिभोगयुक्त इव । (२) मनोवाक्काययोगवान् । (३) सूरिः । (४) शान्तरस-लक्ष्म्या संयोगवान् । (५) ध्यानसौधम् । (६) जिनगुणस्तवनेन । (७) अतिक्रम्य । (८) प्रतिक्रमणम् । (९) चकार ॥११४॥

1. ०सैवोन्मद० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]प्राग्भूमिभृत्स्वाभ्युदयाभिलाषी, [1]द्वीपेऽपरस्मिन्निव [२]रश्मिमाली ।
[३]निजाननन्यक्कृतशीतकान्ति-स्त[४]स्मिन्नशेषां स [५]उषाम[६]नैषीत् ॥११५॥

(१) प्राची दिशः नृपात्स्वस्योन्नतिं काङ्क्षतीत्येवंशीलः । उदयाचलाच्च निजाभ्युद्गम-मभिलषतीत्येवंशीलः । 'उदयः पर्वतोन्नत्यो'रित्यनेकार्थः । (२) सूर्यः । (३) स्वस्य मुखेन आगमनावसरेण च जितो मन्दीकृतश्च चन्द्रो येन । (४) सामन्तगृहे । (५) रात्रिम् । (६) अतिक्रमति स्म ॥११५॥

[१]प्राभातिकं कृत्यमथ [२]प्रणीय, [३]तृणीकृतांहा [४]विशदाशयश्च ।
फतेपुरं प्रत्यचलद्व्रतीन्द्र, इवा[५]ऽम्बुधिं [६]सिद्धधुनीप्रवाहः ॥११६॥

(१) प्रतिक्रमणादि । (२) कृत्वा । (३) निर्ना(र्णा)शितपापः । (४) विशुद्धमनाः निर्मलमध्यश्च । (५) समुद्रम् । (६) गङ्गारयः ॥११६॥

स श्रीकरीं [१]कैरविणीशकीर्त्तिः, प्राचीविशं[२]द्विश्वजनीनमूर्त्तिः ।
[३]महःसमूहोऽम्बुजबान्धवस्य, वि[४]भावरीवल्लभमण्डलीवत् ॥११७॥

(१) चन्द्रवद्विशदयशाः । (२) विश्वजनेभ्यो हिता मूर्त्तिर्यस्य । (३) किरणकलापः । (४) चन्द्रबिम्बमिव । मण्डलशब्दस्त्रिलिङ्गे - "शुद्धा सुधादीधितिमण्डलीव" इति नैषधे ॥११७॥

मुमुक्षुशक्रः [१]सदसत्समीक्षा-हृल्लेखिताशेषजगत्प्रदीपः ।
[२]मनोरथः [३]सिद्धिमिवा[४]ऽवनीप-प्रवेशनक्षोणिमलञ्चकार ॥११८॥

(१) शुभाशुभपदार्थावबोधे औत्सुक्ययुक्तानां जगज्जनानां प्रदीपस्य तुल्यः । (२) अभिलाषः । (३) कार्यनिष्पत्तिम् । (४) अकब्बरसाहिसिंहद्वारावनिम् ॥११८॥

[१]समस्ति शेखोऽबलफइ(फै)जनामा, [२]तुरुष्कशास्त्राम्बुधिपारदृश्वा ।
[३]हमांउसूनोरवनीश्वरस्य, दृष्टि[४]स्तृतीयेव परिस्फुरन्ती ॥११९॥

(१) विद्यते । (२) यवनागमसागरपारगामी । (३) अकब्बरसाहेः । (४) सर्वशास्त्र-रहस्यकथयिता न्यायान्यायोपदेष्टा च ॥११९॥

[१]सहस्त्ररश्मेरिव [२]सोमजन्मा, समेत्य शेखस्य [३]सवेशदेशे ।
[४]तत्रै[५]यिवांसं [६]व्रतिनामधीशं, तं [७]स्थानसिंहो [८]वदति स्म [९]तस्मै ॥१२०॥

(१) सूर्यस्य । (२) बुधः । (३) समीपभूमौ । (४) सिंहद्वारे । (५) समागतम् । (६) सूरिम् । (७) रामाङ्गजः । (८) कथयति स्म । (९) शेखाय ॥१२०॥

---

1. द्वीपे पर० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स [१]श्रेणिकायाऽ[२]भयवन्मृ[३]गारि-ध्वजस्य शेखोऽपि सभां [५]समेत्य ।
अकब्बरोर्वीरमणाय राज-द्वारे [५]विभोरागमनं जगाद ॥१२१॥

(१) श्रेणिकराजाय । (२) अभयकुमारः । (३) श्रीमहावीरदेवस्य । (४) आगत्य । (५) सूरेः ॥१२१॥

[१]अर्घ्यं [२]मुदस्त्राम्बुभिरु[३]ल्लसद्भि-स्तनूरुहै[४]र्गौरवमा[५]दधानः ।
[६]पैञ्जूषयोः प्राघुणकीं [७]प्रणीय, वाणीं बभाणे पुनरे[८]ष शेखम् ॥१२२॥

(१) पादजं धावनजलम् । (२) हर्षबाष्पसलिलैः । (३) उच्छ्वसद्भिर्लोमभिः । (४) अतिथिसत्कारम् । (५) कुर्वाणः । (६) कर्णयोः । "श्रवणप्राघुणकीकृता ममे"ति नैषधे । (७) कृत्वा । (८) साहिः ॥१२२॥

ऋतौ वसन्तेऽ[१]वनिजन्मनेव, [२]समीयुषि [३]श्रीश्रमणावतंसे ।
[४]मनोरथेनाऽद्य मम [५]प्रवीण-चूडामणे ! [६]पल्लवयांबभूवे ॥१२३॥

(१) वृक्षेण । (२) समागते । (३) सूरिचन्द्रे । (४) अभिलाषेण । (५) शास्त्रेषु चतुराणां मध्ये शिरोमणिः(णे!) - मुकुट ! । (६) पल्लवितं - सफलीभूतमित्यर्थः ॥१२३॥

[१]द्रक्ष्यामि [२]दिष्ट्याऽद्य मु[३]नीन्द्रचन्द्र-मिवा[४]ऽनुबिम्बं परमेश्वरस्य ।
शेखो[५]ऽधुनाऽहं [६]नियतेर्व[७]शेन, किं चाऽस्मि [८]कार्यान्तरचुम्बिचेताः ॥१२४॥

(१) दर्शनं करिष्यामि । (२) भाग्येन । (३) सर्वेषु सूरिषु चन्द्रतुल्यः । अथवा स्वस्वसङ्घाटकानां स्वामिनो मुनीन्द्रास्तेषु अधिकं दीप्यमानः स्वामितया चन्द्र इव इति वा । (४) प्रतिबिम्बम् । "संसारसिन्धावनुबिम्बमत्र(मात्रं) जागर्त्ति जाने तव वैरसेनि" रिति नैषधे । (५) इदानीम् । (६) दैवस्य । (७) आयत्तत्वेन । (८) अपरकार्येषु - भोजनादिषु व्यग्रमनाः ॥१२४॥

[१]अमन्तुजन्तुव्ययपातकेना[२]-ऽस्पृश्यां [३]प्रणीतां [४]धरणीं [५]स्वधाम्नः ।
शेख ! [६]क्षणं तेन [७]पवित्रय त्वं, गुरोः [८]पदाम्भोजरजोऽमृतेन ॥१२५॥

(१) निरपराधप्राणिघातनपातकेन । (२) स्प्रष्टुमयोग्याम् । (३) कृताम् । (४) भूमीम् । (५) तव गृहस्य । (६) मुहूर्त्तम् । (७) पावनीकुरु । (८) चरणकमलरेणुसुधया । "त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा" इति भक्तामरस्तवे ॥१२५॥

इदं [१]निगद्यो[२]ऽब्धिगभीरघोषं, [३]जोषं मुखे [४]भूमिधवो विधाय ।
जगाम गेहं [५]गृहिणीसनाथं, [६]विद्युद्विलासीव [७]गभस्तिरभ्रम् ॥१२६॥

1. मुदास्त्र० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कथयित्वा । (२) समुद्रवद्गम्भीरध्वनिर्यत्र । (३) मौनम् । "जोषमासनविशिष्य बभाषे" इति नैषधे । (४) साहिः । (५) स्त्रीयुक्तम् । (६) तडिद्भिः शोभनशीलम् । (७) भानुः । (८) मेघम् ॥१२६॥

[1]घना[2]दधीतामिव शेखशक्रो, वाणीं [3]समाकर्ण्य [4]हमाउंसूनोः ।
[5]निरीय तस्याः[6] सदसो बभाज, भुवं [7]व्रतीन्द्रेण [8]विभूष्यमाणाम् ॥१२७॥

(१) मेघात् । (२) पठिताम् । (३) श्रुत्वा । (४) पातिसाहेः । (५) निर्गत्य । (६) साहिसभायाः । (७) सूरिणा । (८) अलंक्रियमाणाम् ॥१२७॥

भक्त्या [1]नताङ्गो [2]बहुमन्यमानः, [3]स्वमन्दिरं सूरिपुरन्दरं सः ।
[4]निनीषति स्मा[5]ऽखिलशेखपूषा, [6]नाऽऽशंसते [7]निर्जरशाखिनं कः ॥१२८॥

(१) नम्रवपुः । (२) बहुमानं ददानः । (३) स्वगृहम् । (४) आनेतुं काङ्क्षति स्म । (५) समस्तशेखजातिषु सूर्यसमः । (६) न वाञ्छति । (७) कल्पतरुम् ॥१२८॥

अथो [1]पृथिव्या [2]उशना इवाऽसौ, [3]निःशेषशास्त्रोपनिषद्य[4]धीती ।
[5]अस्पृष्टशिष्टेतरवृत्ति तस्मै, [6]न्यजीगद[7]त्तन्निखिलं निगाद्यम् ॥१२९॥

(१) भूमेः । (२) शक्र इव । (३) समस्तयवनशास्त्ररहस्ये । (४) विद्वान् । (५) अनाश्रितदुर्जनमार्गः । (६) भाषते स्म । (७) साहिवाक्यम् ॥१२९॥

[1]तदुक्तियुक्तौ [2]सनिदर्शनायां, शेखं [3]निरस्तप्रतिबन्धृभावम् ।
श्रुतौ [4]प्रबन्धारमिव प्रवीण-धुरीणमेनं बुबुधे [5]बुधेन्द्रः ॥१३०॥

(१) साहिसन्दिष्टवाक्ययोजनायाम् । (२) दृष्टान्तसहितायाम् । (३) मुक्ता प्रतिबन्धकता दूषकत्वं येन । (४) प्रबन्धकर्त्तारम् । "विहंगमद्भाषितसूत्रपद्धतौ प्रबन्धृतास्तु प्रतिबन्धृता न ते" इति नैषधे । (५) सूरिः ॥१३०॥

[1]निशम्य तद्भाषितमेष [2]धात्री-सहस्रनेत्रस्य ततो व्रतीन्द्रः ।
[3]इयेष शेखस्य गृहं [3]प्रयातुं, [4]सुरेन्द्रसद्मेव [5]सुपर्वसूरिः ॥१३१॥

(१) श्रुत्वा । (२) भूपतेः । (३) काङ्क्षति स्म । (४) इन्द्रगृहम् । (५) बृहस्पतिः ॥१३१॥

[1]शुश्रूषमाणस्य [2]विशिष्य शिष्य-स्येवाऽस्य शेखस्य [3]वृषा मुनीनाम् ।
गेहं [4]महीपालगृहोपकण्ठे, पवित्रयामास [5]पदारविन्दैः ॥१३२॥

(१) सेवां कर्त्तुमीहमानस्य । (२) विशेषप्रकारेण कृत्वा । (३) इन्द्रः । (४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहिसौधसन्निधाने । (५) पूज्यत्वाद्बहुवचनम्-चरणकमलैः ॥१३२॥

[१]सन्देह सन्दोहमहाम्बुवाह-महाबलेन [२]व्रतिवासवेन ।
[३]बोद्धा [४]श्रुते[1] श्राद्ध इव स्वधाम्नि, [५]धर्म्यां स गोष्ठीम[६]नुतिष्ठति स्म ॥१३३॥

(१) संशयसमूहमहामेघवाक(यु)ना । (२) सूरिणा । (३) ज्ञाता - अवगन्ता । (४) शास्त्रे । (५) धर्मसम्बन्धिनीम् । (६) चकार ॥१३३॥

[१]हिंसादये [२]निर्दिशती [३]विरोधि-धर्मे [४]मिथः [५]स्वीयतदीयशास्त्रे ।
[६]क्षीराम्भसोर्हंसमिवा[७]ऽधिगत्य, तयो [८]र्विवेक्तारम[९]सौ [१०]पुनस्तम् ॥१३४॥

पुपोष[१] भाषां स्वमुखेन शेखः, [२]पुरो [३]विनेयायितवृत्तिरस्य ।
[४]नतिं दधानो विनया[५]दधीतां, [६]पाणौ [७]प्रणीतात्[८]सुगुणादिवा[९]ऽस्त्रात् ॥१३५॥ युग्मम् ॥

(१) जन्तूनां वधं कृपां च । (२) कथयन्ती । (३) विरुध्यत इत्येवंशीलो धर्मो ययोस्ते । (४) परस्परम् । (५) शेखसम्बन्धि सूरिसम्बन्धि च आगमौ । (६) दुग्धजलयोः । (७) ज्ञात्वा । (८) सदसद्विवेककर्त्तारम् । (९) शेखः । (१०) अधिगत्येति द्विरुच्यते इति पुनः शब्दार्थः ॥१३४॥

(१) बभाषे । (२) अग्रे । (३) शिष्य इवाऽऽचरिता मनोवृत्तिर्यस्य । (४) नम्रताम् । (५) पठिताम् । (६) हस्ते । (७) कृतात् । (८) शोभ[न]गुणवतः । (९) धनुषः ।१३५॥

[१]पइ(पै)गम्बरैर्नः [२]समयेषु सूरे, [३]पुरातनै[४]र्व्याहृतमेतदास्ते ।
[५]निक्षिप्यते [६]न्यास इव [७]क्षमायां, [८]यमातिथिर्यो [९]यवनस्य वंश्यः ॥१३६॥

[१]खुदाह्वयश्रीपरमेश्वरस्या-ऽऽस्थानीं [२]स्थितस्याऽधिपते[३]रिवोर्व्याः ।
उत्थाय पृथ्व्याः [४]परिवर्तकाले, [५]गन्ता [६]समग्रोऽपि जनः [७]पुरस्तात् ॥१३७॥
युग्मम् ॥

(१) अस्मद्वृद्धपुरुषैः । (२) शास्त्रेषु । (३) प्राचीनैः । (४) उक्तम् । (५) स्थाप्यते । (६) स्थापनिकेव । (७) भूमौ । (८) मृतः । (९) तुरुष्कगोत्रजन्मा ॥१३६॥

(१) खुदा इत्यस्मत्परम्परायां नाम यस्य तादृक्परमेश्वरस्तस्य सभायाम् । (२) उपविष्टस्य । (३) पृथ्वीपतेरिव । (४) कल्पान्तकाले । (५) यास्यति । (६) समस्तः । (७) तस्याऽग्रे ॥१३७॥

[१]आदर्शिकायामिव पुण्यपापे, [२]सङ्क्राम्य [३]संशुद्धनिजोपलब्ध्यौ ।
[४]विधास्यते [५]साधु [६]स [७]तत्र [८]तस्य, [९]न्यायं [१०]निरस्य [११]स्वपरावबोधम् ॥१३८॥

1. श्रुतेः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) दर्पणिकायाम् । (२) प्रतिबिम्बयित्वा - सम्यग्ज्ञात्वा । (३) सम्यक्प्रकारेण शुद्धायां स्व-पर-व्यवसायरहितायां निजस्य प्रज्ञायाम् । (४) करिष्यते । (५) सम्यक् । (६) परमेशिता । (७) सभायाम् । (८) सर्वजनस्य । (९) सदसद्व्यवहारं विचारं वा । (१०) त्यक्त्वा । (११) अयं स्वकीयः, अयं च परकीय इति ज्ञानम् । सांसारिकव्यवहारमेनम् ॥१३८॥

[1]विमृश्य [2]विश्राणयिता फलं स, [3]श्रेयोंऽहसोस्[4]तस्य ततोऽनु[5]रूपम् ।
मसूर[6]गोधूमयवादिधान्य-बीजस्य [7]सस्योत्कर[8]मुर्वरेव ॥१३९॥

(१) विचार्य । (२) दास्यति । विश्राणयितेति श्वस्तनीप्रयोगः । (३) पुण्यपापयोः । (४) सर्वलोकस्य । (५) योग्यम् । (६) गोधूमप्रमुखधान्यानां बीजस्य । (७) धान्यसमूहम् । (८) निष्पद्यमाननिखिलधान्या भूमिः ॥१३९॥

[1]नावोऽम्बुधेः [2]कूलमिवाऽनु[3]कूल-वातेन [4]भिस्तिं [5]गमिता [6]अनेन ।
भोक्ष्यन्ति [7]भाग्याद्भुतभोगभङ्गी-तरङ्गिताः केऽपि [8]ततः सुखानि ॥१४०॥

(१) यानपात्राः । (२) तटम् । (३) प्रशस्तपवनेन । (४) स्वर्गम् । (५) प्रापिताः । (६) परमेश्वरेण । (७) पुण्यपरिपाकेनाऽऽश्चर्ययुक्तभोगभङ्गीभिः प्रमोदभाजः । (८) स्वर्गगमनानन्तरम् ॥१४०॥

[1]श्येनैः [2]शकुन्ता इव पीडयमानाः, [3]कुम्भाः [4]कुलालैरिव पच्यमानाः ।
[5]तद्दोप्तृभि[6]र्दोयकि[7]मेन[8]साँऽन्ये, प्राप्स्यन्ति दुःखान्यपि [9]तेन [10]नीताः ॥१४१॥

(१) सिञ्चानकैः । (२) विहङ्गाः । (३) घटाः (४) कुम्भकारैः (५) नरकपालैः । (६) नरकम् । (७) पापेन । (८) पापिनः । (९) परमेश्वरेण । (१०) प्रापिताः ॥१४१॥

[1]कुराणवाक्यं किमिदं [2]यथार्थं, [3]महात्मनां वाक्यमिवाऽस्ति सूरे ! ।
इव [4]प्रसूने [5]गगनस्य [6]तस्मि-न्नृ[7]ता[8]ऽभ्युदेति [9]व्यभिचारिभावः ॥१४२॥

(१) तुरुष्कशास्त्रविशेषवचनम् । (२) सत्यम् । (३) साधूनाम् । (४) पुष्पे (५) आकाशस्य । (६) कुराणवाक्ये । (७) अथ वा (८) प्रकटीभवति । (९) असत्यता ॥१४२॥

[1]इदं [2]निगद्य [3]व्यरमत्[4]स [5]तस्य, [6]बुभुत्सया [7]वाङ्मयवेदितायाः ।
[8]ततो [9]बिडौजा [10]यतिनामिवै[11]कं-धुरां [12]सिताया भणति स्म वाणीम् ॥१४३॥

(१) पूर्वोक्तम् । (२) कथयित्वा । (३) विरराम । मौनं कृतवानित्यर्थः । (४) शेखः । (५) सूरेः । (६) ज्ञातुमिच्छया । (७) शास्त्रज्ञातृतायाः । (८) शेखवाक्यानन्तरम् । (९) इन्द्रः । (१०) साधूनाम् । (११) एकां धुरं वहतीत्येकधुरां तुल्याम् । (१२) शर्करायाः ॥१४३॥

---

1. ०न हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]निरञ्जनः [2]कम्बुरिव [3]व्यपास्त-निश्शेषदोषः पुन[4]र्रर्यमेव ।
[5]ज्योतिर्मयो वह्निरिवा[6]ऽस्तमूर्त्ति-[7]र्मीनाङ्कवद्यः परमेशिता[8]स्ते ॥१४४॥

(१) निर्गतमञ्जनं-रजआदिर्लेपो यस्य । कर्मरहितः । (२) शङ्खः । 'संखो इव निरंजणे' इति सिद्धान्तवाक्यात् । (३) निरस्तापगुणाः - निर्दोषः निहतरात्रिश्च । (४) भानुः । (५) परमज्योतिःस्वरूपः तेजोमयः । (६) शरीररहितः । (७) स्मरः । (८) विद्यते । "सत्तायामस्त्यास्ते" इति क्रियाकलापोक्तेः ॥१४४॥

भव[1]भ्रमीभङ्गिभरो [2]भवीव, किं [3]रूपमा[4]धाय [5]सभांगमी सः ।
[6]क्षेप्ता पुनर्द्वौ[7]यकिभिस्तिगत्यो-र्जनस्य कं [8]हेतुमिह [9]प्रतीत्य ॥१४५॥

(१) संसारभ्रमणीनां रचनानां समूहो यस्य । "अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्गमि"ति नैषधे । (२) संसारीव । (३) कीदृक्स्वरूपम् । (४) कृत्वा । (५) सभां गमिष्यतीति सभांगमी । (६) क्षेप्स्यति । (७) नरकस्वर्गलक्षणगत्योः । (८) रागद्वेषादिकं कारणम् । रागद्वेषौ विना शुभाशुभकरणं न स्यात् । तस्य तु तावेव न स्तः । ततः कं हेतुम् । (९) समाश्रित्य ॥१४५॥

सुखासुखानि [1]प्रभविष्णु दातुं, [2]पचेलिमं [3]प्राक्तनमेव कर्म ।
[4]तस्यैव [5]तत्कारणम(ता)स्तु [6]मञ्जा-गलस्तनेनेव किम[7]त्र [8]तेन ॥१४६॥

(१) समर्थम् । (२) परिपाकं प्राप्तम् । (३) पूर्वजन्माचीर्णम् । (४) कर्मण एव । (५) जगत्कर्तृता । (६) छागिकाकण्ठकुचेन । निष्फलेन । (७) लोके । (८) परमेश्वरेण ॥१४६॥

इदं [1]गदित्वा [2]विरते [3]व्रतीन्द्रे, शेखः [4]पुनर्वाच[5]मिमा[6]मुवाच ।
विजायते तद्ब[7]हुगर्ह्यवाचो, [8]वाचीव [9]तथ्येतरता [10]तदुक्तौ ॥१४७॥

(१) कथयित्वा । (२) निवृत्ते । (३) सूरीन्द्रे । (४) द्वितीयवारम् । (५) वक्ष्यमाणाम् । (६) बभाषे । (७) वाचाटस्य । (८) वचने । (९) अलीकता । (१०) कुराणवाक्ये ॥१४७॥

[1]बभाण [2]भूयः [3]प्रभुरे[4]त[5]मेतं-त्स्रष्टा[6] [7]जगत्[8]पूर्वमिदं [9]विधत्ते ।
[10]तत्के[11]तुवत्सं[12]हरते [13]स [14]पश्चा-[15]त्तत्तोऽस्ति [16]तस्या[17]ऽप्यसमश्रमोऽसौ ॥१४८॥

(१) उवाच । (२) द्वितीयवारम् । (३) सूरिः । (४) शेखम् । (५) एतद्वक्ष्यमाणम् । (६) विधाता । (७) विश्वजनम् । (८) प्रथमम् । (९) करोति । (१०) जगत् । (११) धूमलकेतुरिव । (१२) क्षयं नयति । (१३) स्त्रष्टा । (१४) कल्पान्तकाले । (१५) तस्मात्कारणात् । (१६) जगत्कर्त्तुः । (१७) असाधारणक्लेशः । जगतां करणसंहरणलक्षणः ॥१४८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]कर्त्ता च हर्त्ता [2]निजकर्मजन्य-वैचित्र्यविश्वस्य न कश्चिदास्ते ।
[3]वन्ध्यात्मजन्मेष [4]तदस्तिभावो-ऽसन्नेव चित्ते[5] प्रतिभासते [6]तत् ॥१४९॥

(१) यः कश्चित्कर्त्ता तथा च हर्त्ता जगत्कारकः जगत्संहारकश्च नान्यः । (२) आत्मनः कर्मणोत्पाद्यं विचित्रत्वं - नानात्वं यस्य तादृग्जगतः । (३) वन्ध्यापुत्र इव । (४) कर्त्तुर्विद्यमान एव । (५) चित्ते विज्ञायते । (६) तस्मात्कारणात् ॥१४९॥

शेखं तमि[1]त्थं [2]कृतपूर्वपक्षं, [3]सम्बोध्य [4]सिद्धान्तवचोभिरे[5]षः ।
धर्मं [6]निधत्ते स्म [7]तदीयचित्ते, [8]कृषीवलो [9]बीजमिवो[10]र्वरायाम् ॥१५०॥

(१) अनेन प्रकारेण । (२) विहिता विप्रतिपत्तिर्येन । सन्दिग्धोऽर्थः पूर्वपक्षः । (३) प्रतिबोध्य । (४) निःसपत्नबुद्धिनिश्चयः सिद्धान्तस्तस्य वाक्यैस्तद्रूपैर्वा वचनैः । सिद्धान्तावलम्बेन पूर्वपक्षप्रतिक्षेपो भवतीति व्युत्पत्तिर्नैषधनरहर्याम् । (५) सूरिः । (६) स्थापयति स्म । (७) शेखमानसे । (८) कौटुम्बिकः । कर्षुकः । (९) धान्यबीजम् । (१०) सर्वसस्यभूमौ ॥१५०॥

[1]बभूव [2]वल्भावसरोऽधुना त-[3]द्विधीयतां [4]क्वाप्यु[5]चिते [6]पदे सा[7] ।
दत्वा[8]ऽल्प[9]मङ्गाद्बहु गृह्यते [10]य-द्धर्मादि [11]पात्रादिव [12]बुद्धिमद्भिः ॥१५१॥

[1]श्रुत्वेति शेखस्य वचो [2]विधत्ते, [3]यावत्स[4] [5]वल्भा[6]मुचिते [7]प्रदेशे ।
[8]अभाजि [9]भूजम्भभिदा [10]सभाया, [11]मध्यं [12]दिवो [13]भानुमतेव [14]तावत् ॥१५२॥

(१) जातः । (२) आहारकरणसमयः । (३) क्रियताम् । (४) कुत्रापि । (५) श्रीमतामशनविधानयोग्ये । (६) स्थाने । (७) वल्भा । (८) स्तोकम् । (९) शरीरसकाशात् । (१०) तपःक्रियानुष्ठानादिधर्मः । (११) सुपात्रात् । (१२) मनीषिभिः ॥१५१॥

(१) आकर्ण्य । (२) कुरुते । (३) यस्मिन्काले । (४) सूरिः । (५) आहारम् । आचाम्लम् । (६) योग्ये । (७) गृहे । (८) आश्रिता । (९) भूमीशक्रेणाऽकब्बरेण । (१०) आस्थानसभायाः । (११) उत्सङ्गं मध्यप्रदेशः । (१२) आकाशस्य । (१३) सूर्येण । (१४) तस्मिन्नेव काले समये ॥१५२॥

[1]धर्मोदयस्येव [2]मुहूर्त्तमा[3]त्म-गोष्ठी विधानावसरं [4]विभाव्य ।
[5]महीमहेन्द्रस्तम[6]था[7]ऽऽजुहाव, मुनीन्द्रमि[8]न्द्रावरजोर्जितश्रीः ॥१५३॥

(१) धर्माभ्युदयस्य । (२) वेलाम् । (३) स्वस्याऽकब्बरस्य सूरिणा समं धर्मवार्त्ता-करणसमयम् । (४) ज्ञात्वा । (५) साहिः । (६) सूरीन्द्रसभामध्यागमनानन्तरम् । (७) आकारयामास । (८) नारायणवत्प्रबला लक्ष्मीर्यस्य ॥१५३॥

शेखस्त[1]तः [2]साधुविधुं [3]विशुद्ध-धर्मोपदेष्टारम[4]दःसमाजम् ।
[5]स्वसाधकस्याऽन्तिकमिष्टदेवं, सिद्धिप्रदो मन्त्र इवाऽऽनिनाय ॥१५४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) साहेराकारणानन्तरम् । (२) सूरिम् । (३) निर्दोषधर्मवक्तारम् । (४) साहिसभाम् । (५) आत्मन आराधयितुः । (६) समीपम् । (७) अभिलषितसुरम् । (८) कामितदायी । (९) आनयति स्म ॥१५४॥

[१]विश्वत्रयी[२]मीक्षि[३]तुमुत्सुकेन, [४]त्रैरूप्यभाजेव [५]शिवाङ्गजेन ।
[६]शक्तित्रिकेणेव [७]वपुष्मता वा-ऽनुगम्यमानस्त[८]नुजत्रिकेण ॥१५५॥
[१]विभाव्य [२]विस्मेरविलोचनाम्भो-रुहेण [३]तं [४]साहिजलालदीनः ।
[५]ज्ञानेन [६]शक्रः [७]कतिचित्पदानि, [८]ज्ञाताङ्गजन्मानमिवा[९]ऽभ्यगच्छन् ॥१५६॥

(१) त्रैलोक्यम् । (२) द्रष्टुम् । (३) उत्कण्ठितेन । (४) रूपत्रयीयुतेन । त्रयाणां रूपाणां भावस्तद्व्रजतीति । (५) स्वामिकार्त्तिकेन । (६) प्रभुत्वोत्साहमन्त्रलक्षणानां शक्तीनां त्रिकेणेव । (७) मूर्त्तिमता शरीरभाजा । (८) शेखुजी-पाटी-दानीयार इति नाम्नां पुत्राणां त्रयेण ॥१५५॥

(१) दृष्ट्वा । (२) स्मितनयनकमलेन । (३) सूरिम् । (४) अकब्बरसाहिः । जलालदीन इति यवनप्रसिद्धनामा । (५) अवधिज्ञानेन । (६) इन्द्रः । (७) सप्ताऽष्टौवा पदानि । (८) महावीरम् । (९) सम्मुखं जगाम ॥१५६॥ युग्मम् ॥

सूरिं [१]दयाधर्ममिवा[२]ऽङ्घ्रिजात-[३]मवन्तम[४]ङ्गीकृतकाययष्टीम् ।
[५]तं गोचरं [६]लोचनयोः प्रणीय, [७]मीमांसति स्मेति [८]हृदा [९]महीमान् ॥१५७॥

(१) कृपाधर्मम् । (२) पाणिसमूहम् । (३) रक्षन्तम् । (४) गृहीततनूलताम् । (५) सूरिम् । (६) नेत्रयोर्विषयं कृत्वा । आलोक्येत्यर्थः । (७) चिन्तयति स्म । (८) मनसा । (९) अकब्बरः ॥१५७॥

[१]विपक्ष[1]ता[२]माकलयन्त[३]मुग्रं, [४]प्रियां [५]स्वमृत्या[६]वमृतां रतिं च ।
[७]निर्णीय [८]निर्विन्न(ण्ण)मनास्त[९]नूमां-स्तपः [१०]प्रपन्नः किमु [११]शम्बरारिः ॥१५८॥

(१) वैरिताम् । (२) बिभ्राणम् । (३) ईश्वरम् । (४) कान्ताम् । (५) स्वदाहे । (६) अकृतमरणाम् । (७) निर्णयं कृत्वा । (८) खेदखिन्नचेताः । (९) शरीरयुक्तः । (१०) आश्रितः । (११) कामः ॥१५८॥

न [१]क्वापि [२]कामीव [३]जहाति कान्ता-[४]मकीर्त्तिमेता[५]मपहर्त्तुकामः ।
किं [६]वा [७]पृथक्कृत्य [८]निजाङ्गलग्नां, शिवां शिवः साधितसाधुवृत्तिः ॥१५९॥

(१) कस्मिन्नपि प्रदेशे । (२) प्रबलकन्दर्पवानिव । (३) त्यजति । (४) अपयशः । (५) हर्तुमिच्छुः । (६) अथवा । (७) भिन्नं कृत्वा । शरीराद्बहिर्भूतां विधाय । (८) आत्मनः

1. ०क्षभावं कलय० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरे लग्नां स्यूतामिवाऽर्द्धीभूताम् । अर्द्धशम्भुरिति प्रसिद्धात् । तथा – "प्रसह्य चेतो हरतोऽर्द्धशम्भु"-रिति नैषधे । (९) अङ्गीकृतमुनिवृत्तिः ॥१५९॥

[१]प्रलम्बबर्हिर्मुखशाखिशाखा-[1]बाहः [२]स्फुरत्काञ्चनवारिमश्रीः ।
[३]उत्कन्धरो भूमिधरः[४] सुराणां, किं वाऽ[५]द्भुताद्[६]भूतलसञ्चरिष्णुः ॥१६०॥

(१) दीर्घो(र्घा) कल्पतरुशाखा एव भुजा यस्य । (२) दीप्यमाना कनकवत्कनकस्य च रमणीयता यस्य । (३) उच्चैःशिरा महात्मा । (४) सुरशैलः । (५) आश्चर्यात् । (६) भूमिमण्डले सञ्चरणशीलः ॥१६०॥

[१]साम्राज्य[२]मासाद्य [३]दिवस्त्रि[४]लोक्या, [५]आशंसमानः पुनरा[६]धिपत्यम् ।
[७]तपस्तपस्यत्कि[८]मुत [९]क्षमायां, [१०]पुरंदरो[११]ऽपास्त पुरन्ध्रिपाशः ॥१६१॥

(१) समस्तविमानदेवानां शासितां नायकत्वम् । (२) प्राप्य । (३) देवलोकस्य । (४) त्रिभुवनस्य । (५) इच्छन् । (६) प्रभुताम् । (७) तपः कुर्वन् । (८) अथवा । (९) भूमौ । (१०) इन्द्रः । (११) त्यक्तः स्त्रीणां पाशो येन स्त्रिय एव वा पाशो येन ॥१६१॥

यावद्वि[१]तर्कानिति [२]तर्कशास्त्रा-धीतीव चित्ते कुरुते [३]क्षितीन्द्रः ।
[४]निर्ग्रन्थनाथं [५]निजसन्निकर्षं, [६]विभूषयन्तं [७]पिबति स्म तावत् ॥१६२॥

(१) विचारान् । (२) तर्कशास्त्रेषु अध्ययनमस्त्यस्येति, तद्वत् । (३) साहिः । (४) सूरीन्द्रम् । (५) स्वसमीपम् । (६) अलङ्कुर्वाणम् । (७) सादरमवलोकयति स्म ॥१६२॥

[१]सुत्रामगोत्राधिकगौरवेण, मार्गे मया [२]सम्भ्रमगामिनाऽसौ ।
[३]दुरूढभूर्भोगिविभुर्वि[४]षादी, [५]मा स्ता[६]दितीवा[७]ऽत्वरया [८]चरन्तम् ॥१६३॥

(१) मेरोरधिका गुरुता यस्य । (२) त्वरितगमनशीलेन । (३) दुःखेन धृता भूमिर्येन-शेषनागः (४) खेदवान् । (५) मा भवतु । (६) इति हेतोः । (७) शनैः शनैः । (८) चलन्तम ॥१६३॥

इमे [१]चले [२]मेचकिमाङ्किते च, [३]तदौ[४]चिती [६]रोद्धुमदः[५]प्रचारम् ।
नेत्रे क्षिपन्तं किमिति [७]प्रमातं, [८]युगन्धरायां पुरतो [९]धरायाम् ॥१६४॥

(१) चपले । (२) श्यामत्वयुक्ते । (३) तस्मात्कारणात् । (४) योग्यता । (५) अनयोः प्रसरम् । (६) निवारयितुम् । (७) प्रमाणीकृतम् । (८) कूबरं-'धूसर'मिति लोकप्रसिद्धं-यस्याम् । (९) पृथिव्याम् ॥१६४॥

---

1. ०वाहः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दण्डं [१]स्वपाणौ दधतं [२]स्वबाहा-जितं [३]भजन्तं किमु कल्पसालम् ।
[४]कल्पं मुनीनामिव [५]मूर्त्तिमन्तं, [६]कल्पं निजाङ्गे पुनरु[७]द्वहन्तम् ॥१६५॥

(१) निजहस्ते । (२) निजभुजपरिभूतम् । (३) सेवमानं कल्पसालम् । (४) आचारम् । (४) अङ्गयुतम् । (६) प्रावरणविशेषम् । (७) दधानम् ॥१६५॥

[१]बुधैर्न [२]दोषाकरवंशजातै-र्मरा[३]लयानैर्न च [४]नाऽभिजातैः ।
[५]प्रत्यर्थिभिश्चि[६]त्तभुवो न [७]रुद्रै- [८]र्निर्ग्रन्थनाथैरनुगम्यमानः ॥१६६॥

(१) बुधैः - सौम्यैः रोहिणीतनयैः । (२) न चन्द्रपुत्रैरिति विरोधः । तत् - शान्त्यै -प्राज्ञैः दोषयुक्तकुले न जातैर्विशुद्धवंशजन्मभिः । (३) हंसवत् हंसेन च गमनं येषाम् - न धातृभिः । (४) न न अभिजातैःकुलीनैः । अपितु अभिजातैः । द्वौ नञौ प्रकृत्यर्थं गमयतः । (५) वैरिभिः । (६) स्मरस्य । (७) शिवैर्न-सौम्यैः । (८) मुनिपतिभिः ॥१६६॥

एकं किम[१]द्वैततया [२]जगत्यां, [३]कुमुद्वतीकान्तमिव द्वितीयम् ।
तृतीयम[४]क्ष्णोरिव [५]चन्द्रचूड-ब्रह्माच्युतानामिव वा चतुर्थम् ॥१६७॥

(१) असाधारणत्वेन । (२) विश्वे । (३) चन्द्रमिव । (४) नयनयोः । (५) ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणाम् ॥१६७॥

चतुर्षु [१]वेदेष्विव पञ्चमं वा, षष्ठं [२]द्रुमाणामिव निर्जराणाम् ।
किं सप्तमं [३]मूर्त्तिमतामृतूनां, [४]श्रो(स्त्रो)तःपतीनां पुनरष्टमं वा ॥१६८॥

(१) पञ्चमं वेदमिव । (२) षष्ठं कल्पद्रुममिव । (३) सप्तमं ऋतुमिव । (४) अष्टमं समुद्रमिव ॥१६८॥

[१]अधीश्वराणां नवमं दिशां वा, [२]कुण्डं सुधानां दशमं किमुर्व्याम् ।
एकादशं वा [३]व्रतिनां वृषेषु, किं द्वादशं [४]श्रीगणपुङ्गवानाम् ॥१६९॥

(१) नवमं दिक्पालमिव । (२) दशमं सुधाकुण्डमिव । (३) एकादशं साधुधर्ममिव । (४) द्वादशं गणधरमिव ॥१६९॥

त्रयोदशं [१]वाऽम्बुजबान्धवानां, [२]विश्वेषु देवेषु चतुर्दशं वा ।
[३]रत्नेषु वा पञ्चदशं कलासु, [४]शरःसु(रत्सु)धांशोरिव षोडशं वा ॥१७०॥

(१) त्रयोदशं सूर्यमिव । (२) चतुर्दशं विश्वदेवमिव । (३) पञ्चदशं रत्नमिव । (४) शरच्चन्द्रस्य षोडशकला । पञ्चदशसु तिथिषु पञ्चदशैव कला षोडशी कला तु शिवमस्तकेऽस्ति । तथा "षोडशीमपि कलां किल नोर्वी" इति नौषधोक्तेः चेन्द्रे पञ्चदशैव कलाः सन्ति । तथा -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"परमाधार्मिकतिथयश्चन्द्रकलाः पञ्चदश भवन्तीहे"ति काव्यकल्पलतायाम् । तथा तत्रैव - "तिथिं तिथिं प्रति स्वर्गिभोग्यैकैककलाधिका । कला यस्येशपूजासीदेकः श्लाघ्यः स चन्द्रमाः" इति वचनात् ॥१७०॥

किं [1]राजधानी [2]शममेदिनीन्दो-र्ध्रुवं [4]धुनीनामिव वा [3]समाधेः ।
[5]सङ्केतसद्मेव [6]गुणावलीनां, धर्मस्य [7]साम्राज्यमिवा[8]ऽऽर्हतस्य ॥१७१॥

(१) स्कन्धावारो(रः) (२) शमराजस्य । (३) ध्यानस्य । (४) समुद्रमिव । (५) सङ्केतेन मिलनगृहम् । (६) गुणश्रेणीनाम् । (७) सर्वथाऽधिपत्यमिव । (८) जैनस्य ॥१७१॥

उरो[1] मुरारेः [2]सुभगत्वलक्ष्म्याः, कृपामृतस्येव पतिं [3]तमीनाम् ।
[4]भाग्यस्य वा [6]कोशमिवो[5]ऽक्षयन्तं, [7]क्षान्तिस्रवन्त्या इव [8]सानुमन्तम् ॥१७२॥

(१) नाराघणवक्षःस्थलम् । (२) सौभाग्यश्रियाः । (३) चन्द्रमिव । (४) पुण्यस्य । (५) अक्षयम् । (६) भाण्डागारम् । (७) क्षमानद्याः । (८) पर्वतम् ॥१७२॥

[1]यशःसुमस्येव [2]सुपर्वसालं, किं [3]ज्ञानभानोरुदयाचलं वा ।
[4]सप्तर्षिपुत्रं किमु [5]चित्रवाचा-मिवाऽऽकरं [6]लब्धिमणीगणानाम् ॥१७३॥

त्रयोदशभिः कुलकम् ॥ हीरसूरिवर्णनम् ॥

(१) श्लोककुसुमस्य । (२) कल्परुम् । (३) ज्ञानसूर्यस्य । (४) बृहस्पतिम् । यथा चित्रशिखण्डिनन्दनस्तथा सप्तर्षिपुत्रः । (५) नानावचनानां खनिम् । (६) लब्ध[य] एव मणिगणास्तेषाम् ॥१७३॥

[1]तं [2]व्याजहारे[3]ति [4]महीमहेन्द्रो, [5]जागर्ति [6]वार्तं खलु [7]युष्मदङ्गे ।
हिमं [8]सरः पद्ममिवो[9]ऽध्वजन्मा, [10]क्लमोऽपि नो[11]ऽऽक्रामति वः[12] शरीरम् ॥१७४॥

(१) सूरिम् । (२) उवाच । (३) वक्ष्यमाणम् । (४) अकब्बरसाहिः । (५) विद्यते । "सत्तायामस्त्यास्ते जागर्त्ति च विद्यते" इति क्रियाकलापोक्तेः । (६) अनामयम् । (७) श्रीमतां शरीरे । (८) सरोवरकमलम् । (९) मार्गजातः । (१०) परिश्रमः । (११) न पीडयति । (१२) युष्माकम् ॥१७४॥

तपांसि वः सन्त्य[1]नघानि कश्चि-न्नाऽऽस्ते [2]समाधेः [3]प्रतिबाधकश्च ।
मनः [4]प्रसन्नं पुनरस्ति नीरं, [5]पद्माकरस्येव [6]घनव्यपाये ॥१७५॥

(१) प्रशस्यानि निरन्तरायानि(णि) । (२) ध्यानस्य । (३) विघ्नविधाता । (४) अनाविलं-चिन्तारहितम् । (५) तटाकस्य । (६) शरदागमे ॥१७५॥

---

1. ०बन्धकश्च हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का सा पुरी [1]प्रापि [2]दशां दमीशै-[3]र्वसन्तनिर्मुक्तवनानुरूपाम् ।
[4]अहो ! [5]अहोभिर्बहुभिः [6]पयोदै-रिवा[7]ऽऽदिमैर्भूरियम[8]न्वकम्पि ॥१७६॥

इति कुशला[ला]पप्रश्नः ॥

(१) लम्भिता-नीता । (२) अवस्थाम् । (३) वसन्तसमयरहितस्य पुष्पफल-पत्रादिरहिततरुगणस्य काननस्य योग्याम्-सदृशाम् । (४) अहो इति सम्बोधने । (५) दिनैः । (६) मेघैः । (७) प्रथमैः । पुष्करावर्तनामभिः । (८) अनुगृहीता ॥१७६॥

[1]इदं [2]विनिर्दिश्य [3]समुद्रकाञ्ची-रुच्ये मुखे चि(त)[5]न्वति [4]मौनमुद्राम् ।
धर्मस्य [6]धात्रीमिव [7]वृत्रशत्रु-[8]र्वाचंयमानां स उवाच [9]वाचम् ॥१७७॥

(१) पूर्वोक्तम् । (२) उक्त्वा । (३) भूभर्त्तरि । (४) मौनम् । (५) कुर्वति । (६) उपमातरम्-वर्धयित्रीम् । (७) शक्रः । (८) यतीनाम् । (९) वाणीम् ॥१७७॥

[1]क्ष्माकान्तकोटीरमणीमरीचि-मधुव्रतापीतपदारविन्दः ।
[2]अवेहि [3]वार्त्तं [4]द्युसदामिवाऽऽ[5]प्त-वचःसुधापानविधायिनां [6]नः ॥१७८॥

(१) भूपतीनां मुकुटानां रत्नकान्तय एव भ्रमरैः, आ-सामस्त्येन पीते-आस्वादिते सेविते वा चरणकमले यस्य । "सुरासुरनराधीश-मधुपापीतपत्कज" इति सारस्वतव्याकरणप्रान्ते । (२) जानीहि । (३) अनामयम् । (४) देवानामिव । (५) तीर्थकृद्वचनामृतपानकारिणाम् । (६) अस्माकम् ॥१७८॥

[1]अश्वानिवा[2]ऽक्षाणि [3]निरीहभावै, [4]रश्मिव्रजै[5]र्यन्त्रयतां [6]स्वयं [7]नः ।
तपांसि [8]निर्विघ्नतया [9]शताङ्गा, इव [10]प्रवर्त्तन्त [11]उदारकान्ते ! ॥१७९॥

(१) वाजिन इव । (२) इन्द्रियाणि । (३) निःस्पृहताभिः । (४) रज्जूसमूहैः । (५) स्वायत्तीकुर्वताम् । (६) आत्मना । (७) नः - अस्माकम् । (८) विघ्नरहितत्वेन । (९) रथाः । (१०) जायन्ते चलन्ति च । (११) स्फारदीप्ते ! अथवा स्फारशोभ ! अथवा महती कान्तिरिच्छा यस्य ॥१७९॥

[1]प्रत्यूहकृत्कोऽपि न नः[2] [3]समाधेः, [4]कुतोऽ[5]शिवं स्या[9]द्भुवि [6]यत्त्व[7]यी[8]शे ।
[10]गृहाङ्गणस्थायिनि [11]कल्पशाखि-[12]न्युपद्रवेत्किं नु [13]दरिद्रभावः ॥१८०॥

(१) विघ्नकर्त्ता । (२) अस्माकम् । (३) मनःस्वास्थ्यस्य ध्यानस्य वा । (४) कस्मात् । (५) अकल्याणम् । (६) यस्मात्कारणात् । (७) भवति । (८) स्वामिनि । (९) भूमौ । अशिवोपशामके । (१०) भवनद्वारस्थिते । (११) कल्पतरौ । (१२) उपद्रवं कुर्यात् । (१३) दारिद्र्यम् ॥१८०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अनित्यताभावनया [2]पदार्थ- सार्थस्य [3]विश्वस्य मनः पुनर्नः[4] ।
[5]क्षोदैरिवा[6]ऽम्भः [7]कतकस्य शश्व-[8]त्प्रसन्नमास्ते [9]वसुधासुधांशो ! ॥१८१॥

(१) "जे पुव्वह्ने दिट्ठा ते अवरह्ने न दीसंती"ति वचनात्सर्वमनित्यं धर्म एव नित्यकार्य इति वासनया । (२) वस्तुव्रजस्य । (३) लोकस्य । (४) अस्माकम् । (५) चूर्णैः । (६) पानीयम् । (७) कतकनामफलस्य । (८) अनाविलम् निर्मलं चिन्तामुक्तम् । (९) भूचन्द्र ! ॥१८१॥

[1]गोशीर्षसौरभ्यमिवो[2]ऽनिलेन, [3]सन्देशहारिद्वितयेन [4]हूतः ।
गन्धारनाम्नो नगरान्[5]महीन्दो !, शनैः शनै[6]र्वृद्धतया [7]समागाम् ॥१८२॥

प्रतिकुशलालापः ॥

(१) चन्दनसुरभिताम् । (२) वायुना । (३) दूतयुगेन । (४) आकारितः । (५) राजन् ! । (६) वृद्धत्वेन । (७) समागतः ॥१८२॥

[1]भूमानथाऽभाषत [2]दूरदेशा-द्यूयं समेताः [3]कथमे[4]कपद्याम् ।
[5]महेन्द्रवन्[6]मत्तमतङ्गजेन, रथेन [7]पाथोरुहबन्धुवद्वा ॥१८३॥

[1]रेवन्तवद्वा तुरगेण [2]दिव्य-यानेन [3]वृन्दारकवर्गवद्वा ।
[4]स [5]प्रोचिवानु[6]ज्झितयानम[7]त्र, [8]चरन्[9]क्रमाभ्याम[10]हमाजगाम ॥१८४॥ युग्मम् ॥

(१) राजा । (२) दूरस्थानात् । (३) केन प्रकारेण । (४) मार्गे । (५) इन्द्र इव । (६) हस्तिना । (७) सूर्य इव ॥१८३॥

(१) हववाहन इव । (२) मनोज्ञेन देवसम्बन्धिना वा यानेन - शिबिकादिकेन विमानेन च । (३) देवगण इव । (४) सूरिः । (५) बभाषे । (६) त्यक्तयानः । (७) श्रीमत्पार्श्वे । (८) चलन् । (९) चरणाभ्याम् । (१०) आगतः ॥१८४॥

[1][1]भूयोऽप्युवाचेति न[3] सा[2]हिबाख्य-खानेन युष्मभ्य[3]मदायि [4]किञ्चित् ।
[5]तुरङ्गमस्यन्दनदन्तियान-जाम्बूनदाद्यं [6]दृढमुष्टिनेव ॥१८५॥

(१) पुनः । (२) <u>साहिबखानेन</u> । (३) न दत्तम् । (४) किमपि । (५) अश्वरथगज-शिबिकास्वर्णादिः । (६) कृपणेनेव ॥१८५॥

गुरु[1]र्जगौ [2]बह्व[3]दिशत्स[4] मह्यं, [5]त्वया [6]नियुक्तो [7]हरिणेव मेघः ।
पुनर्न किञ्चि[8]न्निखिलानुषङ्ग-मुचा मया[9]ऽग्राहि [10]महीमहेन्द्र ! ॥१८६॥

(१) उवाच । (२) भूयिष्ठम् (३) ददौ । (४) <u>साहिबखानः</u> । (५) श्रीमता । (६) समादिष्टः । (७) इन्द्रेण मेघः । (८) समस्तरामाधनादिसङ्गत्यागिना । (९) गृहीतम् । (१०) भूशक्र ! ॥१८६॥

1. भूपो० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]अहो [२]निरीहैर्महतां[३] वतंसै-र्भूर्भू[५]षिताऽमी[४]भिरि[६]वांऽशुभि[७]र्द्यौः ।
[८]तज्जन्मभिः [९]पङ्कमिवा[१०]ऽरविन्दं(दैः), [११]भवं [१२]परित्यज्य [१३]पृथग्भवद्भिः ॥१८७॥

(१) अहो इत्याश्चर्ये । (२) निःस्पृहैः । (३) समस्तसाधुजनेषु शेखरायमाणैः । (४) सूरिभिः । (५) शोभिता अलङ्कृता पवित्रिता वा । (६) सूर्यैः । (७) गगनम् । (८) तत्र-संसारे पङ्के वा उत्पत्तिर्येषाम् । (९) कर्दमम् । (१०) कमलैः । (११) संसारम् । (१२) त्यक्त्वा । (१३) पृथग्भूतैः ॥१८७॥

चित्ते दध[१]च्चित्रमिति क्षितीन्द्रः, पुन[२]र्युनक्ति स्म मुखं स [३]वाचा ।
[४]सौरभ्यविभ्राजिविजृम्भिताब्जं, [५]घनात्ययो [६]हंसमृगीदृशेव ॥१८८॥

(१) आश्चर्यम् । (२) योजयति स्म । (३) वाण्या । (४) परिमलैः शोभनशीलं विकस्वरं कमलम् । (५) शरत्समयम् । (६) हंस्या ॥१८८॥

[१]ग्रीष्मागमेनेव मया[२]ऽध्वगानां, [३]वृथा [४]व्यथा [५]वः [६]पथिजा [७]व्यसर्जि ।
[८]एतन्मया [९]गोधनवन्न किञ्चि-च्चक्रे [१०]स्वहृद्गोचरसञ्चरिष्णु ॥१८९॥

(१) निदाघसमयेन । (२) पान्थानाम् । (३) मिथ्यैव । (४) पीडा । (५) युष्माकम् । (६) मार्गसम्भवा । (७) दत्ता । (८) पीडाकरणम् । (९) गोकुलमिव । (१०) निजहृदयविषये वर्त्तमानं सत्, तथा स्वं मदीयं धनं भूमिर्भूधनत्वात् तस्या हृदि मध्ये यो गोचरः - गवां चरणस्थानं, तत्र सम्यक्चरणशीलम्, अथवा स्वहृदा निजमनसा निजेच्छया चरणक्षोण्यां भक्षणशीलम् ॥१८९॥

[१]विघ्नाय [२]जज्ञे [३]भगवत्समाधे-रहं [४]पयोवाह इवां[५]ऽशुभासाम् ।
युष्माकमा[६]कस्मिकदुःखजन्मा, [७]तत्प्र[८]त्यवायोऽजनि मे महीयान् ॥१९०॥

(१) अन्तरायकृते । (२) जातः । (३) पूज्यानां मनःस्वास्थ्यस्य ध्यानस्य वा । (४) मेघ इव । (५) सूर्यकिरणानाम् । (६) अकस्माद्भवं यद्दुःखं ततो जातः । (७) तस्मात्कारणात् । (८) अपराधः पापं वा ॥१९०॥

[१]क्ष्माचक्रचक्रीत्यथ थानसिंह-[२]मुद्दिश्य [३]जग्राह वचो [४]वचस्वी ।
[५]हितैषिणा [६]कल्प इवा[७]ऽदसीयः, प[८]न्थाः [९]कथं नो कथितः [१०]पुरो [११]मे ॥१९१॥

(१) भूमण्डलचक्रवर्त्ती । (२) उद्दिश्य-सम्मुखमालोक्य । (३) गृहीतवान् । (४) वचोयुक्तिमान् । (५) परस्येष्टापत्तिमभिलषतीत्येवं शीलेन । (६) आचार इव । (७) एतत्सम्बन्धी । "नासादसीया तिलपुष्पतूण"मिति नैषधे । (८) मार्गः-यत्याचारः । (९) केन कारणेन । (१०) अग्रे । (११) मम ॥१९१॥

1. एतत्पुनर्गो० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्य[1]प्य[2]वक्किं न [3]पदप्रचारैः, प्राप्स्यन्ति दुःखं यदि[4]हाऽऽ[5]जिहानाः ।
[6]निगद्य [7]भूमानिति [8]सारदीन-सारङ्गवन्मौनमधत्त वक्त्रे ॥१९२॥

(१) अपि-पुनः । (२) अकथयः । (३) चरचङ्क्रमणैः । (४) साहिपार्श्वे । (५) आजिहानाः-आगच्छन्तः । (६) कथयित्वा । (७) साहिः । (८) शरत्कालसम्बन्धी बप्पीह इव ॥१९२॥

किमु[1]त्तरं स्यादि[2]ह [3]मन्दधीव-न्मी[4]मांसते यावद[5]सौ हृदीति ।
स [6]दीर्घदर्शीव शशी [7]रसाया, स्वं [8]संशयानं प्रतिजल्पति स्म ॥१९३॥

(१) प्रतिवचः । (२) अस्मिन्साहिप्रश्ने । (३) स्वल्पबुद्धिरिव । (४) विचारयति । (५) प्रत्युत्पन्नमतिः । (६) दूरात्स्वपरयोर्हिताहितादिकं यः पश्येत्स दीर्घदर्शीत्युच्यते । (७) भूचन्द्रः । (८) सन्देहं कुर्वाणम् ॥१९३॥

[1]एतद्द्वयं [2]मानसमानसाङ्क[2]-वलक्षपक्षीकरवाम कामम् ।
[3]इदं त्वया[4]ऽचिन्त्यत पुण्यलक्ष्मी-[5]माकाङ्क्षता [6]क्षीरधिशायिनेव ॥१९४॥

(१) एतद्वक्ष्यमाणम् । (२) मन एव मानससरस्तत्र हंसीकरवाम । आत्त्या (आशीः) प्रेरणप्रयोगः । (३) इदं मया प्रोच्यमानम् । (४) चिन्तितम् । (५) वाञ्छता । (६) विष्णुनेव ॥१९४॥

[1]स्वमण्डले [2]भूतलशीतभानी[3](सा)-ऽऽनीयन्त एते यदि [4]सूरिशक्राः ।
[5]सुधाशनाम्भोनिधिवल्लभाया, [6]भगीरथेनेव [7]पयःप्रवाहाः ॥१९५॥

(१) निजदेशे । (२) साहिना । "इदं तमुर्वीतलशीतलद्युति"मिति नैषधे । (३) आगम्यन्ते । (४) श्रीहीरविजयसूरीन्द्राः । (५) देवनद्याः-गङ्गायाः । (६) भगीरथनाम्ना भूपेन । (७) जलप्लवाः ॥१९५॥

[1]सुधारसं [2]प्रीतिभरेण [3]पायं-पायं [4]प्रभोर्दर्शननामधेयम् ।
तदा [5]भजामो वयमप्य[6]मर्त्या, इव स्वभावाद[7]जरामरत्वम् ॥१९६॥

(१) अमृतनिःस्यन्दः । (२) मनोहार्द्देन । (३) पीत्वा पीत्वा । वीप्सार्थः पौनः-पुण्ये(न्ये) णमुल् पायं पायं गच्छति, भोजं भोजं व्रजती'ति सारस्वते । (४) सूरीन्द्रस्याऽवलोकनं, तदेव नाम यस्य । 'नामरूपभागाद्धेय' इति हैमीवृत्तौ । (५) आश्रयामः । (६) देवा इव । (७) जरामरणराहित्यम् । अजरामरभावमित्यर्थः ॥१९६॥

---

१. ०शंसति हीमु० । २. ०साङ्के वल० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]पुरो न मे [2]किञ्चन [3]तेन [4]वृत्तं, त्वया गुरूणां [5]प्रतिपाद्यते स्म ।
यतः [6]स्वसद्माभिमुखीभविष्णु-[7]मुपेक्षते कः [8]सुरसौरभेयीम् ॥१९७॥

(१) ममाऽग्रे । (२) किञ्चिदपि । (३) तेन कारणेन । (४) चरितं यत्याचारादिकम् । (५) कथितम् । (६) स्वगृहसम्मुखीं भवनशीलाम् । (७) निवारयति स्म । (४) कामधेनुम् ॥१९७॥

[1]रामाङ्गजो [2]मध्यमलोकपाल-वक्त्रादिदं [3]वाङ्मयम[4]भ्युदीतम् ।
[5]निपीय भृङ्गो मकरन्दम[6]म्भो-रुहादिवा[7]ऽऽमोदभरं बभार ॥१९८॥

(१) थानसिंहः । (२) स्वर्गपातालयोरपेक्षया मध्यलोको भूलोकस्तस्य पालयिता-ऽकब्बरस्तन्मुखात् । (३) वचोविलासम् । (४) प्रकटीभूतम् । (५) सादरं श्रुत्वा पीत्वा च । (६) कमलात् । (७) प्रमोदम् ॥१९८॥

[1]शशंस [2]सभ्यानथ [3]पार्थिवेन्दु-रानेतुमे[4]तानिह केन [5]जग्मे ।
[6]तेऽप्यूचुरु[7]र्वीन्द्रम[8]जय्यवीर्य-मिवा[9]ऽवतीर्णं भुवि कार्त्तवीर्यम् ॥१९९॥

(१) अकथयत् । (२) सभासदो नृपान् । (३) साहिः । (४) सूरीन् । (५) गतम् । (६) सभ्याः । (७) साहिम् । (८) जेतुमशक्यपराक्रमम् । (९) कृतावतारम् ॥१९९॥

[1]मौन्दीकमालाविति नामधेयौ, [2]निदेशतः [3]शासनहारिणौ [4]वः ।
[5]इतोऽ[6]जिहातामिव [7]मूर्त्तिमन्तौ, लेखौ [8]वलेखाविव [9]कामचारौ ॥१००॥

(१) मौन्दीकमालनामानौ । (२) आदेशात् । (३) 'मेवडा' इति सं. (संज्ञकौ) दूतौ । (४) युष्माकम् । (५) साहिपार्श्वात् । (६) गतौ आस्ताम् । (७) शरीरभाजौ । (८) देवाविव । (९) कामं-स्वेच्छया देवगत्यातिशयेन च चरणं ययोः ॥२००॥

[1]तैः [2]शासितुः [3]शासनतः [4]पृथिव्या, [5]हूतौ पुरस्ता[6]दुपसेदतु[7]स्तौ ।
[8]वसुन्धराशेषविशेषवृत्तिं, चि[9]द्गोचरीकर्त्तुमिवा[10]ऽस्य [11]नेत्रे ॥२०१॥

(१) सभ्यैः । (२) पालयितुः । (३) आदेशात् । (४) भूमेः । (५) आकारितौ । (६) आगतौ । (७) दूतौ । (८) भूमेः समग्रां मित्रामित्रस्वभावं सूचयित्रीं वार्त्ताम् । (९) ज्ञातुम् । (१०) साहेः । (११) नयने ॥१०१॥

मुखं [1]मृगाङ्कं मिलितुं [2]स्वबन्धो-[3]र्लब्धोदयं [4]वारिरुहे इवैते ।
[1][5]प्रणीय पाणी [6]प्रणयेन [7]मध्ये-गोधीति [8]धात्रीशम[9]वोचतां तौ ॥२०२॥

---

1. पाणी प्रणीय हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) चन्द्रम् । (२) निजबान्धवाद्भानोः । (३) प्राप्ताभ्युदयम् । सूर्यकान्तिं सम्प्राप्य चन्द्र उदयति । यथा रघुकाव्ये- "पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधिते-रनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः" इति । (४) कमले । (५) कृत्वा । (६) प्रेम्ना(म्णा) । भक्त्येत्यर्थः । (७) भालस्थलमध्ये । (८) अकब्बरम् । (९) भाषते स्म ॥२०२॥

[1]आदिश्यतां देव ! [2]निदेश्यमित्थं, [3]निर्दिश्य तौ [5]संश्रयतः स्म [4]तूष्णीम् ।
[6]धाराधरस्येव [7]ऋतोर्विरामे, [8]नभोऽम्बुपाम्भोदसुहृच्छकुन्तौ ॥२०३॥

(१) आदेशो दीयताम् । (२) कथनार्हम् । कथनीयम् । (३) उक्त्वा । (४) मौनम् । (५) भजतः स्म । (६) मेघस्य । (७) ऋतोर्विरहे । शरत्काले इत्यर्थः । (८) चातकमयूरपक्षिणौ ॥२०३॥

[1]भूर्मा[2]निमावित्य[3]वद[4]त्ततो[5]ऽमी, कथं [6]समीयुः [7]पथि [8]कीदृशाश्च ।
[9]तावप्य[10]वक्तां [11]तमु[12]पागतं [13]स्व-[14]र्बलिद्विषो हन्तुमिवा[15]ऽब्जनाभम् ॥२०४॥

(१) साहिः । (२) दूतौ प्रति । (३) अभाषत । (४) गन्धारनगरात् । (५) सूरयः । (६) समागताः । (७) मार्गे । (८) किं निष्ठाः । (९) दूतौ । (१०) अकथयताम् । (११) नृपम् । (१२) समागतम् । (१३) स्वर्गात् । (१४) बलिष्ठाद्वैरिणः, बलिनामानं रिपुम् । (१५) नारायणम् अब्जवन्नाभिर्यस्येति व्युत्पत्तिमात्रम् ॥२०४॥

[1]चूर्णैरिव [2]स्वक्रमपद्मपांशुभिः, [3]प्राचीनसूरिप्रकरैः [4]प्रतिष्ठिताम् ।
[5]सभाजयन्तः [6]प्रतिमामिव [7]क्ष्मां, [8]क्रमाम्बुजाभ्यां [9]पथि [10]सञ्चरन्त्य[11]मी ॥२०५॥

(१) वासयोगैरिव । (२) निजचरणकमलरेणुभिः । (३) पूर्वाचार्यसमूहैः । (४) पूज्यतया स्थापिताम् । (५) पूजयन्तः । सभाजनशब्दः पूजार्थो, यथा नैषधे - "सभाजनं तत्र ससर्ज तेषा" मिति । तथा क्रियाकलापे "सभाजनार्थे सभाजयति" । (६) परमेश्वरमूर्त्तिमिव । (७) भूमीम् । (८) पदपद्माभ्याम् । (९) मार्गे । (१०) चलन्ति । (११) सूरयः ॥२०५॥

श्रेणीं [1]सतामिव [2]विमुक्तसमग्रदोषां, [3]वल्भा[4]ममी विदधते [5]सकृदेव [6]देव ! ।
[7]आराधयन्ति [8]विधिवद्विधृतावधाना, [9]योगं [10]विधूतवनिताद्यखिलानुषङ्गम् ॥२०६॥

(१) उत्तमानाम् । (२) सर्वैर्दोषैराधाकर्मिकादिसप्तचत्वारिंशन्मितैः अपगुणैश्च विरहिताम् । (३) भोजनम् । (४) सूरयः । (५) एकवारमेव । (६) साहे ! (७) साधयन्ति । (८) शास्त्रोक्तप्रकारेण विशेषेण धारितं संसारानित्यतायामवधानं मनो यैः । (९) यमाद्यष्टप्रकार-सम्मतमवधानविशेषम् । (१०) निरस्तः स्त्रीप्रमुखो निखिलोऽनुषङ्गः सङ्गः परिचयो यत्र । एवं यथा स्यात्तथा ॥२०६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्वे [१]वेश्मनि [२]तारमौक्तिकनभश्चन्द्रोदयभ्राजिनि
[३]ज्योतिस्तैलभृतौषधीप्रियतमस्नेहप्रियोद्भासिनि ।
[४]आश्लिष्यो[५]पशमश्रियं [६]निजभुजागण्डोपधानाङ्किते
पर्यङ्के [७]जगतीतले [८]सुखं[९]ममी [१०]भूमीशवच्छे[११]रते ॥२०७॥

(१) जगत्येव गृहे । (२) तारका एव मुक्ताफलानि यत्र तादृश आकाश एव उल्लोचस्तेन शोभनशीले । (३) कान्तिरूपतैलैः पूरिते चन्द्र एव प्रदीपस्तेन उत्प्राबल्येन भासनशीले-प्रकाशवति । (४) आलिङ्ग्य । (५) उपशमलक्ष्मीम् । (६) आत्मनो बाहुरेव गल्लमसूरकं, तेन कलिते । (७) भूमेरुत्सङ्गरूपे पल्यङ्के । (८) निर्भयं मनःस्वास्थ्ययुतं यथा स्यात्तथा । (९) सूरयः । (१०) राजान इव । (११) स्वपन्ति-निद्रावशं याति(न्ति)-निद्रान्ति ।

[१]बाह्याबाह्यजिघांसुघातुकतपस्तेजोभि[२]रेभिर्भुवो
[३]जम्भारे ! [४]गगनाध्वगो गणधरै[५]र्धिक्कारतां [६]लम्भितः ।
[७]शत्रून्प्र[८]त्यपकर्त्तु[९]मम्बुधिशयं [१०]संशीलती[११]वाऽनिशं
[१२]यायादे[१३]ष [१४]कुतः [१५]सरस्वति न चेदे[१६]णाङ्क्योषामुखे ॥२०८॥

(१) बाह्याः कुदृक्प्रमुखा अबाह्या अन्तरङ्गा रागद्वेषादयो ये वैरिणस्तेषां हननशीलानि यानि षष्ठाष्टमादीनां तपसां तेजांसि-प्रतापास्तैः । "एतस्योत्तरमद्य नः समजनि त्वत्तेजसां लङ्घने" इति नैषधे । 'तव प्रतापानामतिक्रमणे' इति तद्वृत्तिः । (२) जगत्प्रसिद्धैः । (३) भूमीन्द्र ! । (४) सूर्यः । (५) पराजयताम् । (६) प्रापितः । (७) सूरिप्रतापरूपान् निजविजयित्वाद् रिपून् । (८) पराभवितुम् । (९) नारायणम् । (१०) सेवते । (११) नित्यम् । (१२) गच्छेत् । (१३) भानुः । (१४) कस्मात्कारणात् । (१५) समुद्रे । (१६) सन्ध्यासमये । "प्रदोषो यामिनीमुख" मिति हैम्याम् ॥२०८॥

[१]कामचापभ्रुवः [२]स्फारशृङ्गारिणीः, [३]कुम्भिकुम्भप्रगल्भस्तनीः [४]स्त्रग्विणीः ।
किं [५]त्रिदश्यः [६]प्रणश्यत्पृषच्चक्षुषः, [७]सुभ्रुवोऽ[८]मी [९]तृणं [१०]मन्यते [११]क्ष्मापते ! ॥२०९॥

(१) कन्दर्पकोदण्डवद्भ्रुवो यासाम् । (२) प्रगल्भो जनमनोहारी शृङ्गारोऽस्त्यासाम् । (३) करिशिरःपिण्डवत्पीनौ कुचौ यासाम् । (४) मुक्तादिमालाभृतः । (५) देव्य इव । (६) साक्षाद्भयपलायमानमृगवन्नेत्रे यासाम् । "पृषत्किशोरी कुरुतामसङ्गत(ता)" मिति नैषधे । व्यञ्जनान्तपृषत्शब्दो मृगवाची । (७) प्रमदाः । (८) सूरयः । (९) तृणप्रायाम् । (१०) गणयन्ति । (११) राजन् ! ॥२०९॥

[१]विरागे [२]नाऽनुरागे[1] च, [३]तोषे [४]दोषे न [५]भूविभो ! ।
[६]मुक्तौ न [७]सुभ्रुवां [८]भुक्तौ, [९]चेतश्चि[१०]न्वन्त्य[११]मी [१२]क्वचित् ॥२१०॥

1. न हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) वैराग्ये । (२) न पुत्रकलत्राद्यनुरक्तौ । (३) सन्तोषे-निर्लोभतायाम् । (४) अपगुणे । (५) भूपते ! । (६) मोक्षे । (७) स्त्रीणाम् । (८) भोगे । (९) चित्तम् । (१०) पुष्टं कुर्वन्ति । (११) सूरयः । (१२) कुत्राऽपि स्थाने । आजन्मनि यावत् ॥२१०॥

[1]भूलोके [2]भोगिलोके च, [3]स्वर्लोके स न [4]कश्चन ।
आवाभ्यामु[5]पमीयेत, योगिनां[6] मौलिनाऽमुना ॥२११॥

(१) भूमौ । (२) नागलोके । (३) देवलोके । (४) कोऽप्यन्यः । (५) उपमानीक्रियेत । (६) साधुमुकुटेन ॥२११॥

[1]नमश्चिकीर्षया[2]ऽमीषां, [3]तीर्थानामिव [4]सर्वतः ।
[5]परोलक्षा [6]मृगाक्षीभिः, सममायान्ति मानवाः ॥२१२॥

(१) नमस्कर्तुमिच्छया । (२) सूरीणाम् । (३) शत्रुञ्जयादितीर्थानामिव । (४) सर्वाभ्यो दिग्भ्यः । (५) लक्षसङ्ख्याः । (६) स्वप्रियाभिः समम् ॥२१२॥

[1]दूतास्यपद्मद्रहनिर्गते[2]ति, [3]व्रतीशितुः [4]कीर्त्तिसुरस्रवन्ती ।
[5]कूलङ्कषाना(णा)मिव नायकेन, [6]महीमघोना [7]हृदये [8]न्यधायि ॥२१३॥

(१) सन्देशहारिवदनमेव पद्मद्रहस्तस्मान्निर्गता । (२) इति पूर्वोक्तवर्णनया । (३) सूरेः । (४) कीर्त्तिरूपा गङ्गा । (५) समुद्रेणेव । (६) अकब्बरेण । (७) हृदयं-मनो वक्षश्च तत्र । (८) निहिता ॥२१३॥

[1]येना[2]ऽऽकरा [3]रोहणवन्मणीना-ममी गुणानां [4]गणिरोहिणीशाः ।
[5]हूतास्त[6]तोऽस्माभिरि[7]हेत्युदित्वा[8], न्यवीवृत[9]न्नीरधिनेमिनाथः ॥२१४॥

(१) कारणेन । (२) खनिः । (३) रोहणाचल इव । (४) गणनायकः । (५) आकारिताः । (६) तस्मात्कारणात् । (७) अस्मिन्मण्डले फतेपुरे वा । (८) कथयित्वा निर्वर्त्तितः । मौनमाश्रितः । (९) भूपतिः ॥२१४॥

द्वाराणीव [1]महानन्द-नगर्याः [2]साधुसिन्धुराः ।
[3]कानि वः[4] सन्ति तीर्थानि, नृपः पप्रच्छ [5]तानि[6]ति ॥२१५॥

(१) मुक्तिपुर्याः । (२) सूरयः । (३) किंनामानि । (४) युष्माकम् । (५) सूरीन् । (६) इत्यमुना प्रकारेण ॥२१५॥

पतिर्यतीनां [1]जगदुत्तमाङ्गो-त्तंसायमानक्रमपद्मयुग्मः ।
अर्थेन [2]काव्यं [3]कवितेव वक्त्रं, [4]संयोजयामास स भाषितेन ॥२१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) त्रिभुवनजनानां मस्तकेषु शेखरायमाणचरणकमलयुगलः । (२) कवित्वम् । (३) कविरिव । "भवद्वृत्तं स्तोतुर्मदुपहितकण्ठस्य कवितु" रिति नैषधे । इति कवितृशब्दः । (४) युनक्ति स्म । (५) वचने[न]॥२१६॥

राजन् ! यत्र [1]पतिंवरेव [2]वृणुते [3]कैवल्यलक्ष्मीं [4]स्वयं
[5]सङ्घाखण्डलमूर्ध्नि वर्षति [6]पयो[7]ऽब्दालीव [8]राजादनी ।
यस्मिन्पङ्क[9] इव प्रयाति [10]वृजिनं [11]मार्त्तण्डकुण्डाम्भसा
तत्तीर्थं [12]विमलाचलो [13]विजयते [14]सौराष्ट्रचूडामणिः ॥२१७॥

(१) स्वयंवरा कन्येव । (२) वरयति । (३) मुक्तिश्रीः । (४) आत्मना । (५) सङ्घपतिमस्तके । (६) दुग्धं पानीयं च । (७) वर्षाकाल इव । (८) प्रियालद्रुमः । "राजादनीतरुतले विमलगिरिरियं जयति तीर्थं"मिति पूर्वाचार्यस्तवे । (९) कर्दम इव । (१०) पापम् । (११) सूर्यकुण्डजलेन । (१२) शत्रुञ्जयो मुख्यं तीर्थम् । (१३) सर्वोत्कर्षेण प्रवर्त्तते । (१४) सौराष्ट्रनाम्नो देशस्य शिखामणिरिव ॥२१७॥

आस्ते[1]ऽभ्रंलिहरैवताद्रिरपरः [2]स्वस्याः [3]पवित्रीकृते
जाने [4]सानुनिभेन [5]सप्तजगती यं सेवते[6]ऽहर्निशम् ।
[7]शम्भोश्चन्द्रकलेव [8]मूर्द्धनि पुनर्भाति स्म यस्या[9]ऽम्बिका
यस्मिन्नेमिजिनस्तथा [10]गजपदं कुण्डं [11]पुनीते [12]जगत् ॥२१८॥

(१) गगनचुम्बी गिरिनारगिरिः । (२) आत्मनः । (३) पावनीकरणाय । (४) शिखरकपटेन । (५) सप्तजगति(ती) । "त्रिजगतीं पुनती कविसेविते"ति जिनप्रभसूरेर्वचनात् । यथा त्रिजगती तथैव सप्तजगती । (६) नित्यं दिवारात्रौ च । (७) ईश्वरस्य । (८) मस्तके शिखरे च । (९) अम्बिका नाम देवी । (१०) नेमिनाथवन्दनावसरे इन्द्रेण ऐरावणपार्श्वे पदेन कारितं गजपदनामकुण्डम् – सर्वतीर्थावतारम् । (११) पवित्रयति । (१२) विश्वम् ॥२१८॥

अस्त्य[1]द्रिप्रभुनन्दनोऽर्बुदगिरिर्यस्मिन्वसत्यात्मना
[2]स्थाणुक्षोणिभृतीव [3]कल्पितशिवाश्लेषो [4]वृषाङ्कः प्रभुः ।
निर्जेतुं [5]दशमौलिवत्[6]क्षितिभृतः किं [7]सांयुगीनान्[8]भुजान्
[9]स्तूपान्विंशति[10]रर्हतां [11]वहति यः सम्मेतशैलः परः ॥२१९॥

(१) हिमाचलपुत्रः । एतन्नाम तु वस्तुपालवसतिप्रशस्तिपट्टिकायां पूर्वाचार्यैर्लिखितमस्ति । लोकप्रसिद्ध्याप्यष्टाशीतिऋषिभिर्हिमाचलं याचित्वा गर्त्तायाः स्वधेनोः कर्षणाय तत्पुत्राऽर्बुदगिरिरानीत इति । (२) कैलाशे इव । (३) कृतः पार्वत्याः मुक्तेश्च आलिङ्गनं येन । किंच न हि गुणरूपाया मुक्तेराश्लेषो युज्यते, परमेतच्च कविमतम् – "नभःपरीरम्भणलोलुभेने"त्यादिवत्–तार्किकमतात्–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविधर्म एव पृथग्भवति । (४) ऋषभदेव ईश्वरस्य(रश्च) । (५) रावण इव । (६) पर्वतान् भूपांश्च । (७) रणे साधून् सङ्ग्रामशौण्डान् । (८) बाहून् । (९) स्तम्भाकृतिविशेषान् । (१०) विंशतिर्जिनानाम् । (११) धारयति ॥२१९॥

यं [१]लक्ष्म्येव जिताः [२]कुलावनिभृतः [३]सोपानदम्भाः[1](म्भात्) श्रिताः
[४]जह्नुर्यत्[५]परिखीचकार [६]खधुनीं सोऽष्टापदः पर्वतः ।
तेजः [७]सर्वसुपर्वणां परिभवन्भानुर्ग्रहाणां यथा
नाथो यत्र [८]फणिध्वजः [९]समभवत्[१०]काशीति[2] तीर्थं पुनः ॥२२०॥

(१) श्रिया । (२) अष्टौ कुलपर्वता मन्दरादयः । (३) आरोहणकायाः । (४) सगरचक्रिबृहत्पुत्रो जह्नुनामा नृपः । (५) खातिकां कृतवान् । (६) गङ्गाम् । (७) सर्वेषां लौकिकानां हरिहरादिदेवानाम् (८) पार्श्वनाथः । (९) जातः । (१०) वाराणसी नाम तीर्थम् ॥२२०॥

[१]सूरिपुरन्दरगदिता-निति [२]तीर्थान्[३]मेदिनीसुनासीरः ।
[४]श्रवणाभरणानीव, [५]व्यधित [६]निजश्रोत्रपत्रयुगे ॥२२१॥

(१) सूरीन्द्रकथितान् । (२) तीर्थशब्दः पुंनपुंसके । "प्रस्थं तीर्थं प्राथमलिंद" इति लिङ्गानुशासने । (३) भूमीन्द्रः । (४) कर्णपूरानिव । (५) चक्रे । (६) स्वकीयश्रवणयुगले ॥२२१॥

अपि [१]यतिपर्जन्योदित-तीर्थततिश्रुतिसुधारसः [२]प्रसरन् ।
[३]अविशन्[४]मानसमु[५]र्वी-भर्त्तुः [६]कर्णप्रणालिकया ॥२२२॥

(१) यतीनां मध्ये पर्य(र्ज)न्यः - शक्रः मेघश्च तस्मात्प्रकटीभूततीर्थभूततीर्थमालाश्रवणमेवाऽमृतरसः । (२) विस्तारं प्राप्नुवन् । (३) प्रविवेश । (४) मानसं मनः सरश्च । (५) राज्ञः पर्वतस्य च । अर्थाद् हिमाद्रिः । हिमाचले मानसं सरोऽस्ति । "सदा हंसाकुलं बिभ्रन्मानसं प्रचलज्जलम् । भूभृन्नाथोऽपि नायाति यस्य साम्यं हिमाचलः ॥" इति चम्पूकथायाम् । (६) कर्णरूपा प्रणालिका-जलागमनमार्गः ॥२२२॥

[१]शेखूजी इत्येकः, पाटी अपरश्च दानीयार इति ।
[२]तिष्ठन्ति [३]साहिजाता, अमी कुमारा इव [४]द्युसदाम् ॥२२३॥

(१) एते त्रयोऽप्यकब्बरपुत्राः । (२) श्रीमतामग्रस्थिताः सन्ति । (३) साहेः सकाशाज्जाताः । (४) देवानाम् ॥२२३॥

[१]एषामा[२]शिषम[३]खिल-श्रीणां [४]सङ्केतसदनमिव ददत ।
[५]सारिण्या [६]शिखरिण इव, यथाऽनया[७]ऽमी [८]विवर्द्धन्ते ॥२२४॥

---

1. ०कायाश्रिताः हीमु० । 2. ०काशीति हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) त्रयाणां मत्पुत्राणाम् । (२) भवतां मङ्गलशंसनम् । (३) सर्वलक्ष्मीना(णा)म् । (४) एकान्ते मिथः प्रीतिभाजां सङ्गमस्थानम् । (५) कुल्यया । (६) वृक्षा इव । (७) श्रीमदाशिषा । (८) कुमाराः । (९) वृद्धिं प्राप्नुवन्ति ॥२२४॥

[1]इति [2]नृपमणिवाणीं [3]कर्णपेयां [4]प्रणीय
[5]व्यतरदयम[7]मीभ्यो धर्मलाभं [6]मुनीन्द्रः ।
[8]अपि [9]निजकरक्लृप्ताशेषराज्या इवैते-
[10]ऽसमप्रमदसुधाब्धौ [11]राजहंसीबभूव ॥२२५॥

इति पं. देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये शिवपुरीसमागमन - सुरत्राण-नृपमहोत्सवकरण-आउआपुरेशताह्लासाधुपूजाप्रभावनानिर्मापण-मेडतानगरागमन-नागपुरीयविक्रमपुरीयसङ्घ-महोत्सवकरण-फलवर्द्धिपार्श्वनाथयात्राकरण- महोपाध्यायश्रीविमलहर्षगणि पं० सी (सिं)हविमलगणिपुरः-प्रेषण-साहिमिलन-तदुदन्ताकर्णना-ऽभिरामावादागमन-वाचकसम्मुखागम-श्रीसङ्घसम्मुखकरणोत्सव-साहिमिलन-कुशलप्रश्न-दूताकारण-तथागमविधिकथन-तीर्थकथन-साहिजाताशीःप्रदानवर्णनो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥ ग्रन्थाग्र० ३२३॥

(१) इत्यमुना प्रकारेण । (२) भूपतिरत्नवचनम् । (३) श्रवणाभ्यां पातुं योग्याम् । (४) कृत्वा । (५) अददात् । (६) सूरिः । (७) कुमारेभ्यः साहिजातेभ्यः । (८) कुमारा अपि । (९) निजहस्ते कृतसमस्तभूतलाधिपत्या इव । (१०) असाधारणहर्षक्षीरसमुद्रे । (११) राजहं[स]भावं भेजुः । अत्र प्रमदशब्दगतो रेफः पदभङ्गाय न, न यतिभङ्गाय । यथा- "बहुल-भ्रामरमेचकतामसे" इति वृत्तरत्नाकरे ॥२२५॥

इति त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥ ग्रन्थाग्र० ४५५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐं नमः ॥

अथ चतुर्दशः सर्गः ॥

अथ [1]प्रदेशी च स[2] [3]केशिना[4]ऽमुना, [5]विधातुकामः [6]सुकृतस्य [7]सङ्कथाम् ।
[8]इदं [9]महीन्दु[10]र्मुनिचन्द्रमब्रवीत्, [11]पुनन्तु पूज्या मम [12]चित्रशालिकाम् ॥१॥

(१) प्रदेशीनाम राजा । (२) <u>अकब्बर</u>ः । (३) केशिगणधरेण च । (४) <u>हीरविजय-सूरि</u>णा । (५) कर्त्तुं वाञ्छन् । (६) धर्मस्य । (७) वार्त्ताम् । (८) अग्रे वक्ष्यमाणम् । (९) साहिः । (१०) सूरिम् । (११) पवित्रीकुर्वन्तु । (१२) चित्रशालाम् ॥१॥

ततः [1]कुकुद्मानिव [2]भूमिमानसौ, [3]तमित्यु[4]दीर्य [5]क्रमचर्यया[6]ऽचलत्[1] ।
सहा[7]ऽमुना सूरिरपि [8]व्यसीसृप-[9]द्बिडौजसा [10]सूरिरिवाऽमृतान्धसाम् ॥२॥

(१) मत्तवृषभ इव । (२) <u>अकब्बरः</u> । (३) सूरिम् । (४) कथयित्वा । (५) चरणचङ्क्रमणेन । (६) अग्रे प्रस्थितः । (७) साहिना सार्द्धम् । (८) गच्छति स्म । (९) इन्द्रेण । (१०) देवाचार्यः - बृहस्पतिः ॥२॥

[1]धरातुराषाट् शमिनां[2] शशी पुनः, [3]पथि [4]प्रयान्तौ [7]श्रयतः [5]परां [6]श्रियम् ।
[8]कथञ्चि[9]द्दुर्व्यामिव [10]केलिशालिनौ, [11]विभावरीवल्लभभानुमालिनौ ॥३॥

(१) पृथ्वीन्द्रः । "धरातुरासाहि मदर्थयाच्ञा" इति नैषधोक्तेः । (२) सूरीन्द्रः । (३) चित्रशालामार्गे । (४) चलन्तौ । (५) अनन्याम् । (६) शोभाम् । (७) लभेते । (८) केनापि प्रकारे[ण] कुतूहलादिना एकत्रमिलितौ । (९) भूमौ । (१०) क्रीडाभिः शोभनशीलौ । (११) चन्द्रसूर्यौ ॥३॥

[1]विभुज्य [2]कण्ठं [3]क्षितिपाकशासनो, दृशं [4]दिदेश [5]द्विरदद्विषन्निव ।
[6]तथास्थितानेष [7]गवेषयंस्त[8]तो-ऽनगारपारीन्द्रमुनी[9]न[10]जूहवत् ॥४॥

(१) चक्रीकृत्य-पश्चाद्वालयित्वा । (२) गलनालम् । (३) <u>अकब्बर</u>ः । (४) ददाति स्म । (५) सिंह इव । (६) यत्र मिलितास्तत्रैव स्थिताः । अथवा-ऊर्ध्वीभूयैव तिष्ठन्तः । (७) पश्यन् । (८) ततः-स्वयोरग्रे आगमनानन्तरम् । (९) सूरीन्द्रसाधून् । (१०) आकारयामास ॥४॥

[1]सुरैरिवेन्द्रः [2]कलभैरिव [3]द्विपो, [4]ग्रहैरिवा[5]ऽर्कश्च [7]शशीव [6]तारकैः ।
[8]अदिद्युत[9]द्वर्त्मनि [10]सूरिवासवो-ऽनुगम्यमानो [11]मुनिपुङ्गवैस्त[12]तः ॥५॥

---

1. चरत् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) समं देवैः । (२) त्रिंशद्वर्षदेश्यैः करिभिः । (३) षष्ठिहायनयूथेश इव । (४) भौममुखैः । (५) सूर्यः । (६) ताराभिः । (७) चन्द्र इव । (८) दीप्यते स्म । (९) तन्मार्गे । (१०) सूरीन्द्रः । (११) गीतार्थैः । (१२) साहिना तेषामाकारणानन्तरम् ॥५॥

[१]अथाऽधिरु[२]ह्योर्ध्वधरां [३]स [४]किंचना-[५]त्मना [६]न्यगादीत्पृथिवीपुरन्दरः ।
[७]दुलीचकाख्यास्तरणं [८]व्रतीश्वराः, [९]पुनन्तु भूपीठमिव [१०]क्रमाम्बुजैः ॥६॥

(१) साधूनां सूरिसन्निधानां गमनानन्तरम् । (२) अध्यास्य । सोपानत्रिकेण कृत्वा उच्चैर्भूमीमाश्रित्य । (३) नृपतिः । (४) स्तोकमात्रां सोपानत्रयमयीमुच्चैः । (५) स्वेन । (६) जगाद । (७) लोकप्रसिद्धानां राज्ञामुपवेशनयोग्यानां विचित्ररचनाभाजां ऊर्णायुमयानां 'दुलीचा' इति नाम्नां प्रस्तरणम्-भूमेराच्छादनम् । (८) सूरयः । (९) पवित्रयन्तु । (१०) चरणकमलैः ॥६॥

[१]गुरु[२]र्जगादेति [३]कदाऽपि कीटिका, भवे[४]दधो[६]ऽस्मिन्न [५]पदं [७]ददे [८]ततः ।
[९]नृपोऽभ्यधादत्र[१०] न [११]कश्चना[१२]ऽसुमान्, भवेत्[१३]सुराणामिव मन्दिरे [१४]नरः ॥७॥

(१) सूरिः । (२) उवाच । (३) दैवयोगात् । (४) प्रस्तरणस्य तले । (५) दुलीचकोपरि चरणम् । (६) चक्षुरदृष्टभूमौ । (७) न ददामि । (८) सूरिकथनानन्तरम् । (९) बभाषे । (१०) दुलीचकाच्छादितायां भूमौ । (११) कोऽपि (१२) जीवः । (१३) देवगृहे । (१४) मनुजः ॥७॥

गुरुर्जगा[१]वाचरणं [२]तथाऽप्ये[३]दः, [४]पदं [५]निभाल्यैव [६]ददे [७]परत्र नो ।
यतः [८]स्वकीयाचरणं [९]मुमुक्षुणा, [१०]प्रयत्नतो [११]रक्ष्यम[१२]मर्त्यरत्नवत् ॥८॥

(१) आचारः । (२) जीवाभावे सत्यपि । (३) एतत् । (४) चरणम् । (५) अग्रे युगप्रमाणां भूमीं विलोक्यैव । (६) स्थापयामि । (७) अनवलोकितस्थाने । (५) निजाचारः । (९) संसारकारागारान्मोक्तुकामेन । (१०) प्रमादविघ्नादीनां निराकरणात् । (११) परिपालनीयम् । (१२) चिन्तामणिमिव ॥८॥

[१]ततः स यावत्कुरुते [२]त[३]दुच्चकै-[४]र्बभूव तावत्प्र[४]कटैव कीटिका ।
[५]व्रतिप्रभोर्[६]प्रतिमां [७]कृपालुतां, पुरः[८] क्षितीन्दो[९]र्गदितुं किमा[१०]त्मना ॥९॥

(१) इति सूरिवाक्यानन्तरम् । (२) दुलीचकम् । (३) करे गृहीत्वा पश्चात्करोति । (४) दृग्गोचरा । (५) सूरीशितुः । (६) असाधारणाम् । (७) दयावत्ताम् । (८) राज्ञोऽग्रे । (९) कथयितुमिव । (१०) स्वेन ॥९॥

[१]ततः [२]क्षितौ [३]स्वस्य [४]यथैकरूपतां, गुरोस्त[५]थाऽद्वैतदयाधिनाथताम् ।
[६]अवेत्य चित्ते[७]ऽतिचमत्कृतिं दधन्, मुहुर्मुहुस्तं[८] [९]प्रशशंस [१०]भूमिमान् ॥१०॥

(१) कीटिकादर्शनानन्तरम् । (२) भूमौ । (३) आत्मनः । (४) येन प्रकारेण अन्यराजसु

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तादृक्स्फूर्तिमाहात्म्याभावात्स्वस्यैवाऽद्वैतत्वेनैकावनीपालत्वम् । (५) तेन प्रकारेण कृपाधिक्यम् । (६) ज्ञात्वा । (७) चमत्कारमाश्चर्यम् । (८) सूरिम् । (९) श्लाघते स्म । (१०) नृपतिः ॥१०॥

[1]कृपालुतां [2]वः किम[3]हो ! [4]महीयसी-[5]मुत [6]स्तुवे [7]स्वाचरणप्रवीणताम् ।
[8]पयोदवत्किं तु [9]परोपकारितां, [10]निरूपकं वा भवतां [11]शुचेः [12]पथः ॥११॥

(१) दयावत्ताम् । (२) युष्माकम् । (३) अहो इति सम्बोधने । सूरयः ! । (४) अतिमहताम् । (५) अथवा । (६) प्रशंसामि । (७) निजाचारं(र)शिक्षावत्ताम् । (८) मेघा इव । (९) परेषां जगज्जन्तूनामुपकारकर्त्तृत्वम् । (१०) कथयितारम् । (११) पवित्रस्य । (१२) मार्गस्य ॥११॥

[1]जगत्य[2]साधारणता [3]व्यतर्कि [4]वः, [5]क्षणाद[6]नेनाऽऽचरणेन [7]शासने ।
सुधाभुजां[8] भूमिरुहीव [9]कामित-प्रदातृभावेन [10]मुमुक्षुपुङ्गवाः ॥१२॥

(१) अस्मिन्विश्वे । (२) सर्वेभ्योऽपि दर्शनमार्गेभ्योऽद्वैतता । (३) विचारिता । (४) युष्माकम् । (५) स्वल्पेनाऽपि कालेन । (६) सर्वजन्तुपालनलक्षणेन । (७) जैनदर्शने । (८)कल्पवृक्षे । (९) वाञ्छितदायकत्वम्(त्वेन) । (१०) सूरयः ॥१२॥

[1]कथीपकस्याऽऽस्तरणं [2]ततः [3]कर-द्वयेन [4]दूरीकृतवान्[5]स्वयं नृपः ।
[6]मुनीन्द्रसङ्गादिव [7]पाप[8]मात्मनः, प्रभुः पुनाति स्म [9]पुनः [10]स [11]तां [12]क्षितिम् ॥१३॥

(१) 'कथीपा' इति नाम्नां वस्त्रविशेषाणां तत्राऽऽच्छादनम् । (२) प्रभुकृपालुताया ज्ञानानन्तरम् । (३) स्वपाणियुग्मेन । (४) उत्सार्य पश्चात्कृत्य(तः) । (५) तत्राऽन्यसेवका-भावादात्मनैव । (६) सूरिसङ्गात् । (७) दुरितम् । (८) स्वकीयम् । (९) तत्पश्चात्करणात्पुनः । (१०) सूरिरपि । (११) आस्तरणरहिताम् । (१२) भूमीम् ॥१३॥

[1]धरेशधामाधरिताद्रिसूदनो-पदीकृतास्थामिव चित्रशालिकाम् ।
विभूषयांचक्रतु[2]रुर्वरावरा-नगाररात्रीरमणौ क्रमेण तौ ॥१४॥

(१) अकब्बरेण स्वपराक्रमेण विजितेन शक्रेण ढौकिता स्वस्य सौधर्मा सभामिव । (२) अकब्बरसूरीन्द्रौ ॥१४॥

[1]अवग्रहं प्राप्य [2]महीहिमत्विषो, [3]निषेदुष[4]स्तत्र [5]यतिक्षितिक्षितः ।
[6]जलालदीनोऽपि पुरो[7]ऽभजद्ध्रुवं, [8]सुहस्तिनः [9]सम्प्रतिभूगभस्तिवत् ॥१५॥

(१) अनुज्ञाम्-भूपादेशम् । (२) नृपस्य । (३) उपविष्टस्य । (४) चित्रशालायाम् । (५) सूरीन्द्रस्य । (६) मुद्गलकुलप्रसिद्धं नामेदम् । (७) उपविष्टवान् । (८) आर्यसुहस्तिसूरेः । (९) सम्प्रतिनामभूपः ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]स [2]धर्मकिर्मीरितसङ्कथास्[3]वथो, [4]मिथः [5]प्रवृत्तासु [6]तमित्य[7]चीकथत् ।
[8]धराविधो ! बीजमिवाऽ[9]वनीरुहां, [10]वृषोऽस्त्य[11]पादानम[12]शेषसम्पदाम् ॥१६॥

(१) सूरिः । (२) धर्मकरम्बितमिश्रिता वार्त्तासु । (३) तत्रोपवेशनानन्तरम् । (४) सूरिभूपयोः परस्परम् । (५) वर्त्तमानासु । (६) नृपतिम् । (७) कथयति स्म । (८) राजन ! । (९) तरुणाम् । (१०) धर्मः । (११) मूलकारणम् । (१२) सर्वविभवानाम् ॥१६॥

[1]अनक्षिलक्ष्याऽपि [2]यथा[3]ऽनुमीयते, [4]पयोदवृष्टि[5]स्तटिनीपयःप्लवैः ।
[6]विचक्षणैश्चेतसि [7]तर्क्यते तथा, [8]विभूतिभिः [9]प्राक्सुकृतं [10]पचेलिमम् ॥१७॥

(१) न दृग्गोचराऽप्यदृष्टाऽपि । (२) येन प्रकारेण । (३) अनुमानविषयीक्रियते । (४) मेघवर्णम् । (५) नदीजलपूरैरागतैः । (६) पण्डितैः । (७) विचार्यते । (८) सम्पद्भिः । (९) पूर्वजन्माचीर्णं पुण्यम् । (१०) परिपाकं प्राप्योदयमागतम् ॥१७॥

[1]अभङ्गभोगाम्बुधिशम्बरीयतां, [2]धरेश ! धर्मेण विना [3]जनुष्मताम् ।
[4]अपार्थतामुद्वहते [5]परं [6]जनु-विना [7]फलौघैर्[8]वकेशिनामिव ॥१८॥

(१) अनवच्छिन्नां-सदैव वर्त्तमाना भोगा-विभववनितादीनां सुखास्वादास्त एव समुद्रस्तत्र मीनानामिवाऽऽचरताम् । "शम्बरो दानवान्तरे मत्स्यैणगिरिभेदेषु" इत्यनेकार्थः । (२) राजन् ! (३) जनानाम् । (४) निरर्थकत्वम् । अपगतोऽर्थः - प्रयोजनं यस्य तस्य भावस्तत्ताम् । "अर्थो हेतौ प्रयोजने । निवृत्तौ विषये वाच्ये प्रकारे द्रव्यवस्तुषु" इत्यनेकार्थः । (५) केवलम् । (६) जन्म । (७) सस्यसमूहैः । (८) फलवन्ध्यानां निष्फलद्रुमाणाम् ॥१८॥

[1]कुरङ्गनाभी[2]मपहाय भूषितुं, [3]स्ववर्ष्म गृह्णाति [4]निषद्वरं करे ।
[5]निकृत्य [6]गेहोपवने [7]प्ररोपितं, [8]सिताभ्रसालं [9]वपतेऽ[10]र्कपादपम् ॥१९॥

[1]अपास्य [2]पीयूषरसं [3]जिजीविषु-र्मुखा[4]दहीन्दोः [5]स्वदते [6]गरं पुनः ।
विमुच्य धर्मं नृप ! [7]सार्वकामिकं, [8]विमुग्धधीर्यो [9]विषये[10]ऽनुरज्यते ॥२०॥ युग्मम् ॥

(१) कस्तूरिकाम् । (२) त्यक्त्वा । (३) स्वशरीरम् । (४) पङ्कं कचवरकम् । (५) छित्वा । (६) गृहारामे समीपवाटिकायाम् । (७) उप्तम् । (८) कर्पूरवृक्षम् । (९) वापयति । वप्धातुरुभयपदी । (१०) अर्कतरुम् ॥१९॥

(१) त्यक्त्वा । (२) अमृतरसम् । (३) जीवितुमिच्छुः । (४) शेषनागस्य । (५) पिबति । (६) गरलम् । "सङ्गरं गरमिवाकलयन्ती"ति नैषधे । (७) सर्वान्कामान्करोति इति । "ऋतुं विधत्ते यदि सार्वकामिक" मिति नैषधे । (८) मूर्खः । अनभिज्ञमतिरज्ञानः । (९) भोगादौ । (१०) रक्तो भवति ॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]अनश्वरी श्री[२]र्युवता किमु [३]ध्रुवा, जरापि[४] जीर्णा [५]शमनः [६]शशाम किम् ।
[७]यदेष [1][८]जन्मी [९]विषयाभिलाषुको, [१०]दधाति धर्मे न मनो [११]मनागपि ॥२१॥

(१) शाश्वता । (२) यौवनम् । (३) नित्या । (४) वयोहानिं प्राप्ता । (५) यमः । (६) शान्तः मृतो वा । (७) यस्मात्कारणात् । (८) जनः । (९) भोगेषु लोलुपः । (१०) स्थापयति । (११) क्षणमात्रमपि ॥२१॥

[१]प्रसृत्वरः [२]शम्बरवैरिविक्रमो-[३]ऽचिरात्[४]सृजे[५]द्विक्रमिणो[६]ऽप्यविक्रमान् ।
[७]उदीयतेऽस्मादपि [९]राजयक्ष्मणा, [१०]तमोभरेणेव [११]तमस्विनीमुखात् ॥२२॥

(१) प्रसरणशीलः । लब्धावकाशः । (२) स्मरापस्मारः-मदनोन्मादः । (३) स्तोकेनैव कालेन । (४) कुर्यात् । (५) बलिनोऽपि । (६) अबलान् । (७) प्रकटयति । (८) कामातिरेकात् । (९) क्षयरोगेण । (१०) अन्धकारनिकरणे । (११) प्रदोषात्सन्ध्यासमयात् ॥२२॥

[१]मनोभुवा [२]मोहयमानमानसो, [३]महांहसां संहति[४]मात्मना[५]ऽऽचरन् ।
[६]लभेत कश्चिन्नवकेषु [७]कारणा-[८]मिहाऽपि [९]शूलामिव [१०]पारिपन्थिकः ॥२३॥

(१) कामेन शत्रुभूते[न]। (२) मोहं-मूर्च्छां सदसच्चिन्ताविवेचनविकलतां नीयमानं मनो यस्य । (३) प्रबलपापपटलम् । (४) स्वेन । (५) कुर्वन् । (६) प्राप्नुयात् । (७) तीव्रवेदनाम् । (८) अत्राऽपि जन्मनि । (९) रोगादिभिर्महतीं पीडाम् । (१०) तस्करः ॥२३॥

[१]दुरन्तदुःखाद्वि[२]षयात्तु [३]बिभ्यता, [४]विमुक्तसङ्गेन [५]कृपानषङ्गिना(णा) ।
[६]वशेव [७]सौभाग्यवता [८]स्वकामुकी-क्रियेत [९]केनाऽपि [१०]मरुद्गृहेन्दिरा ॥२४॥

(१) दुष्टावसानात् - प्रान्ते कठिनविपाकात् । (२) भोगात् । (३) भयं बिभ्रता । (४) त्यक्तपुत्रकलत्रादिसांसारिकानुषङ्गेन(ण) । संसारस्नेहेनेत्यर्थः । (५) सर्वजन्तुषु कृपावता । (६) वनिता । (७) सुभगत्वभाजा पुंसा । (७) "वृषस्यन्ती कामुकी स्यात्" स्वाभिलाषिणी । (९) पुण्यवता । (१०) स्वर्गलक्ष्मीः ॥२४॥

[१]क्रमा[२]दुपक्रम्य [३]समाधिना [४]भवी, [५]भवं[2] [६]पराभूय [७]स [८]शाम्भवं पदम् ।
[९]स्वलोहतां [१०]सिद्धरसेन [११]सन्त्यजन्, [१२]सुवर्णतां [१३]धातुरिव [१४]प्रपद्यते ॥२५॥

(१) परिपाट्या-स्वर्गे गत्वा नृभवं प्राप्य । (२) उपक्रमं कृत्वा-चारित्राद्याचर्य । (३) ध्यानयोगेन । (४) संसारी जीवः । (५) संसारम् । (६) त्यक्त्वा । (७) पूर्वोक्तो विषयविरक्तः । (८) मुक्तिपदम् । (९) आत्मनो लोहत्वम् । (१०) रसकूपिकाजलेन । (११) मुञ्चन् । (१२) स्वर्णत्वम् । (१३) धातुर्लोहनाम्ना । (१४) अङ्गीकरोति ॥२५॥

1. जन्तुर्वि० हीमु० । 2. भवं स मुञ्चन्भजते महोदयम् । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]अभाजि युष्माभिरिवा[२]ऽनुगामिभिः [३]महीमहेन्द्रः [४]परमेशिता [५]स कः[६] ।
[७]अवद्यवन्ध्यां [८]पदवीं [९]प्ररूपय-न्नृ[१०]पासनां [११]चाऽर्हति [१२]कीदृशो गुरुः ॥२६॥

[१]सुधाब्धिवद्यो ददते[२]ऽमृतं पुनः, स [३]किंविधो धर्म इदं [४]वदन्तु [५]मे ।
[६]महीमहेलादयितोदिता[७]मिमां, [८]गिरं [९]निपीय [१०]प्रभुरप्य[११]चीकथत् ॥२७॥ युग्मम् ॥

(१) सेवित आश्रितः । (२) सेवकैः । (३) राजा । (४) परमेश्वरः । (५) स -भवत्सेव्यः । (६) कः किंनामा कीदृशश्च । (७) पापरहिताम् । (८) मार्गम् । (९) कथयन् । (१०) सेवाम् । (११) योग्यो भवति । (१२) तत्त्वोपदेष्टा ॥२६॥

(१) क्षीरसमुद्र इव । (२) सुधां मोक्षं च । (३) कीदृक्प्रकारः । (४) कथयन्तु । (५) मम । (६) अकब्बरसाहिकथिताम् । (७) इमां तत्त्वत्रयीलक्षणाम् । (८) वाणीम् । (९) श्रुत्वा । (१०) सूरिः । (११) कथयति स्म ॥२७॥

[१]जगन्ति [२]यस्यां[३]ऽनुभवे[४]ऽनुबिम्बिता-मि[५]वाऽऽत्मदर्शे [६]दधते धरापते ! ।
जिगाय [७]वो(चा)[८]ऽष्टादशदोषविद्विषो, [९]नवद्वयद्वीपभुवो [१०]जयीव यः ॥२८॥

[१]तरङ्गिणीवेणिमुवो[२]ऽम्भसां प्रभु-र्न चा[३]ऽङ्कपालीं [४]नयते [५]नितम्बिनीम् ।
[६]क्वचित्पुन[७]र्यस्य न [८]नर्मनर्मदा-ह्रदावगाहे [९]द्विरदायितं [१०]हृदा ॥२९॥

बिभर्ति [१]हेतीर्न [२]तनूनपादिवा[३]ऽहितान्पुनर्यो न [४]हिनस्ति [५]हिंस्रवत् ।
[६]भवं [७]भिनत्ति स्म [८]करीव [९]पञ्जरं, दधाति देवः[१०] स [११]नमस्क्रियार्हतीम् ॥३०॥

त्रिभिर्विशेषकम् ॥

(१) त्रीणि भुवनानि । (२) परमेश्वरस्य । (३) ज्ञाने । (४) प्रतिबिम्बशीलताम् । (५) दर्पणे । (६) 'दधि धारण' इत्यस्य प्रयोगः । (७) पुनः । (८) रागद्वेषाद्यष्टादशदोषशत्रून् । (९) अष्टादशद्वीपभूमीः । अथ-"अष्टादशद्वीपनिखातयूप" इति रघौ । तथा- "नवद्वयद्वीपपृथग्जय-श्रिया" मिति नैषधे । (१०) जिष्णुनृप इव ॥२८॥

(१) नवप्रवाहम् । (२) समुद्रः । (३) आलिङ्गनम् । (४) प्रापयति । (५) कान्ताम् । (६) कुत्रापि स्थाने-रहसि । (७) परमेश्वरस्य । (८) क्रीडारूपाया रेवानद्या द्रहे । (९) गजवदाचरितम् । (१०) मनसा ॥२९॥

(१) प्रहरणानि शिखा च । (२) वह्निरिव । (३) वैरिणः । (४) मारयति । (५) घातुक इव । (६) संसारम् । (७) बिभेद । (८) हस्तीव । (९) काष्ठपञ्जरम् । "जय जोई मणकमल भसल भय पंजर कुंजर" इत्यभयदेवसूरिकृतस्तोत्रे । (१०) स देवः- परमेश्वरः । (११) नमस्कारस्य योग्यताम् । "उडुपरिषदः किं नार्हन्ती निशः किमनौचिती"ति नैषधे । अत्र नुम् विकल्पत्वेन रूपद्वयी अर्हन्ती अर्हती च ॥३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]परिग्रहं यो जल[२]मम्बुदाविलं, [३]मरालवन्मुञ्चति [४]सद्म सं[५]सृतेः ।
[६]प्रबोधशालीनिह यः प्ररोपयेत्, [७]कृपारसापूरित मानसावनौ ॥३१॥

[१]प्रवर्त्तको यः [२]सुगतेश्च [३]दुर्गते-[४]र्व्यनक्ति [५]मार्गौ रविवच्छुभाऽशुभौ ।
[६]भवात्त[७]रन्स्वे[८]न [९]परांश्च [१०]तारयं-[११]स्तरीव [१२]वार्द्धौ गुरु[१३]रीदृशः [१४]स्मृतः ॥३२॥ युग्मम्॥

(१) धनधान्यादिसङ्ग्रहम् । (२) मेघेन कृत्वा सजम्बालं जलम् । (३) हंस इव । (४) गृहम् (५) संसारस्य । (६) सम्यक्त्वरूपकलमान् । शालिः पुंसि । (७) कारुण्यामृतेन परिपूर्णीभूतचित्तक्षितौ । जलभृतभूमौ हि शालय उप्यन्ते ॥३१॥

(१) प्रवृत्तिकारकौ(कः) । (२) स्वर्गस्य । (३) नरकस्य च । (४) प्रकटीकरोति । (५) पन्थानौ । (६) संसारात् । (७) पारं गच्छन् । (८) आत्मना । (९) अन्यान्भव्यान् । (१०) पारं प्रापयन् । (११) नौरिव । (१२) समुद्रे । (१३) ईदृग्लक्षणो गुरुः । (१४) शास्त्रे प्रोक्तः ॥३२॥

[१]जिनास्यपद्मे [२]मकरन्दविभ्रमं, [३]दधद्द्वि[४]पत्पूषसुताप्रलम्बभित् ।
[५]महोदयस्वर्गितरोरिवा[६]ऽङ्कुरः, [७]कृपापयोराशितमस्विनीपतिः ॥३३॥

[१]नरोरगस्वर्गृहसार्वभौमता-दिमेन्दिरा यस्य [२]वशंवदाः सदा ।
पुन[३]र्विधातेव [४]भवान्तकारकः, क्षितीन्द्र ! [५]धर्मः पुन[६]रीदृशः [७]श्रिये ॥३४॥ युग्मम्॥

(१) सर्वज्ञवदनकमले । (२) मकर[न्द]विलासम् । (३) सर्वज्ञैः प्रणीत इत्यर्थः । (४) आपद्रूपाया यमुनाया भेदने बलभद्रोपमः । (५) मोक्षकल्पवृक्षस्य । (६) प्ररोह इव । (७) करुणादयासमुद्रस्य वर्द्धने विधुः ॥३३॥

(१) नरेन्द्रता-ऽसुरेन्द्रता-सुरेन्द्रताप्रमुखश्रियः । (२) आयत्ताः । (३) विधिरिव । (४) भवस्य संसारस्य अन्तकारको-व्यापादयिता । (५) समस्तजगतां संसाराद्धारणाद्धर्मः । (६) एवंलक्षणः । (७) मोक्षलक्ष्म्यै भवति ॥३४॥

[१]जनुष्मतां [२]शालिशया इवाऽऽत्मना-[३]ऽपुनर्भवोद्भावविधायिनोऽनिशम् ।
[४]त्रयोऽप्यमी सन्ति [५]समग्रमेदिनी-धवावतंसीकृतपादपङ्कज ! ॥३५॥

(१) जनानाम् । (२) शोभनशीला हस्ताः । (३) मोक्षप्रकटीभा[व]करणशीलाः । नखप्रकटनकारिणः । (४) देवगुरुधर्माः । (५) सकलभूपालैः शेखरीकृतचरणकमल ! ॥३५॥

[१]शिवस्त्रि[२]नेत्रीमिव [३]भूमिमानिव, [४]त्रिशक्ति [५]विद्यात्रितयीं [६]सुधीरिव ।
[७]अचालनीयां [८]सुरशैलवत्सुरै-स्त[९]दर्हदादित्रितयीमहं [१०]वहे ॥३६॥

(१) ईश्वरः । (२) नेत्रत्रयम् । (३) राजा । (४) प्रभुत्वोत्साहमन्त्रलक्षणां शक्तित्रयीम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) व्याकरणसाहित्यतर्कलक्षणां विद्यात्रयीम् । "भुवनवलिवह्निविद्यासन्ध्यागजवाजि (जाति)-शम्भुनेत्राणी"ति काव्यकल्पलतायाम् । (६) विद्वान् । (७) चालयितुमशक्याम् । (८) मेरुरिव । (९) तां पूर्वोक्तां जिन-गुरु-धर्मरूपां त्रयीम् । (१०) धारयामि ॥३६॥

[१]कति व्रतानीह [२]वहध्वमा[३]त्मना, परेण शक्यानि[४] न [५]वोढुम[६]द्रिवत् ।
इदं नृपे पृच्छति [७]भारती विभो-र्मुखारविन्दे मधुपी[८] बभूवुषी ॥३७॥

(१) कियत्सङ्ख्याकानि । (२) धारयत । (३) स्वयम् । (४) असमर्थानि । (५) धारयितुम् । (६) गिरय इव । (७) वाणी । (८) भ्रमरीभूता । उवाचेत्यर्थः ॥३७॥

[१]वसुन्धराभोग इवा[२]ऽमराचला-न्[३]सुपर्वसालानिव [४]काञ्चनाचलः ।
अहं वहे पञ्चमहा[५]व्रतानमून्, [६]स्वविक्रमाधःकृतपाकशासन ! ॥३८॥

(१) भूमिविस्तार इव । (२) मेरुन् । (३) पञ्चकल्पवृक्षान् । (४) सुमेरुः । (५) व्रतशब्दः पुंनपुंसके । [1]"व्रतोपवीतौ पलितो वसन्त" इति लिङ्गानुशासने । (६) निजबल-तिरस्कृतशक्र ! ॥३८॥

क्षितीन्द्र ! [१]तेषामिदमा[२]दिमं व्रतं, [३]समन्तवो [४]मन्तुमुचोऽपि [५]जन्तवः ।
न [६]पञ्चतागोचरचारिणः क्वचि-त्त्रिधा क्रियन्ते [७]निजनन्दना इव ॥३९॥

(१) पञ्चमहाव्रतानां मध्ये । (२) प्रथमं व्रतम् । (३) सापराधाः । (४) निरपराधाश्च । (५) प्राणिनः । (६) मरणस्य विषये सञ्चरणशीलाः । नैव हन्यते । (७) स्वपुत्रा इव ॥३९॥

न [१]देव ! देवः [२]परमेशितुः [३]परः, [४]प्रतापवान्नाऽपि [५]पयोजिनीपतेः ।
[६]गुरुर्न मेरोर्न [2]मणिर्म[७]रुन्मणे-स्तथा न धर्मोऽस्ति [८]दयाविधेः परः ॥४०॥

(१) हे राजन् ! । देवशब्देन राजा भट्टारकादिरुच्यते । "देव ! त्वद्भुजदण्डदर्पगरि-मोद्गीर्णप्रतापानले"ति खण्डप्रशस्तौ । (२) परमेश्वरात् । (३) अन्यः । (४) तेजोवान् । (५) सूर्यात् । (६) महान् । (७) चिन्तारत्नात् । (८) कृपामयात् ॥४०॥

वदन्ति [१]वाचंयमपुङ्गवा[२]स्त्रिधा, [३]मृषा न [४]भाषामपि [५]जीवितव्यये ।
[६]इदं यदं[७]हःपटलीव [८]दुर्गते-[९]र्विमानताया [१०]अतिशायि [3][११]साधनम् ॥४१॥

(१) मुनिमुख्याः । (२) मनोवाक्कायैः । (३) असत्याम् । (४) वाणीम् । (५) प्राणत्यागेऽपि । (६) असत्यवाक् । (७) पापश्रेणिः । (८) नरकस्य । (९) अवगणनस्य । (१०) अद्वैतम् । (११) कारणम् ॥४१॥

---

1. "व्रतोपवीतौ पलिलिन्तौ वसन्त" इति हीमु० । 2. ०र्न मरुन्मणेर्मणिस्तथा हीमु० । 3. कारणम् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]यशः सुधांशोर्[२]पिधायिका [३]कुहू-रिवा[४]ऽदशालोलदृशः [५]प्रियासखी ।
[६]समूहनी[७]वारजसामिवा[८]ऽङ्गिनां, [९]गुणावलीनाम[१०]नृता हि [११]भारती ॥४२॥

(१) यशश्चन्द्रस्य । (२) आच्छादयित्री । "व्रजति कुमुदे मोदं दृष्ट्वा दृशोरपिधायके"-ति नैषधे । (३) अमावास्येव । अत्र इवशब्दो लालाघण्टान्यायेनोभयत्र योज्यते । (४) दुर्दशास्त्रियः । (५) इष्टवयसीव । (६) सन्मार्जनी । "सारवणी"ति लोकप्रसिद्धा । (७) धूलीनां कचवरकाणाम् । (८) प्राणिनाम् । (९) गुणानाम् । (१०) असत्या । (११) वाणी ॥४२॥

[१]तृणादि नो[२]पाददते च किञ्चना-[३]ऽप्यदीयमानं मुनयो [४]महीमणे ! ।
पदं [५]किला[६]ऽविश्वसितेरिवै[७]कदृक्-तते[८]ररिष्टः [९]पृथिवीपुरन्दर ! ॥४३॥

(१) दन्तशोधनमात्रमपि । (२) न गृह्णन्ति । (३) अनर्घ्यमाणम् । (४) भूमिरत्नस्थानम्-(न!) । (५) निश्चितं श्रूयते वा अस्माकं तत्कारणाभावाल्लोक एवाऽऽकर्ण्यते । (६) अविश्वासस्य । (७) काककुटुम्बस्य । (८) लिम्बः । "लिम्बोऽरिष्टः पिचुमन्द" इति हैम्याम् । (९) भूशक्र ! ॥४३॥

[१]अदत्तमा[२]दत्त न यस्त्रि[३]धाऽपि तं, [४]वृणोति विद्येव [५]विनीतमि[६]न्दिरा ।
मृगी मृ[७]गेन्द्रादिव दुर्गतिस्ततः, प्रयाति दूरा[८]दवनीनभोमणे ! ॥४४॥

(१) अनर्पितम् । (२) जग्राह । (३) त्रिकरणेन । (४) चरति । (५) विनयवन्तम् । (६) लक्ष्मीः । (७) सिंहात् । (८) भूमिभानो ! ॥४४॥

[१]पराङ्मुखीस्याद्वि[२]षयाँ[४]इ(द्व)तिव्रजो, [३]निकुञ्जवासीव [५]तदेकभूमिषु ।
[६]क्षमाधरो येन [७]महोदयंगमी, [८]वशास्व[९]नीतिष्विव [१०]कोऽ[११]नुरज्यते ॥४५॥

(१) विरक्तः-निवृत्तः । (२) भोगात् देशाच्च । (३) वनवासीव । (४) मुनिगणः । (५) विषयाना(णा)मद्वैतवासगृहासु । (६) क्षान्तेर्भूमेश्च धारकः । (७) मोक्षं महाभ्युदयं च गमिष्यतीत्येवंशीलः । (८) स्त्रीषु । (९) अन्यायेष्विव । (१०) पुमान् । (११) अनुरक्तीस्यात् ॥४५॥

[१]यतः स [२]शूरः [३]सुदृशां भ्रुवं[४] धनुः, [५]कटाक्षबाणान्क[६]बरीकृपाणभृत् ।
[७]नितम्बचक्रं [८]भुजपाश[९]यामलीं, पुनर्वहन्येन जितः [१०]स्मरप्रभुः ॥४६॥

(१) यस्मात्कारणात् । (२) सुभटः । (२) स्त्रीणाम् । (४) भ्रूरूपं कोदण्डम् । (५) कटाक्षरूपान्शरान् । (६) वेणीखड्गधरः । (७) आरोहरूपं रथाङ्गम् । (८) बाहुरूपां पाशद्वयीम् । (९) धारयन् । (१०) स्मरराजः ॥४६॥

---

1. ०शमुत्कटं हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स [1]भद्रवांस्त्रैणकुचाचलान्तिक-प्ररूढरोमावलिसालगह्वरे ।
न [3]दस्युवद्यस्य [4]मनोभुवा [5]शम-श्रियो [6]ह्रियन्ते [7]शिवमार्गगामिनः ॥४७॥

(१) कुशली । (२) युवतीगणस्तनगिरिद्वयसमीपप्रोद्भूतलोमलेखारूपानां(णां) तरूणां गहने । (३) तस्करेणेव । (४) कामेन । (५) उपशमविभवाः । (६) हृताः । (७) निरुपद्रवे मार्गे मोक्षाध्वनि वा गमनशीलस्य ॥४७॥

[1]यशस्त्रियामादयिते [2]कलङ्कति, [3]द्विपेन्द्रति [4]क्षीरधिसूनुवीरुधि ।
[5]शमारविन्दे [6]तुहिनोदवृन्दति, [7]व्रताम्बुवाहेष्वपि [8]गन्धवाहति ॥४८॥
[1]निदाघति [2]व्रीडवहापयःप्लवे, [3]महत्त्वगोत्रे च [4]सहस्रनेत्रति ।
[5]गुणद्रुमद्रोणिषु [6]मन्त्रजिह्वति, [7]क्षितीश ! [8]शीलं पुरुषेण खण्डितम् ॥४९॥ युग्मम् ॥

(१) यशोरूपे चन्द्रे । (२) लाञ्छनमिवाऽऽचरति । यशो मलिनं करोतीत्यर्थः । (३) गजराज इवाऽऽचरति । (४) लक्ष्मीलतायाम् । (५) उपशमकमले । (६) हिमजलकणगण इवाऽऽचरति । (६) नियममेघेषु । (७) प्रबलप्रभञ्जन इवाऽऽचरति ॥४८॥

(१) उष्णाकाल इवाऽऽचरति । (२) लज्जारूपनदीपानीयपूरे । व्रीडशब्दोऽकारान्तोऽप्यस्ति । "व्रीडनं व्रीडा चित्तसङ्कोचः व्रीडोऽपि" इति हैम्याम् । तथा- "त्वयि स्मरव्रीडसमस्ययानया" इति नैषधे । (३) माहात्म्यरूपे शैले । (४) इन्द्र इवाऽऽचरति । (५) गुणा एव तरवस्तेषां श्रेणिषु । (६) वह्निरिवाऽऽचरति । (७) राजन् ! । (८) ब्रह्मचर्यम् ॥४९॥

[1]कृतप्रदोषा [2]पितृसूरिवा[3]ऽशनि-[4]श्चला [5]वनीवन्[6]मदनावगाहिनी ।
अहे[7]र्महेलेव च [8]जिह्मगामिनी, वधूः[9] पयोधेरिव [10]निम्नगामिनी ॥५०॥
जलै[1]र्वहाया इव मे[2]घमालिका, [3]विवर्द्धिनी [4]वा [5]भवपद्धते[6]रघैः ।
मनः [7]शमाद्वैतसुखानुषङ्गिनां(णां), [8]वशीकरोतीश ! वशा न[9] योगि[10]नाम् ॥५१॥
युग्मम् ॥

(१) कृताः प्रकर्षेण दम्भादयो दोषा निशामुखं च यया । (२) सन्ध्येव । (३) विद्युदिव । अत्राऽपि इवशब्दो घण्टाला[ला]न्यायेनोभयत्राऽपि योज्यः । (४) चपला विद्युदभिधानं च । (५) काननमिव । "स्ववनीसम्प्रवदत्पिकापि का" इति नैषधे । (६) कामवाहिनी । मदनद्रुमाणां 'मींढुल' इति नाम्नामवगाहिनी-धारिणी । (७) भुजङ्गीव । (८) कुटिलं वक्रं गच्छतीत्येवं शीला । (९) नदीव । (१०) नीचैर्गमनशीला ॥५०॥

(१) नद्याः । (२) मेघश्रेणी । (३) विवर्द्धनशीला । (४) वा पुनरर्थे । (५) संसारमार्गस्य । (६) पापैः । (७) उपशान्ततया असाधारणसुखानामास्वादवताम् । (८) मोहयति । (९) स्वविलासैर्न । (१०) मनोवाक्काययोगभाजाम् ॥५१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]पुरस्सरास्तस्य सुरा [२]मरुद्गवी, गृहाङ्गणे [३]पाणितले [४]मरुन्मणिः ।
[५]पुरः [६]सुरद्रु[७]र्निकटे [८]मरुद्घटः, [९]स्वयंवराः स्युर्भुवनत्रयीश्रियः ।।५२।।
[१]प्रदक्षिणो [२]दक्षिणवारिजः पुनः, [३]खलाः [४]सखायः [५]सविधे च [६]सेवधिः ।
न [७]चित्रकृच्चित्रलता च [८]सिद्धयः, करे[९]ऽदधद्यो[१०]ऽसिशिखोपमं [११]व्रतम् ।।५३।। युग्मम् ।।

(१) पदातयः । (२) कामधेनुः । (३) हस्ते । (४) चिन्तामणिः । (५) अग्रे । (६) कल्पद्रुमः । (७) पार्श्वे (८) कामकुम्भः । (९) आत्मना आगत्य त्रैलोक्यलक्ष्म्यस्तं वृण्वते ।।५२।।

(१) अनुकूलः । (२) दक्षिणावर्त्तशङ्खः । "कम्बुस्तु वारिजः" इति हैम्याम् । (३) दुर्जनाः । (४) मित्राणि भवन्ति । (५) पार्श्वे । (६) निधानम् । (७) प्राप्तेरभावाद्विस्मयकारिणी न । तस्य गृह एवोद्गच्छति । (८) अष्टावप्यणिमाद्याः सिद्धयस्तस्य हस्ते-मनोऽनुगामिन्यः । (९) धृतवान् । (१०) खड्गधारासदृशम् । (११) ब्रह्मव्रतम् ।।५३।।

[१]गजोऽप्य[२]जो [३]गोष्पद[४]मम्बुधिर्मृगो, [५]मृगाधिपः [६]स्त्रग्भु[७]जगस्त[८]मी दिनम् ।
[९]रणः [१०]क्षणश्री[११]ऽल्पगिरिर्म[१२]रुद्रिरि-स्त्रि[१३]धाऽपि यो [१४]ब्रह्म बिभर्त्ति भूपते ! ।।५४।।

(१) हस्ती । (२) छागः । (३) धेनुखरोत्खातभूमिस्थजलमिव । (४) समुद्रः । (५) सिंहः । (६) पुष्पमाला । (७) सर्पः । (८) रात्रिः । (९) सङ्ग्रामः । (१०) महोत्सव । (११) कर्करप्रायः । (१२) मेरुः । (१३) मनोवाक्कायैः । (१४) तुर्यव्रतम् ।।५४।।

परिग्रहः [१]संयमिनाऽ[२]पवादव-त्रिधाऽपि नाऽङ्गीक्रियते कदाचन ।
[३]तमस्त[४]मीनामुदयादिवो[५]रगा-द्वि[६]षं यतो [७]दोषभरः [८]परिस्फुरेत् ।।५५।।

(१) चारित्रवता । (२) निन्दा इव । अपयश इव । (३) अन्धकारम् । (४) रात्रेराविर्भावात् । (५) सर्पात् । (६) गरलम् । (७) निःशूकतानिर्दाक्षिण्यादिअ(द्य)पगुणगणः । (४) प्रकटीभवेत् ।।५५।।

[१]गिरीन्द्रमारोहति [२]लङ्घते[३]ऽम्बुधीन्, [५]प्रयाति [४]जन्यं [६]गहनं [७]विगाहते ।
[८]असूं[९]स्तृणानीव [१०]सृजेन्निजान्जन-स्त[११]दुल्लसल्लोभविजृम्भितं विभो ! ।।५६।।

(१) उच्चैः शैलम् । (२) तरति । (३) समुद्रान् । (४) सङ्ग्रामम् । (५) प्रविशति । (६) अरण्यम् । (७) भ्राम्यति । (८) प्राणान् । (९) तृणप्रायान् । (१०) कुर्यात् । (११) हृदयेऽतिवर्द्धनशीललोभलीलायितं सर्वम् ।।५६।।

[१]वहन्ति [२]पञ्च व्रतिनो महाव्रता-न्यमूनि [३]वक्त्राणि [४]मृगाङ्कमौलिवत् ।
भजन्ति [५]दन्तद्वितयीं गजा इवा[६]-ऽपरामि[७]मां देव ! पु[८]नर्व्रतद्वयीम् ।।५७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) धारयति(न्ति)। (२) पञ्चसङ्ख्याकानि। (३) मुखानि। (४) ईश्वर इव। "पञ्चमुखोऽष्टमूर्त्ति"रिति हैम्याम्। (५) दन्तकोशयुग्मम्। (६) अन्याम्। (७) अग्रे वक्ष्यमाणाम्। (८) महाव्रतोपरितनाम् ॥५७॥

[1]निशास(श)नं [2]नीतिजुषा [3]निषिध्यते, [4]परिप्लुतापानमिवाऽवनीपते !।
[5]निशाशनेभ्योऽपि [6]वरं [7]विहङ्गमा, [8]निशि [9]त्यजन्तो [10]यतिव[11]ज्जलाशने ॥५८॥

(१) रात्रिभोजनम्। (२) न्यायवता निष्ठावता वा। (३) त्यज्यते। (४) मदिरापानम्। "गन्धोत्तमाकल्पमिरापरिप्लुता" इति हैम्याम्। (५) रात्रिभोक्तृभ्यः। (६) साधवः। (७) पक्षिणः। (८) रात्रौ। (९) अभुञ्जतः। (१०) साधव इव। (११) पानीयान्ने ॥५८॥

[1]गवामधीशं [2]भुवनोपकारिणं, [3]महस्विनं [4]श्रीजिनपादसेविनम्।
[5]अवेत्य [6]मित्रं [7]विधुरं विधीयते-[8]ऽशनादि यत्सा [9]कथ[10]मौचिती सताम् ॥५९॥

(१) किरणानां भूमीनां वा धेनूनां वा स्वामिनम्-सूर्यं राजानं वा, कृष्णं वा-गोकुलवासित्वात्। (२) भुवनयोर्द्यावापृथिव्योरुद्योतकारकत्वादुपकारकर्त्तारम्। राजा तु पालनाद्भूमेरुपकारकः, कृष्णोऽपि दैत्योपद्रवनिवारकत्वेन सुखदायकत्वेन जागतामुपकर्त्ता च। (३) तेजोभाजं प्रतापिनमुत्सववन्तं च। "एनं महस्विनमुपैहि सदारुणोच्चै" रिति नैषधे। महस्-शब्दः सकारान्तोऽपि-महस्तेजउत्सवश्चेति तद्वृत्तिः। (४) श्रिया लक्ष्म्या शोभया वा युक्तो जिनः-कृष्णस्तीर्थङ्करश्च तस्य पादं-आकाशं चरणं च पदमंशं च - कृष्णस्यांऽशावतारित्वात्। तस्य सेवनशीलम्। (५) ज्ञात्वा। (६) सखायम् सूर्यं च। (७) कष्टभाजमस्तंगतम्। मृतमित्यर्थः। "दिष्टान्तोऽस्तं कालधर्म" इति हैमीवचनात्। सूर्यस्य वैधुर्यं तु अस्तादेव। (८) भोजनादि। (९) केन प्रकारेण। (१०) युक्तिमती ॥५९॥

कदापि [1]नैमित्त(त्ति)क[2]वत्तपस्विनो, [3]निमित्तमेते [4]ब्रुवते न किञ्चन।
यतश्च[5]रित्रेण [6]निमित्तभाषणा-[7]त्तमिस्रपक्षा[8]द्विधुनेव [9]हीयते ॥६०॥

(१) निमित्तज्ञा इव ज्यौतिषिका वा। (२) मुनयः। (३) ग्रहचाराङ्गस्फुरणशकुनस्वरादिकं निमित्तम्। (४) न भाषन्ते। (५) संयमेन। (६) ज्यौतिष्कादिकथनात्। (७) कृष्णपक्षात्। (८) चन्द्रेण। (९) क्षयं प्राप्यते ॥६०॥

[1]इति व्रता[2]न्सप्त बिभर्ति [3]संयत-व्रजः [4]शिवश्रीपरिरम्भलोलुपः।
[5]वसुन्धराभोग इवाऽम्भसां[6] प्रभून्, [7]शिखाः [8]शिखीव [9]द्युमणि[10]र्हयानिव ॥६१॥

(१) अमुना प्रकारेण। (२) सप्तसङ्ख्याकान्। (३) मुनिगणः। (४) मुक्ति-लक्ष्म्यालिङ्गनलालसः। (५) पृथ्वीविस्तारः। (६) सप्त समुद्रान्। (७) ज्वालाः। (८) वह्निः। (९) सूर्यः। (१०) सप्ताश्वान् ॥६१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]पुरातनै[2]राचरितानि [3]सूरिभि-र्यथा तथा [4]धर्त्तुमहं न [5]तान्यलम् ।
[6]मतङ्गजप्रक्षरधारणक्षमा, [7]मतङ्गजा एव न [8]यत्तुरङ्गमाः ॥६२॥

(१) प्राचीनैः । (२) पालितानि । (३) आचार्यैः । (४) धारयितुम् । (५) न समर्थः । अतिदुष्करतया व्रतानाम् । (६) गजानां प्रक्षराणां 'पाखर' इति प्रसिद्धानां उद्वहने समर्थाः । (७) गजा एव । (८) परं स्वयोग्यप्रक्षरधारणे समर्था अपि वाजिनः किं गजप्रक्षरं धारयन्ति ? । तथाऽहमपि पूर्वाचार्यानुष्ठितमनुष्ठानं विधातुमसमर्थोऽपि देशकालानुरूपं मदुचितमनुष्ठानमाचरामीत्यर्थः ॥६२॥

[1]श्रुतोक्तयावद्विधिपालने यदा-[2]ऽप्यलं न किञ्चित्तु तथाऽपि [3]शक्तितः ।
[4]विधिं [5]बिभर्म्येष तरेन्न [6]तारको, [7]नदीमपी[8]श[9]स्तरणे[10]ऽम्बुधेर्न यः ॥६३॥

(१) शास्त्रोक्तसर्वविधिपालने । (२) न प्रभुः । (३) स्वसामर्थ्यात् । (४) आचारम् । (५) धारयामि । (६) स्वकलया जलातिक्रमकः । (७) समुद्रापेक्षया स्वल्पजलां सरितम् । (८) समर्थः । (९) उल्लङ्घने । (१०) समुद्रस्य ॥६३॥

[1]इदं [2]निशम्य [3]प्रमदं दधन्नृपः, प्रणीय [4]गोष्ठी[5]मितरां च [6]तात्त्विकीम् ।
[7]परीक्षितुं [8]रत्नपरीक्षको मणी-मि[9]वेहमानः [1]पुनरि[10]त्य[11]वग्[12]विभुः ॥६४॥

(१) पूर्वोक्तम् । (२) श्रुत्वा । (३) हर्षं कृत्वा । (४) सङ्कथाम् । (५) अन्याम्-एतस्या वार्त्तायाः पृथग्विर्त्तिनीम् । (६) धर्मतत्त्वसम्बन्धिनीम् । (७) परीक्षां कर्त्तुम् । (८) मणिपरीक्षाकारक इव । (९) वाञ्छन् । (१०) इत्यग्रे वक्ष्यमाणम् । (११) उवाच । (१२) नृपः ॥६४॥

[1]पुरे[2]ऽनयीवा[3]ऽवनिमा[4]नुपेयिवान्, य एष [5]मीने तरणे[6]स्तनूरुहः ।
स [7]मत्सरीवा[8]ऽपकरिष्यति प्रभो !, क्षितेः[9] पती[10]नामुत [11]नीवृतां किमु ॥६५॥

(१) नगरे । (२) अन्यायीव । (३) नृपः । (४) आगतः । (५) मीनराशौ । (६) शनैश्चरः । (७) दुर्जन इव । (८) दुष्टं विधास्यति । (९) राज्ञाम् । (१०) अथवा । (११) देशजनानाम् ॥६५॥

गुरु[1]र्जगौ [2]ज्यौतिषिका [3]विदन्त्य[4]दो, न [5]धार्मिका[6]दन्य[7]दवैमि [6]वाङ्मयात् ।
यतः [8]प्रवृत्ति[9]र्गृहमेधिना[10]मियं, न [11]मुक्तिमार्गे [12]पथिकीबभूवुषाम् ॥६६॥

(१) सूरिरुवाच । (२) ज्योतिःशास्त्रविदः । (३) जानन्ति । (४) एतद्ग्रहज्ञानम् । (५) धर्मसम्बन्धिशास्त्रात् । (६) अपरम् । (७) न जानामि । (८) व्यापारम्-आजीविकाहेतुतया । (९) गृहस्थानाम् । (१०) ग्रहादीनां शुभाशुभपरिणतिकथनम् । (११) मोक्षाध्वनि । (१२) प्रवृत्तानाम् ॥६६॥

1. पुनरित्यवोचत हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]निपीय स [2]श्रोत्रपुटैः [3]सुधाशनः, सुधां [4]सुधांशोरिव तां [5]प्रभोर्गिरम् ।
पुन[6]र्महीमण्डलमत्स्यलाञ्छन-श्चकार [1]वाचं [7]वच(द)नानुषङ्गिनीम्(णीम्) ॥६७॥

(१) सादरं श्रुत्वा पीत्वा च । (२) कर्णरूपपत्रपुटकैः । (३) देवः । (४) चन्द्रस्य । (५) सूरेः । (६) रमणीयत्वेन महीतलस्य स्मरः । "निषधवसुधामीनाङ्कस्य प्रियाङ्कमुपेयुष" इति नैषधे । (७) मुखसङ्गाम् । उवाचेत्यर्थः ॥६७॥

[1]द्युतामिवा[2]ऽर्काः [3]पयसामिवा[4]ऽर्णवा, यतः [5]श्रुतीनां [6]निधयः स्थ[7] सूरयः ।
[8]इदं न जानीथ [9]ततः कथं भवे[10]-दगोचरः कश्चन [11]सर्वविच्चिदाम् ॥६८॥

(१) किरणानाम् । (२) सूर्याः । (३) जलानाम् । (४) समुद्राः । (५) शास्त्राणाम् । (६) निधानानि । (७) वर्त्तध्वे । (८) मयोक्तम् - शनेर्मीनराशावागमनफलम् । (९) तस्मात्कारणात् । (१०) अविषयः - अप्रवेशः । (११) सर्वज्ञज्ञानानां महत्त्वापेक्षया बहुत्वम्, अथवा [मति]श्रुतावधिमनःपर्यवकेवलाभिधानां बहूनां ज्ञानानामित्यपेक्षया च बहुत्वम् ॥६८॥

[1]प्रवृत्त्य वा[2]र्त्तास्वितरासु [4]तत्फलं, [3]पुनः पुनः [5]प्रश्नयति स्म [6]भूधनः ।
यदा [7]तदास्यादपरं न[8] धर्मतः, [9]शशाङ्कबिम्बा[10]दमृतादिवो[11]दगात् ॥६९॥

(१) प्रवृत्तिं कृत्वा । (२) अन्यकिंवदन्तीषु । (३) व्याघुट्य वारं वारम् । (४) मीनराशिगतशनिफलम् । (५) पृच्छति स्म । (६) साहिः । (७) सूरिवक्त्रात् । (८) धर्मादन्यत् । (९) चन्द्रमण्डलात् । (१०) सुधाया ऋते । (११) प्रकटीभूतम् ॥६९॥

[1]तदा [2]मुदो[3]र्वीवलयोर्वशीवशो, विधाय [4]शेखं [5]स्व[स]वेशदेशगम् ।
स [6]बन्दिवृन्दारकवत्[7]प्रणीतवान्, [8]पुरोऽस्य [9]सद्भूतगुणस्तुतिं गुरोः ॥७०॥

(१) तस्मिन्नवसरे । (२) हर्षेण । (३) भूमण्डलस्य पुरूरवाश्चक्रवर्त्ती । "तमेनमुर्वीवलयोर्वशीवश"मिति नैषधे । (४) अबलफइजनामानं शेखम्-तुरुष्कजातिगुरुप्रायम् । (५) स्वसमीपभूमिभाजम् । (६) प्रकृष्टमङ्गलपाठक इव । (७) कुरुते स्म । (८) शेखस्याऽग्रे । (९) स्वदृग्गोचरीकृतविद्यमानगुणानां वर्णनम् ॥७०॥

मया [1]विशेषा[2]त्परदर्शनस्पृशो, [3]गवेषिताः शेख ! न [4]तेषु [5]कश्चन ।
[6]व्यलोकि [7]वाचंयमचक्रिणः सदृग्, मृगेषु कोऽप्यस्ति [8]मृगेन्द्रसन्निभः ॥७१॥

(१) विशेषात्-तत्तत्स्वप्रतिभाप्रागल्भ्यप्रकल्पितानल्पप्रश्ननिवहनिर्वाहकरणाप्रावीण्यप्रगुणितमन्दाक्षविलक्षीभवनपरिज्ञानात् । (२) अन्यदर्शनिनः । (३) दृग्गोचरीकृताः । (४) परदर्शनेषु । (५) कोऽपि । (६) दृष्टः । (७) हीरसूरिसमः । (८) सिंहतुल्यः ॥७१॥

1. वाणीं हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]स्ववासयोग्यां वसतिं न [2]कुत्रचि-न्[3]निरीक्षमाणै[4]रवसादिभिर्गुणैः ।
[5]स्वयंभुवा[6]ऽभ्यर्थ्य [7]निवस्तुमात्मनां, म[8]णिर्मुनीनां कि[9]मकारि [10]मन्दिरम् ॥७२॥

(१) आत्मनां स्थितेरुचिताम् । (२) कस्मिन्नपि स्थाने । (३) पश्यद्भिः । (४) खेदमेदुरैः । (५) ब्रह्मणा कर्त्रा । (६) याचनां कृत्वा । (७) वासं विधातुम् । (८) सूरीन्द्रः । (९) कारितम् । (१०) गृहम् ॥७२॥

[1]असौ [2]मुहु[3]र्मीनभुजः [4]शनेः [5]फलं, मया[6]ऽनुयुक्तोऽपि न [7]किञ्चि[8]दूचिवान् ।
यतः क्वचि[9]द्भङ्गुरसङ्गरो [10]महान्, भवे[11]त्सुराणामचलोऽपि [12]चाचलिः ॥७३॥

(१) सूरिः । (२) वारंवारम् । (३) मीनराशिभोक्तुः । (४) शनैश्चरस्य । (५) लाभम् । (६) पृष्टोऽपि । (७) किमपि । (८) कथितवान् । (९) भजनशीलप्रतिज्ञः । इति काकूक्तिः । (१०) महात्मा । (११) मेरुः । (१२) चलनशीलः । "चलि-पति-वदि-सहिभ्य इद्विचमिति चाचलिः सासहिरित्यादि पाणिन्याम् ॥७३॥

[1]यथा [2]सुधाब्धेरपरो न [3]वारिधि-र्न [4]सिद्धसिन्धोरपरा [5]तरङ्गिणी ।
न [6]पादपः कश्चन [7]कल्पपादपात्, परो[8] नृपः कोऽपि न [9]चक्रवर्त्तिनः ॥७४॥
न [1]धेनुरन्या सुरभेः[2] सुधाभुजां, पदं न चाऽन्यत्प[3]रमेष्ठिनः पदात् ।
परो न धर्मः [4]करुणाविधेर्यथा, तथाऽस्ति कश्चिन्न [5]वशी [6]विभोः परः ॥७५॥
युग्मम् ॥

(१) येन प्रकारेण । (२) क्षीरसमुद्रात् । (३) न समुद्रः । (४) गङ्गायाः । (५) नदी । (६) वृक्षः । (७) कल्पवृक्षात् । (८) अन्यो राजा । (९) सार्वभौमात् षट्खण्डपृथ्वीपतेः ॥७४॥

(१) गोः । (२) कामधेनोः । (३) मुक्तिपदात् । (४) कृपाकरणात् । (५) योगीन्द्रः । (६) सूरेरन्यः ॥७५॥

[1]श्रवःपथातिथ्य[2]मनायि [3]यादृशो, [4]वशी [5]दृशा [7]तादृश एव [6]दृश्यते ।
[8]इदंगुणौघान् [9]गणय[10]न्जगद्गिरा-[11]मगोचरान्कि [12]स्थविरोऽभवद्विधिः ॥७६॥

(१) कर्णमार्गातिथेयीं श्रवणमार्गस्य प्राघुणतां वा । (२) नीतः । (३) यादृक्प्रकारः । (४) पञ्चेन्द्रियाणि मनश्च वशेऽस्यास्तीति वशी-योगीन्द्रः । (५) नेत्रेण । (६) विलोक्यते । (७) तादृक्प्रकार एव । (८) अस्य गुरोर्गुणगणान् । (९) सङ्ख्यां नयन् । (१०) जगज्जन-वचनानाम् । (११) अविषयान् श्रोतुमशक्यान् । (१२) वृद्धः तन्नामा च जगत्कर्त्ता ॥७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]दधाति [२]धाता [३]गिरिशश्च [४]शक्तिभृ-[५]च्चर्मुखीं पञ्चमुखीं च षण्मुखीम् ।
[६]भुजङ्गराजोऽपि [७]सहस्रजिह्वतां, बिभर्त्ति [८]यं [९]स्तोतुमिवो[१०]त्सुकीभवन् ॥७७॥

(१) धरति । (२) ब्रह्मा । (३) ईश्वरः । (४) स्वामिकार्त्तिकः । (५) चतुर्णां मुखानां समाहारः चतुर्मुखतां पञ्चमुखतां षण्मुखतां चेत्यर्थः । (६) शेषनागोऽपि । (७) सहस्रसङ्ख्याका जिह्वा रसना यस्य तस्य भावस्तत्ताम् । (८) सूरीन्द्रम् । (९) वर्णयितुं यद्गुणान्स्तोतुकाम इव । (१०) उत्कण्ठतां कलयन् ॥७७॥

[१]कलिं [२]कृतीकर्तु[३]मयं [४]स्वयं [५]वपु-र्दधाति धर्मः किमिदं[६]निभाद्[७]भुवि ।
गुणा[८]न्निशम्ये[९]ति गुरोर्नृ[१०]पस्तुतां-श्च[११]मत्कृतः स [१२]स्वपदं मुदाऽऽगतः ॥७८॥

(१) कलिकालम् । (२) कृतयुगीकर्तुम् । (३) प्रत्यक्षलक्ष्यः । (४) आत्मना । (५) शरीरम् । (६) सूरिकपटतः । (७) भूमौ । (८) श्रुत्वा । (९) इत्यमुना प्रकारेण (१०) अकब्बरेण वर्णितान् । (११) चमत्कारं प्राप्तः । (१२) स्वस्थानम् ॥७८॥

[१]पिबन्मुनीन्द्रस्य [२]शमामृतं दृशा, [३]मुदश्रुदम्भेन [४]तदु[५]द्गिरन्निव ।
अकब्बरो [६]बब्बरवंशमौक्तिकं, पुनः [७]पुरस्त[८]स्य गिरं[९] गृहीतवान् ॥७९॥

(१) सादरं पश्यन् रसयंश्च । (२) उपशमसुधारसम् । (३) हर्षबाष्पकपटेन । (४) पीतममृतम् । (५) वमन्निवाऽतितृप्ततया । हृदयान्तरमान्तं बहिः प्रकटयन् । (६) बब्बरनामा-पातिसाहिरकब्बरपूर्वजस्तस्य वंशे-गोत्रे वेणौ च मौक्तिकं मुक्ताफलम् । "समुद्रस्ताम्रपर्णी च वंशः करिशिरस्तथा । उद्भवो मौक्तिकानां स्यात् प्रायोऽमीषु परत्र न ॥" इति वचनप्रामाण्यतः । (७) अग्रे । (८) सूरेः । (९) बभाषे ॥७९॥

[१]स्फुरन्ति शिष्याः [२]कति [३]वो व्रतीश्वरा-श्च[४]रित्रदुग्धाम्बुधिनन्दना वराः ।
[५]इभप्रभूणां [६]कलभा इवा[७]ऽवनी-रुहां [८]सुमानीव [९]करा [१०]विवस्वताम् ॥८०॥

(१) विद्यन्ते । (२) कियत्सङ्ख्याकाः । (३) युष्माकम् । (४) संयमश्रीकान्ताः । सोऽयमित्थमथ भीमनन्दनाम्" इति नैषधे । (५) यूथनाथानाम् । महत्वाद्बहुत्वम् । (६) गजकिशोरकाः । (७) तरूणाम् । (८) पुष्पाणि । (९) किरणाः । (१०) सूर्याना(णा)म् ॥८०॥

नृपं प्रति [१]व्याहृतवानिति [२]व्रती-शिता [३]कियन्तो मम [४]सन्ति [५]भूपते ! ।
[६]इदं [७]मुनीन्द्राननपद्मसम्भवं, स [८]भृङ्गवद्वाङ्[९]मकरन्दमापपौ ॥८१॥

(१) उक्तवान् । (२) सूरिः । (३) कतिचित् । (४) वर्त्तन्ते । (५) साहे ! । (६) शिष्यसङ्ख्याकथनारूपं स्वमदपरिहारकम् । (७) सूरिमुखकमलोद्गतं वचनरसम् । (८) भ्रमर इव । (९) आतृप्ति सामस्त्येन श्रुतवान् ॥८१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]जगाद [२]गाजी [३]गणपुङ्गवं पुनः, [४]पुरा मयेति [५]श्रुतिगोचरीकृतम् ।
[६]विलोचनानामिव भोगिनां[७] विभोः, [८]सहस्रयुग्मं [९]शमिनां समस्ति [१०]वः ॥८२॥

(१) बभाषे । (२) मुद्गलजनपदप्रसिद्धं महत्त्वख्यापकमभिधानं 'गाजी'ति । (३) सूरिम् । (५) पूर्वम् । (५) श्रुतमास्ते । (६) नयनानाम् । (७) शेषनागस्य । (८) द्विसहस्त्री । (९) मुनीनाम् । (१०) युष्माकम् ॥८२॥

[1][१]ततः [२]क्षितीन्द्रो [३]व्रतिनां [४]व्रतीश्वरं, [५]समीपभाजाम[६]भिधाः स्म पृच्छति ।
[७]परस्परं [८]तस्य पुरस्त[९] एव [१०]ता, [११]महामणीनामिव [१२]तद्विदो[१३]ऽवदन् ॥८३॥

(१) तत्कथनानन्तरम् । (२) नृपः । (३) सूरिसार्द्धसमेतसाधूनाम् । (४) सूरिं प्रति । (५) प्रभुपार्श्वस्थायुकानाम् । (६) नामानि (७) अन्योऽन्यम् । (८) राज्ञोऽग्रे । (९) गीतार्था एव । (१०) अभिधानानि । (११) महर्घ्यरत्नानाम् । (१२) रत्नपरीक्षकाः । (१३) अकथयन् ॥८३॥

[१]गृहा[२]दथाऽऽ[३]नायितम[४]ङ्गजन्मना, [५]स [६]खानखानेन च मुक्त[७]मग्रतः ।
[८]महीमरुत्वान्प्र[९]मदादि[१०]वोपदां, [११]मुनीशितु[१२]र्ढौकयति स्म पुस्तकम् ॥८४॥

(१) स्वमन्दिरमध्यात् । (२) नामप्रश्नानन्तरम् । (३) 'अणाव्युं' इति प्रसिद्धम्-आनायितम् । (४) शेखूजीनाम्ना वृद्धपुत्रेण । (५) अकब्बरः । (६) मीयांखानेन । 'खानखाना' इति दत्तबिरुदेन । (७) आनीयाऽग्रे स्थापितम् । (८) भूमीन्द्रः । (९) हर्षात् । (१०) ढौकनम् । (११) सूरेः । (१२) प्रभृतीकरोति स्म पुस्तकम् ॥८४॥

[१]ततस्त[२]दु[३]न्मुद्र्य पुरो [४]धराविधो-[५]रवाचि [६]वाचंयमपुङ्गवैः प्रभोः ।
[७]रहस्यमे[८]तस्य [९]पुरो [१०]न्यगादि तै-[११]रमुष्य [१२]सख्युः [2][१३]सुहृदेव [१४]चेतसः ॥८५॥

(१) आनयनानन्तरम् । (२) पुस्तकम् । (३) पुस्तिकाश्छोटयित्वा । (४) अकब्बरस्याऽग्रे । (५) वाचितम् । (६) गीतार्थैः । (७) इदं पुस्तकमिदंनामाऽत्र एतद्वाच्यमित्यादि हार्दम् । (८) साहेः । (९) पुरः । (१०) कथितम् । (११) पुस्तकस्य । (१२) मित्रस्य । (१३) मित्रेण । (१४) स्वमानसहार्दं प्रोच्यते ॥८५॥

[१]उदीतमङ्गैरिह [२]रुद्रविग्रहै-रिवाऽ[३]स्तपुष्पध्वजकालकेलिभिः ।
पुनस्त[४]मस्तोमभिदा विदांवरैः, परैरुपाङ्गैरिव [५]पद्मिनीवरैः ॥८६॥[3]

(१) उदीतं प्रकटीभूतम् । "उदीतमातङ्कितवानशङ्कते" ति नैषधे । (२) रुद्रा एकादश

1. ततः क्षितीन्द्रः इतः परं हीमु० पुस्तके एषः श्लोको अपूर्णोऽस्ति । 2. सखिवत्स्वचेतसः हीमु० । 3. अतः परं हीमु० अन्तर्गतौ ८७-८८ तमश्लोकौ हीसुंप्रतौ न स्तः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषां देहैरिव । (३) क्षिप्तो निहतः कामः कालः कलिकालश्च दैत्यश्च तयोर्विलासो यैः । (४) अन्धकारनिकरनिर्भेदनाभिज्ञैः । (५) सूर्यैः ॥८६॥

[1]अलङ्कृतिज्यौतिषकाव्यनाटक-प्रमाणवेदान्तसलक्षणागमान् ।
[2]अदर्शयन्[3]साधुसुधांशुसाधवो, नृपस्य [4]भावानिव [5]भानुभानवः ॥८७॥

(१) वाग्भट्टालङ्कारादयः नारचन्द्रभुवनदीपकादयश्च । "सारमुद्ध्रियते किञ्चिज्ज्योतिषक्षीरनीरधे" रिति वचनात् । काव्यानि-रघुनैषधादीनि, नाटकानि-हनूमद्दूताङ्गदनाटकादीनि, प्रमाणानि-तर्कभाषादीनि वेदान्तः स्यादुपनिषद्वेदवृत्तयः । हैमपाणिन्यादिव्याकरणयुक्ता आगमा-आचाराङ्गादयस्तान् । (२) नामग्राहं दर्शयन्ति स्म । (३) सूरीन्द्रमुनयः । (४) पदार्थान् । (५) सूर्यकिरणाः ॥८७॥

[1]निभाल्य [2]निःशेष[3]मिदं [4]स्वचक्षुषा, [5]हृदा दधत्प्री[6]तिमि[7]वेन्दिरात्मजः ।
[8]बभाण [9]भूमीद्युमणिर्[10]गणीश्वरं, [11]तृणीकृतानेकनरेन्द्रविक्रमः ॥८८॥

(१) दृष्ट्वा । (२) समस्तम् । (३) पुस्तकम् । (४) निजनयनेन । (५) मनसा वक्षःस्थलेन च । (६) हर्षं कान्तां च । (७) स्मरः । (८) बभाषे । (९) नृपः । (१०) सूरीन्द्रम् । (११) पराभूताशेषराजवीर्यः ॥८८॥

[1]पुराभवत्[2]प्रीतिपदं [3]वयस्यव-[4]द्विशारदेन्दुर्मम [5]पद्मसुन्दरः ।
न [6]येन [7]सेहे[8]ऽम्बुरुहामि[9]वाऽऽवलि-[10]र्हिमर्त्तुना [11]पण्डितराजगर्विता ॥८९॥

(१) पूर्वम् । (२) स्नेहस्थानम् । (३) मित्रमिव । (४) पण्डितप्रकाण्डम् । (५) पद्मसुन्दर इति नामा नागपुरीयतपापक्षः । (६) पद्मसुन्दरेण । (७) सोढा । (८) पद्मानाम् । (९) श्रेणिः । (१०) शीतऋतुना । (११) पण्डितराज इति नाम्नः वाराणसीतः समेतस्य स्वगुरुणाऽप्यजेयतां स्वस्य प्रख्यापयतो विप्रस्य गर्विता-स्वचित्तकल्पितानल्पाहङ्कारिता ॥८९॥

[1]जगाम स [2]स्वर्गिमृगीदृशां [3]दृशा-[5]मथा[4]ऽऽतिथेयीं [6]परिणामतो [7]विधेः ।
[8]मुहुर्मया[9]ऽशोचि [10]स [11]वातपातिता-जिरप्ररूढामरसालवद्विभो ! ॥९०॥

(१) गतः । (२) देवाङ्गनानाम् । (३) नयनानाम् । (४) अतिथिताम् । (५) अथ-कियता कालेन । (६) वशतः । (७) दैवस्य । (८) वारंवारम् । (९) शोचितः । (१०) पद्मसुन्दरपण्डितः । (११) पवनेन निष्पातितस्वगृहाङ्गणोद्गतः कल्पवृक्ष इव ॥९०॥

[1]अमुष्य शिष्येषु [2]गवेषयन्नहं, न [3]साधिमानं [4]बहुपात्फलेष्विव ।
[7]चकार [5]तत्पुस्तक[6]मात्मसात्ततो, [8]यदि[9]न्दिरा [10]नीतिमुचं [11]विमुञ्चति ॥९१॥

(१) पद्मसुन्दरस्य । (२) पश्यन् । (३) समीचीनताम् । (४) वटतरुफलेषु । (५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्मसुन्दरस्य पुस्तकम् । (६) मदायत्तम् । (७) कृतवान् । (८) यस्मात्कारणात् । (९) श्रीः । (१०) अन्यायिनम् । (११) त्यजति ॥९१॥

[१]दिनान्तसन्ध्यासमयस्वधाशना-म्बुजाननाकोशमिवा[२]ऽखिलागमम् ।
[३]इदं प्रदास्याम्यहमत्र [४]कस्यचि-[५]न्महानुभावस्य [६]हृदीत्य[७]चिन्तयम् ॥९२॥

(१) दिवसावसानस्य सन्ध्याकालस्य देवी सरस्वती तस्या भाण्डागारमिव । "दिनान्तसन्ध्यासमयस्य देवता" इति नैषधे । (२) समस्तं शास्त्रम् । (३) पद्मसुन्दरसम्बन्धि । (४) मम मण्डलवासिनः । (५) जगद्विख्यातिभाज उत्तमसाधोः । (६) मनसि । (७) विचारितवान् ॥९२॥

[१]ततो [२]गुणागण्यमहीमहार्णवा, न [३]वीक्षिताः केऽपि दृशा [४]भवादृशाः ।
[५]पदे पदे स्युः किमु [६]निर्जरार्जुनी-मणीमहीजन्मनिपावनीधराः ॥९३॥

(१) तस्मात्कारणात् । (२) गुणा एव गणयितुमशक्यानि रत्नानि, तेषां महासमुद्राः । (३) न दृष्टाः । (४) सा(श्री)मत्सदृशाः । (५) स्थाने स्थाने । (६) कामधेनु-चिन्तामणि-कल्पद्रुम-कामकुम्भ-मेरवः । निर्जरशब्दादग्रे धेन्वादिशब्दा योज्याः । यथा चिन्तामणिपार्श्वनाथस्तवे-"गीर्वाणद्रुमकुम्भधेनुमणयस्तस्याऽङ्गणैरिङ्गिण" इति ॥९३॥

[१]इदं तदा[२]दत्त समस्तपुस्तकं, मुनीश्वरा [३]माम[४]नुगृह्य [५]शिष्यवत् ।
यद[६]त्र [७]पात्रप्रतिपादनं [८]नृणां, [९]भवाम्बुराशौ [१०]कलभी(शी)सुतायते ॥९४॥

(१) मत्पुस्तकम् । (२) गृह्णीत । (३) ममोपरि । (४) अनुग्रहं विधाय । (५) शिष्यस्येव । (६) जगति । (७) सुसाधुदानम् । (८) नराणाम् । (९) संसारसमुद्रे । (१०) अगस्तिरिवाऽऽचरति ॥९४॥

[१]मतिं [२]श्रुतक्षीरधिपारदृश्वरीं, यतो [३]वहन्तः [४]स्थ [५]तपस्विशेखराः ।
[६]इमं ततोऽलं[७]कुरुतां [८]मरालव-द्वि[९]रञ्चिपुत्र्या इव वः[१०] [११]कराम्बुजम् ॥९५॥

(१) बुद्धिम् । (२) शास्त्रसुधासमुद्रपारगामिनीम् । (३) धारयन्तः । (४) वर्त्तध्वे । (५) मुनिमुकुटाः । (६) मत्पुस्तकम् । (७) भूषयताम् । (८) हंस इव । (९) सरस्वत्याः । (१०) युष्माकम् । (११) करकमलम् ॥९५॥

[१]इदं तदा[२]कर्ण्य [३]सकर्णकेसरी, [४]गिरं [५]न्यगादी[६]त्तमसाम[७]वावरीम् ।
[८]अवाप्ततृप्ते[९]रशनैरिवा[१०]ऽमुना, न [११]कृत्यमास्ते [१२]बहुधीवरीवर ! ॥९६॥

(१) साहिभाषितम् । (२) श्रुत्वा । (३) पण्डितपञ्चाननः । (४) वाणीम् । (५) बभाषे । (६) पापानामज्ञानानां च । (७) अपनेत्रीम् । 'ओणृ अपनयने' ओणतीत्यवावरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रक्रियायाम् । (८) लब्धसौहित्यस्य । (९) भोज्यैरिव । (१०) पुस्तकेन । (११) कार्यं नास्ति । (१२) बहवो नेके धीवानो मतिमन्तो विद्यन्ते यस्यां नगर्यां, सा बहुधीवा नगरी, तस्या वरः भर्त्ता । श्रीकरीपते ! इत्यर्थः ॥९६॥

[१]नरेन्द्र ! [२]यावद्व्रतिनां [२]विलोक्यते, तद[३]स्त्य[४]मीषां क्रियते[५]ऽधिकेन किम् ।
[६]विभोरिमां [७]दामव[८]दुद्वहन्[९]हृदा, [१०]गिरं पुनः [११]क्षोणिपुरन्दरो[१२]ऽवदत् ॥९७॥

(१) हे साहे ! । (२) यावत्पुस्तकं विलोक्यते तावन्मात्रम् । (३) तत्पुस्तकं विद्यते । (४) साधूनाम् । (५) अधिकेन पुस्तकेन कृत्वा किं विधीयते ? न किञ्चित्कार्यमिति । (६) सूरिः(रेः) । (७) पुष्पमालामिव । (८) धारयन् । (९) मनसा वक्षसा च । (१०) वाचम् । (११) नृपतिः । (१२) बभाषे ॥९७॥

[१]ब्रवीमि वः[२] किं [३]बहु येन[४] [५]निःस्पृहा, [६]महीधनाकिञ्चनतुल्यचक्षुषः ! ।
तथाऽपि [७]मन्त्राहुतिसिद्धदेववत्, [८][1]प्रसद्य मे [९]पिप्रतु यूय[१०]मीहितम् ॥९८॥

(१) कथयामि । (२) युष्मान् । (३) वारं वारम् । (४) कारणेन । (५) विगतवाञ्छाः । (६) राज्ञि दरिद्रे च समानदृशः । (७) मन्त्रेण होमेन च सन्तुष्टसुर इव । (८) अनुग्रहं कृत्वा । (९) पूरयन्तु । (१०) वाञ्छितम् ॥९८॥

यदाददे[१] नैष[२] [३]मुहुर्ब[४]हू[५]दित-स्त[६]दा हृदा [७]भूपतिने[८]त्यचिन्त्यत ।
[९]विधीयते किं [११]बहुनिस्पृहा [१०]अमी, इवा[१२]ऽनुरागा न[१३] च विक्रमोचिताः ॥९९॥

(१) न गृह्लीतवान् । (२) सूरिः । (३) वारंवारम् । (४) प्रचुरम् । (५) कथितः । (६) तस्मिन्नवसरे । (७) साहिना । (८) विमृष्टम् । (९) किं क्रियते । (१०) एते । (११) अतिनिरीहाः । (१२) स्त्र्याद्यनुरागा इव । (१३) न बलयोग्याः स्युः ॥९९॥

[१]अमीभि[२]रुक्तिर्मम [2][३]सृज्यते न [४]चे-त्ततो[५]ऽन्तरा [६]कश्चन [७]सन्धिकर्तृवत् ।
विधीयते [८]यद्[९]विविधोक्तिभिः [१०]प्रभू-[११]नुरीकृतिं [१२]स्वेन [१३]स एव कारयेत् ॥१००॥

(१) सूरिभिः । (२) कथितम् । (३) क्रियते । (४) यदि । (५) मध्ये । (६) कोऽपि । (७) सन्धिकारक इव । (८) यत्कारणात् । (९) नानाप्रकारैरनुनयविनयादिभिर्वचन-चातुरीविशेषैः । (१०) सूरीन् । (११) अङ्गीकारम् । (१२) आत्मना । (१३) मध्यस्थ एव कश्चित् ॥१००॥

[१]इमं [२]विकल्पं [३]परिकल्प्य [४]चेतसा, [५]विभूषयन्भो[६]गमि[७]तः [८]क्षितेः [९]परम् ।
[१०]सुधारुचे[११]श्शौरवशात्सं[१२]वेशगो, [१३]ग्रहः [१४]पदव्या इव [१५]मन्युभोजिनाम् ॥१०१॥

1. प्रसाद्य हीमु० । 2. मन्यते हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]महीमरुत्वान[2]थ [3]शेखशेखरं, [4]प्रतापदेवीतनयं [5]तथा[6]ऽऽह्वयत् ।
[7]ततः [8]सृजन्तौ [9]प्रणतिं [10]प्रभो[11]रुभौ, [12]ग्रहावि[13]वोऽर्कस्य [14]समीप[15]मीयतुः ॥१०२॥
युग्मम् ॥

(१) पूर्वोक्तम् । (२) विचारम् । (३) कृत्वा । (४) चित्तेन । (५) शोभां नयन् । (६) प्रदेशम् । (७) सूरिसमीपात् । (८) भूमेः । (९) अन्यम् । (१०) चन्द्रस्य । (११) गतिविशेषस्याऽऽयत्तत्वात् । (१२) समीपगामी । (१३) भौमादिः । (१४) मार्गस्य । (१५) देवानाम् । यथा चन्द्रस्य समीपगो ग्रहश्चारवशाद्गगनस्याऽन्यं प्रदेशं श्रयते इत्यर्थः ॥१०१॥

(१) भूमीन्द्रः । (२) अपरप्रदेश आगमनानन्तरम् । (३) शेखेषु-यवनगुरुषु मुकुटम् । (४) थानसिंहम् । (५) पुनः । (६) आकारयामास । (७) आकारणानन्तरम् । (८) कुर्वन्तौ । (९) प्रणामम् । (१०) साहेः । (११) शेख-थानसिंहौ । (१२) भौमादिकौ । (१३) सूर्यस्य । (१४) पार्श्वम् । (१५) आगतौ ॥१०२॥

[1]अमी न गृह्णन्ति [2]मदीयपुस्तकं, [3]निरीहभावेन [4]बहूदिता अपि ।
[5]ततो [6]युवां [7]ग्राहयतां [8]कथञ्चना-ऽप्य[9]मून्यशो [10]मूर्त्तमिवे[11]न्दुसुन्दरम् ॥१०३॥

(१) सूरयः । (२) पद्मसुन्दरसम्बन्धि मद्दत्तपुस्तकम् । (३) निःस्पृहत्वेन । (४) वारं वारं विज्ञप्ता अपि । (५) ततः कारणात् । (६) भवन्तौ । (७) स्वायत्तीकारयतः । (८) केनापि प्रकारेण । (९) सूरीन् । (१०) शरीरवत् । (११) चन्द्रवदुज्ज्वलम् ॥१०३॥

[1]इदं [2]गदित्वा[3]ऽन्तरिते स्थिते नृपे-ऽ[4]शुमालिनीवा[5]ऽभ्रकशालिनि क्षणात् ।
[6]उपेत्य [7]तावू[8]चतुरि[9]त्य[10]मून्प्रति, [11]प्रणीततत्पत्कजरेणुचित्रकौ ॥१०४॥

(१) इदं-पूर्वप्रोक्तम् । (२) कथयित्वा । (३) व्यवहिते । (४) सूर्य इव । (५) मेघमध्ये भासमाने । अभ्रकेणाऽदृश्ये वा (६) आगत्य । (७) शेख-थानसिंहौ । (८) कथयतः स्म । (९) इत्यग्रे वक्ष्यमाणम् । (१०) सूरीन्प्रति । (११) कृतं सूरिचरणकमलरजसा तिलकं याभ्यां-तौ ॥१०४॥

इदं व्रतीन्द्राः [1]क्षितिशीतदीधिते-[2]र्गृहीतवत्तिष्ठति [3]धाम्नि पुस्तकं ।
दधाति [4]खेदं पतितं यतः [5]क्षिते, [6]रजःस्थितं [7]रत्नमिवाऽत्र गृह्यताम् ॥१०५॥

(१) अकब्बरसाहेः । (२) नियन्त्र्य रक्षितवत् । (३) गृहे । (४) विषवादम् । (५) भूमेः । (६) धूलीमध्यगतम् । (७) मणिमिव ॥१०५॥

[1]हमांउसूः [2]सोमयशोऽङ्गजन्मव-द्ददाति पात्रं [3]गुरवो [4]युगादिवत् ।
रसो [5]यथेक्षोरपि वस्तु [6]पुस्तकं, [7]कथं न [8]गृह्णीथ [9]तदर्ह[10]मात्मनः ॥१०६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) <u>अकब्बरसाहिः</u> । (२) श्रेयांस इव । (३) यूयम् । (४) ऋषभनाथा इव । (५) इक्षुरसो यथा । (६) तथा इदं पुस्तकम् । (७) कस्मात्कारणात् । (८) न स्वीकुरुत । (९) योग्यम् । (१०) स्वस्य ॥१०६॥

[1]अमुं च जानीथ न [2]मुद्गलेश्वरं, [3]निदेशशूरं [4]द्विषतां [5]निषूदनम् ।
[6]दिगीश्वरा[7]यच्चकिता इवा[8]ऽखिला-स्त्य[9]जन्ति नो[10]ऽद्याऽपि [11]दिगन्तवासिताम् ॥१०७॥

(१) <u>अकब्बरम्</u> । (२) मुद्गलपातिसाहिम् । (३) आज्ञाशूरम् । (४) वैरिणाम् । (५) मूलादुन्मूलनकारकम् । (६) दिक्पालाः । (७) साहिभीताः । (८) सर्वे-दशाऽपि । (९) मुञ्चन्ति । (१०) एतद्दिनं यावत् । (११) दिशां प्रान्तेषु दूरे निवसनशीलताम् ॥१०७॥

[1]निजानुकूलीभवतां [2]तनूमतां, [3]सुधालतेव व्रतिचक्रवर्त्तिनः ।
[4]प्रबिभ्रतां [5]स्वप्रतिकूलतां पुन-र्विषस्य[6] शाखीव [7]समुन्मिषत्यसौ ॥१०८॥

(१) आत्मनोऽनुकूलतां भजताम् । स्वसेवाहेवाकिनाम् । (२) जनानाम् । (३) अमृतवल्लीव जीवातुर्वर्त्तते । (४) धारयताम् । (५) द्वेषम् । (६) विषवृक्ष इव मृतिहेतुः । (७) प्रकटीभवति ॥१०८॥

[1]यदा[2]त्मनो[3]र्व्यां [4]परमेश्वरा इवो[5]-ऽगताः [6]स्थ [7]साक्षादुपकर्त्तु[8]मङ्गिनाम् ।
[9]इदं वि[10]दन्त्येव [11]मुनीन्दवो [12]तदा, [13]द्विरुक्तितुल्यं पुनरावयोर्वचः[14] ॥१०९॥

(१) यस्मात्कारणात् । (२) स्वस्वरूपेण । (३) भूमौ । (४) भगवन्तः । (५) समेताः । (६) वर्त्तध्वे । (७) प्रकटमुपकारं कर्त्तुम् । (८) प्राणिनाम् । (९) साहिस्वभावादि सर्वम् । (१०) यूयं । (११) जानीथ । (१२) हृदयेन । (१३) पुनर्भाषणसदृशम् । (१४) वचनम् ॥१०९॥

[1]स्ववत्त[2]दा[3]दत्त समस्त पुस्तकं, [4]स्थितौ [5]गदित्वेति पुरः प्रभो[6]रुभौ ।
ततो [7]विनेया अपि [8]तद्[9]बभाषिरे, [10]निवार्यते कैः[11] [12]स्वय[13]मागतेन्दिरा ॥११०॥

(१) आत्मीयमिव । (२) तत्कारणात् । (३) गृह्णीत । (४) मौनं कुर्वाणौ । (५) उक्त्वा । (६) <u>शेख-थानसिंहौ</u> । (७) <u>हीरसूरि</u>शिष्या गीतार्था अपि । (८) <u>शेख-थानसिंह</u>कथितम् । (९) स्वीकारयोग्यमस्ति तद्गृह्यतामिति प्रोचुः । (१०) निषेध्यते । (११) मूर्खैः । (१२) आत्मना । (१३) सम्प्राप्तलक्ष्मीः ॥११०॥

[1]अवेत्य [2]चेतस्य[3]मुना [4]समुन्नतिं, [5]स्वशासने [6]पुस्तकसङ्ग्रहेण सः ।
[7]मुदामिवो[8]ङ्कार [9]इदंक्षितिक्षित-स्त[10]थेति [11]वाचंयमवासवो[12]ऽवदत् ॥१११॥

(१) ज्ञात्वा । (२) मनसि । (३) सूरिणा । (४) उद्योतं-दीप्तिम् । (५) जिनमते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपगच्छे वा । (६) पुस्तकस्य स्वीकारेण । (७) हर्षाणाम् । (८) प्रवणः । (९) अस्याऽकब्बरसाहेः । (१०) मया पुस्तकं ग्रहीष्यते इति । (११) सूरिः । (१२) बभाषे ॥१११॥

[1]उपेत्य [2]ताभ्यां [3]तद[4]भाषि भूपते-[5]स्त[6]देष [7]निश्चेतु[8]मपृच्छ[9]दात्मना ।
[10]मुदं [11]प्रणेतुं [12]द्विगुणामि[13]वाऽवनी-मणे[14]र्गणेन्द्रो[15]ऽप्यवद[16]त्तथैव तम् ॥११२॥

(१) साहिसमीपं समागत्य । (२) शेख-थानसिंहाभ्याम् । (३) सूरिस्वीकारवचः । (४) कथितम् । (५) सूरिवाक्यम् । (६) साहिः । (७) सत्यं ज्ञातुम् । (८) प्रश्नयति स्म । (९) स्वेन । (१०) हर्षम् । (११) कर्त्तुम् । (१२) महतीम् । (१३) साहेः । (१४) सूरीन्द्रः । (१५) पुनः । (१६) पूर्वोक्तं स्वीकाररूपम् ॥११२॥

[1]दयान्वितं धर्मम[2]वाप्य [3]सद्गुरो-रिवा[4]ऽर्णवात्[5]कृष्णलताङ्कविद्रुमम् ।
[6]स थानसिंहं [7]यवनावनीधन-स्ततः [8]समाहूय [9]गिरं [10]गृहीतवान् ॥११३॥

(१) अनुकम्पायुक्तम् । (२) आसाद्य । (३) हीरसूरीन्द्रात् । (४) समुद्रात् । (५) कृष्णवल्लीकलितप्रवालम् । (६) साहिः । (७) मुद्गलराजः । (८) आकार्य । (९) वाणीम् । (१०) जग्राह ॥११३॥

[1]मदीयतुर्यादिनिनादसादरं, [2]जगज्जनानन्दमहेन [3]मेदुरम् ।
त्वमालयं लम्भय सूरिसिन्धुरं, [4]तटं [5]शशीवा[6]ऽमृतवाहिनीवरम् ॥११४॥

(१) मम वादित्राणि-नगरादीनि आदिश[ब्दाद्] गजाश्वादयो मानुषाणि च, तेषां शब्दैः महादरयुक्तम् । (२) समस्तजनानां प्रमोदप्रारब्धेन हर्षयुतेन वा उत्सवेन । (३) पुष्टम् । (४) तीरभूमीम् । (५) चन्द्र इव । (६) क्षीरसमुद्रम् ॥११४॥

[1]प्रमाणमा[2]ज्ञा [3]जगतीवसन्तिका, [4]सृजामि [5]निःशेषमि[6]दं [7]नियोगिवत् ।
[8]पुरा [9]मदीहा [10]पुनरीशशासनं, [12]पयस्तदेतत्सितया[11] करम्बितम् ॥११५॥

(१) शिरस्यारोपयामि । (२) स्वामिवचः । (३) सर्वजगज्जनानां शिरसि शेखरायमाणा । (४) करोमि । (५) समस्तम् । (६) स्वामिप्रसादितम् । (७) सेवक इव । (८) पूर्वम् । (९) मम वाञ्छाऽभूत् । (१०) पुनः साहीनामादेशः । (११) शर्करामिश्रितम् । (१२) दुग्धं-दुग्धपानमिव जातम् ॥११५॥

अथै[1]नमा[2]पृच्छ्य स [3]भूमिभूषणं, प्रदाय[4] धर्माशिषमात्मना पुनः ।
सहा[5]ऽनगारै[6]र्निरगात्[7]समाजतः, [8]शशीव [9]तारैः [10]शरदभ्रगर्भतः ॥११६॥

(१) राजानम् । (२) वयं वसतौ व्रजामः । (३) अकब्बरं-भूमण्डलमार्त्तण्डम् । (४) प्रदाय धर्मलाभम् । (५) साधुभिः सार्द्धम् । (६) निःसृतः । (७) सभामध्यात् । (८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्र इव । (९) तारकैः । (१०) शरत्कालीनाभ्रकाणां मध्यादुदरात् ॥११६॥

[१]तदा [२]चकोरायितम[३]र्णवायितं, [४]रथाङ्गितं कैश्चन [५]कैरवायितम् ।
[६]स्त्रवन्मुदस्त्रैश्च [७]विधूपलायितं, विलोक्य [८]यद्वक्त्रमृगाङ्क[९]मङ्गिभिः ॥११७॥

(१) तस्मिन्नवसरे । (२) सूरिमुखलावण्यामृतपानकारिभिर्ज्योत्स्नाप्रियैरिवाऽऽचरितम् । (३) वर्द्धमानप्रमोदतरङ्गशालिसमुद्रवदाचरितम् । (४) सर्वेऽपि समुद्राश्चन्द्रमालोक्य वृद्धिं प्राप्नुवन्ति-इति जगत्स्वभावः । तादृशं जनैरभिनन्द्यमानं प्रभुमहोदयं वीक्ष्य हृदि असूयया दुःखाद्वैतदधानैः कुपाक्षिकैश्चक्रवाकैरिवाऽऽचरितम् । (५) विकसितवदनकोशैः कुमुदैरिवाऽऽचरितम् । (६) निर्यद्धर्षाश्रुभिः । (७) चन्द्रकान्तैरिवाऽऽचरितम् । चन्द्रोदये हि चन्द्रकान्तमणयोऽमृतं क्षरन्तीति प्रसिद्धिः । (८) सूरिवदनचन्द्रम् । (९) जनैः ॥११७॥

[१]तदाऽभव[२]द्भूमिनभःप्रचारिणां, [३]जयारवो [४]भूपुरुहूतवर्त्मनोः ।
[५]समीक्ष्य सूरे[६]र्महिमान[७]मद्भुतं, हृदा [८]दधाने इव [९]रोदसी स्तुतः ॥११८॥

(१) तस्मिन्नवसरे । (२) भूचराणां खेचराणां च । (३) जयजयेति ध्वनिः । (४) भूमिनभसोः । (५) दृष्ट्वा । (६) माहात्म्यम् । (७) आश्चर्यम् । (८) धारयन्त्यौ । (९) द्या[वा]पृथिव्यौ ॥११८॥

[१]मिलत्पयोवाहपयोधिगर्जितै-रिवो[२]ऽऽहतातोद्यनिनादसान्द्रितैः ।
[३]प्रमोदमाद्यत्तुमुलैस्तनूमतां, जगत्तदा [४]शब्दमयं स्म जायते ॥११९॥

(१) सजलजलदमालालिङ्गितजलधिगर्जारवैः । (२) वादितवाजिन्त्रशब्दैर्बहलीकृतैः । (३) हर्षोल्लासितकोलाहलैः । (४) नादस्वरूपम् ॥११९॥

[१]कुलाङ्गनाभिः [२]प्रभुमूर्ध्नि है[३]मन-प्रसूनमुक्ताफललाजराजयः ।
ववर्षिरे [४]प्रावृषि मेघपङ्क्तिभि-स्तदा[५]ऽम्बुधाराः [६]शिखरे गिरेरिव ॥१२०॥

(१) सुकुलवशाभिः । (२) सूरिमस्तके । (३) सुवर्णसम्बन्धिकुसुमानि मौक्तिकानि अक्षतास्तेषां श्रेणयः । (४) वर्षाकाले । (५) जलधाराः । (६) शृङ्गे ॥१२०॥

[१]परार्ध्यसङ्ख्यैः पुरुषैः [२]परिष्कृतः, [३]प्रभुर्म[४]हे बिभ्रति [५]मेदसां भरम् ।
[1][चतुर्निकायप्रभवैरिवाऽमरैः], [६]प्रतिष्ठते स्म [७]त्रिजगत्पुरन्दरः ॥१२१॥

(१) सर्वाङ्कान्तिमप्रमाणैः प्रकृष्टप्रमाणैर्वा । (२) परीतः । (३) सूरिः । (४) उत्सवे । (५) पुष्टिम् । "तपर्त्तुपूर्त्तावपि मेदसां भरा विभावरीभिर्बिभरांबभूविरे" इति नैषधे । (६) प्रस्थितः । (७) जगन्नाथः ॥१२१॥

1. [ ] एतदन्तर्गतः पाठस्तस्य टीका च हीसुं.प्रतौ नास्ति । एषः पाढो हीमु.पुस्तकात् गृहीतः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]निपीयमानो नयनैर्मृगी[2]दृशा-मिवा[3]ऽर्च्यमानो विक[4]चाम्बुजन्मभिः ।
[5]प्रणूयमानः [6]कविभिर्नवस्तवै-र्जगत्[7]पृणन्स्वीयगुणैश्च [8]वास्तवैः ॥१२२॥

[1]मृगारि[2]रद्रेरिव [3]कन्दरोदरे, [4]कृशोदरीणां मनसीव [5]मन्मथः ।
[6]अमर्त्यदन्ती [7]चतुरे हरेरिव, [8]व्रतिक्षितीन्द्रो वसतिं विवेश सः ॥१२३॥ युग्मम् ॥

(१) सादरं विलोक्यमानः । (२) स्त्रीणाम् । (३) पूज्यमानः । (४) स्मेरकमलैः । (५) स्तूयमानः । (६) काव्यकर्त्तृभिः । (७) तृप्तिं प्रापयन् । (८) स्वाभाविकैः ॥१२२॥

(१) सिंहः । (२) पर्वतस्य । (३) गुहामध्ये । (४) कामिनीनाम् । (५) कामः । (६) ऐरावणः । (७) हस्तिशालायाम् । (८) हीरसूरिः ॥१२३॥

[1]प्रतापदेवीतनयस्त[2]दुत्सवे, [3]समर्थयन्न[4]र्थिततेर्मनोरथान् ।
[5]दरिद्रमुद्रा[6]मभिनत्तमां [7]तटीं, [8]प्रवाहवत्प्रा[9]वृषि [10]वार्धियोषितः ॥१२४॥

(१) थानसिंहः । (२) प्रभुप्रवेशमहोत्सवे । (३) पूर्णान्कुर्वन् । (४) याचकराजेः । (५) दुःस्थावस्थाम् । (६) भिनत्ति स्म । (७) तीरभित्तिम् । (८) वर्षाकाले । (९) नदीजलरयः ॥१२४॥

[1]तडिद्वता तस्य [2]निजातिपातुकां, समीक्ष्य [3]सर्वार्थिषु [4]कामवर्षिताम् ।
[5]शितीकृतास्येन पदं [6]मुरद्विषो, निषेव्यते त[7]त्तुलनाकृते किमु ॥१२५॥

(१) मेघेन । (२) आत्मनोऽतिक्रमणशीलाम् । (३) सर्वयाचकेषु । (४) काममतिशयेन अभिलाषाद्वर्षतीत्येवंशीलस्तद्भावः । (५) श्यामीकृतमुखेन । (६) कृष्णस्य । (७) तस्य साम्यं प्राप्तुम् ॥१२५॥

[1]स्वकोशरक्षाधिकृतस्य [2]भूमिमा-निवा[3]ऽखिलाक्षोणिजयार्जितैर्घनैः ।
[4]विधाय को[5]शं नृपदत्तपुस्तकैः, स थानसिंहस्य [6]वशंवदं [7]व्यधात् ॥१२६॥

(१) भाण्डागाररक्षणेऽङ्गीकृतस्य भाण्डागारिणः । (२) राजा । (३) समस्तपृथिवीसाधनसञ्जातैः । (४) कृत्वा । (५) भाण्डागारम् । (६) वशमायत्तम् । (७) चकार ॥१२६॥

[1]क्रमान्म[2]हादेशमिवा[3]ऽवनीशितु-[4]र्निदेशमा[5]साद्य [6]पयोधरोदये ।
[7]फतेपुरात्स[8] प्रभुरा[9]गरापुरं, पवित्रयामास [10]पदाम्बुजन्मभिः ॥१२७॥

(१) कतिचिद्दिनान्तरम् । (२) महान्तं जनपदमिव । (३) साहेः । (४) आदेशम् । (५) प्राप्य । (६) वर्षाकालप्रारम्भे । (७) श्रीकरीनगरात् । (८) सूरिः । (९) उग्रसेनपुरापरपर्यायं पुरम् । (१०) चरणकमलैः ॥१२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[2]न [1]राजहंसान्क्वचन [2]प्रवासयन्, [3]वियोगिनोऽपि [5]प्रणयंश्च [4]निर्वृतिम् ।
न [6]दुर्दिनं क्वापि [7]सृजंस्त[8]मोद्विषं, न च द्विषन्निर्दलयन्ज[9]लोदयम् ॥१२८॥
[1]मनोभवं वा[2]ऽभिभवन्[3]गुरो[5]र्महो, न[4] निह्नुवानः [6]स्थिरतां पुन[7]र्वहन् ।
अभू[8]दपूर्वः [9]प्रभुरम्बुदः पुरे, [10]जिनक्रमोपासनकृद्दिवानिशम् ॥१२९॥ युग्मम् ॥

(१) राजसु-नृपेषु हंसान्-मुख्यान् । (२) न पीडयन् । आनन्दयन्नित्यर्थः । यदिवा नृपश्रेष्ठान्प्रकर्षेण वासयन् । दयादिधर्मसुगन्धिवस्तुना न सुगन्धीकुर्वन्नपितु वासयन् । मेघस्तु वर्षाकाले हंसान् मानसं प्रति प्रस्थापयति । (३) विशिष्टयोगभाजः । यदि वा सर्वसंसारसङ्गाद्वियोगभाजाम् । (४) निवृतिं मोक्षम् । (५) प्रणयन्-कुर्वन् । विरहिणामपि धर्मोपदेशप्रदानेन सुखयन् । मेघस्तु वियोगिनः पीडयति । (६) पुण्यप्रदानेन सुदिवसं-सुप्रभातम् । (७) कुर्वन् । मेघोऽन्धकारं च । (८) पापवैरिणं साधुं प्रीणन् रविं च । (९) भावप्रधाननिर्देशाद्र डल[यो]रैक्याच्च जाड्योदय-मज्ञानप्रादुर्भावं व्यापादयन्, जलोदयं च ॥१२८॥

(१) कन्दर्पम् । (२) पराभवन् । मेघस्तु हर्षयति । (३) धर्माचार्यस्य बृहस्पतेश्च । (४) प्रकटीकुर्वाणः । (५) महः प्रतापस्तेजश्च । (६) चापल्याभावम् । (७) दधानम् । मेघस्तु अस्थिरः । (८) अतः कारणादसाधारणमेघः । (९) सूरिः। (१०) जिनानां तीर्थकृतां चरणसेवाकरः । मेघस्तु नभःस्थायुकः ॥१२९॥

क्रमा[1]च्चतुर्मासकवासरान्[2]पयो-धरे दधाने [3]बहलीभविष्णुताम् ।
[4]निनाय [5]तस्मि[6]न्परिवर्त्तितां [7]धुनी-धवे[8]ऽब्धिशायीव[9]गणेन्दिरावरः ॥१३०॥

(१) वर्षाकालदिनानि । (२) मेघे । (३) अखण्डधारावर्षणशीलताम् । (४) प्रापयामास । (५) आगरानगरे । (६) क्षयम् । (७) समुद्रे । (८) कृष्ण इव । (९) गच्छपतिः ॥१३०॥

ततो[1]ऽल्पकर्मा तपसेव [2]संसृतिं, [3]प्रतीर्य [4]पोतेन [5]पतङ्गनन्दनाम् ।
[6]अरिष्टनेमे[7]र्जनुषा पवित्रितं, [8]प्रतस्थिवा[9]न्सौर्यपुरं प्रति [10]प्रभुः ॥१३१॥

(१) स्तोककर्मा क्षीणकर्मा । (२) संसारम् । (३) संस्तीर्य । (४) वहनेन । (५) यमुनाम् । (६) श्रीनेमिनाथस्य । (७) जन्मना । (८) चचाल । (९) सोरीपुरम् । (१०) सूरिः ॥१३१॥

[1]यमीसमीपे [2]रपडीपुरे क्रमात्, स सङ्घलोकेन [3]समं [4]समीयिवान् ।
[5]मनोरथाकृष्टमिवाऽऽगतं [6]पुरो, [7]व्यलोकय[8]त्सौर्यपुरं पुरं ततः ॥१३२॥

(१) यमुनानदीपार्श्वप्रदेशे । (२) रपडी इति नाम्नि पुरे । (३) सार्द्धम् । (४) समागतः । (५) अभिलाषेन(ण) कृत्वा बलात्स्वसमीपमानीतम् । (६) अग्रे । (७) ददर्श । (८) सोरीपुरम् ॥१३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]प्रभुः [२]प्रियस्येव [३]सधर्मचारिणी-[४]महर्निशं शौर्यपुरो[५]ऽङ्कचारिणीम् ।
[६]च्युतोत्तरीयां [७]कबरीमिवा[८]ऽर्णवा-म्बरेन्दिराया [९]नवभङ्गसङ्गिनीम् ॥१३३॥

[१]व्यवस्यमानामिव जेतु[२]मम्बरा-पगां तरङ्गै[३]र्गगनावगाहिभिः ।
प्रियेण [४]चाणूरभिदा [५]वियोगिनीं, [७]निषेवमाना(णा)मिव [६]तीर्थमेदिनीम् ॥१३४॥

[१]जलावगाहागतदन्तिपङ्क्तिभि-[२]र्निलीनशैलाब्धितुलावहामिव ।
[३]भुजामिवा[४]ऽम्भोजमुखीं [५]मृणालिकां, [६]हिरण्यबाहुं दधतीं च [७]नाभिवत् ॥१३५॥

[१]अमुं [२]नमन्तीमिव [३]वीचिसञ्चयै-र्वि[४]भावयन्तीमिव[1] [५]मीनलोचनैः ।
[६]अभिष्टुवन्तीमिव [७]विष्किरक्वणै-[८]र्लुलत्कजैर्नृत्यमिव प्रकुर्वतीम् ॥१३६॥

[१]निखेलियोषास्तनचन्दनद्रवैः, [२]सरिद्वरासंवलितप्लवामिव ।
क्रमात्स [३]तत्रा[४]ऽप्यवतीर्य [५]सूर्यजां, [६]न्यभालय[७]न्नेमिनिकेतनं पुरः ॥१३७॥

पञ्चभिः कुलकम् ॥

(१) सूरिः । (२) भर्त्तुः । (३) स्त्रियम् । (४) नित्यम् । (५) अङ्कसमीपे उत्सङ्गे च चरणशीलाम् । (६) पतितोपरितनवसनाम् । (७) वेणीमिव । (८) भूमिलक्ष्म्याः । (९) नव्यास्तरङ्गा रचनाश्च तेषां तासां वा सङ्गोऽस्त्यस्या इति ॥१३३॥

(१) 'प्रगल्भमानां' इति वा पाठः । उद्यमं कुर्वाणाम् । (२) स्वर्गसङ्गाम् । (३) नभोव्यापनशीलैः । (४) कृष्णेन । (५) विरहिणीम् । (६) तीर्थभूमीम् । (७) भजन्तीम् ॥१३४॥

(१) जलक्रीडाकरणाय समागतगजराजिभिः । (२) इन्द्रभयात्सलिलमध्यप्रविष्टाः पर्वता यत्र, तस्य समुद्रस्य साम्यधारिणीमिव । (३) बाहुम् । (४) स्त्रियम् । (५) कमलनालीम् । (६) ह्रदम् । (७) तुन्दकूपिकामिव ॥१३५॥

(१) सूरिम् । (२) नमस्कुर्वन्ती(र्वती)मिव । (३) कल्लोलमालाभिः । (४) पश्यन्तीमिव । (५) मत्स्यनेत्रैः । "विस्फुरच्छफरीनेत्रा तत्राऽपि रणसाक्षिणी । अस्ति ज्योत्स्नासपत्नाम्बु-रियमेव सरस्वती ॥१॥" इति पाण्डवचरित्रे । (६) स्तुतिं कुर्वतीमिव । (७) पक्षिरावैः । (८) चलत्कमलैः ॥१३६॥

(१) जले क्रीडत्कामिनीकुचचन्दनरसैः । (२) गङ्गामिलितपयःपूरामिव । (३) रपडीसमीपे सौर्यपुरपार्श्वे । (४) उत्तीर्य । (५) यमुनाम् । (६) ददर्श । (७) नेमिनाथप्रासादम् ॥१३७॥

---

1. ०न्तीं शफरीक्षणैरिव हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स [1]तूररावैः [2]कुलशैलकन्दरो-दरप्रसर्पत्प्रतिनादमेदुरैः ।
[3]निनाय नेमेर्वसतिं [5]प्रदक्षिणां, [4]महोदयाम्भोनिधिनन्दनामिव ॥१३८॥

(१) वादित्रध्वनिभिः । (२) मन्दरादिसप्तकुलाचलानां गुहामध्येषु सञ्चरत्प्रतिशब्देन पुष्टीभूतैः-बहुलीभूतैः । (३) प्रापयति स्म । (४) मोक्षलक्ष्मीमिव । (५) अनुकूलां चकार ॥१३८॥

निजां[1] तनूजां [2]धरणीप्रचारिणी-मिवा[3]ऽभ्रकेतौ मिलितुं [4]समीयुषि ।
विवेश [5]तस्मिन्शमिनां[6] शतक्रतुः, शिवासुतस्याऽऽयतने [7]हिरण्मये ॥१३९॥

(१) स्वपुत्रीम् । (२) भूमौ सञ्चरणशीलां यमुनाम् । (३) सूर्ये । (४) सम्प्राप्ते । (५) नेमिचैत्ये । (६) सूरिः । (७) स्वर्णनिर्मिते ॥१३९॥

[1]जनार्दनान्दोलनकेलयेऽभवत्, [2]प्रलम्बदोलेव यदीय[3]दोर्लता ।
[4]य उग्रसेनस्य[5] सुतां पुन[6]र्जहौ, पति[7]स्तमीनाम[8]रविन्दिनीमिव ॥१४०॥

(१) विष्णोः प्रङ्खोलनक्रीडाकृते । (२) लम्बमाना दोला यस्य । (३) भुजवल्ली । (४) नेमिः । (५) राजीमतीम् । (६) तत्याज-मुक्तवान् । (७) चन्द्रः । (८) कमलिनीमिव ॥१४०॥

[1]तनुश्रिया [2]येन [3]निजौजसा पुन-र्जितो [4]ह्रिया[5]ऽनङ्ग इवा[6]ऽङ्गजो[7]ऽजनि ।
[8]यदङ्गरुग्निर्जितनीलनीरजै-र[9]भाजि दुःखादिव [10]पुष्करे तपः ॥१४१॥

(१) शरीरशोभया । (२) नेमिना । (३) स्वप्रतापेन । (४) लज्जया । (५) अङ्गरहितः । (६) स्मरः । (७) जातः । (८) यस्य शरीरनीलकान्तितर्जितनीलोत्पलैः । (९) श्रितः । (१०) पुष्करतीर्थे । "पुष्करं तु जले व्योम्नि, तीर्थे कुण्डे चे" त्यनेकार्थः ॥१४१॥

[1]रवेण [2]बाह्याहितजित्वरं [3]तरो-ऽप्य[4]भिप्रपन्नः पुनरा[5]न्तरद्विषाम् ।
1[6]विघातशक्तिस्पृहयेव [7]यत्पदं, हरे[8]स्त्रिरेखो[9]ऽङ्कमिषान्निषेवते ॥१४२॥

(१) शब्देन । (२) भूमीसञ्चारिणां प्रत्यक्षाणां वैरिणां जयनशीलम् । (३) बलम् । (४) प्राप्तोऽपि । (५) अन्तरङ्गाना(णा)मन[न्त]कालादात्मप्रतिबद्धानां कर्मणां शत्रूणाम् । (६) हननसामर्थ्यस्याऽऽशया । (७) नेमिचरणम् । (८) पाञ्चजन्यः । (९) लाञ्छनच्छलात् । "एकः श्रीपाञ्चजन्यो हरिकरकमलक्रोडलीलायमानो, यस्य ध्वानैरमानैरसुरसुरवधूवर्गगर्भा गलन्ति" इति सूक्तम् ॥१४२॥

[1]अशीलि [2]शीलेन जितेन [3]येन किं, [4]ह्रिया [5]कुमारेण [6]गिरे[7]रधित्यका ।
[8]प्रभु[9]र्जितं तं [10]यदुवंशभास्करो-दयोदयक्षोणिधरं दृशा[10] पपौ ॥१४३॥

चतुर्भिः कलापकम् ॥

1. विघातशक्तिं स्पृहयन्त हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) आश्रितः । (२) ब्रह्मचर्येण । (३) नेमिना । (४) लज्जया । (५) स्वामिकार्त्तिकेन । तस्य ब्रह्मचारीत्यभिधानत्वादिति । तथा- "स्कन्दो मन्दमतिश्चकार न करस्पर्शं स्त्रियाः शङ्कितः" इति खण्डप्रशस्तौ । (६) कैलाशस्य । (७) ऊर्ध्वभूमिः । (८) सूरिः । (९) अरिष्टनेमिनम् । (१०) यादवानां कुलं वंश एव सूर्यस्तस्योद्गमनार्थमुदयाचलम् । (११) सादरं विलोकयति स्म ॥१४३॥

जय [१]त्रिलोकीजनकल्पपादपा[1] !-[२]ऽपुनर्भवश्रीपरिरम्भलोलुप ! ।
जय [३]प्रमोदाङ्कुरकोटिवारिमुक् !, जय [४]प्रभाभर्त्सितनीलरत्नरुक् ! ॥१४४॥

[१]तरीव [२]वार्द्धौ [३]तमसीव [४]शारदा-रविन्दिनीशः [५]सरसीव [६]धन्वनि ।
[७]दरिद्रतायामिव [८]सेवधिर्मया, [९]कलौ जिनेन्दो ! त्वम[१०]लम्भि [११]दुर्लभः ॥१४५॥

(१) त्रैलोक्यलोकानां कामितपूरणे कल्पद्रुम ! । (२) मोक्षलक्ष्म्या आलिङ्गने लोलुप! । (३) हर्षप्ररोहश्रेणीसिञ्चने मेघ ! । (४) स्वशरीरकान्तिनिर्जितनीलमणे ! ॥१४४॥

(१) नौरिव । (२) समुद्रे । (३) अन्धकारे । (४) शरत्कालसम्बन्धिरविः । (५) महत्सरः । (६) मरुस्थले । (७) दारिद्र्ये । (८) निधानम् । (९) कलिकाले । (१०) प्राप्तः । (११) दुष्प्राप्यः ॥१४५॥

तमित्य[१]भिष्टुत्य [२]हृदा [४]दधन्[३]मुदं, चकार [५]पञ्चाङ्गनतिं यतीशिता ।
[६]विवक्षुरेतत्किमु [७]पञ्चमीं गतिं, [८]दिश प्रभो ! [९]पञ्चमकेऽरकेऽपि मे ॥१४६॥

(१) स्तुत्वा । (२) मनसा । (३) हर्षम् । (४) दधानः । (५) पञ्चभिरङ्गैः प्रणामम् । (६) वक्तुमिच्छुः । (७) मोक्षलक्षणाम् । (८) देहि । (९) पञ्चमारके-कलियुगेऽपि ॥१४६॥

[१]मुनीन्दुना [२]शौर्यपुरं [३]पदाम्बुजै-र्विभूष्य [४]दृष्टी इव [५]तत्पुरश्रियाः ।
[६]वृषाङ्कनेमिप्रतिमे [७]पुरातने, [८]प्रतिष्ठिते तत्र स [९]नेमिपादुके ॥१४७॥

(१) सूरिणा । (२) शौरिपुरम् । (३) चरणकमलैः । (४) नयने । (५) शौर्यपुरलक्ष्म्याः । (६) ऋषभनेमिनाथमूर्त्ती । (७) जीर्णे । (८) स्थापिते । (९) नेमिनाथपादुकायुक्ते ॥१४७॥

दिनद्वयं [१]तद्यदुवंश्यबाहुज-व्रजान्[२]कृपाधर्मधियो [३]विधाय सः[४] ।
ततो [४]मुनिक्षोणिमणिर्न्यवीवृत-[६]त्तटात्पयःपूर इ[७]वाऽपगापतेः ॥१४८॥

(१) शौर्यपुरस्य यदुवंशोत्पन्नक्षत्रियप्रकरान् । (२) दयाधर्मबद्धबुद्धीन् । (३) कृत्वा । (४) सूरिः । (५) निवृत्तः । (६) तीरात् । (७) समुद्रस्य ॥१४८॥

1. ०पादप पुनर्भव० हीमु. । टीकायामप्येवमेव दृश्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गते [१]प्रिये क्वापि निजे [२]जनार्द्दने, [३]समेत्य [४]नेमिप्रभुदेवरान्तिके ।
[५]स्थितां समुत्तीर्य [६]यमीं [७]शमीश्वरः, पुरं [९]प्रयातः पुन[८]रागराभिधम् ॥१४९॥

(१) भर्त्तरि । (२) नारायणे । (३) आगत्य । (४) नेमिनाथ एव स्वप्रियानुजो देवरस्तत्पार्श्वे । (५) तिष्ठन्तीम् । (६) यमुनाम् । (७) सूरिः । (८) आगरानगरे । (९) गतः ॥१४९॥

मणिं[१] सुराणां [२]तनुमत्समीहित-प्रदीत्सयेव [३]त्रिदिवा[४]दुपागतम् ।
[५]स [६]तत्र [७]चिन्तामणिपार्श्वतीर्थपं, [८]महामहेन [९]प्रतितस्थिवान्प्रभुः ॥१५०॥

(१) चिन्तामणिम् । (२) जनाभिलषितस्य दातुमित्सु(च्छ)या । (३) स्वर्गात् । (४) समागतम् । (५) सूरिः । (६) आगरानगरे । (७) चिन्तामणिपार्श्वनाथम् । (८) महोत्सवेन । (९) प्रतिष्ठितवान् ॥१५०॥

स [१]उग्रसेनाद्यपुरात्फतेपुरं, [२]यशस्करं [३]स्वस्य विभुर्व्यभूषयत् ।
इवा[४]ऽन्यराशेः [५]शशिरा[1]शिमु[६]च्चता-पदप्रदं [७]चित्रशिखण्डिनन्दनः ॥१५१॥

(१) आगरातः । (२) कीर्त्तिकारकम् । (३) आत्मनः । (४) अपरराशितो - मिथुनराशेः । (५) चन्द्रस्य राशिं - चन्द्रगृहं कर्कराशिम् । (६) उच्चत्वस्य स्थानकस्य प्रदायिनम् । कर्कराशिगतो गुरुरुच्चः प्रतिपाद्यते । (७) बृहस्पतिः ॥१५१॥

[१]महीहिमज्योतिरियेष खञ्जनो, [३]घनात्ययस्येव [४]तदा[५]स्यदर्शनम् ।
[६]अमुं [७][८]संगोष्ठिप्रविधित्सया पुन-[९]र्निकेतने [१०]शेखमणे[११]रजूहवत् ॥१५२॥

(१) नृपतिः । (२) वाञ्छति स्म । (३) शरत्कालस्य । (४) फतेपुरागमनावसरे । (५) सूरेः । (६) हीरसूरिः(रिम्) । (७) साहिः । (८) गोष्ठीकर्त्तुमनसा । (९) गृहे । (१०) अबलफइजशेखस्य । (११) आकारयामास ॥१५२॥

क्रमेण [१]वाचंयमयामिनीमणि-[२]र्विभूष्य [३]शेखप्रमुखस्य [४]मन्दिरम् ।
[५]शिरोगृहं [६]तस्य पुनः [७]पवित्रया-ञ्चकार [८]जम्भारिरिव [९]त्रिविष्टपम् ॥१५३॥

(१) सूरीन्द्रः । (२) अलङ्कृत्य । (३) शेखपतेः । (४) चन्द्रशालाम् । (५) उप[रि]तनभूमिकाम् । (६) शेखगृहस्य । (७) पुनाति स्म । (८) इन्द्रः । (९) स्वर्गम् ॥१५३॥

अथो[१]ऽऽत्मधाम्नीव स [२]शेखमन्दिरे, [३]समेत्य, [४]भूमीतलशीतलद्युतिः ।
इवा[५]ऽङ्कुरान्कल्पतरो[६]र्मुनीशितु-[७]र्मुनीनिह [८]प्रेक्ष्य [९]मुदं हृदा दधौ ॥१५४॥

1. सौधमु० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्वगृह इव । (२) शेखसद्मनि । (३) आगत्य । (४) साहिः । "इदं तमुर्व्वीतलशीतलद्युति"मिति नैषधे । (५) प्ररोहानिव । (६) सूरेः । (७) शेखगृहे । (८) दृष्ट्वा । (९) जहर्ष ॥१५४॥

क्रमाद[1]मीषाम[2]भिधाः [3]सुधारस-द्रवा इवाऽऽपृच्छ्य [4]पिबन्[5]श्रवःपुटैः ।
[6]प्रमोदवांस्[7]तद्गृहचन्द्रशालिकां, ततः [8]स्वयं [9]क्ष्मारमणो[10]ऽधिरूढवान् ॥१५५॥

(१) सूरिसाधूनाम् । (२) नामानि । (३) अमृतनिःस्यन्दा इव । (४) सादरं शृण्वन् । (५) कर्णपुटकैः । (६) हृष्टः । (७) शेखगृहोपरितनभूमिकाम् । (८) आत्मना । (९) साहिः । (१०) आरूढः ॥१५५॥

[1]मघाभुवेर्वा[2]ऽसुरशीतभानुना, [3]मुनीश्वरेणा[4]ऽम्बुधिनेमिभानुना ।
विधाय [5]गोष्ठीं [6]सदसद्विचारणा, [7]स्थिरीकृताऽर्हन्मतसम्प्रधारणा ॥१५६॥

(१) शुक्रेण । (२) असुरेन्द्रेण । (३) सूरिणा । (४) साहिना । (५) धर्मगोष्ठीम् । (६) इदं सत्, इदमसत्, इदमागमविरुद्धं इदं लोकविरुद्धं इदमुभयाभिमतमिति विचारः । (७) जिनशासनसमर्थनं स्थिरीकृतं-स्थापितं शासनम् ॥१५६॥

[1]तदिष्टगोष्ठीसमये [2]महीहरे-[3]र्हृदन्तरानन्दरसः स [4]कोऽप्यभूत् ।
[5]गिरां हि पारेऽजनि यो [6]गिरां पते-र्न यत्र [7]काव्यस्य च [8]काव्यचातुरी ॥१५७॥

(१) सैव इष्टा मनसोऽभिप्रेता हृदयङ्गमा गोष्ठी-स्वतन्त्रमनोवार्त्ता, तस्याः प्रस्तावे । (२) साहेः । (३) मनोमध्ये । (४) कोऽप्यद्भुतवैभवः । (५) वाचामगोचरः । "गिरां हि पारे निषधेन्द्रवैभवः" इति नैषधेः । (६) बृहस्पतेः । (७) शुक्रस्य । (८) कवित्वरचनाचातुर्यम् ॥१५७॥

[1]ततः [2]प्रदित्सुर्[3]गुरवे स [4]किञ्चनो[5]-ऽऽत्मनो [6]घनो [7]भूभुवनाय [8]नीरवत् ।
[9]प्रणीतवान्[10]सप्रणयं [11]गिरां [12]गृहं, [13]मुखारविन्दं [14]वसुधावधूवरः ॥१५८॥

(१) गोष्ठीकरणानन्तरम् । (२) दातुमिच्छुः । (३) सूरीन्द्राय । (४) किमपि वस्तु । (५) स्वस्य । (६) मेघः । (७) भूमिलोकाय । (८) पानीयमिव । (९) चकार । (१०) सस्नेहम् । (११) वाचाम् । (१२) सौधम् । वाग्युक्तम् । (१३) वदनकमलम् । (१४) नृपतिः ॥१५८॥

[1]परःशताः [2]कौतुकिना [3]पयोनिधिं, [4]प्रमथ्य कृष्टा इव [5]जह्नुना [6]पुनः ।
स्फुरन्ति तेऽमी मम [7]मत्तकुम्भिनः, प्रभो ![8]ऽभ्रमुवल्लभलक्ष्मीलम्भिनः ॥१५९॥

(१) शतात्परे । शतश इत्यर्थः । (२) कुतूहलवता । (३) समुद्रम् । (४) मथित्वा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) कृष्णेन । (६) द्वितीयवारम् । (७) समदा गजाः । (८) ऐरावणशोभाधारिणः ॥१५९॥

यतीन्द्र ! [१]यत्पञ्चमचङ्क्रमोपमा-[२]मवाप्तुकामेन [३]महीविहायसोः ।
[४]भ्रमी [५]समीरेण किमु [६]प्रणीयते, [७]तिरस्कृतोच्चैःश्रवसश्च ते हयाः ॥१६०॥

(१) येषां पञ्चमनामगतेस्तुल्यताम् । (२) प्राप्तुमिच्छता । (३) भूमिनभसोः । (४) भ्रमणम् । (५) वायुना । (६) क्रियते । (७) विजितशक्राश्वाः ॥१६०॥

रथाः [१]सरथ्या मम [२]कामगामिनो, [1]मुनीशितः ! सन्ति [३]मरुद्रथा इव ।
अमी [४]कृतारातिचमूविपत्तयः, [५]कृतान्तदासा इव सन्ति पत्तयः ॥१६१॥

(१) रथवाहिभिरश्वैर्वृषभैर्वा युक्ता । (२) अतिशयेनाऽभिलाषेण च गमनशीलाः । (३) देवस्यन्दना इव । (४) निर्मित्ता वैरिसेनाया आपद् यैः । (५) चण्ड-महाचण्डाद्याः प्रेष्या इव ॥१६१॥

[१]जनार्दनस्येव ममेय[२]मिन्दिरा, [३]सुरेश्वरस्येव च राज्य[४]मुर्जितम् ।
इदं तथाऽन्य[५]द्य[६]दभीप्सितं [७]हृदो, मुनीन्द्र ! तन्मा[८]मनुगृह्य गृह्यताम् ॥१६२॥

(१) कृष्णस्येव । (२) गृहवद्गृहस्थायिनी लक्ष्मीः । (३) इन्द्रस्य । (४) बलवच्च-तुरङ्गचमूकलितम् । (५) अपरतन(रं तद्) । (६) अभिलषितम् । (७) हृदयस्य । (८) अनुग्रहं कृत्वा ॥१६२॥

[१]स्वचेतसो [२]गोचरयन्नपि [३]क्ष्मा-क्षपाकरो [४]निःस्पृहतां मुनीशितुः ।
इवाऽ[५]न्यपुष्टः [६]सहकारकोरकैः, [७]प्रवर्त्तितो भक्तिभरै[८]रदो[९]ऽवदत् ॥१६३॥

(१) स्वहृदि । (२) विदन्नपि । (३) साहिः । (४) निरीहभावम् । (५) कोकिलः । (६) आम्रकलिकाभिः । (७) प्रेरितः । (८) गजाश्वादि । (९) गृह्यतामेतत् ॥१६३॥

[१]निशम्य सूरिर्नृपतेरिमां [२]गिरं, न [३]किञ्चिदे[४]भिर्मम [५]कृत्यमित्य[६]वक् ।
[७]मदोद्धता [८]दुर्नृपवद्गजा अमी, [९]वशास्पृशः [१०]प्रौढकरप्रवृत्तयः ॥१६४॥

(१) श्रुत्वा । (२) वाचम् । (३) किमपि-लेशमात्रमपि । (४) गजाश्वादिभिः । (५) कार्यम् । (६) बभाषे । (७) मदेन मद्येन क्षीबतया वा उत्कटा - दुर्दान्ताः । (८) दुष्टभूपा इव । (९) वशाः अर्थात्परस्त्रियः हस्तिन्यश्च स्पृशन्त्याश्लिष्यन्तीति । (१०) अतिमहान्तो ये करा राजदेयांशा दण्डा वा तेषां प्रवर्त्तनं येभ्यः । तथा महती शुण्डा तथा प्रवृत्तिर्मदप्रवाहो यस्य । "मदो दानं प्रवृत्तिश्चे"ति हेमचन्द्रः ॥१६४॥

---

1. मुमुक्षुमार्त्तण्ड मरुद्रथा० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अतिप्रमाणा नृप ! [2]जिह्मगामिनो-[3]ऽप्यमर्षणाः [4]सुप्तभृतश्च [5]सप्तयः ।
रथाश्च [6]खिङ्गा इव [7]कामवारिणः, [8]स्ववाहिनां [9]बन्धविधायिनः पुनः ॥१६५॥

(१) अतिक्रान्ते(तं) प्रमाणं-पुरुषमानं यैरत्युच्चत्वात् । "जवेऽपि मानेऽपि च पौरुषाधिक"-मिति नैषधे । साम्यमपि दर्शयति भावप्रधाननिर्देशादतिक्रान्तं प्रामाण्यं यैः । (२) वक्रं गमनशीलाः । (३) कोपनाः-अमर्षभाजः-ईर्ष्याजुषः । (४) साधिकनिद्राभाजः अज्ञानाः । (५) अश्वाः । (६) विटा इव । (७) अतिशये[न] स्वेच्छया वा चरणशीलाः । (८) स्वमात्मानं वहन्ति शुभस्थानं प्रापयन्तीति स्ववाहिनः साधवस्तेषां वृषभानां(णां) च । (९) योक्त्रबन्धं बन्धनं कुर्वन्तीत्येवंशीला अनार्या इत्यर्थः ॥१६५॥

अमी [1]नृशंसाः [2]परघातिनः क्षिते[3], शतक्रतो ! [4]शल्यजुषः पदातयः ।
इयं च लक्ष्मीं [5]करिकर्णतालव-[6]च्चला[7]निलान्दोलितकेतुवत्पुनः ॥१६६॥

(१) निर्दयाः क्रूराश्च । (२) अन्यान्वैरिणो वा घ्नन्तीत्येवं शीलाः । (३) भूमीन्द्र ! । (४) शल्यानि शस्त्राणि रागद्वेषादिशल्यानि वा शरीरान्तःप्रविष्टलोहादिशल्यानि वा जुषन्ते-भजन्ते इति । "परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे" इति नैषधे । 'शल्यं शस्त्रं कुन्तश्चे'ति तद्वृत्तिः । (५) गजकर्णवत् । (६) चपला । (७) वायुकम्पितप्रासादशिखरध्वज इव ॥१६६॥

इदं च राज्यं [1]नरकप्रतिश्रुतेः, [2]सुभूमभूभर्त्तुरिवाऽस्ति [3]लग्नकम्[1] ।
[4]परं पुनः कारणमस्ति [5]संसृते-[6]र्नभोऽम्बुदाम्भो[7]ऽङ्कुरसन्ततेरिव ॥१६७॥

(१) नरकाङ्गीकारस्य । (२) सुभूमचक्रिण इव । (३) प्रतिभूः । (४) असाधरणमुत्कृष्टा वा । (५) संसारस्य । (६) श्रावणमेघवारि । (७) अङ्कुरश्रेण्याः ॥१६७॥

भवन्ति [1]योग्या [2]विभवा भवादृशां, न [3]काबिलक्ष्माधवा [4]मादृशाममी[2] ।
[5]यद[6]न्तरायं [7]प्रणयन्ति [8]मुक्तिपूः-प्रयायिनां [9]दुःशकुना इवाऽङ्गिनाम् ॥१६८॥

(१) उचिताः । (२) विशिष्टा राज्यादिलाभान्विता भवा उत्पत्तय इत्यर्थध्वनिः । (३) काबिलमण्डलभूपाल ! । (४) नाऽस्मादृशाम् । (५) यस्मात्कारणात् । (६) विघ्नम् । (७) कुर्वन्ति । (८) मोक्षनगर्यां गमनशीलानाम् । (९) अपशकुना इव ॥१६८॥

[1]शिखामणेस्तस्य [2]निरीहताजुषां, [3]बलाहकस्येव [4]निशम्य [5]निःस्वनम् ।
[6]मुदा[7]विरासी[8]दवनीशमानसे, [9]विदूरभूमाविव [10]बालवायुजम् ॥१६९॥

(१) शिरोमणेः । (२) निस्पृहाणाम् । (३) वनस्य । (४) श्रुत्वा । (५) गर्जारवम् । (६) प्रीतिः । (७) कपट(प्रकटी)बभूव । (८) नृपचित्ते । (९) विदूरशैलभूमौ । (१०) वैडूर्यम् ॥१६९॥

---

1. लग्नम् हीमु० । 2. मादृशां पुनः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]शशंस सूरिं [2]कमिता ततः [3]क्षितेः, [4]किमप्युपादाय [5]कृतार्थ्यतामहम् ।
न [6]यत्करः [7]पात्रकरोपरि स्म भूत्, स [8]मोघजन्मा [1]हि [9]वनप्रसूनवत् ॥१७०॥

(१) कथयति स्म । (२) साहिः । (३) स्तोकं किञ्चित् । (४) गृहीत्वा । (५) कृतार्थः क्रियतां सफलीकार्यः । (६) यस्य पाणिः । (७) साधूनां दानावसरे हस्तोपरि नाऽभूत् । (८) निष्फलावतारः । (९) वनकुसुममिव ॥१७०॥

[1]नवोद्धृतं दध्न इवा[2]ऽम्बुधेः [3]सुधां, [4]मृदश्च [5]हेमो[6]पकृत(ति)[7]स्तनोरिव ।
श्रियस्तथा [8]सारमिदं मुनीन्द्र ! य-त्क्रियेत सा [9]पात्रकराब्जसङ्गिनी ॥१७१॥

(१) नवनीतं म्रक्षणम् । (२) समुद्रस्य । (३) अमृतम् । (४) मृत्तिकायाः । (५) सुवर्णम् । (६) उपकारः । (७) शरीरस्य । (८) फलम् । (९) साधुपाणिपद्मखेलिनी ॥१७१॥

[1]ततो [2]बभाण [3]प्रभु[4]रब्धिनन्दना, [5]स्वतन्त्रचारा [6]व्यभिचारिणीव या ।
श्रयेत [2]को [7]गन्धकलीम[8]लीव तां, [9]वृणोमि किं[10] चाऽन्यदहं [11]महीमणे ! ॥१७२॥

(१) नृपवाक्यानन्तरम् । (२) उवाच । (३) सूरिः । (४) लक्ष्मीः । (५) स्वेच्छाचारिणी । (६) असतीव । (७) चम्पककलिका । "न षट्पदो गन्धक(फ)लीमजिघ्रत" इति सुभाषिते । (८) भृङ्ग इव । (९) याचे । (१०) किं च-मत्कथितं शृणु । (११) भूमीरत्न ! ॥१७२॥

[1]निवेशिता [2]ये नरकेषु [3]नारका, इवाऽङ्गिनो [4]गुप्तिषु [5]सन्ति ते विभो ! ।
विमुञ्च ता[6]नित्थमु[7]दीर्य [8]तस्थुषि, [9]व्रतीश्वरेऽभाषत [10]भूवृषा पुनः ॥१७३॥

(१) स्थापिताः । (२) बन्दिनः । (३) नारकिनः(णः) । (४) कारागृहेषु । (५) नियन्त्र्य रक्षिता वर्त्तन्ते । (६) अमुना प्रकारेण । (७) कथयित्वा । (८) स्थिते । (९) सूरीन्द्रे । (१०) नृपतिः ॥१७३॥

[1]पृषत्सपत्नैरिव [2]वन्यजन्तवः, [3]शकुन्तपोता इव वा [4]शशादनैः ।
[5]विसारवारा इव देव ! धीवरै-[6]रमीभिरु[7]द्वेगमवापिता जनाः ॥१७४॥

(१) सिंहैः । (२) श्वापदा वनचारिणः प्राणिनः । (३) पक्षिबालकाः । (४) श्येनैः । (५) मत्स्यगणाः । (६) चारकचारिभिर्दुर्मतिभिः । (७) सन्तापं-खेदम् ॥१७४॥

अमी [1]प्रजाम्भोजरमाहिमागमा, मुनीन्द्र ! [2]नीतेः [3]परिपन्थिका इव ।
[4]पचेलिमेनेव [5]निजांहसा मया, [6]निगृह्य तच्चा[7]रकगोचरीकृताः ॥१७५॥

(१) लोकलक्ष्मीकमलविनाशने हेमन्तसदृशाः । (२) न्यायस्य । (३) वैरिणः । (४)

1. विपिनप्रसूनवत् हीमु० । 2. तां गन्धकलीमलीव को हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिपाकं प्राप्तेन । (५) स्वपापेनैव । (६) बद्ध्वा-निग्रहं कृत्वा सर्वस्वमादायेत्यर्थः । (७) कारागारे क्षिप्ताः ॥१७५॥

[१]अगण्यपुण्यादिव [२]पक्त्रिमान्निजा-[३]त्तथाऽपि वाक्या[४]द्यतिजम्भविद्विषाम् ।
[५]समुद्धृताः [६]दुःखमहान्धकूपतो, [७]यदृच्छयाऽमी [८]विचरन्तु बन्दिनः ॥१७६॥

(१) संख्यातुमशक्यात्स्वसुकृतादिव । (२) पाकं प्राप्तात् । (३) यद्यप्यमी लोकोद्वेजका तथापि । (४) सूरीन्द्राणां श्रीमतां वचनात् । (५) निष्कासिताः । (६) दुःखमेव पातालोपमो ध्वान्तोपचितावटात् । (७) स्वेच्छया । (८) व्रजन्तु ॥१७६॥

[१]इयं तु [२]पूज्येषु [३]परोपकारिता, [४]प्रसादनीयं [५]निजकार्यमप्यथ ।
[६]तमू[७]चिवानेष[८] [९]यद[१०]ङ्ग्रिनोऽखिला-[११]नसूनि[१२]वाऽवैमि [१३]ततो[1]ऽस्तु [१५]कः [१४]परः ॥१७७॥

(१) इयं-बन्दिमोचनलक्षणा । (२) भुवनार्च्येषु श्रीमत्सु । (३) परेषामुपकारकरणशीलता -उपकर्त्तृत्वम् । (४) प्रसद्य वाच्यम् । (५) किञ्चित्स्वकर्त्तव्यम् । (६) साहिम् । (७) कथयति स्म । (८) सूरिः । (९) कारणात् । (१०) प्राणिनः । (११) स्वप्राणानिव । (१२) जानामि । (१३) तस्मात्कारणात् । (१४) अन्यो जनः । (१५) कोऽस्ति - न कोऽपि ॥१७७॥

[१]सुखं [२]निखेलन्तु [३]विलासविष्किरा-स्त्वया विमुक्ता निजपञ्जरात्पुनः ।
[४]निरोधदुःखं [५]स्वगृहैर्वियोगिन-स्तु[६]दत्य[७]मूर्न्य[८]त्तुहिनं [९]तरूनिव ॥१७८॥

(१) सुखेन । (२) क्रीडन्तु । (३) क्रीडापक्षिणः । (४) निरुध्य रक्षणोद्भूतदुःखम् । (५) स्वगृहैरात्मप्रियाभिर्विरहोऽस्त्येषाम् । "स्वकुलै" रिति पाठे-निजवंशजैः पक्षिभिर्वियोगभाजः । (६) पीडयति । (७) पक्षिणः । (८) हिमम् । (९) द्रुमानिव ॥१७८॥

[१]नभश्चराम्भश्चरभूमिचारिणां, [२]वपुष्मतां [३]स्वैरसुखप्रचारिणाम् ।
[४]निभालयन्नीतिदृशा [६]चराचरं, भवा[७]ऽनिशं [८]साधुरिवा[९]ऽभयप्रदः ॥१७९॥

(१) ख(खे)चर-जलचर-भूचराणां पक्षि-मत्स्य-मृगादीनाम् । (२) जीवानाम् । (३) स्वेच्छया सुखेन प्रचरणशीलानाम् । (४) पश्यन् । (५) नयचक्षुषा । (६) सर्वं जगत् । (७) निरन्तरम् । (८) यतिरिव । (९) सर्वे(र्व)जीवाभयप्रदः ॥१७९॥

[१]शशंस साहिर्ज[२]नयन्ति [३]मन्मनो-विनोदमेते[५] [४]विबुधा इव प्रभो ! ।
अमून्परं [६]नाऽहमवैमि [७]बिभ्रतः, [८]शमीद्रुमान्वह्निमिवा[९]ऽर्त्तिमन्तरा ॥१८०॥[2]

(१) बभाषे । (२) उत्पादयन्ति । (३) मम चित्तस्य क्रीडाम् । (४) पण्डिता इव । (५) विहङ्गमान्(मा) । (६) न जानामि । (७) धारयतः । (८) 'खेजडी' तरूनिव । (९)

1. ततः परोऽस्तु कः । हीमु० । 2. एतौ १८०-१८१तमश्लोकौ हीमु० १८६-१८७ इत्येवंक्रमेण दृश्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीडां चिन्तां वा ॥१८०॥

[१]शापेन [२]कस्याऽपि [३]मुनेरिवाऽनिशं, [४]संरुद्ध्यमाना [५]विविधा [६]खगा मया ।
[७]निर्मुक्तिभाजो [८]भवदीयभाषितै-[९]रेते [१०]स्वतन्त्रं विचरन्तु [११]सत्वरम् ॥१८१॥

(१) आक्रोशवाक्येन । (२) दुर्वास आदिनाम्नः । (३) तापसस्य । (४) संरुद्ध्य पञ्जरेषु क्षिप्त्वा रक्ष्यमानाः(णाः) (५) अनेकजातीयाः । (६) पक्षिणः । (७) मोक्षभाजिनः । (८) श्रीमद्वाक्यैः । (९) सत्त्वाः । (१०) स्वेच्छया । (११) शीघ्रम् ॥१८१॥

इति [१]निशम्य [२]दयोदयगर्भितं, क्षितिपतिर्[३]यतिशीतरुचेर्वचः ।
[४]कवितृकाव्यमिवा[५]ऽप्रतिमं [६]गुणै-र्मनसि [७]तं [८]प्रशशंस [९]चमत्कृतः ॥१८२॥

(१) श्रुत्वा । (२) कृपाप्रादुर्भावकलितम् । (३) सूरेः । (४) कवेः काव्यम् । (५) असाधारणम् । (६) शमादिभिः प्रसादकान्त्यादिभिश्च । (७) सूरिम् । (८) प्रशंसति स्म । (९) सूरिगुणावलोकनादाश्चर्यं प्राप्तः ॥१८२॥

[१]प्रावीण्य[२]मन्यहितकर्मणि पश्य[३]तैषां, [४]तथ्यं यतो [५]व्यवसितिर्महतां [६]परार्था ।
[७]विश्वं[1] [८]शशी [९]धवलयत्यखिलं कलाभि-[१०]रम्भोभरै[११]र्जलधरोऽपि [१२]धरां [१३]धिनोति॥१८३॥
[१]मूर्ध्ना [२]दधाति [३]वसुधां [४]भुजगाधिराजो, [५]नैःस्व्यं[2] [६]निहन्ति मणि[७]रध्वरभागभाजाम् ।
[८]आमोदयन्ति [९]हरितो [१०]हरिचन्दनानि, [११]भिन्दन्ति [१२]सन्तमस[१३]मम्बरकेतवोऽपि ॥१८४॥
[१]सालो [२]दिशन्ति च फलानि [३]पचेलिमानि, वा[४]र्द्धेर्वशा अपि वहन्ति [५]पयःप्रवाहान् ।
[६]विश्वोपकारकरणैकनिबद्धकक्षै-रेभि[७]र्बभूव [८]वसुधा किमु रत्नगर्भा ॥१८५॥

त्रिभिर्विशेषकम् ॥

(१) चातुर्यम् । (२) अपरेषामिष्टनिर्माणे । (३) सूरीणाम् । (४) सत्यम् । (५) व्यापारः प्रयत्न इति वा । (६) परेषामेवार्थः प्रयोजनं यस्याः । तदेव दर्शयति । (७) लोके । (८) चन्द्रः । (९) विशदीकरोति । (१०) जलधाराभिः । (११) मेघोऽपि । (१२) भूमीम् । (१३) प्रीणयति ॥१८३॥

(१) मस्तकेन । (२) धारयति । (३) भूमीम् । (४) शेषनागः । (५) दारिद्र्यम् । (६) नाशयति । (७) देवमणिः । "मखांशभाजां प्रथमो निगद्यसे" इति रघौ । (८) वासयन्ति-सुरभयन्ति । (९) दिशः । (१०) चन्दनद्रुमाः । (११) घ्नन्ति । (१२) अन्धकारम् । (१३) सूर्याः ॥१८४॥

(१) वृक्षाः । (२) यच्छन्ति । (३) पक्वानि । (४) नद्यः । (५) जलपूरान् । (६)

1. शशीव धवलत्य० हीमु० । 2. नैःस्थ्यं हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगतामुपकारविधाने रचितः स्वीकारो यैः । (७) जाता । (८) भूमी । (९) रत्नगर्भाभिधाना ॥१८५॥

[1]भास्वत्करा इव सुदूरभुवः समेता, गृह्णीत दन्तिहयहेममुखं न किञ्चित् ।
तेन प्रसाद्य किमपि स्वविधेयमेषं, प्राप्यः कृतार्थपदवीमिति भूभुजोचे ॥१८६॥

(१) सूर्यांशवः । (२) अतिदूरस्थानात् । (३) आदत्त । (४) गजाश्वस्वर्णादिकम् । (५) कारणेन । (६) समादिश्य । (७) किञ्चिदपि । (८) निजकार्यम् । (९) मल्लक्षणो जनः । (१०) कृतकृत्यतामार्गम् । (११) राज्ञा ॥१८६॥

सम्यग्विमृश्य गुरुणा निजभूमिभर्त्रो[2]-रामुष्मिकैहिकसुखप्रतिभूभविष्णुः ।
क्षीराब्धिसूनुरिव पर्युषणाष्टसङ्ख्य-घस्त्रेष्वमारि[3]रवनीरमणाद्ययाचे ॥१८७॥

(१) विचार्य । (२) सूरिणा । (३) आत्मनः <u>अकब्बर</u>स्य च । (४) परलोकेहलोकयोः साक्षिणीभवनशीला । (५) लक्ष्मीरिव । (६) पर्युषणाष्टदिवसेषु । (७) जीवदया । (८) नृपात् । (९) याचिता ॥१८७॥

उद्वेलिताखिलशरीरिकृपापयोधीन्, प्रेक्ष्य प्रभून्हृदि चमत्कृतिमादधानः ।
चत्वार्यहान्युपरि सन्तु भवद्वृ[4]तेषु, चूलावदत्र मम तं नृप इत्यवादीत् ॥१८८॥

(१) वेलामतिक्रान्तसमग्रसत्त्वदयासमुद्रान् । (२) सूरीन् । (३) आश्चर्यम् । (४) कुर्वाणो दधानो वा । (५) चत्वारो दिवसाः । (६) श्रीमद्याचितेषु दिनेषु । (७) शिखावत् । (८) सूरिम् । (९) राजा ॥१८८॥

प्रारभ्य मेचकनभोदशमीं शमीश !, यावन्नभस्य बहुलेतरषष्ठिका स्यात् ।
तावच्चरन्तु सुखमङ्गिगणास्त्रिलोकी-जीवातुनेव भवतां वचसेत्युदित्या ॥१८९॥

स्वाह्वाङ्कितं कजसुहृन्मितवासराणां, बिभ्रद्विचित्ररुचिकाञ्चनचारिमाणम् ।
अम्भोनभोवनतनूमदमारिसत्कं, प्रादायि तेन गुरवे फुरमानषट्कम् ॥१९०॥

युग्मम् ॥

(१) आदौ संस्थाप्य । (२) श्रावणकृष्णदशमीम् । (३) शमवतां नायक ! । (४) भाद्रपदशुक्लषष्ठिदिनं स्यात् । (५) द्वादशवासरान् । (६) स्वैरं पर्यटन्तु स(भ)क्षयन्तु वा । 'चर गतिभक्षणयोः' । (७) सुखेन । (८) जीवव्रजः । (९) त्रैलोक्यजीवनौषधेनेव । (१०) श्रीमताम् । (११) वाचा । (१२) कथयित्वा ॥१८९॥

1. एतच्छ्लोकारम्भे '**मया स्म हूयन्त सुदूरदेशतो गजादि**' - एषा पङ्क्तिर्दृश्यते । पुनः टीकाया आरम्भेऽस्याः टीकापि आकारिताः अतिदूरस्थानात् हस्त्यश्वादि-एवंरूपेण दृश्यते । 2. ०भर्त्तु० हीमु० । 3. ०मारिमव० हीमु० । 4. ०द्वृतानां हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्वनामाङ्कितम् । (२) सूर्यसङ्ख्यानां द्वादशानां दिनानाम् । (३) विशिष्टं चित्रं यत्र विस्मयकारिणी वा कान्तिर्यस्य तादृक्स्वर्णस्य चारुत्वम् । (४) जलचर-ख(खे)चर-वनचरजीवानां दयासत्कम् । (५) प्रदत्तानि । (६) षट्फरमानानि । (७) नृपेण ॥१९०॥

[१]व्यक्तिर्यथा [२]प्रथममार्प्यत [२]गूर्जराणां, [३]सौराष्ट्रमण्डलफतेपुरदिल्लिकानाम् ।
[३]द्वैतीयिकं [४]सदनमेरुकृतं तृतीयं, [५]तुर्यं पुन[६]र्निखिलमालवमण्डलस्य ॥१९१॥

[1][१]श्रीलाभलाभपुरयुग्मुलताननाम, नीवृद्द्वयस्य [२]कुसुमाशुगबाणसङ्ख्यम् ।
[३]षष्ठं तु [४]रक्षणकृते [५]स्वसवेशदेशे, [६]श्रीसाधुसिन्धुरसनारजनीश्वरस्य ॥१९२॥

युग्मम् ॥

(१) पृथक्त्वेन कथनम् । (२) प्रथमं गूर्जरदेशस्य । (३) द्वितीयं सौराष्ट्र-फतेपुर-दिल्लीमण्डलानाम् । (४) तृतीयं अजमेरुदेशस्य । (५) चतुर्थम् । (६) मालवानाम् ॥१९१॥

(१) लक्ष्म्या लाभो यस्मात्तादृग्लाभपुरयुतमुलतानमण्डलद्वयस्य । (२) स्मरबाण-प्रमाणम् । पञ्चममित्यर्थः । (३) षष्ठं तु श्रीहीरविजयसूरीश्वराणाम् । (४) पार्श्वे । (५) रक्षणार्थम् ॥१९२॥

[१]नैकक्रोशमितं न [२]दृग्विषयभाक्पारं [३]पयोराशिव-
त्क्रीड[४]त्कुञ्जरराजि वाजिननितामर्त्यव्रजभ्राजितम् ।
[५]नानानीडजमीननीरभरितं [६]तड्डाबराख्यं सर-
स्ते[७]भ्यो[८]ऽदत्त [९]निषिद्धमीननिधनं [१०]तद्विज्ञवाग्भि[११]र्नृपः ॥१९३॥

(१) अनेकैः क्रोशैर्गव्यूतिभिः प्रमाणीकृतम् । (२) दृष्टेर्विषयतां भजते, एवंविधं परतटं यस्य न । (३) समुद्रमिव । (४) जलकेलीं कुर्वाणैर्गजघटातुरगस्त्रीयुक्तपुरुषैः शोभितम् । (५) विविधजातीया ये पक्षिणस्तथा मत्स्या यत्र तादृशेन नीरेण सम्पूर्णम् । (६) डाबरनामतटाकम् । (७) सूरिभ्यः । (८) दत्तवान् । (९) निवारितं मत्स्यमारणं यत्र । (१०) सूरीश्वरपण्डितवचनैः । (११) राजा ॥१९३॥

[2][१]श्रीसाहि[२]रित्या[३]लपति स्म सूरयः, [४]श्रीमद्गिरा मे[५] न्य[८]वसद्[७]दया [६]हृदि ।
हंसी [९]पयोदध्वनिनेव [१०]मानसे, [११]पृच्छामि किं [११]त्वेतदहं गुरून्प्रति ॥१९४॥

(१) अकब्बरसाहिः । (२) इति-वक्ष्यमाणम् । (३) कथयति स्म । (४) युष्माकं वाचा । (५) मम । (६) मनसि । (७) कृपा । (८) समेता । (९) मेघगर्जितेन । (१०) मेघागमे हंसा मानससरसि यान्ति इति श्रुतिः । (११) एतद्विशेषप्रश्नं करोमि ॥१९४॥

---

1. एतच्छ्लोको हीमु० नास्ति । तस्य टीका चास्ति । 2. भूजानिरि० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेहसीव [१]युग्मिनां, न [२]कोऽपि [1]हन्ति कञ्चन ।
[३]कदाचिदी[४]दृशं दिनं, [६]समेष्यति [५]क्षितौ प्रभो ! ॥१९५॥[2]

(१) समये युगलिकानाम् । उत्सर्पिण्यां प्रथमारक इव । (२) हिंसकः सिंहादिरपि । (३) कस्मिन्नपि काले । (४) ईदृशोऽवसरः । (५) अस्यां पृथिव्याम् । (६) आगमिष्यति ॥१९५॥

[१]पलाशतां बिभ्रति [२]यातुधाना, इवाऽखिला अप्य[४]नुगामिनो [३]मे ।
[५]अमारिरे[६]षां न च रोचते क्वचि-[७]न्मलिम्लुचानामिव [८]चन्द्रचन्द्रिका ॥१९६॥

(१) मांसमश्नन्तीति । (२) राक्षसा इव । (३) मम । (४) सेवका मुद्गलाः । (५) जीवदया । (६) यवनानाम् । (७) चौराणाम् । (८) चन्द्रज्योत्स्ना ॥१९६॥

[१]शनैः शनैस्तेन मया [२]विमृश्य, [३]प्रदास्यमानामपि [४]सर्वथैव ।
दत्तामिवैताम[५]वयान्तु यूय-ममारि[७]मन्तर्म[६]हतेव [८]कन्याम् ॥१९७॥

(१) मन्दं मन्दम् - स्तोकैरेव दिनैः । (२) विचार्य - दिनादीनां विमर्शं विधाय । (३) अवश्यं विश्राणयिष्यमाणाम् । (४) त्रिकरणशुद्ध्यैव प्रदानाभिप्रायेण । (५) जानन्तु । (६) महात्मना । (७) स्वमनसि । (८) दातुं कल्पितां स्वकन्यामिव ॥१९७॥

[१]प्राग्वत्कदाचिन्मृ[२]गयां न [३]जीव-हिंसां विधास्ये न पुनर्भ[४]वद्वत् ।
सर्वेऽपि सत्त्वां [५]सुखिनो वसन्तु, [६]स्वैरं [७]रमन्तां च [८]चरन्तु [९]मद्वत् ॥१९८॥

(१) पूर्ववत् । हाथी जोडी सकारकादिप्रकारेण अन्यप्रकारेणाऽपि च । (२) आखेटकं विनाऽपि । (३) परप्राणिवधम् । (४) युष्मद्वत् । (५) सुखभाजः । (६) स्वेच्छया । (७) क्रीडन्तु । (८) भक्षणसञ्चरणादिकुर्वन्तु । (९) अहमिव ॥१९८॥

[१]प्रागागमे [२]प्राभृतवत्कि[३]मेषां, कार्यं मया चिन्तयतेति[४] चित्ते ।
[५]प्रवर्त्तिताऽसौ [६]नवरोजघस्त्रा-मारिः क्षितौ [७]खेलनकौतुकेन ॥१९९॥

(१) पूर्वागमने-यदा श्रीमतो गूर्जरेभ्यः समेतास्तदवसरे । (२) ढौकनमिव । (३) किं कर्त्तव्यं मया करणीयम् । (४) इति चित्ते विचिन्तयता मया । (५) कृता, लोकानां पार्श्वे च कारिता । (६) नवरोजदिवसेष्वमारिः । (७) क्रीडनकौतूहलेन ॥१९९॥

[१]आघाटनगरक्षोणी-शक्रेणेव [४]तपा इति ।
द्वा[२]दशाब्दाचाम्लकर्त्तु-[३]र्जगच्चन्द्रव्रतीशितुः ॥२००॥

यथा [१]दफरखानेन, स्थम्भतीर्थे प्रमोदतः ।
[२]मुनिसुन्दरसूरीन्दो-[३]र्वादिगोकुल[3]संढकः ॥२०१॥

1. कं हनिष्यति हीमु० । 2. अतः परं हीमु०अन्तर्गत१९८तमश्लोको हीसुंप्रतौ नास्ति । 3. ०संकटः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]गुणश्रेणीमणीसिन्धोः, [2]श्रीहीरविजयप्रभोः ।
[3]जगद्गुरुरिदं [4]तेन, [5]बिरुदं प्रददे [6]तदा ॥२०२॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

(१) आघाटनगरनृपतिना । (२) द्वादश वर्षाणि यावदाचाम्लकर्त्तुः । (३) श्रीजगच्चन्द्रसूरेः । (४) तपा इति बिरुदं ददे ॥२००॥

(१) स्थम्भतीर्थपतिना दफरखानेन । (२) श्रीमुनिसुन्दरसूरेः । (३) वादिगोकुलसंड इति बिरुदं दत्तम् ॥२०१॥

(१) गुणगणमणिरत्नाकरस्य । (२) श्रीहीरविजयसूरेः । (३) जगद्गुरुरिति । (४) अकब्बरेण । (५) बिरुदं दत्तम् । (६) तस्मिन्नवसरे ॥२०२॥

[1]नीत्वाऽ[2]स्तोका[3]न्बन्दीलोकान्, [4]श्रीमत्सूरेः पादोपान्ते ।
[5]प्रोज्झाञ्चक्रे [6]क्षोणीशक्रो, [7]देहीवां[8]ऽहोव्यूहां[9]स्तीर्थे ॥२०३॥

(१) प्रापय्य । (२) बहून् । (३) बन्दिजनान् । (४) प्रभुचरणसमीपे । (५) मुञ्चति स्म । (६) नृपः । (७) प्राणीव । (८) पापवितानम् । (९) शत्रुञ्जयादिस्थाने ॥२०३॥

[1]प्रणम्य [2]ते प्रभोः पदा-[3]नवीवदन्निदं मुदा ।
[4]मुनीन्द्र ! [5]नन्दताच्चिरं, [6]सुवर्णसानुमानिव ॥२०४॥

(१) नत्वा । (२) बन्दिजनाः । (३) इदमुचुः । (४) हे हीरविजयसूरे ! । (५) त्वं चिरं नन्द जीव । (६) मेरुरिव ॥२०४॥

[1]उत्थाय [2]निशीथिन्यां, [1]प्रभुपाश्र्वात्प[3]क्षिणां [4]विमुक्तिकृते ।
[5]डाबरसरसि स [6]गतवान्, [7]धनविजयं सार्द्ध[8]मादाय ॥२०५॥

(१) प्रभुपाश्र्वात् निर्गत्य । (२) रात्रौ । (३) विहङ्गानाम् । (४) मोचनाय । (५) डाबरनाम्नि तटाके । (६) गतः । (७) हीरसूरिप्रधानं धनविजयाभिधं सचिवम् । (८) गृहीत्वा ॥२०५॥

पक्षिणस्त[1]त्क्षणा[2]त्क्षोणिचक्रेन्दुना, पञ्जरेभ्यो[3] विमुक्ता समस्ता अपि ।
प्राप्तवन्तः [4]स्वनीडद्रुमान्ध[5]न्विना, [6]कार्मुकेभ्यः शरव्यं [7]पृषत्का इव ॥२०६॥

(१) तस्मिन्नेवाऽवसरे । (२) साहिना । (३) पञ्जरेभ्यो मुत्कलीकृताः । (४) निजकुलायतरून् । (५) धनुर्धरेण । (६) चापेभ्यः । (७) शरा इव ॥२०६॥

[1]तेऽपि [2]पत्नीपरीरम्भिणो [3]भाषितै-[5]र्बिभ्रतः [4]सम्मदं सूरिमित्यूचिरे ।
[6]त्वद्गिराऽस्माभिरा[7]पे यथा [8]निर्वृति-स्त्वं [9]लभस्वा[10]ऽऽशिषा नस्तथा [11]निर्वृतिम् ॥२०७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) पक्षिणोऽपि । (२) पत्नीं स्वस्वजायां आलिङ्गतीत्येवंशीलाः । (३) स्वस्वभाषाभिः । (४) हर्षम् । (५) धारयन्तः । (६) तव वाचा । (७) प्राप्ता । (८) सुखम् । (९) प्राप्नुहि । (१०) मङ्गलशंसनेन । (११) सुखं मोक्षं च ॥२०७॥

[1][१]त्रिजगज्जनगीयमानया-ऽ[२]नुगतः सूरिशशी [३]यशःश्रिया ।
[४]वसतिं [५]सुदृशा [६]नवोढया, [७]परिणेतेव [८]ततो व्यभूषयत् ॥२०८॥

(१) त्रैलोक्यलोकैः स्तूयमानया । (२) सहितः । (३) कीर्त्तिलक्ष्म्या । (४) उपाश्रयं गृहं च । (५) स्त्रिया । (६) नवपरिणीतया । (७) चरयितेव । (८) प्रातःकाले ॥२०८॥

[१]प्रावर्त्तयत्पुनर्भुवो[२], [३]भास्वान[४]मारिम[३]ङ्गिनाम् ।
[५]मूर्धाभिषिक्तवन्निजा-माज्ञा[६]मशेषमण्डले ॥२०९॥

(१) प्रवर्त्तयति स्म । (२) नृपः । (३) प्राणिनाम् । (४) दयाम् । (५) महाराज इव । (६) समस्तदेशे ॥२०९॥

[१]तत्र च [२]व्यतिकरेऽ[३]टवीविय-द्वारिचारियुवजानिजन्मिनाम् ।
[४]सङ्कथा [५]विरहदाववारिमु-ग्मालिका इव मिथोऽ[६]त्र [७]जज्ञिरे ॥२१०॥

(१) तस्मिन् । (२) समये । (३) वनचारि-नभश्चारि-जलचारिणां तथा युवती जाया येषां तादृशानां जीवानाम् । (४) परस्परं वार्त्ताः । (५) वियोगदावानले मेघमालिकातुल्याः । (६) अत्र-जगति । (७) सञ्जाताः ॥२१०॥

[१]काऽप्या[२]चख्यौ [३]प्रियमिति [४]करिणी, किं [५]मत्तो [६]मद्यप इव [७]रमसे ।
नो [८]जानीषे [९]मृगयुमिव [१०]नृपं, [११]हन्तारं [१२]तद्[१५]व्रज [१३]गज ! [१४]गहनम् ॥२११॥

(१) अनिर्दिष्टनामा । (२) वक्ति स्म । (३) भर्त्तारम् । (४) हस्तिनी । (५) मदवान् । (६) मदि[रा]पायीव । (७) क्रीडसि । (८) जानासि । (९) लुब्धकम् । (१०) <u>अकब्बरम्</u> । (११) जगज्जीवसंहारिणम् । (१२) तवाऽपि हन्तारं तस्मात्कारणात् । (१३) हे प्रिय गज ! (१४) गिरिगहने । (१५) गच्छ ॥२११॥

[१]सोऽप्य[२]वक्करिणि ! मा[३] [2]बिभेषि नः[५], [४]सूरिशासनवशान्न[५] हन्ति सः ।
[६]किन्त्व[७]नेकपतया [८]रणेषु [९]म-द्गोत्रिणा[१०]मुपकृतिस्मृते[८]रिव ॥२१२॥

(१) गजोऽपि । (२) बभाषे । (३) मा भयं कार्षीः । (४) सूरीन्द्रस्याऽनुशिष्ट्या ।

---

1. एतच्छ्लोको हीमु० टीकायां पाठान्तररूपेण दृश्यते । हीमु०स्वीकृतपाठस्त्वेवम्-

त्रिजगज्जनगीयमानयानुगतोऽद्वैतयशःश्रियालये ।
भरतावनिभृज्जयश्रिया पुरि चक्रीव ततः स जग्मिवान् ॥

2. बिभीहि हीमु० ।

(५) स अस्मान्न हन्ति । (६) किन्तूत्प्रेक्षायाम् । (७) अनेकान्याति रक्षति-तत्त्वेन । (८) अथवा सङ्ग्रामेषु । (९) अस्मद्गोत्रिणामेकवंशजातानां गजानाम् । (१०) परदलविदलनाद्युपकार-स्मरणात् ॥२१२॥

इति काचिदुवाच [1]हयद्विषती, [2]प्रमदं प्रिय ! [3]मुञ्च [4]सचिन्त इव ।
[5]भुजमूर्द्धविरोधितयेव [6]यतः, [7]प्रणिहन्तुमना अयं[8]मेति नृपः[9] ॥२१३॥

(१) महिषी । (२) हर्षम् । (३) त्यज । (४) चिन्तायुक्त इव । (५) स्कन्ध-वैभववैरित्वेनेव । (६) यस्मात्कारणात् । (७) हन्तुकामः । (८) आगच्छति । (९) नृपः ॥२१३॥

[1]इत्य[2]वक्सो[3]ऽपि [4]कान्ते![5]ऽधृतिं [6]भूपते-र्मा[7] कृथा यन्निदेशेन [8]सूरीशितुः ।
[9]सोऽप्ययं[10]वद्येन नश्चक्षुषा [11]नेक्षते, [12]यानभावेन [13]बिभ्यत्[14]कृतान्तादिव ॥२१४॥

(१) अमुना प्रकारेण । (२) कथयति स्म । (३) महिषोऽपि । (४) हे प्रिये ! । (५) भूपतेर्नृपात् सकाशात् । (६) अधृतिमस्वास्थ्यम् । (७) मा कार्षीः । (८) हीरसूरेराज्ञया । (९) नृपोऽपि । (१०) दुष्टेन । (११) न पश्यति । (१२) वाहनत्वेन । (१३) भयं दधत् । (१५) यमात् ॥२१४॥

काऽपि प्रियं वदति [1]वारणवैरिणीति, [2]शेषे सुखं कथमहो [3]गिरिगह्वरेषु ।
[4]हन्ता नृपस्तव [5]कलत्रकलत्रलक्ष्मी-स्पर्द्धाक्रुधा [6]निजगजारितयाऽथवा किम् ॥२१५॥

(१) सिंही । (२) निद्रासि । (३) पर्वतगृहासु । (४) घातुकः । (५) स्वस्त्रीणां श्रोणिश्रीभिः संहर्षोद्भूतकोपेन । (६) आत्मीयानां हस्तिनां शत्रुत्वेन वा ॥२१५॥

सिंहोऽप्याख्यद्[1][1]भयभीता मा स्म भू-र्ना[2]यं हन्ति [3]व्रतिशार्दूलशास्तेः ।
यद्वा [4]शौर्या[5]द्दलितद्वेषिनागान्-हन्या[6]दुच्चैः शिरसः [7]संश्रितान्[8]कः ॥२१६॥

(१) भीत्या चकिता व्याकुला । (२) नृपाः । (३) सूरीन्द्रादेशात् । (४) शूरत्वेन । (५) हतप्रतिपक्षकुञ्जरान् । (६) उच्चैः शिरसः - महतः । (७) आश्रितान् । (८) कः परः ॥२१६॥

[1]वपुषा कुरुषे किम[2]भ्यसूयां, [3]स्मयमानासनशाखिशाखया त्वम् ।
[4]किम[5]वैषि न [6]भूवृषैति हन्तुं, दयितं [7]द्वीपिनमित्युवाच काचित् ॥२१७॥

(१) शरीरेण । (२) ईर्ष्याम् । (३) विकसितपीतसालतरुशाखया । असनशाखानां व्याघ्रस्य तुल्यत्वेनोपमानं दृश्यते । रघुकाव्ये यथा - "व्याघ्रानभीः फुल्लासनाग्रविटपानिव" इति । (४) किमिति प्रश्ने । (५) न जानामि । (६) भूमीन्द्रः । (७) व्याघ्रम् । हैमनाममालायाम्-

1. ०ख्यत्कुरु मा भीरु भीतिं नायं हन्ति व्रतिशार्दूलशास्त्या । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"व्याघ्रो द्वीपी शार्दूलचित्रकौ चित्रकायः पुण्डरीक" इत्य[ने]कान्येव नामानि ॥२१७॥

समस्व [१]स सुखं [२]योषे ! [३]यदस्मा-न्न हन्ति [४]यतिजम्भरेर्गिरा सः[५] ।
[६]मुदा [७]पिबति यन्मां पुण्डरीकं, [८]सुदृष्टिरिव [९]शैलं पुण्डरीकम् ॥२१८॥

(१) सह सुखेन वर्त्तते यत्तत् । (२) कान्ते ! । (३) यत्कारणात् । (४) सूरिवाचा । (५) नृपः । (६) हर्षेण । (७) सादरं विलोकयति । (८) सम्यग्दर्शनवान् श्राद्धः । (९) शत्रुञ्जयपर्वतम् ॥२१८॥

[१]पोत्रिणी वदति काचन [२]दयितं, किं [३]निखेलसि [४]निषद्वरसुखितः ।
[५]रुद्र एष [६]निहनिष्यति [७]मखव-त्त्वां [९]विचिन्तय [८]तदायतिकुशलम् ॥२१९॥

(१) सूकरी । (२) भर्त्तारम् । (३) क्रीडसि । (४) कर्दमे सातयुक्तः । (५) चण्डः । शम्भुश्च । (६) मारयिष्यति । (७) मखो दैत्यविशेषस्तद्वत् । (८) तस्मात्कारणादुत्तरकाले स्वस्य कल्याणम् । (९) विमृश ॥२१९॥

[१]पातालावटकोटरान्तरपतत्पाथोधिनेमिर्मया
दंष्ट्रायां यद[२]धारि [३]धेनुकभिदो [४]भागीभवद्वर्ष्मणा ।
[५]भूभृत्त्वादिव [६]गोत्रिणं न [७]मिनुयाद्धा[८]त्रीपतिः [९]पोत्रिणि !
श्रीमत्सूरिगिरा [१०]शुभंयुरिव तत्[११]स्वैरं [१२]चरेत्या[१३]ह सः[१४] ॥२२०॥

(१) पातालरूपकूपगर्त्तामध्ये पतन्ती भूमी । (२) धृता । (३) विष्णोः । (४) अंशीभूतशरीरेण । (५) भूमीधरणत्वेन । (६) सगोत्रम् । (७) न हन्यात् । (८) नृपः । (९) सूकरि! । (१०) कल्याणवानिव । (११) स्वेच्छया । (१२) भक्षय सञ्चर च । (१३) कथयति स्म । (१४) वराहः ॥२२०॥

इति [१]पृषती [२]शंसति [३]दयितं स्वं, किमु [४]जितकासीव [५]विगतभीतिः ।
[६]स्वयुवतिजङ्घा प्रतिभटभावा-दिव तव [७]हंता यदव[८]निकान्तः ॥२२१॥

(१) मृगी । "पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे" इति नैषधे । (२) वदति । (३) पृषतम् । (४) विजितसङ्ग्राम इव । (५) निर्भयः । (६) निजकान्ताजङ्घाविद्वेषिभावात् । (७) घातकः । (८) नृपः ॥२२१॥

[१]पृषदिति कान्तां निगदति [२]भूभृद्-व्रतिविभुवाचा [३]व्यथयति नाऽस्मान् ।
[४]निजकजनेत्रानयनसखित्वात्, [५]शरणागतत्वादुत किमु [६]राज्ञः ॥२२२॥

(१) मृगः । 'पृषत्' शब्दोऽपि मृगवाची । यथा- "पृषत्किशोरी कुरुतामसङ्गत"मिति नैषधे । (२) नृपः । (३) मारयति । (४) स्वकान्तानां नयनैर्मैत्र्यात् । (५) प्राप्ताश्रयत्वात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) चन्द्रस्य नृपस्य च ॥२२२॥

काऽपि मयूरी वदति मयूरं, किं [१]केकाङ्कितताण्डवकेलीम् ।
[२]व्यातनुषे [३]मनुषे [1]मनुषाणां[४], पूषणमेनं [५]नाऽऽत्मरिपुम् ॥२२३॥

(१) केकायुक्तनृत्यक्रीडाम् । (२) विस्तारयसि । (३) न जानासि । (४) नरेन्द्रम् । (५) स्वहन्तारम् ॥२२३॥

[१]विष्टपजीवनवारि[2]मुचां किं, [२]मित्रतया [३]शितिकण्ठतया वा ।
[४]सूरिगिरा न निहन्ति नृपोऽस्मा-[५]न्मेचकिनौ[६]च्यत [७]मेच[3]किनीति ॥२२४॥

(१) विश्वजीवनस्य मेघस्य । (२) मित्रत्वेन । (३) ईश्वरत्वेन वा । (४) प्रभुवाचा । (५) मयूरेण । (६) भाषिता । (७) मयूरी ॥२२४॥

[१]ऊचे कापि [२]पिकं पिकीनि [३]विरहिव्यामोहजेना[४]ऽहसा
[५]प्रादुर्भूतमिवा[६]ऽवयासि [७]दमनं [८]न [९]क्षोणिसङ्क्रन्दनम् ।
स [१०]स्माऽऽहेति विभोर्गिरा [११]द्विजतयेवाऽसौ [१२]स्वलीलावती-
लीलापञ्चमगा[4]नपाठकतया वा[१३]ऽस्मान्न [१४]हन्ति प्रिये ! ॥२२५॥

(१) कथयति स्म । (२) कोकिलाम् । (३) वियोगिनामतिविरहोत्पादनोद्भूतमूर्च्छा-सन्तापजनितेन । (४) पापेन । (५) प्रकटीभूतम् । आगतमित्यर्थः । (६) न जानासि । (७) घातिनम् । (८) नृपम् । (९) उवाच । (१०) ब्राह्मणत्वेनेव । (११) आत्मीयविलासवतीनां लीलाकलितपञ्चमध्वनितस्य पाठकत्वेनाऽध्यापकत्वेनेव वा । (१२) आत्मनः । (१३) न हिनस्ति ॥२२५॥

स्वां[१] पत्नीं [२]ताम्रचूडो [३]दरतरलदृशं हन्तु[४]मभ्येति [५]भूमी-
भास्वांस्त्वां मामपीति [६]प्रकटितवचसं [७]धीरयन्नित्यवादीत् ।
मा भूस्त्वं [८]भूरिभीते[९]र्भवनमिह [१०]जगद्बोधकर्तृत्वशक्ति-
व्यक्तिप्रेमातिरेकादिव [११]विभु[5]र्वचसो [१२]ध्वंसते नो[१३]ऽयमस्मान् ॥२२६॥

(१) निजजायां कुर्कुटीम् । (२) कुर्कुटः । (३) भयचपललोचनाम् । (४) आगच्छति । (५) साहिः । (६) उदीरितवचनाम् । (७) आस्वा(श्वा)सयन् । (८) बहुभयस्य । (९) स्थानम् । (१०) जगज्जनानां प्रतिबोधकरणत्वसामर्थ्ये स्फुटतया स्नेहातिशयेन । (११) सूरिनिर्देशात् । (१२) घातयति । (१३) नृपः ॥२२६॥

---

1. नो मानुषपूषणमेनं स्वासहजम् । हीमु० । 2. ०वारिधरैरिव मैत्र्याद्वा शितिकण्ठतया । हीमु० । 3. कान्तेति हीमु० । 4. ०गीति० हीमु० । 5. ०वचसा हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊचे हंसीति हंसं [1]किमु तव [2]नृपते[3]र्भीति[4]रभ्येति नोन्त-
र्हन्ता ते यन्[5]मृगाक्षीललितगतिपरिस्पर्द्धिभावादिवाऽसौ ।
[6]सोऽपि [7]स्मित्वा [8]शशंस [9]श्रुतसुरसुदृशो [10]विश्वकर्त्तुश्च जाने
[11]यानत्वान्मां न कश्चिद्[12]व्रतिपतिवचनो[13]दीश्वरीस्यान्निहन्तुम्[1] ॥२२७॥

(१) प्रश्ने । (२) राज्ञः सकाशाच्चित्ते । (३) भयम् । (४) नायाति । (५) स्वस्त्रीणां विलासगत्या सह परिस्पर्द्धित्वात् । (६) हंसोऽपि । (७) हसित्वा । (८) उवाच । (९) सरस्वत्याः । (१०) ब्रह्मणश्च । (११) वाहनत्वात् । (१२) सूरिवाक्यात् । (१३) हन्तुं समर्थः कोऽपि न स्यात् ॥२२७॥

[1]रथाङ्गी [2]रथाङ्गं जगादेति दूरात्, प्रयाहि प्रियाऽस्मा[3]द्द्विषत्कालरात्रेः ।
यतो [4]राजविद्वेषितोदीतकोपा-तिरेकादसौ त्वां हनिष्यत्यवश्यम् ॥२२८॥

(१) चक्रवाकी । (२) कोकम्-प्रियम् । (३) वैरिणां कल्पान्तकालान्त्यनिशासदृशात् । (४) राज्ञा स्वेन चन्द्रेण वा या वैरिता ततः प्रकटितरोषातिशयात् ॥२२८॥

[1]प्राहेत्य[2]सौ मां स नृपः [3]कृपावा-न्न हन्ति जाने [4]निजयौवतस्य ।
[5]रतोत्सवोच्छ्वासितकञ्चुकेषु, कुचेषु [6]सञ्चारितचित्तवृत्तिः ॥२२९॥

(१) उवाच । (२) चक्रवाकः । (३) दयालुः । (४) स्वयुवतीसमूहस्य । (५) सुरतस्याऽऽनन्दसमयत्वादुत्सवस्तत्रोच्छ्वासित उच्चैः कृतो निष्कासितो कञ्चुको येभ्यः । (६) सङ्क्रमितमनोव्यापारः । तादृक्स्तनस्मरणादस्मान्न हन्ति-तत्तुल्यत्वेन ॥२२९॥

[1]प्रियाश्च[2]कोरानपि [3]खञ्जरीटान्, वदन्त्यदस्तिष्ठथ [4]किं सुखेन ।
पुरैष[5] बध्नाति [6]वधूविलोचना-श्रियोऽधमर्णान्भवतो यतो नृपः ॥२३०॥

(१) स्त्रियः । (२) ज्योत्स्नाप्रियान् । (३) खञ्जनांश्च । (४) सुखेन किं स्थिताः स्थ । (५) बन्धं प्रापयिष्यति । पुरा योगे भविष्यदर्थः । (६) स्वकान्तानयनश्रियो लक्ष्म्या ग्राहकास्तस्माद्बन्त्स्यति पश्चाददानोऽधमर्णः । समर्थेनोत्तमर्णेनाऽवश्यं निगृह्यते इति लोकाचारः ॥२३०॥

[1]इत्थ[2]ममी प्रति [3]दयिताः प्रोचु-र्मास्म [5]भयं [4]मनसाऽपि [6]जिहीध्वम् ।
येन [7]सपक्षतयेव न [11]पश्येत्[8]-सूरिगिरां[10]ऽभिमुखं [12]नृपतिर्नः[9] ॥२३१॥

(१) अमुना प्रकारेण । (२) चकोरखञ्जरीटाः । (३) स्त्रियः । प्रति । (४) चित्तेनाऽपि । (५) भीतिम् । (६) गच्छत । (७) पक्षयुक्तत्वेन तुल्यपक्षत्वेन वा । "पक्षो गोत्रे परीवारे पक्षतौ चे"त्यनेकार्थः । तुल्यपक्षो हि हन्तुमशक्य इति । (८) प्रभुवाक्यात् । (९) अस्माकम् । (१०)

1. ०दीश्वरः स्या० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मुखमपि । (११) न विलोकयति । (१२) नरपतिः ॥२३१॥

[१]न्यगदद[२]निमिषी[३]नं [४]मीनमेत-त्किमु[६] रमसे [५]रमणीसखः सुखेन ।
[७]अनय ! [८]नयपयोधिपारदृश्वा, किमु [९]कुलवैरितया हनिष्यति त्वाम् ॥२३२॥

(१) कथयति स्म । (२) मत्स्यी । (३) भर्त्तारम् । (४) मत्स्यम् । (५) बहुस्त्रीत्वेन स्त्रीसखः । (६) किं क्रीडसि । (७) न विद्यते नयो-नीतिः कुलक्षयकारित्वाद्यस्य । (८) न्यायसमुद्रपारगामी । (९) वंशस्य शत्रुत्वेनेव । यः कुलसंहारकृत्सोऽवश्यं हन्यत एवेति ॥२३२॥

[१]तिमिरिति कान्तां [२]मदनविनोदी, वदति [३]मुनीन्दोर्वचनविलासात् ।
[४]अनिमिषभावादिव विनिहन्तुं, [५]धरणिसुधांशुः [७]प्रभवति नाऽस्मान् ॥२३३॥

(१) मीनः । (२) स्मरस्येव विनोदोऽस्याऽस्तीति-कामुकत्वात् । (३) सूरीन्द्रवाग्विलासितात् । (४) देवत्वादिव । देवा हि मनुष्यैर्हन्तुं न शक्यन्ते । "अनिमिषो देवमीनयो" रित्यनेकार्थः । (५) <u>अकब्बरः</u> । (६) हिंसितुम् । (७) नाऽलम् ॥२३३॥

[१]व्याधेन[1] [२]वेध्यीकृतविग्रहेव, [३]मृगाङ्गना [४]साध्वसधावमाना ।
[५]त्रासातिमात्रास्थिरनेत्रपत्रा, [६]वादालबालेत्यलपत्प्रियं[७] स्वम् ॥२३४॥
वादाल ! [१]कुद्दालवदा[२]नने किं, दंष्ट्रां [३]स्फुटीकृत्य [४]सुखेन [५]शेषे ।
[६]गम्भीरताभि[७]श्चुलुकीकृताब्धि-[८]स्त्वद्भानुसूनु[१०]र्यदुपैति [९]भूपः ॥२३५॥ युग्मम् ॥

(१) लुब्धकेन । (२) शरव्यीकृतं शरीरं यस्याः । (३) हरिणी । (४) भयेन पलायमाना । (५) त्रासातिरेकाच्चपललोचना । (६) मत्स्यविशेषपत्नी । (७) स्वकान्तं सहस्रदंष्ट्रम् ॥२३४॥

(१) भूखननोपकरणं गोदारणमिव । (२) मुखे । (३) प्रकटीकृत्य । (४) सातेन । (५) निद्रासि । (६) गाम्भीर्येण कृत्वा । (७) गण्डूषीकृतसमुद्रः । (८) तव कृतान्तः । (९) <u>अकब्बरः</u> । (१०) समेति ॥२३५॥

[१]स स्माऽऽहेति [२]सहस्रदंष्ट्रमहिला[३]मालिङ्ग्य [४]लालालसो
[६]मा गाः [५]साध्वसम[८]ध्वराशनपतेः [७]पाथोधिनेमेरतः ।
श्रीमत्सूरि[2]गिरो [९]महाव्रतिवपुःपाथोनिशोपासना-
प्रोद्भूतप्रणयादिव प्रियतमे ! नाऽस्मा[१०]न्हिनस्ति प्रभुः ॥२३६॥

(१) वादालः । (२) स्वप्रियाम् । (३) स्नेहादाश्लिष्य । (४) क्रीडया मन्थरः । (५) भयम् । (६) मा गच्छ । (७) भूमेः । (८) शक्रस्य । (९) महाव्रतिनः-सूरेः साधोर्वा शङ्करस्य वा शरीरभूतं यत्पानीयं तस्य सेवासञ्जातस्नेहात् । (१०) घातयति ॥२३६॥

1. वेधीकृतकाययष्टी मृगीव तत्साध्वस० हीमु० । 2. ०गिरा हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]नक्राद्यान्[2]उपसृत्य [3]तत्प्रियतमा इत्यूचुर्[4]आतङ्किताः
[5]कीलालेष्विव [6]लोलुपाशयतया [9]हन्ता [8]नृनेता[7]ऽऽत्मनाम् ।
[10]तेऽप्य[11]आख्यन्निति [12]वज्रबाहुनृप[13]वद्गोपायति [14]क्ष्मापति-
[15]जन्तूञ्जन्तुपितामहः [16]स [17]करुणाकल्लोलिनीवल्लभः ॥२३७॥

(१) नक्रचक्रप्रमुखान्मत्स्यविशेषान् । (२) समीपे समागत्य । (३) तेषां कान्ताः । (४) भयाकुलिताः । (५) कीलालेषु-जलेषु रुधिरेषु । (६) लम्पटचित्तत्वेन । (७) आत्मजातानाम् । (८) अकब्बरः । (९) घातकोऽस्ति । (१०) नक्रचक्राद्या अपि प्रियाः प्रति । (११) प्रोचुः । (१२) वज्रबाहुनृपः श्रीशान्तिनाथपूर्वजन्मनृप इव । (१३) रक्षति पालयति । (१४) नृपतिः । (१५) सत्वानां पितृपितृतुल्यः । (१६) नृपः । (१७) कृपासमुद्रः ॥२३७॥

[1]चौलुक्यावनिजानिनेव [2]निखिले[3]ऽकूपारकाञ्चीतले
[4]श्रुत्वा [5]प्राणिगणै[6]रमारि[7]मवनीकान्तेन [8]सङ्कल्पिताम् ।
[9]गर्जन्तीह गजा [10]हसन्ति हरिणाः [11]कूर्दन्त्यथो [12]कासरा
[13]हृष्यन्ति [14]द्विरदद्विषः [15]सुखम[16]धुर्वाघ्रीणसद्वीपिनः ॥२३८॥

[1]केकायन्ते [2]कलितललनाकेलयो [3]नीलकण्ठा
[4]माकन्दस्था विदधति पिकाः [5]पञ्चमालापलीलम् ।
[6]शब्दायन्ते [7]शिखरिशिखरिस्थायिनस्[8]ताम्रचूडाः
[9]कीरा [10]धीरा इव [11]तरुशिरस्यन्व[12]तिष्ठंश्च गोष्ठीम् ॥२३९॥

[1]प्रीतिप्रह्वां रमयति रहः स्वां[2] चकोरीं चकोर-
[3]श्चेरुः स्वैरं गृहबलिभुजः [4]खञ्जनाः [5]खे [6]विलेसुः ।
[7]लीलायन्ते [8]धवलगरुतः [9]प्रोच्छलन्ति स्म मत्स्या-
[10]विश्वस्याऽऽसन्निव [11]सुखमया [12]वासरास्ते[13] [14]तदानीम् ॥२४०॥

त्रिभिर्विशेषकम् ॥

(१) कुमारपालेनेव । (२) समस्ते । (३) भूमण्डले । (४) आकर्ण्य । (५) सत्त्वसमूहैः । (६) दयाम् । (७) अकब्बरेण । (८) कारिताम् । (९) गर्जारवं, हर्षातिशयात् । (१०) जीवितव्याशया हास्यं सृजन्ति । (११) उच्छलन्ति । (१२) महिषाः । (१३) हर्षं प्राप्नुवन्ति । (१४) सिंहाः । (१५) सुखं धारयन्ति । (२६) खड्गिनः व्याघ्रचित्रकाः ॥२३८॥

(१) केकारवं कुर्वन्ति । (२) कृताः स्त्रीभिः क्रीडा यैः । (३) मयूराः । (४) आम्रस्थिताः । (५) पञ्चमरागललितम् । (६) शब्दं कुर्वन्ति । (७) तरुशिखाग्रस्थायुकाः । (८) कुर्कुटाः । (९) शुकाः । (१०) पण्डिता इव । (११) द्रुममस्तके । (१२) चक्रुः ॥२३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्नेहेन नम्राम् । (२) निजपक्षिणीम् । (३) बभ्रमुर्भक्षयन्ति स्म च । (४) चटकाः । (५) आकाशे । (६) चिक्रीडुः । (७) लीलया मन्थरं चरन्ति । (८) हंसाः । (९) उच्चैरुच्छलन्ति । (१०) सर्वस्यापि जलस्थलखचारिजन्तुवर्गस्य । (११) सुखप्रचुराः । "क्षणमप्यवतिष्ठति(ते) श्वसन्यदि [1]जन्तुर्ननु लाभवानसा"विति रघुवचनात् । (१२) दिवसाः । (१३) अमारिसत्काः । (१४) अमारिप्रवर्तनसमये ॥२४०॥

[१]मधुना [२]मञ्जरीमाला-लङ्कृताः [३]फलदा इव ।
[४]अमारिमण्डिताः सर्वे, कृतो[५]स्तेना[६]ऽऽत्मनीवृतः ॥२४१॥

(१) वसन्तेन । (२) कोरकराजिराजिताः । (३) वृक्षाः । (४) जीवदयाविभूषिताः । (५) <u>अकब्बरेण</u> । (६) स्वदेशाः ॥२४१॥

[१]प्राचीनाप्रागुदीचीन-प्रतीचीनावनीधवाः ।
[२]साहिप्रवर्त्तितामारिं, [४]शीर्[2]षा[४]मिव [३]शिरस्यधुः[५] ॥२४२॥

(१) पूर्वदिग्दक्षिणदिगुत्तरदिक्पश्चिमदिक्सम्बन्धिनो नृपाः । चतसृणां दिशामपि भूपालाः । (२) <u>अकब्बरेण</u> प्रवर्त्तितां जीवदयारूपामाज्ञाम् । (३) मूर्ध्नि । (४) शेषां-देवसेषा(सा)मिव । (५) धारयन्ति स्म ॥२४२॥

[१]श्रीसूरीश्वरहीरहीरविजयै[२]स्तैः [३]स्थानसिंहः स्वयं
[४]निर्मा[3]प्यो[५]ऽप्रतिमोत्सवेन [६]भगवद्बिम्बप्रतिष्ठामहम् ।
[७]कल्याणश्रियम[८]र्थिसार्थवशगां कुर्वन्नपि प्रीतिमा-
नै[९]तच्चित्र[१०]ममुत्र त[११]न्निजवशां [१२]तां निर्मिमीते स्म यत् ॥२४३॥

(१) शुद्धाचारत्वेन शोभाभाजामाचार्याणां मध्ये वृद्धाः शक्रतुल्यास्तेषां चूडारत्नसदृशैः <u>श्रीहीरविजयैः</u> । (२) तै<u>रकब्बर</u>प्रतिबोधकैः । (३) <u>रामाङ्गजः</u> । (४) कारयित्वा । (५) असाधारणोत्सवेन । (६) जिनप्रतिमाप्रतिष्ठामहम् । (७) हेमलक्ष्मीम् । (८) याचकवर्गायत्ताम् । (९) इदमाश्चर्यम् । (१०) अस्मिन्जगति । (११) स्वाधीनाम् । (१२) मङ्गललक्ष्मीं मुक्तिलक्ष्मीं वा ॥२४३॥

[१]श्रीमद्गुर्जरराजवीरधवलाधीशः समुत्कण्ठितः
[२]स्वेन [३]श्रीकरणाभिधानपदवीं श्रीवस्तुपालं यथा ।
[४]सूरिक्षोणिमहेन्द्रहीरविजयः[4] [५]प्रौढोत्सवेऽस्मि[६]स्तदो-
[७]पाध्यायश्रियमा[८]निनाय विबुधं[९] श्रीशान्तिचन्द्राभिधम् ॥२४४॥

---

1. जन्तुर्न तु हीमु० । 2. शेषामिव हीमु० । 3. ०प्यातिमहोत्सवेन० हीमु० । 4. ०यस्तस्मिन्महेऽस्याग्रहेणोपाध्यायपदं निनाय हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) लक्ष्मीभाग्गुर्जरमण्डलाधिपवीरधवलभूपः । (२) आत्मना । (३) श्रीकरणनामानं पदवीमधिकारविशेषं मन्त्रिमुख्यत्वम् । (४) तथा श्रीहीरविजयसूरीन्द्रः । (५) महामहे । (६) तस्मिन्प्रतिष्ठा समये । (७) उपाध्यायपदलक्ष्मीम् । (८) प्रापयति स्म । (९) शान्तिचन्द्रपण्डितम् ॥२४४॥

[1]दुर्जनमल्लो [1]दुर्जन-मल्ल इव [2]गुणैर्[3]महीपतेर्मान्यः ।
[4]समहं [5]प्रत्यष्ठापय-दर्हत्प्रतिमां[1] मुनीन्द्रेण ॥२४५॥

(१) दुर्जनानां निर्जयकारकत्वात् मल्ल इव प्रतिपक्षः । (२) मणिपरीक्षकादिगुणैः । (३) साहेर्मान्यः । (४) सोत्सवम् । (५) प्रतिष्ठां कारयति स्म ॥२४५॥

समहं [1]मथुरापुर्यां, यात्रां पार्श्वसुपार्श्वयोः ।
[2]प्रभुः [4]परीतः [3]पौरौघै-[5]श्चारणर्षिरिवाऽकरोत् ॥२४६॥

(१) मथुरानगर्याम् । (२) सूरिः । (३) नागरलोकैः । (४) अनुगतः । (५) यथा चारणमुनिः ॥२४६॥

[1]जम्बूप्रभवमुख्यानां, [2]मुनीनामिह स प्रभुः ।
[2]ससप्तविंशतिं पञ्च-शतीं स्तूपान्प्रणेमिवान् ॥२४७॥

(१) जम्बूस्वामि-प्रभवस्वामिप्रमुखाणाम् । (२) सप्तविंशत्यधिकपञ्चशतसाधूनाम ॥२४७॥

[1]गोपालशैलेऽथ [2]सुपर्वसद्मा-वष्टम्भनस्तम्भ इवो[5]ऽभ्युपेत्य ।
[4]समं [3]जनौघैर्जिनसार्वभौमं[6], ककुद्मकेतुं नतवान्[2]यतीन्द्रः ॥२४८॥

(१) ग्वालेरनामदुर्ग्रे(र्गे) । (२) स्वर्गस्याऽवष्टम्भनकृतेऽधःस्तम्भे । (३) सङ्घलोकैः । (४) सार्द्धम् । (५) समागत्य । (६) ऋषभजिनचक्रिणम् ॥२४८॥

[1]द्वापञ्चाशद्गजमित-वृषभप्रतिमां स [2]सिद्धशैल इव ।
प्रभु[3]रपरा अपि तस्मिन्, मूर्त्ती[4]र्जैनी[5]र्ननंसीत्सः ॥२४९॥

(१) द्विपञ्चाशद्गजप्रमाणां ऋषभप्रतिमाम् । (२) शत्रुञ्जय इव । (३) अन्याश्च चत्वारिंशद्गजादिप्रमाणाः । (४) भगवत्प्रतिमाः । (५) नमति स्म ॥२४९॥

[1]यात्रां कृत्वाऽत्र [2]सुत्रासा(मा), यथा [3]नन्दीश्वरे [4]दिवम् ।
[5]प्रभु[6]र्विभूषयामास, पुनरप्या[7]गरापुरम् ॥२५०॥

(१) गोपालगिरौ यात्रां विधाय । (२) शक्रः । (३) अष्टमद्वीपे । (४) स्वर्गम् । (५) सूरिः । (६) अलञ्चकार । (७) उग्रसेननगरम् ॥२५०॥

1. ०प्रतिमा मुनी० हीमु० । 2. ०व्रती० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य: [1]सेरद्विकखण्डलम्भनिकया ख्यातो[2]ऽखिले मण्डले
[3]श्रद्धावानिह [4]मेदिनीपुरसदारङ्गः प्रभो[5]र्भक्तितः ।
सोऽदा[6]न्मूर्तमिवेन्द्रकुम्भिनमि[7]भं [8]लक्षप्रसादं पुन-
[9]र्वाहानां नवतिं च [10]काञ्चनमणी[1]मुद्रांशुकाद्यै[11]र्थिणाम् ॥२५१॥

(१) सेरद्विकमधुधूलिलम्भनिकाप्रथितः । (२) समस्तदेशे । (३) श्राद्धः । (४) मेडताह्वनगरस्य सदारङ्गनामा । (५) गुरुभक्त्या । (६) मूर्त्तमैरावणामिव । (७) गजम् । (८) लक्षटङ्कप्रमाणं च याचकस्य प्रसादम् । (९) अश्वानाम् । (१०) स्वर्णं रत्नानि रूपका मुद्रिका वा वस्त्राणि च प्रमुखम् । (११) याचकानाम् ॥२५१॥

[1]मुक्त्वा[2]ऽमात्यमिवा[3]ऽवनीशसविधे श्रीशान्तिचन्द्राभिधो-
पाध्यायं [4]प्रविधाय तत्र[5] विषये वर्षा[6]श्चितस्त्रः [7]स्वयम् ।
[8]श्रीकम्मातनयव्रतीन्द्रविलसत्सङ्घाग्रहा[9]द्गूर्जरान्
[10]गच्छ[11]न्नागपुरे स्म तिष्ठति चतुर्मासीं स [12]नागेन्द्रवत् ॥२५२॥

(१) संस्थाप्य । (२) सचिवमिव । (३) अकब्बरसमीपे । (४) कृत्वा । (५) मेवातदेशे । (६) चतुर्मासाः । (७) स्वेन । (८) श्रीमद्विजयसेनसूरिभिः स्फुरन्यो गौर्जरसङ्घ-स्तस्योपरोधात् । (९) गूर्जरान्प्रति । (१०) प्रतिष्ठामानः । (११) नागुरनगरे । (१२) नागराज इव ॥२५१॥

[1]तस्मिन्ज[2]गन्मल्लमहीन्द्रमन्त्री, मेहाजलो नाम[3]वणिग्महेन्द्रः ।
भक्तिं व्यधात्क्लृ[4]प्तमहो मुनीन्दोः, [5]पद्मावतीकान्त इवा[6]ऽहिकेतोः ॥२५३॥

(१) नागपुरे । (२) जगमालनृपस्य प्रधानः । (४) नैगमेन्द्रः । (४) निर्मितमहोत्सवः । (५) धरणेन्द्र इव । (६) पार्श्वनाथस्य ॥२५३॥

[1]श्रीमज्जेसलमेरुनामनगरादागत्य [2]सङ्घान्वितः
[3]कोष्ठागारिकमाण्डणो [4]मुनिमणिं [5]सौवर्णटङ्कैर्मुदा ।
[6]सिद्धयै [7]स्वर्मणिवत्प्र[8]पूज्य [9]तृणयन्लक्ष्मीं पुनस्त[10]त्पुरे
[11]नानादानविधौचितीं [12]प्रकटयाञ्चक्रे यथा [13]विक्रमः ॥२५४॥

(१) श्रीयुक्तजेसलमेरुनामपुरात् । (२) सङ्घयुतः । (३) माण्डणनामा कोठारी । (४) सूरीन्द्रम् । (५) हेमनाणकैः । (६) स्वसिद्धये । (७) चिन्तारत्नमिव । (८) पूजयित्वा । (९) तृणीकुर्वन् - अतिशयं ददानः । (१०) नागपुरे । (११) स्वर्णरजतांशुकघृताद्यनेकानां दानानां प्रकारास्तेषामौचित्यम् । (१२) लोके प्रकटीचक्रे । (१३) विक्रमार्क इव ॥२५४॥

---

१. ०स्वर्णांशुका० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अभिवन्द्य[1] विभोः[3] पादां-स्तत्र[4] तीर्थानिवाऽपरे[5] ।
सङ्घाः परेऽप्युपागत्य, [6]ययुः [7]स्थानं निजं निजम् ॥२५५॥

(१) नमस्कृत्य । (२) सूरिचरणान् । (३) नागपुरे । (४) तीर्थस्थानानीव । (५) अन्यपुरसम्बन्धिसङ्घाः । (६) स्वं स्वं पुरम् । (७) यान्ति स्म ॥२५५॥

[1]यदन्यनीवृत्ततिमुद्रिकायां[2], बिभर्त्ति [3]माणिक्यमिवाऽत्र लक्ष्मीम् ।
[4]क्रमात्प्रतिक्रम्य [5]स [6]तत्पुरे चतु-र्मासीं [7]विहारं [8]विदधे [5]व्रतीश्वरः ॥२५६॥

(१) नागपुरम् । (२) अपरजनपदमण्डल्येव मुद्रिका तस्याम् । (३) मणिरिव । यदुच्यते- "ओर देस सब मुंदरडी ओर नागोर नगीना" इति तत्रत्य जने प्रसिद्धिः । (४) पर्युषणादिपरिपाट्या । (५) सूरिः । (६) नागपुरे । (७) प्रस्थानम् । (८) चकार ॥२५६॥

पींपाढिनाम्नि [1]स्वपुरे प्रभोर्मरु-[2]त्पुरोपमे नागपुरात्समीयुषः[3] ।
[4]तालाह्वसाधुर्व्य[5]धिता[6]धिकोत्सवं, तदा [7]प्रदेशीव मुदाऽन्तिमार्हतः ॥२५७॥

(१) आत्मीये पुरे । (२) देवनगरतुल्ये । (३) समागतस्य । (४) ताह्ला इत्यभिधानं यस्य । (५) चकार । (६) अतिशयितं महम् । (७) प्रदेशीनृप इव । (८) श्वेताम्बीं समागतस्य महावीरस्य ॥२५७॥

[1]ग्रामाश्वद्विपताम्रखान्यधिपतिः [2]सामन्तवद्योऽजनि
[3]श्रीमालान्वयभारमल्लतनयः [4]श्रीइन्द्रराजस्तदा ।
[5]आह्वातुं [6]सुगुरून्स्व[7]कीयसचिवास्तेनाऽथ सम्प्रेषिताः
[9]प्रासादे [8]निजकारिते भगवतां[10] मूर्त्तिप्रतिष्ठाकृते ॥२५८॥

(१) पञ्चशतीमितग्रामाणां तथा वाजिनां गजानां ताम्राकरस्य च स्वामी । (२) सामन्त इव । (३) श्रीमालवंशीयभारमल्लपुत्रः । (४) इन्द्राजाभिधानः । (५) आकारयितुम् । (६) सूरीन्द्रान् । (७) आत्मनः प्रधानपुरुषाः । (८) स्वनिर्मापिते । (९) चैत्ये । (१०) जिनप्रतिमानां प्रतिष्ठाकृते ॥२५८॥

[2]अलिके[1] तिलकस्येव, [2]पींपाढिपुरि [3]तस्थुषः ।
[4]तेऽप्यागत्य पुरो(र)श्चक्रु-[5]र्विज्ञप्तिं [6]ज्ञप्तिशालिनः ॥२५९॥

(१) ललाटे । (२) पींपाढिनगरे । (३) स्थितस्य । (४) इन्द्रराजप्रधाननराः । (५) विज्ञप्तिकाम् । (६) बुद्धिभाजाम् ॥२५९॥

1. एष श्लोकः हीमु०पुस्तके नास्ति । केवलं टीका एव तत्राऽस्ति । 2. श्लोकोऽयं हीमु०मध्ये नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]ज्ञात्वाऽशक्तिमितो [३]विराटनगरे [४]स्वां [५]सन्निधिस्थायिनं
[६]श्रीहर्षाङ्गजवाचकावनिमणिं किं [८]स्वीयमूर्त्तिं [७]पराम् ।
[९]प्रैषीत्सू[१०]रिवरोऽथ [११]सोऽपि [१२]सपदि प्राप्य क्रमात्तत्[१३]पुरं
[१४]क्लृप्ताद्वैततदुत्सवैर्वि[१५]रचयाञ्चक्रे प्रतिष्ठां ततः ॥२६०॥

(१) असामर्थ्यम् । (२) पींपाढिनगरात् । (३) पुनर्मेवातमण्डले विराटनगरे । (४) आत्मीयाम् । (५) समीपे संस्थितम् । (६) हर्षानाम्नः साधोरङ्गजं कल्याणविजयाभिधानं वाचकेन्द्रम् । (७) द्वितीयाम् । (८) स्वकीयमूर्त्तिमिव । (९) प्रस्थापयति स्म । (१०) सूरीन्द्रः । (११) वाचकेन्द्रोऽपि । (१२) शीघ्रम् । (१३) विराटनगरम् । (१४) प्रारब्धासाधारणैरिन्द्रराज-महोत्सवैः । (१५) चकार ॥२६०॥

[१]रत्नस्वर्णसुवर्णकोपलमयाप्तार्चाप्रतिष्ठाक्षणे
[२]हस्त्यश्वांशुकभूषणाशनमुखानेकप्रकारैस्तदा ।
[३]भोजेनेव [४]पुनर्गृही[५]तवपुषा [६]विश्वार्थिदौस्थ्यच्छिदे
[७]चत्वारिंशदनेन रूपकसहस्राणि [८]व्ययीचक्रिरे ॥२६१॥

(१) रत्नानि-स्फटिकादीनि, स्वर्णं, सुवर्णं-पित्तलकं, उपलाः-पाषाणास्त एव स्वरूपं यासामेवंविधा आप्तानां जिनानामर्चाः प्रतिमास्तासां प्रतिष्ठामहोत्सवे । (२) गजाश्ववसना-भरणभोजनप्रमुखैरनेकप्रकारैः । (३) भोजराजेनेव । (४) द्वितीयवारम् । (५) आत्तदेहेन । (६) सर्वयाचकानां दारिद्र्योच्छेदनाय । (७) चत्वारिंशद्रूपकसहस्राणि । (८) व्ययीकृतानीति श्रुतिः ॥२६१॥

[१]श्रीरोहिण्याः प्रतिष्ठायै, [२]संश्रुतायै स्वयं [३]प्रभुः ।
[४]ततः [५]प्रतस्थे [६]यत्साधोः, स्थितिर्नैकत्र भृङ्गवत् ॥२६२॥

(१) शिवपुर्याः । (२) इन्द्रराजसचिवागमानात्प्रथममात्मनाऽङ्गीकृतायै प्रतिष्ठायै । (३) सूरीन्द्रः । (४) तत्पुरात् । (५) प्रस्थितः । (६) यस्मात्कारणाद् भ्रमरस्येव साधोर्नैकत्र वसतिः । उक्तं च – "समणाणं सउणाणं भ्रमरकुलाणं गोकुलाणं च । अणिआउ वसहीउ सारयाणं च मेहाणं ॥२६२॥

[१]वरकाणकमागत्य, पुरं सूरिपुरन्दरः ।
[२]वरकाणकपार्श्वेशं, [३]साक्षात्पार्श्वमिवाऽनमत् ॥२६३॥

(१) वरकाणकनामनगरम् । (२) ग्रामनाम्ना वरकाणकपार्श्वनाथम् । (३) स्वयमागतं पार्श्वनाथमिव ॥२६३॥

1. ज्ञात्वा शक्ति... इतः परं एष श्लोकः हीमु०पुस्तके नास्ति, टीका तु अस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]आगादथाऽ[२]भिमुखं[३]मस्य पुरादमुष्मा-दागच्छतो [४]विजयसेनगुरुर्गणेन्दोः ।
[५]विश्वोपकारकृतिनौ [६]मिलितौ [७]मिथस्तौ[८], [९]तीर्थाधिभूगणधराविव दिद्युताते ॥२६४॥

(१) आगतः । (२) सम्मुखम् । (३) हीरसूरेः । (४) विजयसेनसूरिः । (५) जगतामुपकृतौ प्राज्ञौ । (६) सङ्गतौ । (७) परस्परम् । (८) हीरविजयसूरि-विजयसेनसूरी । (९) तीर्थङ्करगणधारिणाविव ॥२६४॥

[१]उत्तंसैरिव [२]पत्कजैः [३]शिवपुरीं [४]सम्प्राप्य [५]भूषां [६]परां
प्रासादे स [८]चतुर्मुखे ध्रुव[७] इव [९]श्रीमन्महोक्षध्वजम् ।
चैत्येऽ[१०]न्यत्र पुनर्ग[११]र्जध्वजजिनं बिम्बैरनेकैः समं
[१२]प्रत्यस्थापयदा[१३]सपालविलसन्नेताप्रणीतोत्सवे ॥२६५॥

(१) शिखरैः । (२) चरणकमलैः । (३) सीरोहीनामपुरीम् । (४) नीत्वा । (५) उत्कृष्टाम् । (६) श्रियम् । (७) ब्रह्माणीव । (८) चतुरानने । (९) ऋषभदेवम् । (१०) परस्मिन् । (११) अजितनाथम् । (१२) प्रत्यतिष्ठिपत् । (१३) आसपालसङ्घपतिना शोभमानेन नेताख्येन साधुना । अथ आसपालेन शोभमानेन नेताह्वसाधुना निर्मितमहोत्सवैः चतुर्मुखे चेत्ये आसपलेन सङ्घपतिना प्रतिष्ठा कारिता । अजितनाथप्रासादे नेताख्येन प्रतिष्ठा कारिता, इति तत्त्वम् ॥२६५॥

[१]आरुह्याऽर्बुदभूधरं [२]जिनपतीन्न[३]त्वा पुन[४]र्गूर्जरान्
[५]प्रस्थातुं [६]स्पृहयन्[७]महीपतिसुरत्राणेन [८]मन्त्रीश्वरैः ।
[९]आगृह्याऽ[१०]यममारिनिर्मितिकरव्यामुक्तिपूर्वं [११]समा-
हूतो भूषितवांस्ततः [१२]शिवपुरीं [१३]वर्षागमे [१४]सूरिराट् ॥२६६॥

(१) अर्बुदाद्रिशिखरे गत्वा । (२) जिनान् । (३) प्रणम्य । (४) गूर्जरदेशान्प्रति । (५) चलितुम् । (६) काङ्क्षन् । (७) सुरत्राणाभिधभूधवेन । (८) स्वप्रधानपुरुषैः । (९) आग्रहं कृत्वा । (१०) सकले स्वमण्डले अमारिकरमोचनं च करिष्यामीति वाग्बन्धपूर्वकम् । (११) समाकारितः । (१२) सीरोहीपुरीम् । (१३) वर्षाकाले । (१४) प्रभुः ॥२६६॥

[१]हेमसूरीश्वरेणेवा-ऽणहिल्लपुरपत्तनम् ।
क्रमा[२]द्विहरता तेना-ऽलञ्चक्रे [३]व्रतिचक्रिणा ॥२६७॥

(१) हेमाचार्येने(णे)व । (२) वर्षानन्तरं ग्रामानुग्रामं विहारं कुर्वता । (३) वाचंयम-सार्वभौमेन ॥२६७॥

[१]निःशेषोचितकर्मकर्मठधियं [२]वाचेव [३]वाचस्पतिं
मुक्त्वा [४]तत्र च [५]भानुचन्द्रविबुधाधीशं [६]गुरूणां गिरा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[७]श्रीमद्वाचकशान्तिचन्द्रगणिने[८]त्याख्यायि [९]साहेः पुरः
[१०]शिष्टिं स्याद्यदि[११] वः प्रयामि [१२]तदहं नन्तुं [१३]गुरू[१४]नुत्सुकः ॥२६८॥

(१) सर्वेषु साहिकथनयोग्येषु कार्येषु कार्यशूरप्रतिभम् । (२) वाग्विलासेन कृत्वा । (३) बृहस्पतिमिव । (४) फतेपुरसाहिपार्श्वे । (५) भानुचन्द्रनामानं पण्डितम् । (६) सूरीन्द्रशासनेन । (७) शान्तिचन्द्रोपाध्यायेन । (८) कथितम् । (९) अकब्बरस्याऽग्रे । (१०) आदेशः । (११) युष्माकम् । (१२) तर्हि । (१३) सूरीन्द्रान् । (१४) उत्कण्ठितः ॥२६७॥

प्र[१]ह्लादेन ततो [२]गुरून्प्रति निजा[३]त्पार्श्वात्स [४]जेजीयका-
मारीणां [५]फुरमानढौकनकरः [६]सन्देशवाचो वहन् ।
[७]श्रीमत्सूरिसितांशुशासनकृपाकोशानिशश्रावण-
च्छेकः [८]प्रैषि नृपेण वाचकविधुः[९] श्रीशान्तिचन्द्राभिधः ॥२६९॥

(१) हर्षेण । (२) हीरविजयसूरीन् । (३) स्वसमीपात् । (४) जेजीयकनामा गौर्जरः करविशेषस्तस्य मारीणां च । (५) स्फुरन्मानरूपा उपदा पाणौ यस्य । (६) साहिसन्दिष्टान् वाग्विलासानाकलयन् । (७) श्रीहीरसूरेरादेशात्कृपाकोशनामा ग्रन्थविशेषस्तस्य प्रतिदिनं श्रावणे चतुरः । (८) प्रहितः । (९) शान्तिचन्द्रोपाध्यायः ॥२६९॥

हे[१]माउसूनोः [२]फुरमानदाना-द्युदन्त[३]मुद्वेलकृपापयोधेः ।
प्रीत्या [४]समेत्या[५]ऽऽप्त इवा[६]ऽत्र [७]सोऽपि, [८]न्यवेदयत्सूरिपुरन्दराय ॥२७०॥

(१) अकब्बरपातिसाहेः । (२) फुरमानप्रदानप्रमुखम् । (३) वेलामुद्गतः-अतिक्रान्तः-अतिवृद्धो दयासमुद्रो यस्य । (४) आगत्य । (५) विश्वस्तजल इति(व) । (६) सूरिपार्श्वे । (७) वाचकः । (८) कथयामास ॥२७०॥

श्रीमत्पर्युषणादिना[१] रविमिताः सर्वे[२] रवेर्वासराः
[३]सोफीयानदिना अपीद[४]दिवसाः [५]सङ्क्रान्तिघस्राः पुनः ।
मासः [६]स्वीयजनैर्दिनाश्च [७]मिहिरस्याऽन्येऽपि भूमीन्दुना
[1]हीं[८]न्दूम्लेच्छमहीषु तेन विहिताः [९]कारुण्यपण्यापणाः ॥२७१॥

(१) पर्युषणापर्वणो द्वादशदिनाः । (२) समस्ता अप्यादित्यवाराः । (३) सोफीयान-दिवसाः । (४) ईददिनाश्च यवनेषु प्रसिद्धाः । (५) तथा सूर्यसङ्क्रान्तीनां दिनानि । (६) पुनः स्वजन्ममासः । (७) तथा मिहिरवासरा यवनेषु प्रसिद्धाः । (८) आर्यानार्यदेशेषु । (९) कृपाक्रयाणकविपणयः ॥२७१॥

---

1. हिन्दुम्लेच्छ० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेन [१]नवरोजदिवसा-[२]स्तनुजजनूरजबमासदिवसाश्च ।
[३]विहिता [४]अमारिसहिताः, [५]सलतास्[६]तरवो [७]घनेनेव ॥२७२॥

(१) तथा नवरोजस्य तेषु प्रसिद्धस्य मासः । (२) पुत्रजन्मवासराश्च अ(र)जबमासश्च तेष्वेव प्रसिद्धस्तस्य दिनाः । (३) कृताः । (४) कृपाकलिताः । (५) वल्लीयुक्ताः । (६) वृक्षाः । (७) मेघेन ॥२७२॥

[१]गुरुवचसा [२]नृपदत्ता, [३]साधिकषण्मास्यमारिरभवदिति ।
[४]तत्तनुजैरपि [५]दत्ता[६]-ऽधिकवृद्धिं [७]व्रततिवद्[८]भेजे ॥२७३॥

(१) सूरिवाक्येन । (२) साहिना प्रदत्ता । (३) षड्दिनाधिकषण्मासी अमारिः । (४) अकब्बरपुत्रैः मुरादिसाहि-सलेमसाहिप्रमुखैः । (५) स्वस्वजन्ममासादिका प्रदत्ता । (६) अतिशायिनमुपचयश्रियम् । (७) वल्लीव । (८) भजते स्म ॥२७३॥

[१]येनोद्[२]वे[३]गमवापितो [४]जनपदः [५]स्वक्षीणताकारिणा
[६]तूर्णं त्याजयता [७]निजं [८]पुरमपि प्राणिव्रजान्[९]यक्ष्मवत् ।
[१०]शम्भोर्देशनया [११]भवस्[१२]तनुमतेवा[१३]ऽऽशंसुना [१४]श्रेयसो[1]
जेजीयाख्यकरो [१५]व्यमोचि च पुन[१६]र्भूमीभुजा [१७]यद्गिरा ॥२७३॥

(१) येन जीजियाभिधकरेण । (२) क्लेशम् । (३) नीतः । (४) देशः । (५) स्वस्या-ऽऽत्मनो देशस्य क्षीणताया नैःस्वस्य करणशीलेन । शरीरापेक्षया तनुताकारिणा । (६) शीघ्रम् । (७) स्वकीयम् । (८) नगरं शरीरं च । "पुरं देहनगर्योः स्या "दित्यनेकार्थः । (९) राजयक्ष्मा क्षयरोगः । (१०) तीर्थकरस्य देशनया । (११) संसारः । (१२) प्राणिना । (१३) वाञ्छकेन । (१४) कल्याणस्य मोक्षस्य च । (१५) मुक्तः । (१६) साहिना । (१७) हीरसूरिनिदेशेन ॥२७४॥

[१]कश्मीराध्वनि [२]पल्वलो [३]जयनलक्षोणीभृताऽखानि [४]यः ।
[५]सङ्ख्यातो [६]दशयोजनै[७]र्जयनलप्रोल्लासिलङ्काभिधः ।
[८]यूथाधीश्वरसिंधुराधिपति[९]वत्पोतव्रजभ्राजित-
[१०]स्तं कौतूहलतो[११]निरीक्षितुमिव [१२]प्राप्तं सरो [१३]मानसम् ॥१७५॥

(१) काश्मीरदेशमार्गे । (२) तडागः । (३) जयनलनाम्ना नृपेण । (४) यः खानितः । (५) प्रमाणीकृतः । (६) चत्वारिंशद्भिः क्रोशैः । (७) जयनललङ्कानामा । (८) यूथनाथो गजपतिस्तद्वत् । (९) पोतानां यानपात्राणां दशवार्षिककरिबालानां च समूहैः शोभितः । (१०) तं जयनलम् । (११) खननावसरे तस्मिन्नवसरे अकब्बरपातियाहि[मि]व विलोकयितुम् । (१२) समागतम् । (१३) मानसनाम सरः ॥२७५॥

---

1. श्रेयसे हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]प्रालेयेन [२]खिलीकृतः [३]शिखरवत्प्रा[४]लेयभूमीभृतः
[५]शीतार्त्तिं [६]प्रविषह्य [७]वस्त्रवियुजां [८]संवर्त्तरात्रीमिव ।
[९]क्षोणीपालनिभालिताखिलमहाभीलोपलम्भः [१०]पथि
[११]श्रीवाचंयमशर्वरीवरयितुः [१२]सन्देशवाक्प्रेरितः ॥२७६॥

[१]श्रीशत्रुञ्जयभूभृतस्तनुमतां यात्रां [२]विनिर्मित्सतां
मूला[३]न्मोचयितुं स्वयं [४]करमथो श्री[५]भानुचन्द्रः सुधीः ।
[६]तत्सारस्वतवर्त्मभूषणसरोबोहित्थ[1]सन्तस्थुषो
[७]विज्ञप्तिं [८]कृतवानकब्बर[९]धरापाथोजिनीप्रेयसः ॥२७७॥ युग्मम् ॥

(१) हिमेन । (२) विषमीकृतः । (३) शृङ्ग इव । (४) हिमाद्रेः । (५) शीतपीडाम् । (६) मर्षयित्वा । (७) वसनरहितानाम् । (८) कालरात्रिमिव । (९) अकब्बरेण दृष्ट-सर्वशीतपीडाप्राप्तिर्यस्य । (१०) मार्गे । (११) हीरसूरेः । (१२) सन्देशवचनैः प्रेरितः ॥२७६॥

(१) विमलाचलस्य । (२) कर्त्तुमिच्छताम् । (३) सर्वथा त्याजयितुम् । (४) राजदेयांशम् । (५) भानुचन्द्रोपाध्यायः । (६) काश्मीरमण्डलमार्गमण्डनतडाके यानपात्रे स्थितस्य । (७) अरजीम् । (८) चकार । (९) नृपस्य ॥२७७॥ द्विः ॥

[१]भूभृत्कूकुद एष [२]जीजियकरव्यामुक्त्यलङ्कारितां
यो[३]ऽमारिं [४]स्वकुमारिकामिव [५]मुदा [६]पूर्वं [७]प्रदाय प्रभोः ।
[८]निःशुल्कां [९]पृथिवीं पुनर्जिनमतं [१०]निर्माय [११]नित्योत्सवं
[१२]श्रीमत्सिद्धधराधरं [१४]प्रददिवांस्त[१३]द्यौतके [१५]युक्तकृत् ॥२७८॥

(१) 'सत्कृत्याऽलङ्कृतां कन्यां यो ददाति स कूकुदः'-नृपकूकुदः । (२) जीजिया-नामकरस्य मोचनाद्यलङ्कारकलिताम् । (३) जीवदयारूपाम् । (४) स्वकनीमिव । (५) हर्षेण । (६) प्रथमम् । (७) दत्त्वा । (८) लोकभाषया शुल्कं 'दाण' मित्युच्यते - तद्रहिताम् । (९) भुवम् । (१०) कृत्वा । (११) अनिशमहामहम् । (१२) श्रीशत्रुञ्जयपर्वतम् । (१३) तयोः कन्यावरयोर्युतयोर्देये दानयोग्ये वस्तूनि । (१४) दत्तवान् । (१५) उचितकारी नृपः ॥२७८॥

[१]निजनामाङ्कं [३]कृत्वा, [२]फुरमानं प्राहिणो[४]न्नृपः [५]प्रभवे ।
[६]इदमप्य[७]लमकृत ततः, [८]करकमलं [९]हंसवत्सूरेः ॥२७९॥

(१) स्वनामाङ्कितम् । (२) लेखम् । (३) प्रजि(वि)धाय । (४) राजा । (५) गुरवे । (६) फुरमानमपि । (७) भूषयति स्म । (८) पाणिपद्मम् । (९) राजहंस इव ॥२७९॥

---

१. ०संस्थायिनो हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]यः [2]पूर्वं [3]कलिकालकेलिकलनालीलालयश्रीजुषां
[4]म्लेच्छक्षोणिभुजां [5]वशंवदतया [6]जज्ञे [7]नृणां [8]दुर्लभः ।
[9]तिग्मज्योतिरखण्डचण्डिममहःसन्दोहदूरीकृत-
ज्योत्स्नारम्भविभावरीशविभवः [10]सौगन्धिकानामिव ॥२८०॥

[1]सौवर्णेन ततो बभूव भविकैर्लभ्योऽत्र [2]गोशीर्षव-
ज्जातः [3]साधिकरूपकेण तदनु [4]प्राप्यः [5]कथञ्चिज्जनैः ।
[7]साहिश्रीमदकब्बरेण [6]यवनक्षोणीभुजा सम्मदात् ।
[8]सोऽपि [9]श्रीविमलाचलो [10]मुनिमणेश्चक्रे[12] शयालुः [11]शये ॥२८१॥ युग्मम् ॥

(१) विमलाचलः । (२) म्लेच्छराजव्यतिकरे । (३) कलियुगस्य क्रीडाकरणार्थं क्रीडासदनशोभां भजमानानाम् । (४) म्लेच्छनृपाणाम् । (५) आयत्तत्वेनाऽधीनतया । (६) जातः । (७) जनानाम् । (८) दुष्प्राप्यः । (९) सूर्यस्य निस्तुषा चण्डता यत्र तादृशेन प्रतापपुञ्जेन नाशितश्चन्द्रिकोदयो यस्य तादृक्चन्द्रस्य शोभासमुदायः । (१०) कह्लाराणाम् । कह्लारं-चन्द्रविकाशि । यथा नैषधे "कह्लारमिन्दुकिरणा इव हासभास" मिति ॥२८०॥

(१) स्वर्णटङ्केन । 'दीनारेणे'ति वा पाठः । (२) चन्दनवत् । (३) महमुंदीपञ्चकेन त्रिकेण च जातः । (४) महता कष्टेन । (५) जनैर्लभ्यः । (६) मुद्गलपातिसाहिना । (७) अकब्बरेण । (८) सोऽपीदृशदुर्लभदर्शनोऽपि । (९) शत्रुञ्जयशैलः । (१०) हीरसूरेः । (११) हस्ते । (१२) दत्तः ॥२८१॥

[1]प्राचीनजैननरपति-वारक इव [2]निष्करे [3]विमलशैले ।
[5]विदधुर्विधिना [5]यात्रां, तत्र मनुष्याः [4]परोलक्षाः ॥२८२॥

(१) पूर्वनृपानां(णां) वारक इव । (२) कररहिते । (३) शत्रुञ्जये । (४) लक्षसङ्ख्या मनुष्याः । (५) यात्रां चक्रुः ॥२८२॥

[1]वर्षाकाले [2]व्रतीन्द्रौ तौ, [3]राज[1]धन्यपुरे[4]ऽन्यदा ।
जम्बूद्वीपे [5]पयोजन्म-बान्धवाविव [6]तस्थतुः ॥२८३॥

(१) मेघागमे । (२) हीरविजयसुरि-विजयसेनसूरी । (३) राजधननाम्नि नगरे । (४) कस्मिंश्चित्काले । (५) सूर्याविव । (६) स्थितौ-अर्थाच्चतुर्मासीम् ॥२८३॥

[1]श्रीमत्सूरिपतिः [2]प्रसत्तहृदयः [3]श्रीभानुचन्द्राभिध-
प्राज्ञेन्दोरथ [4]वाचकाह्वयपदं [5]दत्ते स्म [6]वाचेव सः ।

1. राजधान्यपुरे० हीमु० । टीकायामप्येवमेव पाठोऽस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[7]संस्थास्नो[8]रतिदूरतोऽपि कुमुदां[9] पङ्क्तेरिव [10]ज्योत्स्नया
[11]प्रोद्यत्पावर्णशर्वरीवरयिता [12]प्रोज्जृम्भतावैभवम् ॥२८४॥

(१) हीरसूरिः । (२) प्रसादयुक्तहृदयः । (३) भानुचन्द्रप्राज्ञस्य । (४) उपाध्यायपदम् । (५) ददौ । (६) वचनोच्चारेणेव । (७) लाभपुरस्थितस्याऽप्यस्य वाचकपदं दत्तम् । (८) दूरस्थिताया अपि । (९) कुमुदमालिकायाः । (१०) चन्द्रिकया । (११) उद्गच्छन्पूर्णिमासम्बन्धी चन्द्रः । (१२) विकाशश्रियम् ॥२८४॥

[1]विजयसेनविभोर्हृदि दर्शनं, [2]वसुमतीकमिता [3]चकमे क्रमात् ।
[4]विदलिताखिलजन्तुतमस्ततेः, [5]शुचिरुचे[6]श्चलचञ्चुरिवाऽचिरात् ॥२८५॥

(१) विजयसेनसूरेः । (२) अकब्बरः । (३) काङ्क्षति स्म । (४) विध्वस्ता समस्ता तमसामज्ञानानामन्धकाराणां च श्रेणी येन, तस्य । (५) चन्द्रस्य । (६) चकोरः ॥२८५॥

[1]प्रैषीत्ततः [2]प्रैष्ययुगं [3]सलेख-[4]मानेतु[5]माचार्यसुधामरीचिम् ।
अकब्बरः [6]सिन्धुमिवाऽत्र चक्री, [7]सुमित्रभूः [8]सुस्थितमादितेयम् ॥२८५॥

(१) प्रजिघाय । (२) मेवडायुगलम् । (३) फुरमानयुक्तम् । (४) आकारयितुम् । (५) विजयसेनसूरिम् । (६) सागरमिव । (७) सगरचक्रवर्ती । (८) सुस्थितनामानं देवम् ॥२८६॥

लेखं [1]न्यासमिवाऽर्पितं [2]क्षितिपतेर्दूतद्वयेनादरा-
[3]दादायाऽथ [4]विभाव्य [5]तस्य [6]बुबुधे [7]हार्दं [8]मुनीन्द्रोऽखिलम् ।
द्रष्टुं [9]काङ्क्षति मामि[11]वैषे कथमप्यचार्य[10]मप्यात्मना
[12]सन्तर्क्येति [13]ततो [14]न्यवेदय[15]दनूचानाय सर्वं स तत् ॥२८६॥

(१) उपनिधिम् । 'थापिणि' इति प्रसिद्धा । (२) राज्ञः । (३) गृहीत्वा । (४) दृष्ट्वा । (५) फुरमानस्य । (६) अज्ञासीत् । (७) रहस्यम् । (८) हीरसूरिः । (९) वाञ्छति । (१०) अकब्बरः । (११) स्वेन । (१२) विचार्य । (१३) पश्चात् । (१४) कथयति स्म । (१५) विजयसेनसूरये ॥२८६॥

[1]गुरो[2]रुपादाय [3]रहस्यविद्यां, [4]शिक्षां च साक्षात्कि[5]मुदर्कसिद्धिम् ।
[6]कम्माङ्गजातव्रतिचक्रवर्ती, [7]क्रमाच्च[8]लँ[9]ल्लाभपुरं [10]बभाज ॥२८७॥

(१) हीरसूरेः । (२) गृहीत्वा । (३) पराज्ञातजैनमन्त्रान् । (४) हितकृन्मतिम् । (५) उत्तरकालफलिनीं सिद्धिमिव । (६) विजयसेनसूरिः । (७) परिपाट्या । (८) प्रतिष्ठमानः ।

1. ०लोक० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) लाहोरनगरम् । (१०) भजते स्म ॥२८७॥

[१]निर्ग्रन्थनाथः स विधाय [२]गोष्ठीं, [३]सम्प्रीणयामास [४]महीमहेन्द्रम् ।
[५]वाग्नामपीयूषरसाभिवर्षी, नो[६]ऽऽह्लादकः [७]कस्य [८]कुमुद्वतीशः ॥२८९॥

(१) सूरिः । (२) धर्मतत्त्ववार्त्ताम् । (३) आह्लादयामास । (४) नृपम् । (५) वाणीति नाम यस्य तादृक्सुधारसं समन्ताद्वर्षतीत्येवंशीलः । (६) प्रमोदकृत् । (७) जनस्य । (८) चन्द्रः ॥२८९॥

[1]श्रीमत्सूरिवरेण [२]वार्द्धिवसना वास्तोष्पतेराग्रहे-
णो[३]पाध्यायपदेन्दिरां समगमि श्रीभानुचन्द्रः सुधीः ।
[४]शेखो [५]रूपकषट्शतीं [६]व्यतिकरे तत्रा[७]ऽश्वदानादिभि-
र्भक्तः श्राद्ध इवाऽर्थिनां प्रमुदितो [८]विश्राणयामसिवान् ॥२९०॥

(१) विजयसेनसूरीन्द्रेण । (२) अकब्बरानुरोधेन । (३) उपाध्यायपदश्रियं नन्दिकरण-विधिम् । (४) अबलफजलनामा । (५) रूपकाणां षट्शतानि । (६) नन्दिकरणसमये । (७) तुरङ्गदानप्रमुखैः । (८) दत्तवान् ॥२८९॥

[१]साहेः [२]पर्षदि [३]शेखादि-पार्षद्यजुषि स[४]प्रभुः ।
[६]अजैषी[५]द्वादिनो वादे, [७]मुनिसुन्दरसूरिवत् ॥२९१॥

(१) अकब्बरस्य । (२) सभायाम् । (३) शेखप्रमुखसभ्ययुतायाम् । (४) विजयसेन-सूरिः । (५) षष्ठ्यधिकत्रिशतीं ब्राह्मणानाम् । (६) निराचकार । उक्तिप्रयुक्तिभिः । (७) मुनिसुन्दरनामाचार्य इव । तैरभुक्तीयपण्डितं निरुत्तरीचकार ॥२९१॥

[१]साहिः [२]सवाईविजय-सेनसाधुविधोरिदम् ।
बिरुदं [३]हीरसूरीन्दो-र्जगद्गुरुरिवा[४]ऽददात् ॥२९२॥

(१) अकब्बरपातिसाहिः । (२) सवाई विजयसेनसूरिरिति बिरुदम् । (३) हीरसूरेर्यथा जगद्गुरुरिति बिरुदम् । (४) दत्तवान् ॥२९२॥

[१]वादिनां [२]विजयोदन्तं, श्रुत्वा तं [३]मुमुदे [४]गुरुः ।
[५]तस्य [६]विष्णोरिवा[७]ऽशेष-द्विषामा[८]नकदुन्दुभिः ॥२९३॥

(१) ब्राह्मणानां प्रतिवादिनाम् । (२) पराजयकरणादिवृत्तान्तम् । (३) जहर्ष । (४) हीरसूरिः । (५) आचार्यस्य (६) नारायणस्य । (७) समग्रजरासंधादिवैरिणां विजयवार्त्ताम् । (८) वसुदेवः ॥२९३॥

---

१. श्रीमत्सूरिवरो व्यधत्त वसुधावास्तोष्पतेराग्रहे-
णोपाध्यायपदस्य नन्दिमनघां श्रीभानुचन्द्रस्य सः । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]सूरिर्दीक्ष[य]ति स्म [३]सक्षणमिहौ[२]ऽनेकान्[४]महेभ्याङ्गजान्,
[५]मूर्त्तीनां[1] [६]शतशो[७]ऽर्हतां विरचयाञ्चक्रे प्रतिष्ठाः पुनः ।
[८]एकच्छत्रमिव व्यधत्त भुवने [९]स्यावंभुवं शासनं,
[१०]प्रज्ञाधःकृतगीःपतिः [११]क्षितिपते राज्यं [१२]पुरोधा इव ॥२९४॥

(१) हीरसूरीश्वरः । (२) प्रव्रज्यां ग्राहयति स्म । (३) सोत्सवम् । (४) अनेकान्व्यवहारिणां नन्दनान् । (५) बिम्बानाम् । (६) सहस्रप्रमितानाम् । (७) जिनानाम् । (८) एकातपत्रमिव । (९) जैनशासनम् । (१०) स्वमतितिरस्कृतबृहस्पतिः । (११) राज्ञः । (१२) पुरोहित इव ॥२९४॥

[2] [१]सूरे[२]र्भूधनबोधनादिचरितप्रोद्भूतकीर्त्तिप्रथां,
प्रीत्या[३]ऽऽकर्ण्य [४]शिरोविघूर्णनपरे जातेऽखिले[५] विष्टपे ॥
श्रोतुं [६]सोत्सुकमानसो [७]दशशतीर्म[८]क्ष्णामिवा[९]ऽऽखण्डलः,
कर्णाना[१०]ममरावतीविरचितावासा[११]द्वृणीते [१२]विधेः ॥२९५॥

(१) हीरविजयसूरेः । (२) अकब्बरप्रतिबोधनप्रमुखचरित्रादिभूतकीर्त्तिविस्तारम् । (३) श्रुत्वा । (४) चेतश्चमत्कारितया मस्तकधूननतत्परे । (५) विश्वे । (६) उत्कण्ठाकलितचित्तवृत्तिः । (७) सहस्रम् । (८) नयनानाम् । (९) इन्द्रः । (१०) इन्द्रपुरीं(र्यां) कृतनिकेतनात् । (११) याचते । (१२) विधातुः सकाशात् ॥२९५॥

सूर्याचन्द्रमसौ पुन[१]र्दिनतमीनिर्माणदम्भा[२]दिदं-
शुशूषारसिकायितानिशमनोवृत्ती इव भ्राम्यतः ।
भर्त्ता [३]भोगभृतां [४]तद[3]श्रवभवन्निर्वेदमेदस्विह-
न्म[५]न्दं [६]स्वश्रुतिनिर्मितावपि [७]शतानन्दं निनिन्दा[८]ऽऽत्मना ॥२९६॥

(१) दिवसनिशाकरणकपटात् । (२) प्रभुकीर्त्तेः श्रोतुमिच्छया रसिकवदाचरितो निरन्तरं चेतोव्यापारा ययोः । (३) नागेन्द्रः । (४) तस्याः कीर्त्तेरश्रवणेनोत्पद्यमानखेदमेदुरमनाः । (५) मूर्खम् । (६) निजकर्णकरणे । (७) धातारम् । (८) स्वयम् ॥२९६॥

[१]विद्यो [२]मन्दरकन्दरैः [३]प्रतिरवैः [४]प्रोत्साहिताः किन्नरा,
यत्कीर्त्तिं [५]युवतीकृतानुवदनाः प्रीते[६]रुपावीणयन् ।

---

1. ०नां च सहस्रशो भगवतां चक्रे प्रतिष्ठाः स्वयम् । हीमु० ।
2. इतः पूर्वम्- सानन्दं ससुरासुरोरगनरव्रातैः स्वकान्तायुतैः
श्रोतृश्रोत्ररसायनैर्धनरवैर्जेगीयमानां रसात् ।
तद्विश्वत्रयचित्रकृद्गुणगणैरागत्य कर्णान्तिकं
गीतेर्गोचरताममेयसमयं नेतुं प्रणुन्नैरिव ॥२९७॥ इति श्लोकः हीमु०मध्येऽस्ति । 3. तदाश्रव० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[7]सिद्धा [8]रोधसि [9]सिद्ध सिन्धुसुदृशो [10]योषानुषङ्गा [11]जगू,
[12]रङ्गत्तुङ्गतरङ्गसङ्गजरवैः स्थानं[13] ददत्या इव ॥२९७॥

(१) वयमेवं जानीमः । (२) मेरुगुहाभिः । (३) प्रतिशब्दैः । (४) उत्साहमुत्कण्ठां प्रापिताः । (५) किन्नरीभिर्निर्मितमनुवदनं – समं गानं येषाम् । (६) वीणया गायन्ति स्म । (७) देवविशेषाः । (८) तटे । (९) स्वर्गगङ्गायाः । (१०) स्त्रीणां सङ्गो येषाम् । स्त्रीसखा इत्यर्थः । (११) गायन्ति स्म । (१२) चलन्तो ये अत्युच्चा ये कल्लोलास्तेषां परस्परसङ्गमादुत्थितशब्दैः । (१३) स्वयं पूरयन्त्याः । अथवा जिगासतां हि पूर्वं स्थानं दीयते पश्चाद्गायनो गायतीति गीतिरीतिः ॥२९७॥

[1][1]कीर्त्तिस्वःसरिदद्रियत्पिबजनानुर्व्यां[2] [3]स्तुवन्त्यो [4]मुहुः,
स्वर्गे [5]स्वर्गिमृगीदृशो [6]निजजनिं निन्दन्ति [7]मन्दाशयाः ।
[8]मोहात्प्राक्[9]परिकल्पितप्रियतमार्द्धाङ्गानुषङ्गा[10]दिमां,
श्रोतुं [11]क्वापि [12]न गन्तुमीश्वरतया[13] स्वं [14]शैलजा[15]क्रोशति ॥२९८॥

(१) कीर्त्तिरूपायाः स्वर्गङ्गाया अद्रिमर्थाद् हिमाचलं, एवंविधं यं हीरसूरिं सादरं पश्यतीति तादृशान् जनान् । (२) भूमण्डले जातान् । (३) प्रशंसन्त्यः । (४) वारं वारम् । (५) देवाङ्गनाः । (६) स्वावतारम् । (७) मूढमनसः । (८) अज्ञानात् । "सोऽहं हंसायितुं मोहादि"ति चम्पूकथायाम् । मोहशब्देनाऽज्ञानम् । अथ च स्नेहात् । (९) पूर्वं कृतकान्तार्द्धशरीरसङ्गात् । स्वार्द्धं शरीरं हराङ्गेन स्यूतमतोऽर्धाङ्गी गौरीरिति प्रसिद्धिः । (१०) कीर्त्तिम् । (११) कुत्राऽपि । (१२) भर्त्तुरर्द्धाङ्गसङ्गादसमर्थतया । (१३) आत्मानम् । (१४) पार्वती । (१५) हा ! मया वृथैव हराङ्गेनाऽङ्गं स्यूतमिति गर्हते ॥२९८॥

[1]यत्कीर्त्ति [2]नरनिर्जरोरगवधूप्रारब्धनूत(त्न)स्तुतिं,
श्रुत्वा[3]ऽस्या[4]मनुरागितां त्रिभुवने बिभ्रत्य[5]दभ्रां हृदा ।
[6]शर्वाणीरमणस्त[7]दश्रवणतो [8]मूर्द्धस्थसिद्धापगां,
कुर्वाणां बधिरत्व[9]मुद्धररवैस्तो[10]रङ्गजैर्गर्हति(ते) ॥२९९॥

(१) सूरिकीर्त्तिम् । (२) मानवदेवनागाङ्गनानिर्मिताभिनवस्तवनाम् । (३) कीर्त्तौ । (४) रागयुक्तताम् । (५) बह्वीम् । (६) हरः । (७) तस्याः कीर्त्तेरनाकर्णनात् । (८) शिरःस्थितगङ्गाम् । (९) उद्धुरध्वनिभिः । (१०) तरङ्गाणां समूहास्तेभ्यो भवैः । यथा पद्मसुन्दर-कविकृतभारतीस्तवे – "वारं वारं तारतरस्वरनिर्जितगङ्गातरङ्गा"मिति ॥२९९॥

नैतां [2]श्रोत्रवतंसिकां [3]विरचयन्सृ[4]ष्टेर्विनिर्माणतो,
[5]वैयग्र्येण [6]कुलालमेव मनसा मेने [7]निजं [8]नाभिभूः ।

1. तद्गङ्गागिरिराजयत्पिबजनानुर्व्याः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[९]त्रैलोक्यस्तुतिपारवर्त्तिविभवां संस्तो[१०]तुंमेतां [११]गुरुः,
सञ्जज्ञे [१२]गतगौरवः [१३]कविरपि [१५]प्रा[१४]पोऽकवित्वं पुनः ॥३००॥

(१) एतां सूरिकीर्त्तिम् । (२) कर्णावतंसिकां कर्णपूराम् । नैषधे यथा- विदर्भसुभ्रू-श्रवणावतंसिके''ति । (३) कुर्वन् । (४) जगत्करणात् । (५) व्यग्रत्वेन । (६) कुम्भकारमेव । (७) आत्मानम् । (८) ब्रह्मा । (९) त्रिभुवनस्य स्तवनस्य पारे वर्त्तते इत्येवंशीलः । अगोचर इत्यर्थः । एवंविधो विभवो यस्याः । (१०) कीर्त्तिम् । (११) बृहस्पतिः । (१२) गता गुरुता माहात्म्यं वाचस्पतिता वा यस्य । (१३) शुक्रोऽपि । (१४) मूर्खतां-अज्ञताम् । (१५) लेभे ॥३००॥

[१]निर्विण्णा इव [२]जज्ञिरे[३]ऽश्रवणतस्[४]तस्या [५]मदप्रोद्धुर-
स्वाशासिन्दुररुन्धनाद[६]हरहः [७]स्वान्ते महेन्द्रा[८] दिशाम् ।
[९]निद्रामुद्रितलोचनं जलनिधौ [१०]निध्याय [११]तार्क्ष्यध्वजं,
[१२]स्वच्छन्देन्दुमुखीव [१३]तां [१४]प्रतिगृहं शुश्राव सिन्धोः[१५] सुता ॥३०१॥

(१) खिन्ना इव । (२) जाताः । (३) अनाकर्णनात् । (४) सूरिकीर्तेः । (५) मदोन्मत्तनिजदिग्गजानां रुन्धनात्स्वस्थीकरणात् । (६) नित्यम् । (७) चित्ते । (८) दिक्पालैः-(लाः) । ''पतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्रै''रिति नैषधे । (९) निद्रया मीलितनयनम् । (१०) (११) नारायणम् । (१२) स्वेच्छाचारिणी वनितेव । (१३) सूरिकीर्तिम् । (१४) गृहे गृहे (१५) लक्ष्मीः ॥३०१॥

[१]स्वच्छन्दं [२]त्रिजगद्विलासरसिकां कीर्त्तिं व्रतिक्ष्मापतेः,
[३]सन्दृब्धोद्धुरतानगानवनितावक्त्रामृतर्चिःसुधाम् ।
[४]सोत्कण्ठं [५]पिबताम[६]कुण्ठमनसां [७]विश्वत्रयीजन्मिनां,
[८]प्राप्तानुत्तर सम्मदा इव [९]तदा [११]संजज्ञिरे [१०]वासराः ॥३०२॥

इति पं. देवविमलगणिविरचिते श्रीहीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये अकब्बरगोष्ठी-मृगयानियमन-सकलजन्तुजातसातनिर्विशनाशीर्वचन-तीर्थयात्रा-गूर्जरागमना-ऽमारि-जीजिया-शत्रुञ्जयशैलार्पणदिफुर-मानप्रदानादिवर्णनो नाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥ ग्रन्थाग्र० ४७५॥

(१) स्वेच्छया । (२) त्रैलोक्येऽपि क्रीडाकारिणीम् । (३) रचितातिशायितानां युक्तगानं याभिस्तादृक्स्वकान्तावदनचन्द्रामृतम् । (४) सहोत्कण्ठया वर्त्तते यत्तत् । (५) सादरं श्रृण्वताम् । (६) तदेकतानचित्तानाम् । (७) त्रैलोक्यजनानाम् । सुरासुरनराणामित्यर्थः । (८) लब्धासाधारणाह्लादा इव । (९) तस्मिन्नवसरे । (१०) दिनाः । (११) जाताः ॥३०२॥

चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥ ग्रन्थाग्र० ७००॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐं नमः ॥

अथ पञ्चदशः सर्गः ॥

अथ [१]सुहृद इव [२]स्वं [३]सारवस्तु प्रदत्तं, [४]प्रमुदितहृदयेनाक[५]ब्बरोर्वीमघोना ।
[६]श्रमणधरणिभृ[७]त्तल्लाभ[८]मादातुकामो, [९]विमलशिखरिरत्नं प्रेक्षितुं काङ्क्षति स्म ॥१॥

(१) मित्रस्येव । (२) स्वकीयम् । (३) सम्यक्पदार्थं धनरूपं वस्तु वा । (४) हृष्टमनसा । (५) नृपेण । (६) सूरिराजः । (७) तस्माद्विमलगिरेरधिकं लाभं - सुकृतफलम् । (८) ग्रहीतुकामः । (९) शत्रुञ्जयं पर्वतेषु रत्नतुल्यम् ॥

[१]विदलयितुमि[२]वान्तर्वैरिषड्वर्ग[३]मुच्चै-
[४]र्विधिवदु[५]पचरद्भिः [६]षड्[७]विधीन्[८]ब्रह्ममुख्यान् ।
प्रति विमलगिरीन्द्रं [९]भव्यलोकैः [१०]परीतो,
[११]व्रतिपतिरथ यात्रां कर्तुकामः [१२]प्रतस्थे ॥२॥

(१) हन्तुम् । (२) अन्तरङ्गवैरिणं-क्रोधमानमायालोभरागद्वेषरूपाणां वैरिणां वर्गम् । (३) अतिशयेन । मूलादित्यर्थः । (४) आगमोक्तप्रकारैः । (५) सेवमानैः । (६) षट्सङ्ख्यान् । (७) प्रस्तरान् । (८) ब्रह्मचर्यं मुख्यं येषु । 'छहरी'ति लोकप्रसिद्धान् । (९) भविकजनैः । (१०) परिवृतः । (११) हीरसूरिः । (१२) प्रचचाल ॥२॥

[१]नगरनिगमदुर्गग्रामसारामसीमा-
गहनगुरुगिरीन्द्रां[२]ल्लङ्घमानः [३]क्रमेण ।
किम[४]मृतकमलायाः [५]केलिशैलं [1][६]धरायां,
[७]श्रमणधरणिशक्रः [८]सिद्धिशैलं ददर्श ॥३॥

(१) पुराणि, प्रभूतवणिक्स्थानानि-निगमान्, कोट्टान्, ग्रामान्, उद्यानयुक्तसीमाः, वनानि, महतः पर्वतांश्च । (२) अतिक्रामन् । (३) परिपाट्या । (४) सिद्धिलक्ष्म्याः । (५) क्रीडापर्वतम् । (६) भूमौ । (७) सूरिः । (८) सिद्धाचलम् ॥३॥

[१]नयनपुटनिपेयामाश्रयन्[२]काययष्टिं,
किमु [३]सुकृतसमूहो [४]भारतक्षेत्रभाजाम् ।
[५]निखिलविषयभूषामोषिसौराष्ट्रलक्ष्म्या,
[६]यदवनिधरदम्भाच्चारुचूडामणिर्वा ॥४॥

---

१. क्षमायां हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) दर्शनार्हाम् । (२) तनुलताम् । "[1]स्याहेर्भूयः फणसमुचितः काययष्टीनिकाय" इति नैषधकाव्ये । (३) पुण्यपुञ्जः । (४) भरतक्षेत्रनराणाम् । (५) समस्तदेशशोभां मुष्णातीत्येवंशीलस्य सौराष्ट्रस्य श्रियः । (६) यत्पर्वतकपटात् ॥४॥

[१]अमितरजतरत्नस्वर्णशृङ्गै[२]रसङ्ख्या-
निमिषशिखरिखण्डैः स्वःसदां[३] सद्मभिश्च ।
[५]त्रिजगदुपरिभूमीलम्भिना येन[४] मेरु-
र्विजित इव बभूव [६]व्रीडया[७]ऽनक्षिलक्ष्यः ॥५॥

(१) प्रमाणातीतै रूप्यमणिस्वर्णशिखरैः । (२) सङ्ख्यारहितकल्पद्रुवनैः । (३) देवभुवनैः । (४) मेरुस्तु रत्नसानुः चतुर्वनश्च । एकं सुरगृहं स्वर्गं धत्तम् "दिवमङ्कादमराद्रिरागता"-मिति नैषधे । स्वप्रमाणोच्चप्रदेशं प्रापयति च । (५) त्रैलोक्योर्ध्वभूमीं लोकाग्रस्थानं प्रापयतीत्येवं शीलेन । (६) लज्जया । (७) अदृश्यः ॥५॥

[१]शिखरमणिविनिर्यज्ज्योति[२]रुज्जृम्भमाणा-
ञ्जनविपिनविनीले व्योम्नि यस्या बभासे ।
[३]अतुलचटुलभावं [४]स्वं [५]परित्यज्य नित्यं,
[६]तडिदिव निवसन्ती [७]वल्लभाम्भोधराङ्के ॥६॥

(१) शृङ्गरत्नेभ्यो निःसरत्कान्तिः । (२) विनिद्राञ्जनद्रुममेचके । (३) बहुचपलस्वभावम् । (४) आत्मीयम् । (५) मुक्त्वा । (६) विद्युत् । (७) भर्त्तुर्मेघस्योत्सङ्गे ॥६॥

क्वचिदपि [१]कलधौतप्रस्थसंस्थानगाहि-
प्रवहदविरलाम्भोनिर्झरस्फारधारा ।
[२]तुहिनशिखरिशृङ्गोत्सङ्गरङ्गत्प्रवाह-
द्युसदधिपनदीवा[३]ऽद्वैतशोभां बभार ॥७॥

(१) रजतशृङ्गमेव स्थानमाश्रित्य प्रकर्षेण प्रसरद्बहुजलं यत्र तादृशां निर्झराणामुदारा वारिधारा । (२) हिमाचलशृङ्गोत्सङ्गे चलत्प्रवाहा स्वर्गङ्गेव । "सुरेन्द्रतटिनीतीरे" इति भोजप्रबन्धे । (३) अनन्यशोभाम् ॥७॥

[१]जलधिभवनजम्भारातिसारङ्गचक्षु-
र्दिगवनिधरमूर्द्धालम्बिबिम्बौ [२]दिनादौ ।
[३]रजतकनकराजत्कर्णपूराविवैत-
[४]द्विमलगिरिरमायाः [५]पुष्पदन्तौ विभातः ॥८॥

1. 'स्याहोर्भूयः कणसमुचितः काययष्टीनिकाय' इति नैषधे हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) वरुणशक्रकान्तादिग्गिर्योरस्तोदयाचलयोः शिखरालम्बनशीलमण्डलौ । "वरुण-गृहिणीमाशामासादयन्तममुं रुची"ति । तथा- "निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषीहरिदि"ति नैषधे । (२) प्रातःकाले । (३) रूप्यस्वर्णदीप्यमानकर्णाभरणे । (४) शत्रुञ्जयलक्ष्म्याः । (५) शशिभास्करौ ॥८॥

[1]निखिलभुवनभारोद्धारनिर्वेदभाजा,
[2]भुजगपरिवृढेना[3]ऽनेकविज्ञप्तिकाभिः ।
[4]भरभरणधुरीणो[5]ऽशेषनीरेशनेमेः
किम[6]यमिह महीध्रः [7]कारितो [8]विश्वकर्त्रा ॥९॥

(१) समस्तविश्वभारवहनात्खेदवता । (२) शेषनागेन । (३) अतिबहुविज्ञपनैः । (४) भारोद्धरणधौरेयः । (५) सर्वभूमेः । (६) गिरिः । (७) निर्मापितः । (८) धात्रीकर्त्रा ॥९॥

[1]सुरपथपथिकैतत्प्रस्थसंस्था [2]नभोगाः,
[3]शशभृदपरभागं प्रेक्ष्य [4]साक्षान्नि[5]रङ्कम् ।
किम[6]यमि[7]दमुपास्ति[1] [8]नित्यम[9]भ्येत्य कुर्व-
न्नजनि [10]विगतलक्ष्मेत्य[11]न्तर[12]ध्याहरन्ति ॥१०॥

(१) नभोमार्गस्य पान्थे गिरिशिखरे संस्थिताः । अत्युन्नतशैलसानुस्था इत्यर्थः । (२) खेचराः । (३) चन्द्रस्याऽन्यमुपरितनं प्रदेशम् । (४) साक्षात्स्वचक्षुषा दृष्ट्वा । (५) निर्लाञ्छनम् । (६) अयं चन्द्रः । (७) शत्रुञ्जयसेवाम् । (८) अनिशम् । (९) आगत्य । (१०) गतकलङ्कः । (११) अन्तर्मनसि । (१२) वितर्कयन्ति ॥१०॥

[1]भुजगभवनमध्यं व्याप्नुवन्स्थूलमूलै-
[2]र्दिवमपि शिखरैः स्वै[3]र्भूघनेनाऽपि भूमीम् ।
इति विमलमहीभृद्भू[4]र्भुवःस्वस्त्रयीं यो,
[5]हरिरिव [6]निजपादैः [7]स्वात्मनाऽऽक्रम्य तस्थौ ॥११॥

(१) पातालमध्यं पातालमूलम् । कैलाश इत्यभिधानत्वात् । (२) आकाशं स्वर्गं च । (३) वपुषा । (४) त्रैलोक्यम् । (५) नारायण इव । (६) स्वैस्त्रिभिश्चरणैः बलिबन्धावसरे क्रमत्रयमितां भूमीं याचितवान् । तदवसरे च क्रमत्रयेण त्रैलोक्यमाक्रान्तवांस्तदा बलिर्बद्धः । (७) निजस्वरूपेण ॥११॥

[1]बहलसलिलपूर्णातूर्णयानाभ्रिकाभिः,
स्फुरति [2]शिखरमालालम्बिकादम्बिनीभिः ।

1. ०मुपास्ते हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[3]विधुमणिरविदीपान्जेतु[4]मभ्यागतैर्यः,
किम[5]भिलषितदायी [6]सेव्यमानस्तमोभिः ॥१२॥

(१) अतिघनसलिलपूरितत्वेन मन्दं गामिनीभिरभ्रिकाभिः । (२) शृङ्गश्रेणीसंश्रयणीभिर्मेघमालाभिः । (३) चन्द्ररत्नसूर्यप्रदीपान्स्वरिपून् । (४) पराभवितुमुपागताभिः । (५) कामितं दातुं शीलमस्य । (६) उपास्यमानः ॥१२॥

[1]जडिमशितिमवर्षायुष्कलोलस्वभावो-
द्धुरसमिरविरोधोदन्वदभ्यर्थनाद्यम् ।
निजमखिल[2]मंसातं [3]हातु[4]मब्दैः समेत्या-
[5]ऽनिशनिवसनदम्भात्किं तपस्तप्यतेऽस्मिन् ॥१३॥

(१) जडिमा अज्ञानं जलमयत्वं, वर्षाकालं यावदायुष्कं-जीवितव्यम् । 'शरद्घनात्यय' इति श्रुतेः । अस्थिरस्वभावताम् - 'पर्जन्यश्चपलाशय' इति श्रुतेः । वायुना सह विरोधं सागराज्जलाभ्यर्थना । "अब्दैर्वारिजिघृक्षयाऽर्णवगतै" रिति खण्डप्रशस्तौ । (२) दुःखम् । (३) त्यक्तुम् । (४) मेघैः । (५) निरन्तरवासव्याजात् । वर्षानन्तरं हि वारिदाः क्वापि गिरौ वसन्तीति श्रुतेः ॥१३॥

[1]त्रिदिवसदनमार्गोत्सङ्गरङ्गत्तरङ्गै-
[2]र्मणिचितचयचञ्चद्रोचिषां [3]सञ्चयैर्यः ।
द्युनिशमिह [4]निजाङ्कस्थायुकानां [5]चिकीर्षुः,
किमु [6]शरणधुरीणः [7]शाश्वतं सुप्रभातम् ॥१४॥

(१) आकाशक्रोडे प्रचलत्कल्लोलैः । (२) रत्नखचितप्राकारस्य दीप्यमानदीप्तीनाम् । (३) गणैः । (४) स्वोत्सङ्गसंस्थानां स्वसमीपस्थायिनां वा स्वापत्यानामिव । (५) कर्त्तुमिच्छुः । (६) शरणे साधुः । (७) अनश्वरम् ॥१४॥

[1]घनलसदपकण्ठा [2]रुक्मरूप्यद्विभागा,
[3]पतदुपरिझराम्भा भाति कुत्राऽपि भित्तिः ।
तनुरिव पुरदस्योः [4]स्यूतशैलाङ्गजाङ्गा,
[5]श्रुतशितिगलनाला [6]स्वःस्रवन्तीं [7]श्रयन्ती ॥१५॥

(१) मेघेन दीप्यमानसमीपम् । मेघवत् शोभमानं नीलत्वात्कण्ठसमीपे यस्याः । (२) स्वर्णरूप्ययोर्द्वौ प्रदेशौ पूर्वापरौ भागौ यस्याः । (३) क्षरत् मस्तके निर्झ्झरवारि यस्याः । (४) प्रोतं सीवितं अर्द्धाङ्गे करणात्पार्वत्याः शरीरं यया । (५) आश्रितं श्यामं कण्ठपीठो(ठं) यया । (६) गङ्गाम् । (७) धारयन्ती ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्फटिकघटितशृङ्गोत्सङ्गसङ्गीतरङ्गी[1]-
भवदलिकुलशाली चम्पकः [2]पुष्पपीतः ।
[3]दशशतनयनस्या[4]ऽध्याश्रितस्वःकरेणोः,
कलित[5]कनककान्तेः [6]कान्ति[7]मादान्[8]मघोनः ॥१६॥

(१) श्वेतरत्ननिर्मितशिखरक्रोडे सङ्गीते-गानेऽथ झङ्काररवरङ्गयुक्तैर्भवद्भिः भ्रमर-भरैर्भ्राजमानः । (२) पुष्पैः कृत्वा पीतः - पिञ्जरः । स्वर्णरुचिर्जातः । (३) इन्द्रस्य । (४) आश्रितैरावतस्य । (५) सुवर्णवर्णस्य । (६) शोभाम् । (७) जग्राह । (८) इन्द्रस्य । सहस्रनेत्रस्य ॥१६॥

अपि [1]धृतसुरसिन्धुर्ना[2]गरङ्गी [3]सदुर्गः,
[4]सवृषमु[5]षितकालः [6]केकियानं दधानः ।
[7]धृतशशधरचूडो [8]नीरमुङ्नीलकण्ठः,
शिव इव [9]घनयानो भाति मृत्युञ्जयाद्रिः ॥१७॥

(१) कलिता देवाः चतुर्दश शत्रुञ्जया-ऐन्द्री-ब्राह्मयो महानद्यो येन । पक्षे-गङ्गा । (२) नारङ्गा वृक्षविशेषाः सन्त्यस्मिन्निति । पक्षे-शेषनागे रङ्गोऽस्याऽस्तीति । (३) सह कोट्टैः पार्वत्या च वर्त्तते यः । (४) सह धर्मेण वृषभेन(ण) च वर्त्तते यः । पुण्यराशिरित्यभिधानत्वात् । (५) निर्दलितो यमो दैत्यविशेषश्च येन । मुक्तिदायकत्वान्मृतिहन्ता । (६) मयूराणां गमनं स्वामिकार्त्तिकं च । (७) कलितश्चन्द्रः शिखरे मस्तके च येन । (८) मेघेन तद्वच्च कृष्णा कन्धरा यस्य । (९) मेघानां गमनानि यत्र । पक्षे-मेघवाहनः ॥१७॥

[1]स्वकशिखरशिखाङ्कस्थायुको[2]न्स्वैकतानान्,
[3]कमलमृदुलदेहांस्तापितां[4]स्तापनेन ।
[5]सुखयितुमिव [6]शैत्यैः [7]सिद्धशैलोऽ[8]ङ्गभाजो,
[9]बहलजलमुचोच्चै[10]रातपत्रं तनोति ॥१८॥

(१) निजशृङ्गाग्रोत्सङ्गस्थायिनः । (२) स्वस्मिन्नेकतानीभूतान् । (३) पद्मसुकुमाल-शरीरान् । (४) सूर्यातपेन तप्तीकृतवान् । (५) सुखीकर्त्तुमिव । (६) शीतलताभिः । (७) शत्रुञ्जयः । (८) जन्तून् । (९) घनघनेन । (१०) छत्रम् ॥१८॥

[1]स्वभवविभवभूम्ना [2]लम्भितेनाऽभिभूतिं,
[3]त्रिदशशिखरिमुख्याशेषशैलव्रजेन ।
किमु विमलगिरीन्दो [4]रूप्यरत्नार्जुनाङ्गा,
[5]निजनिजशिखरौघाः प्रापिताः [6]प्राभृतत्वम् ॥१९॥

1. ०सङ्गी तरङ्गी० हीमु० । टीकाऽप्येवमेव कृताऽस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) निजोद्भूतशोभाबाहुल्येन । (२) प्रापितेन । (३) मेरुप्रमुखाखिलशैलगणेन । (४) रजतमणिस्वर्णमयाः । (५) स्वस्वशृङ्गव्रजाः । (६) उपदात्वम् ॥१९॥

[1]विमलशिखरिकुण्डा वल्लरी[2]: शैवलाना-
[3]मुपरि [4]बहलितानामुद्वहन्तो विभान्ति ।
[5]प्रवसितदयितानां कामिनीनां [6]कपोला,
इव [7]लुलदलकाङ्काः [8]पाण्डिमानं दधानाः ॥२०॥

(१) शत्रुञ्जयोपरिस्थायिनः पानीयकुण्डाः । (२) मञ्जरीः शैवलानाम् । (३) जलोद्ध्र्वम् । (४) सान्द्रीभूतानाम् । (५) पथिकीभूतकान्तानाम् । (६) गण्डस्थलाः । (७) अबद्धत्वादुपरि पतन्तो गल्लोपरि तिष्ठन्तः केशा उत्सङ्गे येषाम् । (८) पाण्डुरतां दधानाः । विरहे हि सतीनां प्रायो गण्डस्थले पाण्डिमा तनौ कृशत्वं च स्यात् ॥२०॥

[1]विविधनवचिरत्नायत्नदत्तात्मरत्नै-
र्निखिलमपि [2]निहत्यो[3]ऽकिञ्चनत्वं जनानाम् ।
[4]माणिशिखरिणमद्रि[5]र्दीनवाक्कारिणं यो,
बहु [6]तृणमिव चक्रे [7]किंपचानं [8]वदान्यः ॥२१॥

(१) नानाप्रकाराणि नवीनोत्पन्नानि तथा चिरत्नानि-चिरकालोद्भूतानि । ''चिरत्नरत्नाचित-मुच्चितं चिरा''दिति नैषधे । चिरत्नानीति चिरकाल जा[ता]नीति तद्वृत्तिः । प्रयासं विना दत्तानि स्वस्य रत्नानि विविधमणयस्तैः । (२) निवार्य (३) दारिद्र्यम् । (४) रोहणाचलम् । (५) दीनां-हस्ताभ्यां भालमास्फाल्य हा तात ! हा मात!रिति वाचं कारयतीत्येवंशीलं धनं यथा स्यात्तथा । (६) तृणं तृणप्रायमकिञ्चित्करमित्यर्थः । (७) दरिद्रम् । (८) दानशीलः ॥२१॥

वि[1]दलितदलमालाशालिलीलातमालः,
[2]कनकशिखरसंस्थस्त[3]च्छविच्छन्नवर्ष्मा ।
[4]मुररिपुरिव [5]पीतस्फीतवासो वसानो,
[6]विहगविभुविहारी यत्र शत्रुञ्जयेऽभात् ॥२२॥

(१) स्मितपत्रपङ्क्तिभ्राजमानक्रीडाकारितापिच्छतरुः । (२) स्वर्णशृङ्गे संस्थितः । (२) स्वर्णशृङ्गस्य कान्त्या व्याप्ततनुयष्टिः । (३) कृष्ण इव । (४) पीतं-पिङ्गं स्फीतं-प्रधानं वस्त्रं परिदधानः (५) गरुडाध्यासितः ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]उपरि [2]परिसरद्भिः [3]पद्मरागाश्मगर्भ -
स्फटिकघटितशृङ्गव्रातजातांशुपूरैः ।
अपि [4]नभसि [5]भुवीव [6]ब्रह्मभूभानुपुत्री,
त्रिदशजलधिगानां यस्तनोतीव[7] सङ्गम् ॥२३॥

(१) उच्चैः । (२) विस्तरद्भिः । (३) रक्तमणिमरकतस्फटिकमणि कल्पित-शिखरगणप्रोद्भूतज्योतिःपुञ्जैः । (४) आकाशेऽपि । (५) भूमाविव । (६) सरस्वती-यमुना-गङ्गानाम् । (७) सङ्गमं करोति । त्रिवेणीसङ्गम इति ॥२३॥

[1]क्वचिदपि [2]मुचकुन्दो[3]ऽमन्दनिस्यन्दवृन्द-
स्मितसुमविशदश्री [4]राजतप्रस्थसंस्थः ।
[5]समदसुरभिसूनोः पृष्ठ्यधिष्ठानभाजो,
[6]भसितै[1]र्ललितमूर्त्तेः प्राप [7]शम्भोर्वि[8]भूषाम् ॥२४॥

(१) कुत्रापि । (२) कुन्दद्रुमः । (३) बहलरसप्रकरो येषु तादृग्विकचकुसुमैः श्वेतशोभः । (४) रूप्यशृङ्गप्ररूढः । (५) मदकलवृषभपृष्ठाश्रयवतः । (६) भस्मोद्धूलनतनोः । (७) ईश्वरस्य । (८) शोभाम् ॥२४॥

[1]अनणिममणिमालाशालिनी यस्य सिन्धुः,
[2]प्रतिफलितविवस्वद्दीप्तिदुष्प्रेक्षणीया ।
[3]सुकृतभरितजन्तोर्गर्भ[4]मन्तर्वहन्ती,
युवति[5]मनुकरोति [6]स्मेरदम्भोरुहास्या ॥२५॥

(१) न विद्यते लघुता यत्र तादृशमणीनां धोरणी, तया शोभनशीला । (२) प्रतिबिम्बितसूर्यकान्त्या दुःखेन द्रष्टुं योग्या । (३) पुण्योपचितजीवस्य । (४) कुक्षौ । (५) सदृशीभवति । (६) विनिद्रत्कमलरूपानना स्मेरपद्मवन्मुखं यस्याः । "स्मेरदम्भोजखण्डाभि"-रिति पाण्डवचरित्रे ॥२५॥

[1]वृषभजिनगुणौघानायतः [2]स्वक्वणस्या -
[3]ऽनुगुणरणितवीणान्किन्नरेन्द्रान्गिरीन्द्रः ।
क्वचन [4]विकचमोचाचारुपत्रै[5]र्धवित्रै-
रिव [6]पवनविलोलैर्वीजयामास मन्ये ॥२६॥

(१) ऋषभदेवगुणगणान् । (२) स्वध्वनेः । (३) सदृशी वादिता वीणा यैः । (४)

---

1. ०लसित० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मितकदलीमञ्जुलदलैः । (५) मृगचर्मव्यजनैरिव । (६) वातचपलैः ॥२६॥

[१]गलदमलमरन्दोन्मादिरोलम्बरावा-
कुलकलदलमालोन्निद्रसान्द्रद्रुमौघः ।
[२]रणरणकितचेता [३]वेश्मनीवाऽत्र तस्थौ,
[४]मुदिर [1]इव [५]रिरंसु[६]र्योषिता [७]विद्युतेव ॥२७॥

(१) निष्पतद्विशदमकरन्देषून्मदानां गुञ्जाभिराकुला निर्भरभृता प्रधानपत्रपङ्क्तिर्येषां तादृग्विकसितनिबिडवृक्षव्रजः । (२) उत्सुकितमनाः । (३) स्वसद्मनीव । (४) मेघः । (५) रन्तुमिच्छुः । (६) कान्तया । (७) तडिता ॥२७॥

[१]मदमुदितमृगेन्द्रारब्धरावाः [२]प्रतिश्रु-
न्मुखरितशिखरौघा[३] मेघघोषद्विषन्तः ।
[४]विमलधरणिभर्त्तु[५]र्विश्वतीर्थेश्वरत्वा-
भ्युदितहृदवलेपै[६]र्हुंकृतानीव भान्ति ॥२८॥

(१) क्षीबतया हृष्टसिंहैः प्रारब्धशब्दाः । (२) प्रतिशब्दैर्वाचालीकृतशृङ्गराशयः । (३) मेघगर्जितवैरिणः । (४) शत्रुञ्जयशैलस्य । (५) सकलतीर्थनायकत्वेनाऽऽविर्भूतमतो मध्याहङ्कारैः । (६) हुङ्कारा इव ॥२८॥

[१]निकटविटपिपत्त्रिव्रातवातप्रपाति-
स्मितकिसलयपुष्पान्क्लृ[२]प्ततल्पानिवाऽत्र ।
[३]सुख[४]मनिमिषलेखाः [५]सन्निषण्णैणनाभी-
सुरभिमणिशिलाङ्कान्सा[६]ङ्गनाः संश्रयन्ते ॥२९॥

(१) समीपवृक्षेभ्यो विहङ्गमगणपक्षवातैः प्रकर्षेण पतनशीलानि विकसितपल्लवपुष्पाणि येषु । (२) रचितपल्यङ्कानिव । (३) सुखेन । (४) देवराजी । (५) उपरि उपविष्टानां कस्तूरिकामृगाणां नाभीभिः-कस्तूरिकोत्पत्तिस्थानं तुन्दकूपिकाभिः सगन्धान् रत्नशिलोत्सङ्गान् । "निषण्णमृगनाभिभि"रिति रघुवंशे । (६) सस्त्रीकाः ॥२९॥

[१]क्वचिदपि [२]सरिदम्भो गाहितुं [३]साग्रहेण,
[४]द्विरदसमुदयेनो[५]न्मादिना[६]ऽस्मिन्दिदीपे ।
[७]कुलिशशयभयोर्वीनष्टवार्द्धिप्रविष्टा-
खिलशिखरिविभूषामिच्छताऽऽच्छेत्तुमूहे ॥३०॥

1. इव रिरंसुर्विद्युतात्मीयपत्न्या हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कुत्रापि स्थाने । (२) चतुर्दशसु नदीषु कस्याश्चिन्नद्याः पानीयमवगाहितुं विलोडयितुम् । अन्तः प्रविश्य जलक्रीडां कर्त्तुमित्यर्थः । (३) सहठेन । (४) गजयूथेन । (५) मदोद्धुरेण । (६) शत्रुञ्जये । (७) इन्द्रभीत्या भूतलात्पलायिताः समुद्रजलप्रविष्टा ये सकलाः शैलास्तेषां शोभाम् । (८) हठाद्ग्रहीतुमिव ॥३०॥

क्वचिदु[1]दरशयालू[2]न्प्रौढगर्भा[3]न्महेला,
इव दधति [1]गिरीन्दोः कन्दराः [4]सिंहशावान् ।
अपि बभुरिह [5]नागाः प्रेषिता [6]यत्प्रसत्यै,
[7]निजगरिमजितेनेवा[8]ऽञ्जनेनाऽऽ[9]त्मशृङ्गाः ॥३१॥

(१) कन्दरामध्ये शयनशीलान् । पक्षे कुक्षौ स्थायुकान् । (२) परिणतान् भ्रूणान् । (३) स्त्रिय इव । (४) केसरिकिशोरान् । (५) गजाः । (६) यस्याऽनुकूलीकरणाय । (७) स्वगुरुतापराभूतेन । (८) अञ्जनाचलेन । (९) स्वशिखराणि । शृङ्गशब्दः पुंनपुंसके ॥३१॥

क्वचन [1]करिणि [2]मग्ने [3]केलिलोके [4]ह्रदिन्यां,
[5]तदुपरि [6]सरवेणाऽभ्राम्यत [7]भ्रामरेण ।
क्व [8]नु गत [9]इह हस्ती [10]स्ताघ आस्ते नवान्त-
[11]स्तमनु[12] पुनर[13]येऽहं पृच्छताऽतीव सिन्धुम् ॥३२॥

(१) गजे । (२) ब्रूडिते । (३) क्रीडाचपले । (४) नद्याम् । (५) गजमज्जनस्थानोपरि । (६) सगुञ्जारवेण । (७) भ्रमरसमूहेन । "बहुलभ्रामरमेचकतामस"मिति वृत्तरत्नाकरवृत्तौ । (८) नु इति प्रश्ने । (९) इह-नद्याम् । (१०) गाधजलम् । स्वल्पं पय इत्यर्थः । (११) तं गजम् । (१२) अनु-पृष्ठे । (१३) अये-गच्छामि ॥३२॥

किम[1]खिलकुलशैलान्जेतुकामः [2]स्वलक्ष्म्याः,
[3]तरुण इव [4]मृगाक्षीः किं दिशः प्रेक्षितुं वा ।
किमुत [5]निखिललोकालोकनोत्कण्ठिचेता,
विमलवसुमतीभृत्प्रो[6]न्नतिं संतनोति ॥३३॥

(१) समस्तकुलाचलान् । (२) निजविभवेन । (३) युवेव । (४) तरुणीः । (५) समग्रयोर्लोक अलोकश्च तयोर्दर्शनेन उत्सुकमनाः । (६) उन्नतीभूतः ॥३३॥

उ[1]दयदरुणबिम्बे[2]नैकतो [3]नैशनिर्य-
त्तिमिरपरिकरेणाऽप्यन्यतः पर्वतेन ।

---

1. धरेन्दोः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४]कलिततनिलयरत्नः [५]पृष्ठतिष्ठत्तमिस्रो,
[६]दिननिधननिकेतापातिलोकोऽनु[७]चक्रे ॥३४॥

(१) उदीयमानेन सूर्यमण्डलेन । (२) एकस्मिन्पार्श्वे । (३) निशासम्बन्धि अरुणभयाद्विश्वान्निःसरत्तमिस्रप्रकरेण । (४) हस्ते कृतप्रदीपः । (५) पृष्ठे मुक्तस्थाने वर्तमानमन्धकारं यस्य । (६) दिवसावसाने सन्ध्यायां स्वगृहागमनशीलजनः । (७) अनुकृतः-सदृशीकृतः ॥३४॥

क्वचिदपि [१]कमलानामात्मनो[२]ऽक्षीणभावं,
[३]त्रिजगदनिशदानेनाऽप्य[४]याच्यत्वमन्यत् ।
किमु [५]विवरिषुरेष [६]प्रावृषेण्याम्बुवाहो,
[७]वशदविमलशैलं शीलति स्मा[८]ऽञ्जनौघः ॥३५॥

(१) पानीयानां श्रियांश्च । (२) अक्षयत्वम् । (३) त्रिभुवनजनानां नित्यविश्राणने[नाऽ]-पि । "अनिशतापमिषादुदसृज्यते"ति नैषधे । (४) अयाचनीयताम् । (५) याचितुमिच्छुः । (६) वार्षिकमेघः । (७) कामितदायिनं <u>शत्रुञ्जयम्</u> । 'तृष्णा लिप्सा वशस्पृहे'ति हैम्याम् । (८) अञ्जनवृक्षव्रजः ॥३५॥

असुरसुरनराणां श्रेणिभिः [१]सप्रियाणां,
स [२]शिखरिपृतनाषाड् भूष्यते [1]स्मा[३]ऽविशेषम् ।
[४]भुजगभवनदेवावासविश्वंभराणां,
[५]सम[६]मखिलविभूषादित्सयेवो[७]त्सुकाभिः ॥३६॥

(१) प्रियायुक्तानाम् । (२) गिरीन्द्रः । (३) निर्विशेषम् । (४) पातालस्वर्गभूमीनाम् । (५) समकालम् । (६) समस्तशोभानां दातुमिच्छया । (७) उत्कण्ठिताभिः ॥३६॥

[१]मरकतशिखराणां [२]पद्मरागोदराणां,
दिशि[३] दिशि [४]जलधारोद्गारिनिर्यज्झराणाम् ।
क्वचिदुपरि[५] नमन्त[६]श्चञ्चला केलिमन्तो,
[७]ध्वनिभि[८]रिह [१०]पयोदा [९]जज्ञिरे [११]वृष्टिमन्तः ॥३७॥

(१) नीलमणीमयशृङ्गाणाम् । (२) रक्तमणयो गर्भे येषाम् । (३) सर्वदिक्षु । (४) पयःप्रवाहानुद्गिरन्तीत्येवंशीलास्तथा निःसरन्तो निर्झरा येषु । (५) उन्नतिभाजः । (६) विद्युद्विलासशालिनः । (७) गर्जाभिः । (८) इह <u>शत्रुञ्जये</u> । (९) ज्ञाताः । (१०) मेघाः । (११) वर्षन्तोऽपि ॥३७॥

---

1. निर्विशे. हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्वचिद[1]वहद[2]पाचीवीचिमालीव सेतु,
क्वचिदपि [3]वसुराजीमिभ्यधामेव धत्ते ।
अपि [4]दुरधिगमत्वं [5]ब्रह्मवत्क्वाऽप्यधत्त,
व्यधृत [6]कनकसालं क्वाऽपि [7]लङ्केव शैलः ॥३८॥

(१) धत्ते स्म । (२) दक्षिणसमुद्र इव । दक्षिणसमुद्रे रामेण सेतुर्बद्ध इति श्रुतिः । (३) मणिमालाम् । (४) दुष्प्रापत्वम् । (५) मोक्षवत् । (६) स्वर्णप्राकारम् । (७) रावणपूरिव ॥३८॥

[1]स्फुटकटतटनिर्यद्दानपाथःप्रवाहैः,
[2]शिशुशिखरिसमूहान्सिञ्च[3]दञ्चद्वनान्तः ।
क्वचिदपि करियूथं[4] विन्ध्यधात्रीभृतीव,
प्रणयति [5]रतिकेलीं यत्र [7]सत्रा [6]कलत्रैः ॥३९॥

(१) प्रकटं कपोलस्थलनिर्गलन्मन्दाम्भःधाराभिः । (२) बालसालपटलान् । (३) अञ्चत्-गच्छत् । (४) विन्ध्याचले इव । (५) कन्दर्पक्रीडाम् । (६) स्त्रीभिः । (७) सार्द्धम् ॥३९॥

[1]त्रिदिवसदनभूभृत्सार्वभौमाध्वरोधो-
द्धुरशिखरसहस्रैः [2]पुण्डरीकावनीभृत् ।
[3]धरणिमिव फणाभि[4]श्चक्रिणां चक्रवर्त्ती,
[5]त्रिदिवमिव [6]दिधीर्षु[7]र्लक्षकैर्लक्ष्यते स्म ॥४०॥

(१) त्रिदिवसदना देवास्तेषां शैलो-मेरुस्तस्य सार्वभौमः-शक्रस्तस्याऽध्वा-मार्ग-आकाशस्तस्य रुन्धने उत्कटानां शृङ्गानां(णां) सहस्रैर्दशभिः शतैः । "जाम्बूनदोर्वीधरसार्वभौमः" । तथा-"बहुविगाढसुरेश्वराध्वा" इति नैषधे । (२) शत्रुञ्जयगिरिः । (३) भुवम् । "धरणिविरहिणि क्लान्तमुद्रे समुद्रे" इति नाटके धरणिशब्दः ह्रस्वोऽप्यस्ति । (४) शेषनागः । (५) स्वर्गम् । (६) धर्त्तुमिच्छुः । (७) दर्शयितृभिः ॥४०॥

[1]विदलितदललीलाश्यामलीभूतभूमी-
रुहनिवहनितम्बालम्बिजाम्बूनदस्नुः ।
[2]प्रसृतझरपयस्कः [3]प्रावृषेण्याम्बुवर्षि-
स्फुरद[1]चिरपयोदं योऽनुयातीव कान्त्या ॥४१॥

(१) विकसितपत्राणां विलासेन कृष्णीभूततरुव्रजा यत्र तादृशं गिरिमध्यभाग-

1. ०दशनि० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माश्रयतीत्येवंशीलं स्वर्णमयं शृङ्गं यस्य । (२) प्रवाहमाननिर्झरजलः । (३) वार्षिकाम्बुवर्षणशीलः, स्फुरन्ती तडिद्यत्र तादृग्मेघम् ॥४१॥

[1]क्वचिदपि [2]लसदभ्रस्फाटिकोत्तुङ्गशृङ्गा-
ङ्गणधरणिचरिष्णूः [3]क्ष्मास्पृशां प्रेक्ष्य लक्षाः ।
[4]इति [5]मति[6]रुदयासीद्य[7]न्नितम्बस्थितानां,
किमिह चरति पङ्क्तिः स्वैरमेषा सुराणाम् ॥४२॥

(१) कुत्राऽपि । (२) मनोज्ञाकाशस्फटिकरत्नानामुच्चैः शिखराजिरभूमीसञ्चरणशीलान् । (३) यात्रिकजनान् । (४) एवं विधा । (५) बुद्धिः । (६) उद्भवति । (७) शत्रुञ्जय-मध्यभागस्थायिनाम् । तद्रत्नमयशृङ्गाणां दृग्गोचरत्वात् ॥४२॥

[1]मलयगिरिरिवाऽसौ क्वापि [2]काकोदराली-
कलितमलयसालै[3]र्निर्यदामोदिवातैः ।
[4]गलदमलमदाम्भः पङ्क्तिसंसिक्तवृक्षैः,
क्वचिदपि [5]गजयूथै[6]र्विन्ध्यवद्यो विभाति ॥४३॥[1]

(१) मलयाचल इव । (२) भुजगगणवेष्टितचन्दनैः । (३) प्रसरत्सुगन्धगन्धवाहैः । (४) क्षरद्विशुद्धमदजलमालासंसिक्ततरुभिः । (५) गजघटाभिः । (६) विन्ध्याचल इव ॥४३॥

क्वचन [1]कनकरत्नाधित्यकादीप्रदीप्ति,
[2]दिनकरकरसङ्गाद्गाहमानां विहायः ।
[3]सकलकुलगिरीन्द्रान् यः पराभूय [4]भूत्या,
कलयति किमु शैलः [5]स्वेन [6]मूर्त्तं [7]प्रतापम् ॥४४॥

(१) स्वर्णमणिरचितोर्ध्वभूमीतलस्य दीप्यमानकान्तिम् । (२) सूर्यकिरणसङ्गादतिवृद्धामत एवाऽऽकाशं व्याप्नुवन्ती । (३) कुलगिरीन् । (४) विभवेन । (५) आत्मना । (६) दृश्यमानम् । (७) प्रतापम् ॥४४॥

[1]बलिनिलयनिकेतैरान्मनः स्थूलमूलै-
[2]र्धरणिधरतया यो भूभृतां[3] सार्वभौमः ।
[4]निखिलजलधिनेमीभारभुग्नाङ्गभाजो,
[5]दिशति किमु [6]कृपालुर्विश्रमं [7]भोगिभर्त्तुः ॥४५॥

(१) पाताले स्थानं येषाम् । (२) भूभृत्त्वेन । (३) गिरीन्द्रः । (४) समस्तभूमेर्भरेण

1. अतः परं हीमु.पुस्तकान्तर्गतः ४४तमश्लोकोऽत्र नाऽस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्राङ्गवतः । (५) ददाति । (६) कृपावान् । (७) शेषनागस्य ॥४५॥

[१]गगनगतयदग्रस्फारकासारफुल्ल-
त्कुमुदकुवलयाङ्कान्[२]भृङ्गरिञ्छोलिकाभिः ।
निशि [३]शशिनमवेक्ष्याँ[४]ऽधावि मुग्धाभि[५]रूर्ध्वं,
[६]सुरसरिदलिलीलापुण्डरीकभ्रमेण ॥४६॥

(१) नभसि गतं यद्गिरिशृङ्गायं(ङ्गं) तत्र मनोज्ञसरसि विकसितानां कैरवोत्पलानामुत्सङ्गात् । (२) भ्रमरमालाभिः । (३) चन्द्रम् । (४) धावितम् । (५) उच्चैरुत्पतितम् । (६) स्वर्गगङ्गाया भृङ्गाङ्कितक्रीडाकैरवभ्रान्त्या ॥४६॥

[१]विकसितकुसुमालीकर्णिकालीनपीन-
ध्वनदनयनपेयामेयरोलम्बरावः ।
क्वचन [२]रजतशृङ्गे चम्पकद्रुश्चकासे,
[३]कविरिव [४]कृतवेदोद्गारहंसाधिरूढः ॥४७॥

(१) स्मेराणां कुसुमश्रेणीनां यस्मात्कारणात्कर्णिकासु-बीजकोशेषु लीना अथ च पीनास्तथा शब्दायमाना अत एवाऽनयनपेया-अदृश्या ये भ्रमरास्तेषां शब्दो यत्र । (२) रूप्यशिखरे । (३) विधाता । (४) निर्मितो वेदानामुद्गारमुच्चारो येन तथा राजहंसपृष्ठस्थः ॥४७॥

[१]स्वकशिखरशिरःस्थां [२]भृङ्गरङ्गत्कटाक्षां,
[३]विदलितदलनेत्रीं [४]रागमन्तर्दधानाम् ।
[५]परमसुहृदिवाऽद्रिः [६]पद्मिनीं यो [७]विविक्ते,
[८]समगमयदभीशुस्वामिना [१०]कामिनेव ॥४८॥

(१) निजशृङ्गमौलिस्थिताम् । (२) भ्रमरैः कृत्वा चलन्तः पतिं सूर्यं प्रति कटाक्षा यस्याः । (३) विकचपत्ररूपनयनाम् । (४) मध्येऽनुरागं धारयन्ती । (५) परममित्र इव । (६) स्त्रियं कमलिनीं च । (७) एकान्ते । (८) सङ्गं कारयति स्म । (९) सूर्येण । (१०) कामुकेनेव ॥४८॥

[१]विलिखितगगनाङ्कप्रस्थकण्ठावलग्न-
द्विजपरिवृढबिम्बालम्बिनक्षत्रमाला ।
[२]तरलकलितमुक्तामालिकाशालिशोभां,
[३]प्रतिरजनि [४]विधत्ते सिद्धभूभृन्मघोनः ॥४९॥

(१) घृष्टो व्योम्न उत्सङ्गो येन तादृशः शृङ्गस्योपकण्ठे-समीपेऽवलग्ना मिलिता यच्चन्द्र-मण्डलं तथाऽऽलम्बत आश्रयतेऽर्थाद्विमलाद्रिशृङ्गाणि तादृशी नक्षत्रपङ्क्तिः । (२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नायकयुक्तमुक्ताहारश्रियम् । (३) निशां निशां प्रति । (४) करोति ॥४९॥

[१]अविरलमणिशृङ्गै[२]र्नैकनाकिद्रुमैश्च,
[३]त्रिदशमिथुनवृन्दै[४]र्जातरूपश्रिया च ।
[५]विविधसुरनिकुञ्जैः [६]सिद्धसौधैर्नृणां यः,
[७]श्लथयति [८]सुरशैलप्रेक्षणोत्कण्ठि [९]चेतः ॥५०॥

(१) बहुभी रत्नशिखरैः । (२) नानाप्रकारककल्पवृक्षैः । (३) देवयुग्मैः । (४) सुवर्णशोभया । (५) बहुविधदेवयुक्तवनैः । (६) सिद्धालयैश्चैत्यैः । (७) शिथिलीकरोति । (८) मेरुदर्शनोत्सुकम् । (९) मनः ॥५०॥

क्वचन [१]करटियाना [२]मेखलाशालमानाः,
[३]कनककटकभाजो [४]वारिमुक्केशपाशाः ।
[५]विविधमणिविभूषाः [६]पद्मिनीतालबाहा,
[७]विकचकुसुमनेत्रा [८]बिम्बदन्तच्छदाश्च ॥५१॥

[१]बहलमलयजन्मामोदिता [२]मञ्जुपादा,
[३]गुरुतरकुचकूटाः [४]स्फारमुक्तावलीकाः ।
[५]मदपटुपिकवाच[६]श्चम्पकश्रेणिगौरा,
[७]युवतय इव यस्मि[८]न्भूमयो विस्फुरन्ति ॥५२॥ युग्मम् ॥

(१) गजानां स्वैरं गमनं यासु । पक्षे-गजवद्गमनं यासाम् । (२) मध्यभागेन कटकेन शोभमानाः । पक्षे-काञ्च्या दीप्यमानाः । (३) सुवर्णस्य कटकं मध्यभागोऽद्रेः कटकं वलयं चेति तद्भजन्तीति । (४) मेघ एव तत्तुल्यः केशपाशो यस्याः । (५) नानाप्रकारा मणय एव तेषां चाऽऽभरणानि यस्याः । (६) कमलानां नालानि एव तत्तुल्या भुजा यासाम् । "पद्मिनी कमलकमलिन्यो"रित्यनेकार्थः । (७) स्मितानि पुष्पाणि एव तत्तुल्यानि च नयनानि यासाम् । (८) बिम्बीफलमेव तत्तुल्योऽधरो यासाम् ॥५१॥

(१) सान्द्रचन्दनैः परिमलकलिताः । (२) मनोज्ञाः पर्यन्तपर्वताश्चरणाश्च यासाम् । (३) अत्युच्चाः कुचतुल्याः कूटाः कुचरूपा वा शृङ्गा यासाम् । (४) दीप्यमाना मुक्ताश्रेणयो हारा यासाम् । (५) मदकलकोकिलानां तत्तुल्या वा वाचो यासाम् । (६) चम्पकश्रेणिभिस्तद्वच्च गौर्यः । (७) तरुण्य इव । (८) गिरिभुवः ॥५२॥ +द्विः ॥

[१]विकचकुसुम[1]चञ्चच्चम्पकक्षोणिजन्मो-
परिपरिमललुभ्यल्लोलमत्तालिमाला ।

+ युग्ममित्यर्थे द्विः इति निर्दिष्टमस्ति । 1. ०मपीतस्फीतिमज्जातिजातो० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]खगपरिवृढपृष्ठाधिष्ठितारिष्टदस्यो-

रुपमितिमिह [३]शैलाखण्डले[४]ऽलञ्चकार ॥५३॥

(१) स्मितैः पुष्पैः पीततया शोभमानहेमपुष्पकद्रुमस्योर्ध्वमामोदे लोभं प्राप्नुवतां चपलानां उत्कटानां भृङ्गानां(णां) श्रेणी । (२) गरुडवंशाश्रयविष्णोरुपमाम् । (३) गिरीन्द्रे । (४) अलङ्कृता । विष्णोरुपमा प्राप्तेत्यर्थः ॥५३॥

[१]लिखितसुरपथाङ्कप्रस्थपुञ्जप्ररोह-

न्मसृणसरसघासग्रासवृत्तिं [२]सृजन्तः ।

[३]क्षुधितमृगतुरङ्गाः [६]खेदयन्ति स्म [४]नक्तं-

दिनमिदमुपरिष्टात्सञ्चरच्चे[५]न्द्रसूर्यौ ॥५४॥

(१) अग्रेण घृष्टो गगनोत्सङ्गो येन तादृशः शिखरव्रजस्तत्रोद्गच्छत्सुकुमालनीलतृणानां कवलेनाऽऽजीविकाम् । (२) कुर्वन्तः । (३) बुभुक्षाक्षामकुक्षिचन्द्रार्कमृगाश्वाः । (४) रात्रौ दिवा च । (५) शशिभास्करौ । (६) खेदयुक्तौ कुर्वन्ति ॥५४॥

क्वचन [१]कनकशृङ्गे [२]रङ्गिभृङ्गानुषङ्गि-

क्षरदमितमरन्दस्यन्दसन्दोहसान्द्राः ।

अलभत [३]सखि[1]भावं जृम्भमाणा[४] तमाला-

वलिरिह यमुनाया [५]भास्वदङ्के [2][६]भजन्त्याः ॥५५॥

(१) काञ्चनशिखरे । (२) रङ्गयुक्तानां भ्रमराणां सङ्गो येषु तादृशा निःसरन्तो मानातीता ये मकरन्दास्त एव निःस्यन्दा रसास्तेषां सन्दोहा राशयस्तैः सान्द्रा नि(नी)रन्ध्राः । (३) सख्यम् । (४) स्मिततापिच्छराजिः । (५) सूर्यस्य तातस्योत्सङ्गम् । (६) श्रयन्त्याः ॥५५॥

[१]मरकतकटकाङ्कस्फाटिकानुच्चकूटो-

दरविदलितपुष्पप्रस्फुरच्चम्पकद्रुः ।

[२]नरकदमननाभीपुण्डरीकाङ्कनिर्य-

ज्जलजतनुजलीलामा[३]ललम्बे [४]कदम्बे ॥५६॥

(१) नीलरत्नमेखलामध्ये स्फटिकसम्बन्धि नात्युच्चं यत्छृङ्गं तस्य कुक्षौ विकचकुसुम-चञ्चच्चम्पकतरुः । (२) कृष्णनाभिपुण्डरीकात्प्रकटीभवद्विधिविलासम् । (३) आश्रयते स्म । (४) कदम्बे-<u>शत्रुञ्जय</u>शैले ॥५६॥

[१]रसिककरिविलोलत्कर्णतालौघतूर-

ध्वनिमधुकरराजीगुञ्जितोदात्तगीतौ ।

क्वचि[२]दिह [३]गुरुणेव प्रेरिता [४]मारुतेन,

[५]स्त्रिय इव [६]वनवल्ल्यः [७]पत्रहस्ता अनृत्यन् ॥५७॥

---

1. वयसीत्वं हीमु० । 2. स्थितायाः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) क्रीडात्म[र]सगजानां चपला भवन्तो ये कर्णतालाः । ''उषसि गजयूथकर्णतालै''-रिति रघुवंशे । तेषां समूहा एव वाद्यशब्दो यत्र तथा तादृशे भ्रमरमालागुञ्जारवरूपे उदारे गीते सति । (२) शत्रुञ्जये । (३) नाट्याचार्येणेव । (४) पवनेन । (५) अर्थान्नर्तक्य इव । (६) विपिनलताः । (७) पत्राण्येव-पवनपलात्वात् हस्तका यासाम् ॥५७॥

[१]लुलितगगनगङ्गा[1]शीकरासारवन्तः,
[२]स्मिततरुवनमाला [३]मन्दमा[४]न्दोलयन्तः ।
[५]विकचकुसुमपद्मामोदमेदस्विनो यं,
[६]प्रभुमिव [७]पवमानाः सेवकाः शीलयन्ति ॥५८॥

(१) पवनान्दोलिता या स्वर्गगङ्गा तस्याः शीकराणां जलकणानां आसारो वेगवती वृष्टिर्विद्यते येषु । (२) विकचद्रुमविपिनश्रेणीः । (३) शनैः शनैः । (४) चपलीकुर्वन्तः । (५) विकसितानां पुष्पाणां कमलानां च परिमलेन पुष्टाः । (६) स्वामिनम् । (७) वाताः ॥५८॥

[१]प्रतिशिखरम[२]मुष्मि[३]न्निस्सरन्निर्ज्झरौघा,
[४]असुरसुरपुरन्ध्रीकेलिनीरन्ध्रनीराः ।
[2]नभसि [५]निरवलम्बे [६]प्रस्खलन्नाकिनद्याः,
[७]शतश इव [८]भवन्तो [९]वाःप्रवाहाः स्फुरन्ति ॥५९॥

(१) शृङ्गं [शृङ्गं]प्रति । (२) शत्रुञ्जये । (३) निर्यन्निर्ज्झरव्रजाः । (४) दानवदेववनितानां क्रीडाभिर्निर्भरभृतं जलं येषाम् । (५) निर्गतमालम्बनं यस्य । (६) निष्पतत्या गङ्गायाः । (७) शतसङ्ख्याः । (८) जायमानाः । (९) जलधारा इव ॥५९॥

[१]स्फटिकललितम[२]न्तः [३]पद्मरागप्रगल्भं,
[४]मरकतमयशृङ्गं [५]निर्झरै रा[६]जमानम् ।
[७]कलितकलबलाकाकालिकीवारिधारं,
[८]ध्वनिजितमिव [९]सार्वं [१०]शीलदभ्रं बभासे ॥६०॥

(१) स्फटिकमणिभिर्मनोज्ञम् । (२) मध्ये । (३) रक्तोत्पलैर्भासमानम् । (४) नीलरत्नप्रधानं शिखरम् । (५) गिरिनिःसरन्नीरधाराभिः । (६) शोभमानम् । (७) धृता बलाकाविद्युज्जलधारा येन । (८) शब्दपराभूतो मेघः । (९) जिनम् । (१०) सेवमानम् ॥६०॥

[3]क्वचिदपि [१]रुचिचञ्चत्पद्मरागप्रगल्भं,
[२]मरकतमणिचङ्गोत्तुङ्गशृङ्गं [३]चकासे ।
विजित[४]मृषभभर्त्रा [५]धीरगम्भीररावै-
स्तप इव तनुतेऽस्मिंस्त[६]त्तुलाप्त्यै तडित्वात् ॥६०॥ पाठान्तरम् ॥

1. ०सीकरा, हीमु० । 2. नभसि निरवलम्बप्रस्ख० हीमु० । 3. एषः श्लोकः हीमु०पुस्तके ६२तमश्लोकत्वेन निर्दिष्टोऽस्ति न तु पाठान्तरत्वेन ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कान्त्या दीप्यमानपद्मरागप्रधानम् । (२) नीलरत्नैर्मनोज्ञोच्चशिखरम् । (३) रेजे (४) शत्रुञ्जयस्वामिना ऋषभदेवेन । (५) उदारमधुरध्वनिभिः । (६) ऋषभजिनस्वरसाम्यप्राप्त्यै ।।पाठः।।६०।।

[1]चपलशफरनेत्रा [2]बन्धुरावर्तनाभी,
[3]मधुपपटलकैश्या [4]मानसावासहासाः ।
[5]कनककमलगौर्यो [6]वीचिमालावलीकाः,
स्त्रिय इव [7]रसभाजो भूभृतापो ध्रियन्ते ।।६१।।

(१) चञ्चलमीना एव तत्तुल्यानि च नेत्राणि यासाम् । (२) मनोज्ञावर्त्तरूपा नाभिर्यासाम् । रम्यावर्त्तयुक्ता नाभिर्यासाम् । (३) भृङ्गमालेव तत्तुल्यं कैश्यं-केशानां समूहो यासाम् । (४) हंसा एव तत्तुल्यं वा श्वेतं हास्यं यासाम् । (५) स्वर्णपद्मैस्तद्वद्वा गौराङ्ग्यः । (६) तरङ्गश्रेण्य एव तद्वद्वा वल्यः उदरे मांससङ्कोचलक्षणा यासाम् । (७) रसं-जलं शृङ्गारादिश्च भजन्ते इति ।।६१।।

[1]क्वचन [2]जिनगृहान्तर्द[3]ह्यमानागुरुभ्यः,
[4]प्रसरदमरमार्गप्रस्फुरद्धायुवाहम् ।
[5]सजलजलदबुद्ध्या वीक्ष्य [6]बप्पीहबालाः,
[7]कृतपटुचटुवाचो यत्र धावन्ति मुग्धाः ।।६२।।

(१) कुत्रापि । (२) जिनप्रासादमध्ये । (३) उत्क्षिप्यमानकृष्णागुरुभ्यः । (४) विस्तरन्तं गगने इतस्ततश्चलन्तं धूमम् । (५) सपयोमेघधिया । (६) चातकबालकाः । (७) निर्मिताः पटवः स्पष्टाः प्रियप्राया वाण्यो यैः ।।६२।।

[1]स्वकरनिकरसङ्गश्चोतदिन्दूपलाम्भो-
भर[2]मिदमचलोच्चैरत्नशृङ्गाद्[3]गृहीत्वा ।
[4]स्वयम[5]मृतमरीचि[6]र्मैत्र्यतः [7]कैरवाणां,
किमु [8]दिशति [9]तमेव [10]प्रश्निपीयूषदम्भात् ।।६३।।

(१) निजकिरणसम्पर्काद्गलच्चन्द्रकान्तपयःसमूहम् । (२) अस्य गिरेरुच्चैः शिखरात् । (३) आदाय । (४) आत्मना । (५) विधुः । (६) सख्यात् । (७) कुमुदानाम् । (८) ददाति । (९) चन्द्रकान्तामृतमेव । (१०) किरणरूपं कान्तिद्वारा वाऽमृतस्य कपटेन ।।६३।।

[1]यस्मिन्[2]नुरोद्वयसनिःसृतसिन्धुरङ्क-
क्रीडत्सुरासुरपुरन्ध्रिपयोधराणाम् ।
[3]कस्तूरिकामलयजद्रवसान्द्रपूरा,
रेजे [4]यमीसलिलसंवलितेव गङ्गा ।।६४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) गिरौ । (२) हृदयप्रमाणनिर्गच्छन्नदीमध्ये जलक्रीडां कुर्वद्देवदानवकामिनीकुचानाम् । (३) मृगनाभिचन्दनयोर्द्रवेन(ण) जलसङ्गात्पङ्केन तद्युक्तपयःप्लवा । (४) यमुनाजलमिलितगङ्गेव ॥६४॥[1]

[१]यत्रोन्मदैः [२]परिणतैर्हरितां[३] करीन्द्रै-
[४]रुत्खातगैरिकभरै[५]र्नभसि [६]भ्रमद्भिः ।
[७]सन्ध्याधियेव [८]गलितावधिवेलमत्र,
[९]विश्रान्तिमाप न [१०]महानटनाट्यरङ्गः ॥६५॥

(१) मदोन्मत्तैः । (२) तिर्यक्प्रहारप्रदायिभिः । (३) दिग्गजैः । (४) उत्पाटितधातुव्रजैः । (५) व्योम्नि । (६) विस्तरद्भिः । (७) प्रातर्दिनावसानस्य वा सन्ध्याबुद्ध्या । (८) चिरकालं अथवा गता सीमा यत्र तादृशी वारा वेला यत्र । (९) विश्रमम् । (१०) ईश्वरस्य नाटकस्नेहः । नाटककरणोत्साह इत्यर्थः ।

यस्मिन्न[१]नन्यमणिधोरणिक्लृप्तशृ(तु)ङ्ग-
शृङ्गाङ्गणै[२]र्दलितसन्तमसप्रचारैः ।
[३]पूषा [४]मयूखमुषितोस्त्रसहस्रलक्ष्मीः,
[५]खद्योतपोत इव किञ्चिदधत्त शोभाम् ॥६६॥

(१) असाधारणैः कान्तिभिरुदारै रत्नै रचितोच्चशिखराजिरैः । (२) हततमःप्रसारैः । (३) सूर्यः । (४) किरणैरर्थात् शिखररश्मिभिराच्छिन्ना गृहीता किरणानां दशशतानां शोभा यस्य । (५) खद्योतबाल इव ॥६६॥

[१]अहोरात्रस्थास्नूदयदमितभास्वद्भ्रमकरीं,
[२]मणीशृङ्गश्रेणीं [३]हततमसम[४]भ्राङ्कपथिकीम् ।
[५]विलोक्यै[६]तत्पद्माकरकमलिनीराजिरनिशं,
[७]गलन्निद्रामुद्रां कलयति [८]समुद्बोधकमलाम् ॥६७॥

(१) दिवसनिशा यावद्वसनशीलानां उद्गमं कुर्वतां प्रमाणरहितानां भानूनां भ्रान्तिकारिकाम् । (२) रत्नशिखरधोरणीम् । (३) ध्वस्तध्वान्ताम् । (४) आकाशमुल्लिखन्ती । (५) दृष्ट्वा । (६) गिरिउ(र्यु)परितटाककमलिनीमालिकाम् । (७) यान्ती सङ्कोचलक्षणा मुद्रा स्वापावस्था यत्र । (८) सम्यग्विकाशलक्ष्मीम् ॥६७॥

यस्मिन्न[१]द्वहता [२]कनीमिव [३]लतां [४]यूनेव [५]भूमीरुहा,
[६]स्वामोदैः [७]स्वजनैरिव [८]स्मितसुमै[2] [९]रौप्यै[१०]रमत्रैरिव ।

---

1. इतः परं हील०प्रतौ "पं० देवदासशिष्य कुंअरजी लिखितं" इति दृश्यते । 2. ०सुमैः पात्रैरिवोद्यन्मधु । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[11]पौष्यं भोजयितुं [12]वराशनमिवाऽनेके द्विरेफाः समं,
[13]स्त्रीभिर्नागरिका इवो[14]न्नततयौ[15]ऽऽमन्त्र्यन्त मन्यामहे ॥६८॥

(१) परिणयता । उदतिशयेन धारयता । (२) कुमारीम् । (३) वल्लीम् । (४) तरुणेनेव । (५) तरुणा । (६) निजपरिमलैः । (७) बन्धुभिः । (८) पुष्पैः । (९) रजतसम्बन्धिभिः । (१०) पात्रैः । (११) मकरन्दम् । (१२) प्रवरभोज्यमिव । (१३) भृङ्गीभिः । (१४) उच्चैःशिरस्तेन । (१५) आमन्त्रिता आकारिताः ॥६८॥

[1]सिन्धूः [2]सुता इव पिता [3]त्वरमाणभावाः,
[4]प्रोत्कण्ठिताः प्रदधतीः [5]सरसीजभूषाः ।
प्रास्थापयत्प्रति पतिं जलधिं [6]तरङ्गैः,
सत्रा[7]ङ्गरक्षकभटैरिव सिद्धशैलः ॥६९॥

(१) नदीः । (२) पुत्रीरिव । (३) शीघ्रः पतिं प्रति गमने भावश्चित्ताभिप्रायो यासाम् । (४) औत्सुक्यकलिताः । (५) कमलानां शोभामाकलयन्तीः । (६) कल्लोलैः । (७) अङ्गरक्षाकृत्सुभटैरिव ॥६९॥

[1]शशाङ्ककरसङ्गमक्षरदमन्दपाथःप्लवैः,
[2]क्वचिद्वि[3]धुमणीमयः कलयति स्म सालः श्रियम् ।
[4]प्रचण्डतरचण्डरुक्किरणतापसन्तापितः,
[5]प्रतिक्षिपमिवा[6]ऽमृतैः [7]प्रविदधन्नि[8]जेनो[9]ऽऽप्लवम् ॥७०॥

(१) चन्द्रकिरणसम्पर्कादुलद्भिरमितपयःपूरैः । (२) कुत्रापि । (३) चन्द्रकान्तमणिनिर्मितः । (४) अतिशयेन प्रचण्डेन सोढुमशक्येन रविकान्तितापेन व्याकुलीकृतः । (५) रात्रीं रात्रीं प्रति । (६) जलैः । (७) प्रकर्षेण कुर्वन्निव । (८) आत्मना । (९) स्नानम् ॥७०॥

[1]लीलायमानान्नि[2]जमौलिदेशे, केशानिवोच्चैः[3]प्रसरत्पयोदान् ।
[4]धूपायतीवा[5]ऽऽप्तनिकेतधूप-धूमैर्वि[6]लासीव स सिद्धशैलः ॥७१॥

(१) विभ्रमं वदतः क्रीडया चरतो वा । (२) निजस्य गिरेरात्मनः शिखरस्थले । (३) विस्तारं प्राप्नुवन्मेघान् । (४) सुगन्धीकरोतीव । (५) चेत्यागुरुदहनोद्भवधूमैः । (६) भोगीव ॥७१॥

[1]अर्कांशुसम्पर्किपतङ्गकान्ता-भितो विनिष्पातिहुताशहेतिभिः ।
[2]मणीविहाराः प्रणयन्ति यस्मिन्, [3]पञ्चाग्निकष्टं क्वचनाऽपि [4]योगिवत् ॥७२॥

1. प्रीत्या हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सूर्यकिरणसङ्गो येषां तादृशेभ्यः सूर्यकान्तमणिभ्यः सर्वतो निष्पतनशीलस्य वह्नेर्ज्वालाभिः कृत्वा । (२) रत्नप्रासादाः । (३) चतसृषु दिक्षु वह्नयः पञ्चमो भानुश्चेति पञ्चाग्निसाधनम् । (४) तापस इव ॥७२॥

[1]निर्गत्वरप्रसृमरद्युतिवारिपूर-
पूर्णान्तरस्फटिककल्पितकूटकोटीम् ।
[2]जज्ञे किमु [3]प्रति तटं तटिनी [4]विपाशा,
प्रेक्ष्येत्यबुध्यत [5]विमुग्धजनेन यस्मिन् ॥७३॥

(१) निस्सरणशीलास्तथा विस्तरणशीला याः कान्तयस्ता एव पयःप्लवस्तेन भरितमध्या स्फटिकरत्ननिर्मिता शिखराणां कोटिः ।(२) जाताः ।(३) तटं तटं प्रति ।(४) विपाश्या(शा)नाम नदी । अनुत्सर्पिपया विपाशाज्जातम् । (५) अज्ञेन ॥७३॥

[1]गुहागृहशयानानां, [2]खगसारङ्गचक्षुषाम् ।
यत्र [3]जागरयन्तीव, [4]स्तनितैः [5]स्तनयित्नवः ॥७४॥[1]

(१) कन्दरामन्दिरेषु सुप्तानाम् । (२) विद्याधरवधूनाम् । (३) निर्निद्रयन्तीव । (४) गर्जारवैः । (५) मेघाः ॥७४॥

[1]स्वस्मि[2]न्नम्बरचारिणां [3]प्रतिपदं कृत्वै[4]कतानं मनो,
[5]विद्यां साधयतां [6]स्वपुण्यमिव यः [7]सिद्धीर्विधत्ते [8]धरः ।
यस्मि[9]न्क्वापि च [10]योगिना[11]महरहर्ज्योतिः [12]परं ध्यायतां,
[13]हृत्पद्मे [14]परमात्मना प्रकटितं [15]पूष्णेव पूर्वाचले ॥७५॥[2]

(१) आत्मकन्दरादिभूतले ।(२) विद्याधराणाम् ।(३) स्थाने स्थाने ।(४) एकाग्रम् । विद्याध्यानलीनम् । (५) गौरी-प्रज्ञप्तीप्रमुखाः । (६) आत्मनः प्राचीनसुकृतमिव । (७) विद्यासिद्धीः ।(८) पर्वतः ।(९) कुत्रापि ।(१०) योगभाजाम् ।(११) प्रतिदिनम् ।(१२) ब्रह्म ध्यायताम् । परममुत्कृष्टं परमेष्ठिलक्षणम् ।(१३) हृदयकमले ।(१४) परमात्म-स्वरूपेण । (१५) सूर्येणेव ॥७५॥

[3][1]भृङ्गालिसङ्गिनीर्धत्ते, पद्मिनीः [2]प्रतिपल्वलम् ।
यो [3]नाराचचिताश्चा[4]प-लता इव [5]मनोभवः ॥७६॥[4]

(१) भ्रमरमालायुताः ।(२) प्रतिसरः ।(३) बाणयुक्ताः ।(४) धनुर्यष्टय इव ।(५) स्मरस्य ॥७६॥

1. अतः परं हीमु०पुस्तकस्थः ७७तमश्लोकोऽत्र नास्ति । 2. एषः श्लोकः हीमु०पुस्तके ७९तमत्वेन निर्दिष्टः ।
3. नाराचोपचिता विश्व-जैत्रीश्चापलता इव । भृङ्गालिसङ्गिनीर्धत्ते पद्मिनीः प्रतिपल्वलम् ॥ हीमु० ।
4. एषः श्लोकः हीमु० पुस्तके ७८तमत्वेन निर्दिष्टः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]तावल्लीलाविलासं [3]कलयति [4]मलयो [5]विन्ध्यशैलोऽपि ताव-
द्धत्ते [5]मत्तेभगर्वं [6]तुहिनधरणिभृत्तावदेवाऽ[7]भिरामः ।
तावन्मेरु[8]र्महत्त्वं वहति [9]हरगिरिर्गाहते तावदा[10]भां,
याव[11]त्तीर्थाधिराजः स[13] न [12]नयनपुटैः [13]पीयते पर्वतेन्द्रः ॥७७॥

(१) तावत्कालप्रमाणम् । (२) लीलया स्वरसेन स्थानवैशिष्ट्येन वा विलासम् । (३) दधाति । (४) दक्षिणाचलः । (५) विन्ध्यशैलोऽपि समदगजाहङ्कारम् । (६) हिमाचलः । (७) रम्यः । (८) महिमानम् । (९) कैलाशः । (१०) शोभाम् । (११) सर्वतीर्थपर्वतपतिः । (१२) स्वदृशा । (१३) नावलोक्यत ॥७७॥

[1]विविधकमलाकेलीगेहं [2]क्षमाक्षणदापते-
[3]र्गृहमिव [4]महीकान्तारत्नावतंसमिवो[5]न्नतम् ।
[6]सफलमखिलं कर्त्तुं काङ्क्षन्ज[7]नुर्गिरियात्रया,
[8]व्रतिवसुमतीशक्रः [9]शत्रुञ्जयं [10]स्वदृशा [11]पपौ ॥७८॥

इति पं.देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये श्रीशत्रुञ्जयशैलवर्णनो नाम पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥ ग्र. १५० ॥

(१) मणी-स्वर्ण-रसकूपिका-औषधीविशेषादिनानाप्रकारलक्ष्मीलीलास्थानम् । (२) राज्ञ इव । (३) भाण्डागारोऽन्यद्वा धाम । (४) भूमीभामिन्या मणीनां शिखरमिव । (५) उच्चैस्तरम् । (६) फलयुक्तं कर्त्तुं सर्वम् । (७) जन्म । (८) सूरीन्द्रः । (९) शत्रुञ्जयशैलम् । (१०) निजनयनाभ्याम् । (११) न्यभालयत् ॥७८॥

इति पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥ ग्रं० २०७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐं नमः ॥

षोडशः सर्गः ॥

[1]समीप[2]मुपजग्मिवान[3]थ गिरीशितुः [4]श्रीगुरुः,
प्रभाव[5]मतिशायिनं त्रिभुवने [6]समाकर्णयन् ।
[7]सुरद्रुमसमुल्लसत्कनककान्तकायद्युति-
[8]र्लघूकृततनुः समीक्षितुमिवोत्सुकः [9]स्वर्गिरिः ॥१॥

(१) पार्श्वम् । (२) उपागतः । (३) मङ्गलार्थे । (४) सूरीन्द्रः । (५) त्रैलोक्य-तीर्थसार्थेभ्योऽप्यधिकं माहात्म्यम् । (६) श्रृण्वन् । (७) कल्पवृक्षस्तद्वद्वा दातृतया निरुपमरूपवत्तया वा दीप्यमानः, तथा स्वर्णैस्तद्वद्वा रम्याङ्गद्युतिः । (८) अल्पीभूय । (९) मेरुः ॥१॥

[1]तदद्रितलहट्टिकाप्रथितपादलिप्ताभिधं,
[2]पपौ पुर[3]मपश्रमः [4]श्रमणशर्वरीवल्लभः ।
[5]उपेत[6]मिह [7]पूर्ववत्पुन[8]रुपान्त[9]मानन्दयुक्-
पुरं [10]प्रथमहार्दतः किमिति [11]दूरभावं त्यजन् ॥२॥

(१) शत्रुञ्जयस्य परिसरभूम्यां ख्यातं पादलिप्त इति नाम यस्य । (२) सादरं ददर्श । (३) गतश्रमः । (४) सूरिः । (५) समागतः । (६) विमलाद्रितलहट्टिकायाम् । (७) व्याघुट्य । (८) समीपम् । (९) आनन्दपुरं भरतवासितनगरम् । (१०) पूर्वस्नेहात् । (११) दूरत्वं त्यक्त्वा समीपे समागतम् ॥२॥

[1]नभोगमनभेषजव्रजविधे[2]रनुग्राहिणो,
[3]गुरो[4]रभिधया पुरं [6]गृहमिव [5]त्रिलोकीश्रियाम् ।
[7]सुवर्णरससिद्धिमा[8]न्विविधसिद्धविद्यान्वितः,
स्म[9] वासयति [11]सन्निधौ [10]नगवरस्य [12]नागार्जुनः ॥३॥

(१) आकाशे गम्यतेऽनेनेत्येवंविधस्यौषधगणस्य निर्माणस्य । (२) अनुग्रहं करोतीत्येवंशीलस्य । (३) पादलिप्ताचार्यस्य । (४) नाम्ना । (५) त्रिभुवनलक्ष्मीना(णा)म् । (६) मन्दिरम् । (७) हेम्नः कोटिवेधीनाम्नो रसस्य-जलरूपस्य निष्पादनसिद्धियुक्तः । (८) नानाप्रकाराः सिद्धाः कार्यकारिण्योऽथ वा प्रत्यक्षीभूततदधिष्ठायकाः तादृश्यो विद्या आम्नायमन्त्रास्ताभिर्युक्तः । (९) वासितवान् । (१०) शत्रुञ्जयस्य । (११) समीपे । (१२) नागार्जुनो नाम योगी ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]यदीयविभवैर्[२]जगत्त्रयपुरीपराभावुकैः,
पुरी[३] त्रिदिवसद्मनां [४]परिभवं भराल्लम्भिता ।
[५]उपास्ति[६]मतनोन्[७]निजाश्रयजुषस्[८]त्रिलोकीसृजः,
[९]सरोजवसतेरिवा[१०]ऽऽकलयितुं स्वयं [११]तत्तुलाम् ॥४॥

(१) पुरीश्रीभिः । (२) त्रैलोक्यनगरीजित्वरैः । (३) अमरावती । (४) निर्जिता । (५) सेवाम् । (६) चकार । (७) आत्मैवाऽऽश्रयं-स्थानं सेवते इति । (८) त्रिजगद्विधातुः । (९) ब्रह्मणः । (१०) प्राप्तुम् । (११) पादलिप्तपुरसाम्यम् ॥४॥

[१]सुरादिपरिवारिता किम[२]मरावती [३]स्वर्गतः,
[1][४]क्ष्माङ्क[५]मुपजग्मुषी [६]विमलशैलयात्राकृते ।
[७]द्विजिह्वनिचिताश्रयं किमु [८]विहाय गेहं [९]बले-
[१०]रुतं[2] क्षि[ति]मितं पुरं स्फुरति पादलिप्ताभिधम् ॥५॥

(१) देवादिभिर्युता । आदिशब्दात्सुरपत्नी-सुरेन्द्र-मन्दिर-कोट्ट-वापी-तटाकप्रमुखैः कलिता । (२) सुरपुरी । (३) स्वर्गात् । (४) भूमेर्मध्यमुत्सङ्गं वा । (५) समागता । (६) श्रीशत्रुञ्जयस्य यात्रां कर्त्तुम् । (७) द्विजिह्वैः -दुर्जनैर्व्यालैर्वा भरितमाश्रयं स्वस्थानं वा । (८) त्यक्त्वा । (९) नागनगरी । (१०) अथवा । (११) इतमागतम् ॥५॥

[१]भवाहितभिदोदयत्[२]परमसात[३]माशंसतां,
पुरी [४]निजनिवासिना[५]मसुमतां [६]समूहा[७]नसौ ।
[८]महोदयमहापुरं [९]विमलशैलमूलाध्वना,
[१०]निनीषुरमुना किमु [११]स्थितवती [१२]समेत्या[१३]ऽन्तिकम्[3] ॥६॥

(१) संसाररिपोर्मारणेन प्रकटीभवत् । (२) उत्कृष्टं सुखम् । (३) वाञ्छताम् । (४) स्वस्यां वसनशीलानाम् । (५) जनानाम् । (६) गणान् । (७) प्रत्यक्षलक्ष्याऽसौ । (८) मुक्तिनामाद्वैतनगरम् । (९) शत्रुञ्जयरूपेण प्रध्वरेण मार्गेण । (१०) प्रापयितुं काङ्क्षन् । (११) स्थितिं कृतवती । (१२) समागत्य । (१३) शत्रुञ्जयसमीपम् ॥६॥

[१]विजित्य [२]निजवैभवैः [३]सुरनरोरगस्वामिनां,
[४]स्फुरत्पुरपरम्परा जगति पादलिप्तं पुरम् ।
[५]परःशतजिनेश्वराश्रयशिखाङ्गणालिङ्गिनी-
[६]द्विषद्विजयबोधिका व्यधृत [७]वैजयन्तीरिव ॥७॥

(१) जित्वा । (२) स्वशोभया । (३) देवमानवदानवादिपुरन्दराणाम् । (४)

1. क्षितौ किमुप० हीमु० । 2. रुतागतमिह श्रिया स्फुरति पादलिप्तं पुरम् हीमु० । 3. ०के हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीप्यमाना नगरराजीः । (५) शतसङ्ख्यजिनप्रासादशृङ्गसङ्गिनीः । (६) रिपुपराजयकथयित्रीः । (७) पताकाः ॥७॥

[१]नृशंसनिकषात्मजव्रजनिवासतो [२]बिभ्यती,
[३]पयःप्रकटसङ्कटाज्ज[४]लधिजाच्च [५]निर्वेदभाक् ।
अपास्य [६]पदमात्मनः किमिय[७]मत्र लङ्कागता,
पुरी [८]पुरजनोत्सवै[९]रलमकारि सूरीन्दुना ॥८॥

(१) निर्दयानां राक्षसानां गणस्य वसनात् । (२) भयं प्राप्नुवन्ती(वती) । (३) जलानामुल्बणात् क्लेशात् । (४) समुद्रमध्योत्पन्नात् । परिखास्थाने परितः पयोधिर्मध्ये लङ्का तादृग्जलमध्यस्थितिलक्षणात् क्लेशात् । (५) खेदान्विता । (६) ततः स्वस्थानं मुक्त्वा । (७) शत्रुञ्जयतलहट्टिकायाम् । (८) नगरलोककृतोत्सवैः । (९) भूषितम् ॥८॥

[१]अशेषविषयान्तरा[२]द्व्यतिकरेऽत्र [३]सङ्घाधिपाः,
समं [४]मनुजराजिभि[५]र्जयिमहीमहेन्द्रा इव ।
[६]भगीरथगिरीश्वरं प्रति [७]शताङ्गमातङ्गयुक्-
तुरङ्गशिबिकामुखप्रमुखयानभाजो[८]ऽव्रजन् ॥९॥

(१) समस्तजनपदानां मध्यात् । (२) अस्मिन्हीरविजयसूरिसमागमनावसरे । (३) सङ्घपतयः । (४) जनराजिभिः सार्द्धम् । (५) विजयिनृपा इव । (६) भगीरथः शत्रुञ्जयः । (७) रथगजयुततुरङ्गशिबिकादिकप्रकृष्टवाहनयुक्ताः । (८) अचलन् ॥९॥

[१]अगाधभववारिधे[२]रभिलषद्भि[३]रेतुं [४]बहिः,
[५]समुद्धरणधुर्यतां [६]प्रदध[७]दन्तरीपं किमु ।
[९]व्रजद्भिरिह यात्रिकैः प्रति [८]सहस्रपत्राचलं,
[१०]तदा वि[११]दधिरेऽखिला अपि [१२]निजावशेषा दिशः ॥१०॥

(१) अपारसंसारसमुद्रात् । (२) वाञ्छद्भिः । (३) आगन्तुम् । (४) बाह्यप्रदेशे मुक्तिलक्षणे । (५) सम्यगुद्धारे संसाराब्धेरुत्तारणे धौरेयताम् । (६) धारयत् । (७) द्वीपम् । (८) सहस्रपत्राचलं शत्रुञ्जयम् । (९) गच्छद्भिः । (१०) तस्मिन्नवसरे । (११) कृताः । (१२) आत्मा एवाऽवशिष्टो यासाम् । केवलं स्वेनैव स्थिता इत्यर्थः । जनास्तु प्रस्थिताः ॥१०॥

[१]महोदयविधायिना विमलभूभृता[२]ऽऽहूतवत्
सको[३]ऽप्यजनि नो जनो[४]ऽगमि न येन [५]यात्राकृते ।
न काचिदचलाभवत्प[६]थि च [७]या न [८]तद्यात्रिकै-
[९]रनीयत [१०]पवित्रतां [११]त्रिपथगाप्रवाहैरिव ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) महानुदयो मोक्षश्च विदधातीत्येवंशीलेन । (२) आकारित इव । (३) जातः । (४) गतं न । (५) यात्रार्थम् । (६) भूमीमार्गे । (७) अचला । (८) शत्रुञ्जययात्राकारकैः । (९) प्रापिताम् । (१०) पावनताम् । (११) गङ्गाश्रोतोभिः ॥११॥

[1]शिवश्रिय इवा[2]ऽवतीवलयशालिलीलाचलं,
जनैः प्रचलितैः समं [3]परिजनेन शत्रुञ्जयम् ।
[4]स्ववर्तिविविधासुमत्प्रकरकीलनाविश्रमा-
द्दधुः [5]सुखमिहाऽखिला अपि दिशां प्रदेशास्तदा ॥१२॥

(१) मुक्तिलक्ष्म्याः । (२) भूमण्डले शोभमानक्रीडापर्वतमिव । (३) परिवारेण सार्द्धम् । (४) स्वस्मिन् वर्त्तन्ते इत्येवंशीला ये नानाविधप्राणिनः-जनगजाश्ववृषभप्रमुखाः तेषां समूहेन पीडाया विश्रामम् । "व्रजतो हलिहयालिकीलना"मिति नैषधे । (५) सुखं प्रापुः ॥१२॥

[1]महेन्द्रमिहिराङ्गजाम्बुनिधिधामपौलस्त्यदिक्-
पथेषु [2]पथि(पृथु)पप्रथे [3]प्रथितजन्तुसार्थैस्[4]तथा ।
तिलैर्न [5]जगतीतलं क्व[6]चिदलम्भि [7]कीर्णैर्[8]यथा-
[9]ऽवसानमिव [10]मानसैर्[11]जनमनोरथस्फूर्जितैः ॥१३॥

(१) इन्द्रः, मिहिराङ्गजो यमः, अम्बुनिधिधामा वरुणः, पौलस्त्यः कुबेरस्तेषां दिशस्तासां मार्गे चतुर्दिक्षु । (२) विस्तृतम् । (३) ख्यातजनसङ्घैः । (४) तेन प्रकारेण । (५) भूमेर्मध्यम् । (६) प्राप्तम् । (७) विक्षिप्तैः । (८) येन प्रकारेण । (९) प्रान्तम् । (१०) मनःसम्बन्धिभिः । (११) जनानामभिलाषविलसितैः ॥१३॥

[1]चलत्सु विमलाचलं [2]निखिलयात्रिकेषु[1] [3]द्रुतं,
[4]पुरस्त्वरित[5]मैयरुः [6]क्वचन केचि[7]दुत्कण्ठिताः ।
[8]ग्रहीतुमनसः [9]शिवश्रियमिवा[10]ऽऽगमेना[11]ऽग्रतः,
स्वयं प्रथमतः [12]परेष्विव [13]धनार्थिनोऽर्थ[14]प्रथाम् ॥१४॥

(१) प्रतिष्ठमानेषु । (२) समस्तजनेषु । (३) शीघ्रम् । (४) अग्रे । केषाञ्चिज्जना-नामपेक्षया । (५) आगताः । (६) कुत्रापि स्थाने । (७) औत्सुक्ययुक्ताः । (८) आदातुकामाः । (९) मुक्तिलक्ष्मीम् । (१०) पुरः समागमेन । (११) पूर्वतः । (१२) अन्येषु । (१३) द्रव्यकाङ्क्षिणः । (१४) धनश्रेणीम् । द्रव्यार्थिषु बहुलाभाभिलाषुकाः प्रथमं स्वयमग्रे ग्रामादिषु गच्छतीति ॥१४॥

---

1. ०केष्वोजसा हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]पुरः प्रचलितैर्जनैर्घननिरुद्धवर्त्मान्तरः,
पुनः [4]प्रणुदितस्तमां [5]द्रुतमुपेत्य [6]पश्चात्तनैः ।
[7]अमन्यत तदा [8]हृदा [9]क्वचन [10]यात्रिकः [11]स्वं [12]भ्रम-
द्धरट्टघटितं [13]क्षणं [14]कणमिवाऽ[15]तिसङ्कट्टितः ॥१५॥

(१) अग्रे प्रस्थितैः । (२) बहुभिः [लोकैः] । (३) घनं नीरन्ध्रं-अन्तरालरहितं रुद्धः-अतिसङ्कीर्णतया गन्तुमयोग्यीकृतः अपरमार्गः । (४) अतिशयेन प्रेरितः । (५) शीघ्रमागत्य । (६) पृष्ठस्थितैः । द्रुतं प्रस्थितैः । (७) अज्ञासीत् । (८) मनसा । (९) कुत्रचित्प्रदेशे । (१०) सङ्घजनः कश्चित् । (११) आत्मानम् । (१२) भ्रमणीकुर्वाणे घरट्टे-दलनोपकरणे योजितम् । (१३) क्षणमात्रम् । (१४) धान्यकणमिव । (१५) पश्चात्तनैः पुरस्तनैश्च जनैरतिसङ्कीर्णत्वात्पीडितः ॥१५॥

[1]चतुर्जलधिमेखलावनिनिकेतलोकैस्ततः,
[2]समीप[3]मवनीभृतः [4]सम[7]मलम्भि [6]शोभां [5]पराम् ।
[8]पुरन्दरगिरेरिवा[9]ऽखिलचतुर्निकायामरै-
[10]र्जिनेन्द्रजननाभिषिञ्चनमहोत्सवप्रक्रमे ॥१६॥

(१) चत्वारः समुद्रा रस(श)ना यस्यास्तादृश्यां भूमौ गृहं येषां तादृशैर्जनैः । (२) पार्श्वम् । (३) <u>शत्रुञ्जयस्य</u> । (४) समकालम् । (५) अद्वैताम् । (६) लक्ष्मीम् । (७) प्रापिता । (८) मेरोः । (९) समस्तभवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकदेवैः । (१०) तीर्थकृज्जन्माभिषेकोत्सवप्रस्तावे ॥१६॥

[1]धराधिविबुधेरिता किमु [2]सहैव [3]सङ्केतभा-
क्कि[4]मत्र [5]सुकृतै[6]रुत व्रतिपतेरिवा[7]ऽऽकर्षिता ।
[8]शताङ्गमुखवाहनानुगतयौवतभ्राजिनां,
[9]यदेक[10]समये तति[11]स्तनुमता[12]मुपेता गिरौ ॥१७॥

(१) पर्वताधिष्ठायकसुरैः प्रेरिताः । (२) समकालम् । (३) सङ्केतं भजतीति । (४) <u>शत्रुञ्जये</u> । (५) पुण्यैः । (६) अथवा । (७) आकृष्याऽऽनीता । (८) रथप्रमुखयानैर्युतैः स्त्रीसमूहैः शोभनशीला[ना]म् । (९) यस्मात्कारणात् । (१०) एकस्मिन्नेव काले । (११) जनगणः । (१२) समागताः ॥१७॥

[1]तुरङ्गमतङ्गजाग्रिमशताङ्गरङ्गन्मरु-
प्रियोक्षतरवेसरोत्करपुरस्सरप्राञ्चिता ।
[2]पुरीपरिसरावनी [3]समजनिष्ट सङ्घागमे,
तदा [4]विजयिमेदिनीरमणराजधानीव सा ॥१८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अश्वाः, गजाः, प्रकृष्टरथास्तथा करभाः, वृषभाः, वेगसरा लोके 'खचरा' इति प्रसिद्धास्तेषां समूहैस्तथा पादचारिभिश्च परिपूर्णा । (२) पादलिप्तनगरसमीपभूमी । (३) सञ्जाता । (४) जित्वरनृपराजधानीव ॥१८॥

[1]जडीकरणभीतितो हिमगिरेः [2]प्रणश्याऽऽगतं,
[3]सरः किमिह [3]मानसं [4]सकुलहंसमालाकुलम् ।
[5]समग्रसुखसम्पदभ्युदयसिद्धगोत्रान्तिके,
[6]व्यभूषि [7]ललिताभिधं सर [8]उपेत्य सङ्घैः [9]समम् ॥१९॥

(१) "जडो मूर्खे हिमाघ्राते मूकेऽपि च" त्यनेकार्थः । मूर्खीकरणस्य मूकीकरणस्य वा भयात् । (२) नंष्ट्वा (३) मानसं नाम सरः । (४) वंशान्वितहंसैर्भृतम् । (५) समस्त-सुखसम्पत्तीनामाविर्भावो यस्मात्तादृशः सिद्धाद्रेः समीपे । (६) शोभितम् । (७) ललितसरोवरम् । (८) आगत्य । (९) समकालम् । "सदा हंसाकुलं बिभ्रन्मानसं प्रचलज्जलम् । भूभृन्नाथोऽपि नायाति यस्य साम्यं हिमाचलः" ॥ इति चम्पूकथायाम् ॥१९॥

गजा इव जनास्ततः [2]सलिलकेलि[3]मातन्वते,
पिबन्ति च [4]पिपासिताः सलिलमत्र [5]पान्था इव ।
[6]विजृम्भिजलजावलिं [7]कुसुममालिकां मालिका,
इवा[8]ऽवनिरुहां पुनः क्वचन केचि[9]दुच्चिन्वते ॥२०॥

[1]तरन्ति च [2]सितच्छदा इव परे [3]मृगाक्षीसखा,
[4]विशन्ति [5]रसिकाः पुनस्ति[6]मिगणा इवा[7]ऽन्तर्जलम् ।
[8]तपर्त्तुरवितापिता इव मुदा [9]प्लवन्ते परे,
[10]चिरेण [11]मिलितेष्टवज्[12]जहति ना[13]ऽस्य [14]पार्श्वं पुनः ॥२१॥ युग्मम् ॥

(१) तस्मिन्सरसि । (२) जलक्रीडाम् । (३) कुर्वन्ति । (४) तृषिताः । (५) पथिकाः । (६) विकचकमलमालाम् । (७) पुष्पश्रेणीम् । (८) तरूणम् । (९) गृह्णन्ति ॥२०॥

(१) प्लवन्ते । (२) हंसाः । (३) स्त्रीसहिताः । (४) मध्ये यान्ति । (५) क्रीडारसाकलिताः । (६) मत्स्यव्रजा इव । (७) जलमध्ये । (८) ग्रीष्मकालसूर्यतापसन्तापिताः । (९) तरन्ति । (१०) चिरकालेन । (११) सङ्गतप्रियस्येव । (१२) त्यजन्ति । (१३) ललितसरसः । (१४) समीपम् ॥२१॥

[1]प्रमोदभरमेदुरः प्रथममेव सङ्घस्तदा,
स [2]हीरविजयव्रतिक्षितिपतेः पदाम्भोरुहम् ।
[3]अचुम्ब[4]दलिव[5]न्महोदयमरन्दपानाभिको,
[6]गुरुक्रमविलङ्घनं [7]यद[8]ुदयेत न [9]श्रेयसे ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) हर्षोत्कर्षपुष्टः । (२) सूरेश्चरणकमलम् । (३) उ(व)वन्दे । (४) भ्रमरवत् । (५) महानुदयो मोक्षश्च स एव मकरन्दरसस्तस्य पानाभिलाषी । (६) पूज्यपूजा(पादा)तिक्रमणम् । (७) यत्कारणात् । (८) भवति । (९) कल्याणाय ॥२२॥

[१]वशारसिकगीतिभि[२]र्विविधवाद्यमाद्यद्रवै-
[३]रखण्डकृतताण्डवै[४]र्मुदितबन्दिवृन्दस्तवैः ।
समं प्रमुदितैर्जनैः [५]प्रभुरितः प्रतस्थं गिरिं,
[६]सुरासुरनरोत्करैरिव [७]जिनावनीवासवः ॥२३॥

(१) स्त्रीणां सरसगानैः । (२) नानाप्रकारवादित्रशब्दैः । (३) अस्खलितनिर्मितनाटकैः । (४) हृष्टमङ्गलपाठकप्रकरस्तुतिभिः । (५) सूरिः । (६) त्रिजगज्जनैः । (७) जिनेन्द्रः । "महोक्षलक्ष्मा जिनः" इति वा पाठस्तदा ऋषभजिनः ॥२३॥

[१]तदा [२]मुदितमानसा [३]निखिलयात्रिकाणां गणा,
[३]उपेत्य तलहट्टिकां [४]शिवपुरस्य [५]सीमामिव ।
[६]प्रसूनमणि[1]मौक्तिकैः [७]सम[८]मवर्द्धयन्भूधरं,
[९]पृषद्भि[१०]रमराचलं [११]मथितवार्द्धिवेला इव ॥२४॥

(१) सूरिप्रस्थानावसरे । (२) हृष्टसङ्घलोकाः । (३) आगत्य । (४) मोक्षपुरस्य । (५) सीमा-समीपभूः । (६) पुष्परत्नमुक्ताफलैः । (७) समकालम् । (८) वर्द्धयन्ति स्म । (९) जलकणैः । (१०) मेरुम् । (११) मथनावसरे । अन्यदा समुद्रे मेरोरसम्भवः समुद्रपयोवृद्धिभिः ॥२४॥

[१]निपीय [२]नगपुङ्गवं [३]विकचनेत्रपत्रै[४]र्भव-
स्थितै[५]र्भविककुञ्जरैरपि [६]तनूलतालम्बिभिः ।
[७]व्यपेतभवविग्रहैरिव [८]समग्रलोकाग्रगै-
[९]रलम्भि [१०]भुवि [११]निर्वृतिर्यदिह तत्र चित्रं [१२]महत् ॥२५॥

(१) सादरमवलोक्य । (२) शत्रुञ्जयम् । (३) स्मेरनयनैः । (४) संसारे वसद्भिरपि । (५) प्रधानभव्यैः । (६) शरीरयष्टीयुतैरपि । (७) गतसंसारशरीरैः । (८) सर्वलोकस्याऽग्रं सिद्धस्थानं, तत्र गतैः । अर्थात्सिद्धैरिव । (९) प्राप्ता । (१०) भूमौ । (११) निर्वृतिर्मुक्तिः सुखं च । (१२) महान् विस्मयः ॥२५॥

[१]ततः [२]श्रमणशर्वरीपति[३]रुपत्यकायां गिरे-
[४]र्गिरीशसदनान्तरे सह [५]महेश्व[2]रश्रावकैः ।

---

1. ०मौक्तिकैर्धरमवर्धयन्बिन्दुभिस्तटावनिधरं पयोनिधिविवृद्धवेला इव । हीमु० । 2. ०श्वरैर्भावुकैः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[6]चरन्न[7]मृतपत्तनं कि[8]मतिदूरभावात्[9]पथो,
[10]निशि [11]न्यवस[12]दन्तरा[13]ऽप्रमितसार्थसार्थेशवत् ॥२६॥

(१) तस्मिन्प्रस्तावे । (२) हीरविजयसूरिः । (३) पर्वतस्याऽधोभूमौ । (४) ईश्वरप्रासादे । (५) महेभ्यश्राद्धैः सार्द्धम् । (६) प्रतिष्ठमानः । (७) मोक्षनगरं प्रति । (८) दूरत्वेन । (९) मार्गस्य । (१०) रात्रौ । (११) वसति स्म । (१२) मध्यमार्गे । (१३) बहुसार्थयुक्तसार्थनाथ इव ॥२६॥

हरे[1]र्मृगदृशामिवो[2]त्पलदृशां [3]लसद्गीतिभिः,
पुन[4]र्मुदितनाट्यकृद्धटितताण्डवाडम्बरैः ।
[6]निनाय निखिलां [5]निशां [7]वशिशशी स [8]धर्मक्रिया-
विनिर्मितिभिरा[9]श्रये [10]रजनिजानिचूडामणेः ॥२७॥

(१) शक्रस्त्रीणामिव । (२) वनितानाम् । (३) श्रुतिसुखकरगानैः । (४) दानप्रहृष्ट-नर्त्तककृतनृत्याडम्बरैः । (५) सर्वरात्रीम् । (६) अतिचक्राम् । (७) सूरिः । (८) धर्मानुष्ठान-करणैः । (९) प्रासादे । (१०) शम्भोः ॥२७॥

[1]गते [2]तमसि [3]तद्गिरेरिव निरीक्षणात्तत्क्षणात्,
[4]खगै[5]र्गुरुजयारवे किमु कृतेऽथ [6]सांराविणे ।
[7]समीयुषि [8]खरत्विषि [9]द्विषि [10]निशां [11]नभोमण्डलं[1],
[12]विधित्सति [13]सहाऽमुना विमलशैलयात्रामिव ॥२८॥

[1]सुधाशनपथातिथिं [2]शिवनिकेतनिःश्रेणिका-
मिव [3]व्रतिशतक्रतु[4]र्विमलशैलपद्यां ततः ।
[5]सबालवरवर्णिनीनिवहनैकतू(तौ)र्यत्रिका-
नुयातजनसंयुतः समधिरोढु[6]मारब्धवान् ॥२९॥ युग्मम् ॥

(१) लोकान्निःसृते । (२) ध्वान्ते पापे च । "तमोऽज्ञानेऽन्धकारेऽथे"त्यनेकार्थः । (३) शत्रुञ्जयदर्शनात् । (४) पक्षिभिः । (५) जय जय शब्दे इव । (६) मिश्रास्पष्टशब्दे । (७) सम्प्राप्ते । (८) सूर्ये । (९) वैरिणि । (१०) रात्रीणाम् । (११) गगनोत्सङ्गम् । (१२) कर्त्तुमिच्छतीव । (१३) गुरुणा सार्द्धम् ॥२८॥

(१) देवमार्गो-गगनं, तत्र पान्थीम् । नभोमिलिता इत्यर्थः । (२) मुक्तिगृहे निःश्रेणी त्वधिरोहिणी । (३) सूरिः । (४) शत्रुञ्जयपाजाम् । (५) सह शिशुकुमारकुमारिकाप्रधानस्त्रियः । धर्मकारकत्वात्प्राधान्यम् । तासां समूहस्तथा बहवो ये गीतनृत्यवाद्यत्रयेण सहिता लोकास्तैर्युतः । (६) प्रारम्भयति स्म ॥२९॥ +द्विः ॥

1. ०मण्डले हीमु० । + युग्ममित्यर्थे द्विरिति निर्दिष्टम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमाद[1]चलचक्रिणः [2]श्रमणपुङ्गवः [3]पद्यया,
रुरोह [4]भवसागरं किमु [5]तितीर्षुभिः [6]क्लृप्तया ।
[7]निबद्धुमिव [8]शृङ्खलां [9]हृदयदन्तिनां[1] [12]मेखलां,
[10]सुपर्वतरुनन्दनामिव [11]सुमेरुभूमीभृतः ॥३०॥

(१) तीर्थाधिराजत्वात्पर्वतसार्वभौमत्वम् । (२) सूरिः । (३) सेतुना । (४) संसारसमुद्रम् । (५) तरीतुमिच्छुभिः । (६) निर्मितया । (७) नियन्त्रयितुम् । (८) निगडम् । (९) मनः करिणाम् । (१०) कल्पवृक्षैः शोभनानि पर्वाणि येषां येषु वा तादृग्द्रुमैः समृद्धिं प्रापयति प्रीणाति वा । (११) मेरुगिरेः । (१२) नितम्बमिव ॥३०॥

[1]प्रपासु [2]गिरिपद्धते[3]रमृतपानवद्यात्रिकै-
[4]रपीयत [5]सितोपलाकलितनीरमा[6]तृप्तितः ।
पुन[7]र्मुनिमहीन्दुना[8]ऽवनिधराधिरोहोदय-
त्प्रमोदरसमिश्रिता शमसुधा तदास्वाद्यत ॥३१॥

(१) पानीयशालासु । (२) शैलमार्गस्य । (३) सुधारसपानमिव मुक्तिरसास्वादमिव । (४) पीतम् । (५) शर्करामिश्रनीरम् । (६) तृप्तिं यावत् । (७) सूरीन्द्रेण । (८) शैले आरोहणोत्पन्नहर्षोत्कर्षकरम्बितोपशमपीयूषमास्वादितम् ॥३१॥

[1]स्फुरत्खरकरोद्धुरद्युतिवितानसन्तापितान्,
जनान्[2]जनितनिर्झरोत्करजलाप्लवा [3]वायवः ।
[4]भवार्त्तिविधुरीकृतानिव [5]महात्मनां सङ्गमाः,
सृजन्ति [6]शिशिरान्गिरौ क्षण[7]मपास्य [8]तापं [9]तनौ ॥३२॥

(१) दीप्यमानचन्द्रकिरणस्य सूर्यस्याऽत्युल्बणकान्तीनां समूहेन तप्तीकृतान् । (२) निर्मितं निर्झरनिकरजलेषु स्नातं यैः । (३) वाताः । (४) संसारसन्तापेन व्याकुलीकृतान् । (५) साधूनां सङ्गमाः । (६) शीतलान् । (७) निवार्य । (८) तप्तिम् । (९) शरीरस्य ॥३२॥

[1]झरज्झरपयःप्लवप्रसरशीतलोर्वीतले,
[2]सहस्ररुचिसञ्चरद्द्रुचिचयस्य [3]दुःसञ्चरे ।
[4]विलासिकदलीगृहे [5]भुजगगुल्मिनीमण्डपे,
[6]स्फुरद्विविधविष्टरे [7]पृथुलशैलतल्पाङ्किते ॥३३॥
[1]स्मितद्रुमगलन्मणीचकचयोपचाराञ्चिते,
[2]द्विरेफरवगानितानिललुलल्लताताण्डवे ।

1. ०न्तिनो हीमु० ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

जनान्[3]भवनवद्वने [4]श्रमनुदे[5]ऽतिधर्माम्बुभिः,
[6]स [7]बिन्दुकितवक्षसो [8]ह्वयति [9]लोलशाखाशयैः ॥३४॥ युग्मम् ॥

(१) क्षरन्निर्झरवारिपूरप्रसारैः शीतलभूमीमध्ये । (२) सूर्यस्य इतस्ततः सर्वतः प्रसरन्तीनां कान्तीनां निकरस्य । (३) दुःखेन चरणं प्रवेशो यत्र । (४) शोभनशीलरम्भाभवने । (५) ताम्बूलानां मण्डपा यत्र । (६) विकसन्तो दृश्यमाना वा बहुविधा वृक्षा आसनानि वा यत्र । (७) विस्तीर्णाः शिलानां समूहः-शैलं ता एव पल्यङ्कास्तैः कलिते । यथा स्नातस्यास्तुतौ-"मन्दरत्न-शैलशिखरे" । एतदर्थः-मन्दरेषु मेरुषु पञ्चसुमेरुषु रत्नं श्रेष्ठो यः सुदर्शनाख्यः शैलः-पर्वतस्तस्य शृङ्गे । यद्वा मेरो रत्नशिलानां समूहो यत्र तादृशे शृङ्गे विस्तीर्णानि शैलानि-शिलासमूहास्तान्येव पर्यङ्कास्तैर्युक्ते ॥३३॥

(१) विकचद्रुमेभ्यः पतत्पुष्पप्रकरस्य रचनया चारूकृते । (२) भृङ्गगुञ्जारवैर्गानं सञ्जातं यस्मिन्पवनकम्पितवल्लीनां नाटकं यत्र । (३) गृहे इव । (४) क्लमापनोदाय । (५) अधिकक्लमजप्रस्वेदजलैः । (६) स-गिरिः । (७) बिन्दुयुक्तं वक्षो येषां । "स्वेदबिन्दुकितना-सिकाशिखा" मिति नैषधे । (८) आकारयति । (९) चपलशाखाहस्तैः ॥३४॥ युग्मम् ॥

[1]क्वचिद्विकचकानने [2]मधुपगीतिमिश्रां [3]गिरं,
[4]जगुर्मृदु [5]फलादनाः [6]श्रुतिसुखां [7]विदग्धा इव ।
क्वचिच्च ननृतुर्नटा इव [8]शिखण्डिनां मण्डला,
[9]जगर्ज [10]जलदः क्वचित्[12]करिघटेव [11]भूमीभृतः ॥३५॥

(१) कुत्रापि-<u>शत्रुञ्जय</u>मेखलायाम् । (२) भ्रमरगानकरम्बिताम् । (३) वाणीम् । (४) उच्चरन्ति स्म । (५) कीराः । (६) श्रवणयोः सुखकारिणीम् । (७) पण्डिता इव । (८) मयूरगणाः । (९) गर्जति स्म । (१०) मेघः । (११) गिरेर्नृपस्य वा । (१२) गजराजीव ॥३५॥

[1]मरुन्मिथुनमण्डिता [2]खगविनोदसान्द्रीकृता,
[3]मरुत्तरुपरम्परा [4]विविधसिद्धसौधान्तरा ।
[5]मणीशिखरशालिनी पुन[6]रनिन्दिताष्टापदा,
[7]नितम्बविलसद्वनी [8]भगवता[9]ऽऽलुलोके गिरौ ॥३६॥

(१) देवदेवीयुगलालङ्कृता । (२) खगानां-पक्षिणां विद्याधराणां वा क्रीडारसेन निबिडी-कृता । (३) कल्पवृक्षाणां श्रेणी यत्र । (४) विविधानि स्वर्णरूप्यरत्नमयानि सिद्धानामर्हतां देवविशेषाणां वा सौधानि चैत्यानि गृहाणि वा अन्तरे मध्ये यस्याः । (५) रत्नशृङ्गैः शोभमाना । (६) अक्रूरत्वात्प्रधानाः शरभा यस्यां प्रशस्यस्वर्णा च । अत्रापि मेरोरर्थध्वनिः । (७) गिरिमेखलायां स्मयमानविपिनम् । (८) सूरिणा । (९) दृष्टम् ॥३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभोः[१] शिरसि [२]भूरुहैर्विदधिरे [३]छदैश्छायिका,
[५]निरुद्धरविरश्मिभिः [६]सहचरैरिव [७]स्वांशुकैः ।
[८]अवीज्यत पुनर्जनः क्वचन [९]तालवृन्तैरिव,
[१०]प्रसारिझर[1]शीकरा कलितलोलरम्भादलैः ॥३७॥

(१) सूरेर्मस्तके । (१) वृक्षैः । (३) पत्रैः कृत्वा । (४) 'छांहडी'ति जनप्रसिद्ध्या । (५) निरुद्धा अदृश्यीकृताः सूर्यस्य करा यैः । (६) सेवकैः । (७) निजवसनैः । (८) वीजितः । (९) व्यजनैरिव । (१०) प्रसरणशीलनिर्झ्झरजलकणाकलितचपलमोचापत्रैः ॥३७॥

[१]विदग्धविहगा [२]जयारवमु[३]दीरयन्त्य[४]ध्वनि,
[५]स्तुतिव्रतजना इवा[६]ऽन्तरभिमातिभेत्तुः प्रभोः ।
क्वचि[७]न्निचितमारुतोपचितकीचकानां [८]क्वणै-
र्गुरोर्गुणगणः पुन[९]र्गिरिसुरैरिवो[१०]द्गीयते ॥३८॥

(१) पण्डितविहङ्गाः । (२) जयशब्दान् । (३) कथयन्ति । (४) मार्गे । (५) मागधा इव । (६) अन्तरङ्गवैरिभेदकस्य । (७) परिपूर्णं यथा स्यात्तथा वातैः पुष्टाः कृता भृता ये सच्छिद्रवंशास्तेषाम् । (८) शब्दैः । (९) पर्वतदेवताभिः । (१०) अतिशयेन गानविषयीक्रियते ॥३८॥

[१]स्वचैत्यचटुलध्वजोपधिकरैः [2]किमाकारयन्,
[२]प्रभञ्जननमद्द्रुमैः किम[३]ति गौरवं [४]कल्पयन् ।
[५]मनीषिशुकभाषितैरिव [६]सुखागमं प्रश्नयन्,
[७]झरज्झरमुदश्रुभाग्गिरिरभूद्गुरोरागमे ॥३९॥

(१) निजप्रासादोपरि पवनकम्प्रकेतुकपटात्करैः । (२) समीरणवेगनमत्तरुभिः । (३) अतिशायिनीं भक्तिं नम्रतालक्षणाम् । (४) सृजन् । (५) पण्डितशुकवाग्भिः । (६) सुखेनाऽऽगतमिति प्रश्नं कुर्वन् । (७) निष्पतन्निर्झ्झरा एव हर्षाश्रूणि भजतीति ॥३९॥

क्रमेण [१]धरणीभृतः [३]समधिग[3]म्य सो[२]ऽधित्यकां,
ददर्श [४]वशिनांशशी [५]वरणम[६]म्बरालम्बिनम् ।
धृतं [७]विमलभूभृतो[८]द्धरभवाभिमातेर्भया-
ज्जनं [९]स्वशरणागतं किमिह रक्षितुं [१०]काङ्क्षता ॥४०॥

(१) शत्रुञ्जयस्य । (२) ऊर्ध्वभूमिम् । (३) प्राप्य । (४) वशात्मनां मध्ये शमामृतैरतिशीतलत्वेन शशी । अलुक्समासः । (५) प्राकारम् । (६) गगनसङ्गिनम् । (७) गिरिणा ।

1. ०सीकरा० हीमु० । 2. ०रिवाकारयन् हीमु० । 3. ०गत्य हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(८) उत्कटसंसारवैरिणो भीत्या । (९) आत्मनः शरणे आश्रये समागतम् । (१०) वाञ्छता ॥४०॥

[1]विवेश [2]वशिशर्वरीवरयिता नृणां [3]श्रेणिभिः,
[4]समं [5]वरणगोपुरं [6]पुरमिवा[7]ऽवनीवासवः ।
स [8]धर्मधरणीपतेरिव [9]निवासवेश्मावलीं,
[10]व्यलोकत पुरः[11]स्फुरज्जिननिकेतपङ्क्तिं पुनः ॥४१॥

(१) प्रविष्टः । (२) सूरिः । (३) जनराजीभिः । (४) सार्द्धम् । (५) प्राकारप्रतोलीम् । (६) नगरमिव । (७) राजा । (८) धर्मनृपस्य । (९) वासभवनमालेव । (१०) ददर्श । (११) अग्रे दीप्यमानप्रासादपङ्क्तिम् ॥४१॥

[1]मृगेन्द्रशरभाङ्कुशाः [2]परिभवन्ति मां [3]निर्दया,
[4]इमां [5]जहि जगत्पते[6]र्जननि ! [7]दुःखिता[8]मुल्बणाम् ।
इतीव [9]गदितुं [10]गजो भजति [11]यानदम्भेन यां,
[12]वृषध्वजजिनप्रसूः [13]प्रथममेव [15]नेमे[14]ऽमुना ॥४२॥

(१) सिंहाष्टापदसृणिप्रमुखाः । (२) घ्नन्ति । (३) निर्गता करुणा यत्र तथा । (४) पूर्वोक्ताम् । (५) नाशय । (६) जिनमातः ! । (७) दुःखिभावम् । (८) प्रबलाम् । (९) विज्ञप्तुम् । (१०) हस्ती । (११) वाहनच्छलात् । (१२) ऋषभदेवमाता-मरुदेवा । (१३) पूर्वम् । (१४) सूरिणा । (१५) प्राकारप्रवेशे प्रणता ॥४२॥

[1]यदि(दी)क्षणजितो मृगः श्रित इवा[2]ऽङ्ककायः [3]क्रमं,
[4]मृगध्वजजिनं ततः [5]प्रमुदितः स तं [6]नेमिवान् ।
जिनेन्द्रमजितं पुनर्न[7] जितमा[8]न्तरैर्वैरिभिः,
कदाचिदपि [9]पद्मिनीप्रियतमै[10]स्तमिस्रैरिव ॥४३॥

(१) यन्नेत्रेण निर्जितः । (२) लाञ्छनवपुः । (३) चरणम् । (४) शान्तिनाथम् । (५) हृष्टः । (६) नमति स्म । (७) न पराभूतम् । (८) कर्मादिवैरिभिः । (९) भानुरिव । (१०) अन्धकारैः ॥४३॥

स [1]सिद्धगृहवज्जिनं प्रणमति स्म [2]पृथ्वीधर-
प्रणीतजिनमन्दिरे [3]मुनिपुरन्दरः [4]सम्मदात् ।
[5]प्रधान इव [6]पर्षदं [7]क्षितिपतिं स [8]छीपाभिधां,
समेत्य वसतिं पुनर्[9]जिनसुधांशु[10]माराधयत् ॥४४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सिद्धालये इव । (२) पेथडदेसाधुनिष्पादितप्रासादे । (३) सूरिः । (४) हर्षात् । (५) सचिव इव । (६) सभाम् । (७) राजानम् । (८) छीपावसतिम् । (९) जिनचन्द्रम् । (१०) उपासामास ॥४४॥

अवन्दत स [१]टोक[1]राभिधविहार तीर्थेश्वरं,
पुनः प्रभुमबीभजद्वसतिमेत्य[२] मो[2]ह्लाभिधाम् ।
विलोक्य च [३]कपर्द्दिनं [४]सकलसङ्घविघ्नच्छिदं,
[५]परं [६]गिरिमिवा[७]ऽर्बुदादिमविभुं स्तवैरस्तवीत् ॥४५॥

(१) टोकराविहारे जिनम् । (२) मोह्लासाधुवसतौ । (३) कपर्द्दिनामानं यक्षम् । (४) सङ्घलोकानां विघ्ननिवारकम् । (५) अन्यम् । (६) पर्वतमिव । (७) अदबुदजिनम् ॥४५॥

[१]सरस्यनुपमाभिधे [२]शिखरिशेखरे [४]मानसा-
ह्वये [३]तुहिनमेदिनीधर इव क्षिपन्नक्षिणी ।
ततः समधिरूढवान्स शिखरं [५]स्वरारोहणा-
भिधं धृतमिवाऽमुना [६]स्वरधिरोहणाया[७]ऽङ्गिनाम् ॥४६॥

(१) अनुपमदेवीकारिते अनुपमतटाके । (२) शैलस्याऽग्रभागे । (३) हिमाचले । (४) मानससरसीव । हिमाद्रौ सद्भावः पूर्वं चम्पूकथायां प्रोक्तः । (५) स्वर्गारोहणं नाम शृङ्गम् । (६) स्वर्गेऽधिरोहणार्थम् । (७) भव्यानाम् ॥४६॥

समेत्य [१]मणिसेतुना [२]वृषभकूटम[३]भ्रङ्कषं,
विवेश [४]वरणान्त[3]रं किम[५]पवर्गपूर्गोपुरम् ।
विलोक्य स [६]तदन्तिके [७]सचिववस्तुपालेन चो-
ज्जयन्तमवतारितं [१०]प्रणमति स्म [८]तत्रा[९]ऽर्हतः ॥४७॥

(१) रत्नपद्यया । (२) ऋषभकूटम् । (३) गगनमप्युल्लिखत् । (४) प्राकारमध्ये । (५) मोक्षनगरप्रतोलीमिव । (६) प्राकारसमीपे । (७) वस्तुपालप्रधानेन । "प्रणीय विषयं दृशोरिह कुमारदेवी भुवोज्जयन्त" इत्यादि पाठः । कुमारदेवीभुवा-वस्तुपालेन अवतारितं रैवताचलं नयनयोर्गोचरं कृत्वा इह प्राकारपार्श्वे । (८) तत्र-वस्तुपालवसतौ । (९) नेमिनम् । (१०) ननाम ॥४७॥

ततः [१]खरहताभिधां वसतिमभ्युपेत्य प्रभुः,
[२]स्ववासत इवा[४]ऽऽगतं [३]रचनयाऽत्र [५]नन्दीश्वरम् ।
[६]सराजिमतिकां स्फुरच्चतुरिकां पुन[७]र्नेमिनो,
[८]निभाल्य [९]जिनपुङ्गवान्[१०]िह तमा[११]मनंसीन्मुदा ॥४८॥

1. टोटरा० हीमु० । 2. मौल्हा० हीमु० । 3. ०न्तरे० हीमु० ।

(१) खरहतवसतौ । (२) निजस्थानादष्टमद्वीपभूमेः । (३) रचनया कृत्वा । (४) समागतम् । (५) नन्दीश्वरद्वीपमिव । (६) सह राजीमत्या वर्त्तते या सा सराजिमतिका । "स्वामिन् ! मामुग्रसेनक्षितिपकुलभवां सानुरागां सुरूपां, *बालां त्यक्त्वा कथं त्वं बहुमनुजरतां मुक्तिनारीमरूपाम् । वृद्धां मूकामकुल्यां करपदरहितामीहसेऽशेषविच्छ्रा-गि*र्त्युक्तो राजिमत्या यदुकुलतिलकः श्रेयसे सोऽस्तु नेमिः ॥" इति पूर्वसूरिप्रणीतस्तवे । तां सराजिमतिकाम् । (७) नेमिनाथस्य चतुरिकाम् । (८) दृष्ट्वा । (९) जिनेन्द्रान् । (१०) खरहतवसतौ । (११) नमति स्म ॥४८॥

स [१]घोटकचतुष्किकादिमगवाक्षजैनालये,
चकार च [२]नमस्कृतिं चरणयो[३]र्जिनोर्वीभृताम् ।
[४]गिरेरिव विशेषके [५]तिलकतोरणे श्रीजिनान्,
पुन[६]र्मुनिमतङ्गजो नवनवैः स्तवैरस्तवीत् ॥४९॥

(१) घोडाचउकी नामप्रासादे । (२) नमस्कारं कृतवान् । (३) जिनराजानाम् । (४) गिरिलक्ष्म्यास्तिलके (५) तिलकुंतोरण नाम्नि विहारे । (६) सूरिः ॥४९॥

[१]जिनाधिपसभाजनाप्लवविधानबद्धादरा-
रविन्द[1]वदनाजनैः सम[२]मलङ्कृतं [३]सर्वतः ।
[४]जलाधिसुरयौवतैः [५]प्रभुनिनंसयेव [६]स्फुटी-
भवद्भि[७]रमुना [८]न्यभाल्यत [९]पतङ्गकुण्डं ततः ॥५०॥

(१) जिनेन्द्रपूजार्थं स्नानकरणे सादरस्त्रीजनैः । (२) शोभितः । (३) सर्वप्रदेशेषु । (४) जलदेवताभिरिव । (५) सूरिं नन्तुमिच्छया । (६) प्रकटीभूतैः । (७) सूरिणा । (८) दृष्टम् । (९) सूर्यकुण्डम् ॥५०॥

[१]विजित्य [२]कलिना समं [३]दुरितदुर्द्धरद्वेषिणः,
[४]सुखं स्थिति[५]मुपेयुषः, [६]शिखरमण्डलाखण्डले ।
[७]ससालमणिमन्दिरं किमिह [८]धर्मभूमीभुजो,
[९]न्यभालय[१०]दयं [११]पुरः [१२]प्रवरवप्रवेश्म[2]ऽर्हतम् ॥५१॥

(१) पराभूय । (२) कलिकालेन सार्द्धम् । (३) पापरूपोत्कटरिपून् । (४) सुखेन निर्वैरितया । (५) स्थितवतः । (६) गिरिचक्रिणि । (७) प्राकारयुक्तं रत्नगृहम् । (८) धर्मराजस्य । (९) ददर्श । (१०) सूरिः । (११) अग्रे । (१२) प्रकृष्टप्राकारयुतप्रासादम् ॥५१॥

[१]स्फुरत्करतरङ्गितां [२]स्फटिककल्पितारोहणा-
वली[३]मयम[४]मार्गय[५]द्रणगोपुराभ्यन्तरे ।

* * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो हीमु०पुस्तकादत्र उद्धृतः । 1. ०नयना० हीमु० । 2. ०श्मार्हतः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६]विमुच्य [७]मृडमद्रिजापरिभवेन [९]सापत्न्यतः,
किम[१०]म्बरतरङ्गिणीं [११]विदधतीं [१२]विरक्तेस्तपः ॥५२॥

[१]मलीमसजनाप्लवै[२]र्निजम[३]पावनीभावुकं,
[४]पवित्रय(यि)तु[५]मीयुषी किम[६]थवाऽत्र शत्रुञ्जये ।
[७]मुरारिमथनोदितस्वतनुजादिविश्लेषजा-
सुखा[८]दुत [९]सुधाम्बुधिः किमु [११]तनोति [१०]तीर्थे [११]तपः ॥५३॥ युग्मम् ॥

(१) प्रसरत्किरणैस्तरङ्गयुक्तां जाताम् । (२) स्फटिकरत्ननिर्मितसोपानमालाम् । (३) सूरिः । (४) पश्यति स्म । (५) प्राकारस्य प्रतोल्या मध्ये । (६) सन्त्यज्य । (७) ईश्वरम् । (८) पार्वतीपराभवतः । (९) सपत्नीत्वात् । (१०) स्वर्गगङ्गाम् । (११) कुर्वाणाम् । (१२) वैराग्यात् ॥५२॥

(१) अन्त्यजादिमलिनजनस्नाननिर्माणैः । (२) आत्मानम् । (३) अपवित्रीभवनशीलम् । (४) पवित्रं कर्त्तुम् । (५) आगता । (६) अथवेत्यर्थान्तरम् । (७) कृष्णेन यन्मथनं तस्मात्प्रकटीभूतो यः पुत्रचन्द्रादिवियोगस्तज्जातं यदसुखं-दुःखं ततः । (८) अथवा । (९) क्षीरसमुद्रः । (१०) तीर्थे-शत्रुञ्जये । (११) तपः कुरुते । अयमप्यपरोऽर्थः ॥५३॥

स[१] हीरविजयप्रभु[२]र्वरणगोपुरं [३]प्राविशत्,
[४]प्रवेशनमि[५]वर्षभध्वजजिनावनीवज्रिणः ।
[६]सुराम्बुधिवधूप्लवे[७]ऽम्बुजपरागपिङ्गीभव-
त्सितच्छद इव [८]व्यभासत ततोऽस्य [१०]सोपानके ॥५४॥

(१) विख्यातो हीरविजयसूरिः । (२) मध्यप्राकारप्रतोल्याम् । (३) प्रविशति स्म । (४) सिंहद्वारमिव । (५) ऋषभजिनराजस्य । (६) गङ्गाप्रवाहे । (७) स्वभावेन कमलानि पीतान्येव वर्ण्यन्ते । वर्णभेदात्तु वर्णानामुच्चारपूर्वम् । यथा- रक्तपद्मानि कोकनदानि श्वेतानि कुमुदानीत्यादि । ततः कमलपौष्पपिङ्गीभूतराजहंस इव सूरिः । (८) शुशुभे । (९) प्राकारस्य । (१०) सोपानकेषु ॥५४॥

[१]चतुष्क[२]मधिरोहणान्वय[३]विहारयोरन्तरा,
व्यलोकत [३]समाजवत्सु[४]कृतभूमिभर्त्तुः प्रभुः ।
पुन[५]र्मणिहिरण्मयं [६]जिननिकेतनं तत्पुरः,
[७]सुधाशवसुधाधरोल्लसितचूलिकाचैत्यवत् ॥५५॥

(१) चतुष्कमङ्गलभूमिम् । (२) सोपानात्सोपानमारुह्येत्यर्थः । अत्र क्यप्लोपे पञ्चमी वाच्या । (३) प्राकारप्रासादयोर्मध्यसभेव । (४) पुण्यराजस्य । (५) रत्नस्वर्णनिर्मितम् । (६) ऋषभदेवमूलप्रासादम् । (७) सुधाशा देवास्तेषां वसुधाधरो-गिरिर्मेरुस्तस्योल्लसितायां रम्यायां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूलायां सिद्धायतनमिव ॥५५॥

[१]तमीश इव [२]तारकै[३]र्ग्रहपति[४]र्ग्रहौघै[५]रिवा-
ऽसुरेश्वर इवा[६]ऽसुरैरिव सुरै[७]: सुरेशः पुनः ।
[८]नरेन्द्र इव मानवै [९]र्वृषभकेतनार्हद्गृहं
गृहै[१०]र्लघुभिरर्हतां स्फुरति [११]मण्डितं सर्वतः ॥५६॥

(१) चन्द्रः । (२) तारैः । (३) सूर्यः । (४) ग्रहैः । (५) दैत्येन्द्र इव । (६) दैत्यैः । (७) सुरेन्द्र इव सुरैः । (८) नरेन्द्र इव नरैः । (९) ऋषभप्रासादः । (१०) देवकुलिकाभिः । (११) शोभितम् ॥५६॥

[1][१]इमा [२]अनिशनिम्नगा [३]बहुजडाशया [४]वक्रगा,
[५]नमन्निकटवर्त्तिना[६]मवनिजन्मनां [७]घातुकाः ।
[८]स्वकीयवचनीयतामिति [९]जिघांसुभिः [१०]सिन्धुभिः,
[११]निषेवितुमिव [१२]प्रभोः पुर [१३]उपागताभिः [१४]स्वयम् ॥५७॥

(१) इमा नद्यः । (२) निरन्तरं निम्नं नीचैर्गच्छन्ति नीचगामिन्यः । अपरोऽप्यर्थः - कुलीनमपहायाऽकुलीनं भजन्ते । (३) मन्दमनस्का निर्बुद्धयः, 'पार्ष्णीबुद्धयः स्त्रिय' इति प्रसिद्धेः; जलभृताश्च बहु यथा स्यात्तथा । (४) वक्रं कुटिलं गच्छन्तीति । कपटपटवः । (५) नमतां-प्रतिपत्तिं कुर्वतां प्रणामादिभिस्तया निकटे समीपे वर्त्तनशीलानां सदा पार्श्वस्थायिनाम् । (६) भूमौ जन्म येषां ते । नराणामित्यर्थः, तरुणां च । (७) हिंसनशीलाः । स्त्रीणामप्यर्थध्वनिः । (८) आत्मीयापवादम् । (९) हन्तुमिच्छुभिः । (१०) नदीभिः । (११) सेवितुम् । (१२) देवस्याऽग्रे । (१३) समागताभिः । (१४) स्वस्वरूपेण ॥५७॥

क्षयं[१] प्रलयकालजं [२]निज[४]मवेक्ष्य [३]साक्षान्मेरु[५]-
त्सरिज्जलरयैरिवा[६]ऽक्षयपदोदयाकाङ्क्षया ।
[७]उपासितुमुपागतै[८]रिह [९]पदारविन्दं प्रभो-
[१०]र्व्यलासि सदने [११]वृषध्वजजिनस्य सोपानकैः ॥५८॥[2]

(१) कल्पान्तकालोत्पन्नम् । षष्ठारके हि गङ्गा रथप्रवाहा(ह)मात्रा स्थास्यतीत्याग-मोक्तत्वादत्राऽल्पशब्दोऽभाववाची तस्मात् क्षयः । (२) आत्मीयम् । (३) साक्षादागमात् । (४)

---

1. इमा अनिशनिम्नगा बत जडाशया वक्रतां वहन्त्यहरहस्तथा सप्रतिकूलवृत्तिप्रथाः ।
श्रितोत्पलमधुव्रतान्कृतकुलक्षयैराश्रिता धरन्ति च पदे पदे भुवनभङ्गरङ्गं पुनः ॥५८॥
नमन्निकटवर्त्तिनामवनिजन्मनां घातुकाः स्वकीय वचनीयतामिति जिघांसुभिः सिन्धुभिः ।
निषेवितुमिव प्रभोः पुर उपागताभिर्बभे यदाप्तसदनाग्रतो विविधरत्नसोपानकैः ॥५९॥ युग्मम् । हीमु० ।
2. एष श्लोकः हीमु०पुस्तके ५७तमोऽस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञात्वा । (५) गङ्गावारिपूरैः । (६) न विद्यते क्षयो-विनाशो यत्र तादृक्पदस्य-स्थानस्य सम्पल्लक्षणस्य वा आविर्भावस्तस्य वाञ्छया । (७) उपासितुं-सेवितुम् । (८) प्रासादे । (९) पदकमलम् । (१०) शुशुभे । (११) <u>ऋषभप्रासादे</u> सोपानकैः ॥५८॥

[1]जिनेन्द्रसदनाग्रतोऽ[2]द्युतद[3]नल्पशिल्पोल्लस-
त्सुवर्णमणितोरणं [4]शिवसुधाब्धिजाकार्मणम् ।
[5]निबद्ध[6]मपवर्गपूः [7]प्रथमसाधनप्रक्रमे,
[8]जिनावनिबिडौजसः किमिह [9]मुक्तिगेहे [10]गिरौ ॥५९॥

(१) ऋषभप्रासादस्याऽग्रे द्वारोपरि । (२) शुशुभे । (३) अनेकैः विज्ञानै रचिताभिरुल्लसद्दीप्यमानं सुवर्णमणीनां तोरणम् । (४) मोक्षलक्ष्मीवशीकरणम् । (५) निर्मितम् । (६) मुक्तिनगर्याः । (७) प्रथमस्वीकरणप्रस्तावे । नवीननगरे राज्ञा तोरणं बद्ध्यते इति स्थितिः । (८) जिनराजस्य । (९) मुक्तेर्भवने । (१०) पर्वते ॥५९॥

[1]निजस्य [2]बहलीभवत्यपि [3]महोत्सवे [4]द्वारि मां,
जना असहजा इव प्रतिपदं [5]निबध्नन्त्यमी ।
[6]जहीति मम [7]दुःखितां किमिति [8]वक्तुकामं [9]प्रभोः,
पुरः स्थित[10]मुपेत्य [11]यज्जिननिकेतने तोरणम् ॥६०॥

(१) आत्मीयस्य । (२) अतिसान्द्रीभवत्यपि । (३) महामहे । (४) द्वारप्रदेशे, स्थाने-स्थाने । (५) बन्धं नयन्ति । (६) नाशय । (७) दुःखमस्याऽस्तीति, तद्भावम् । (८) कथयितुं काङ्क्षन् । (९) देवस्याऽग्रे । (१०) आगत्य स्थितम् । (११) मूलप्रासादे ॥६०॥

[1]यदीयविभवैः [2]पराजितजगत्त्रयीस्पर्द्धिभिः,
[3]स्वकीय[4]मुपदीकृतं [5]विजितवैजयन्तेन किम् ।
दधार मणिमण्डपं किरण[6]खण्डिताखण्डरुक्-
प्रचण्डरविमण्डलं [7]वृषभतीर्थकृन्मन्दिरम् ॥६१॥

(१) प्रासादसम्बन्धिश्रिया । (२) तिरस्कृतास्त्रैलोक्यसम्बन्धिनः स्पर्द्धाकारिणो यैः । (३) आत्मीयम् । (४) ढौकितम् । (५) जितेनेन्द्रप्रासादेन स्वकान्तिभिः । (६) पराभूतं समग्रा कान्तिर्यस्य तादृशस्य प्रचण्डस्य-द्रष्टुमप्यशक्यस्य रवेर्मण्डलं येन । (७) युगादिजिनगृहम् ॥६१॥

[1]अनन्यशिवकन्यकां मनसि [2]धर्मभूमीभृता,
[3]प्रदातुमिह [4]काङ्क्षि[5]तोचितवराय कस्मैचन ।
[6]स्वयंवरणमण्डपो [7]मणिसुवर्णचित्रश्रिया-
ऽञ्चितः किमु [8]विधापितः स्फुरति[9] यन्महामण्डपः ॥६२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सर्वातिशायिनीं मुक्तिकुमारीम् । (२) धर्मराजेन । (३) पाणिं ग्राहयितुम् । (४) वाञ्छता । (५) योग्याय वराय । (६) स्वयंवरमण्डपः । (७) मणीनां सुवर्णानां चित्राणां आश्चर्यकारिण्या वा लक्ष्म्या कलितः । (८) निर्मापितः । (९) प्रासादस्य महान्मण्डपो भाति ॥६२॥

[१]अवेत्य [२]कलितौकसं [३]नभसि [४]सिंहिकानन्दनं,
वनो[५]न्मिलितुमागताः [६]किमिह [७]गोत्रहार्दादमी ।
यदा[८]प्तगृहकन्धरास्फुरदमानपञ्चाननाः,
परां श्रियमशिश्रियन्न[९]मृत कान्तिकान्तद्विषः ॥६३॥[1]

(१) ज्ञात्वा । (२) निर्मितगृहम् । (३) गगने । (४) केसरिणं स्वर्भाणुं च । (५) मिलनार्थम् । (६) चैत्ये । (७) ज्ञातिस्नेहात् । (८) प्रासादशिखरेषु दृश्यमानास्तथा प्रमाणातीता अतिबहवो ये पञ्चानना मृगेन्द्राः । ''यदनेककसौधकन्धराहरिभिः कुक्षिगतीकृता इवे''ति नैषधे । (९) चन्द्रकान्तमणिश्वेतिमवैरिणः ॥६३॥

[१]युगादिजिनमन्दिरे शिखरमं[२]म्बराडम्बरं,
[३]विडम्बयति [४]चण्डरुक्किरणमण्डलं वैभवैः ।
[५]पुन[६]र्निजसपक्षतामिव समीहमानो जिनं,
भजन्न[७]मरभूधरो [८]भुवनकामितस्वस्तरुम् ॥६४॥

(१) ऋषभप्रासादे । (२) आकाशे आडम्बरो यस्य । (३) अनुकरोति । (४) रविकिरणनिकरम् । (५) इन्द्रेण छिन्नपक्षत्वाद् द्वितीयवारम् । (६) आत्मनः पक्षयुक्तताम् । (७) मेरुः । (८) त्रैलोक्यवाञ्छितकल्पद्रुमम् ॥६४॥

अवेत्य [१]जगदीहितं [२]प्रददतं [३]कदम्बाचलं,
[४]द्विधाऽपि [५]वसुधातले[६]ऽखिलमहाभयालम्भिनम् ।
दरेण धरवैरिणः किमु भजन्ति यं भूधरां,
यदल्पशिखरच्छलाल्पिततनूलतालम्बिनः ॥६५॥

(१) त्रिभुवनकामितम् । (२) प्रकर्षेण सर्वोत्कर्षेण ददानम् । (३) कदम्बः-शत्रुञ्जयः शैलः । (४) द्विधापि-ऐहिकामुष्मिकभेदात् । (५) भूमण्डले । (६) समस्तानां रोगगजप्रमुखाणां महाभयानामालम्भो व्यापादनमस्त्यस्य-अर्थात्स्वसेवकानाम् ॥६५॥

[१]जगद्गिरिविजित्वरं [२]महिमभिर्म[३]हीभृद्वरै-
रवेत्य भुवि [४]भूधराभिनवसार्वभौमं [५]नगम् ।
[६]स्वबालशिखरैरमुं किमु न सेवितुं प्रेषितैः,
[७]कुमारशिखरैर्बभे [८]यदतितुङ्गशृङ्गाश्रयैः ॥६६॥

1. अतः परं हीमु०पुस्तकस्थः ६५तमश्लोकोऽत्र नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) जगत्सु-त्रिभुवने सर्वपर्वतानां जयनशीलम् । (२) माहात्म्यैः । (३) पर्वतपरम्पराभिः । (४) शैलानां नवीनं चक्रवर्तिनम् । (५) शत्रुञ्जयम् । (६) आत्मनां लघूनि शिखराणि, तैः । राजानो हि चक्रवर्त्तिनं ज्ञात्वा स्वस्वबालनन्दनांस्तत्सेवार्थं प्रेषयन्तीति स्थितिः । (७) लघुभिः शृङ्गैः । (८) प्रासादस्याऽतिशयेनोच्चं यच्छिखरं तत्राऽऽश्रयो येषाम् ॥६६॥

[१]धनादि जगदीहितं [२]प्रभविताऽस्मि दातुं पुनः,
[३]शिवादिकमलाकरं [४]प्रणय मां प्रभो ! [५]त्वामिव ।
इतीव [६]जगदीश्वरं [७]गदितु[1][८]मुत्सुकः [९]स्वर्घटः,
[१०]समेत्य [११]जिनसद्मनः [१२]शिखरसंस्थितः [१३]सेवते ॥६७॥

(१) द्रव्यभोज्यवस्त्राभरणादि जगज्जनानां कामितम् । (२) समर्थोऽस्मि । (३) मोक्षलक्ष्मीप्रमुखसुखकारिणम् । (४) कुरु । (५) त्वद्वत् । (६) ऋषभदेवम् । (७) विज्ञप्तुम् । (८) उत्कण्ठितः । (९) कामकुम्भः । (१०) आगत्य । (११) प्रासादस्य । (१२) शृङ्गे वसन् । (१३) भजति । अर्थाज्जिनम् ॥६७॥

[१]विधास्यति विभो[२]रहर्निश[३]मुपास्ति[४]मभ्येत्य यः,
[५]स [६]मद्व[७]दमृतस्फुर[८]न्नुपरि संस्थितिं लप्स्यते ।
[९]विसृत्वरविनिःसरत्करभरै[११]रिदं [१०]प्राणिनां,
[१२]पुरः [१३]प्रवदतीव य[१४]त्कनकक्लृप्तकुम्भः स्वयम् ॥६८॥

(१) करिष्यति । (२) दिनं दिनं प्रति । (३) सेवाम् । (४) समीपमागत्य । (५) स पुमान् । (६) अहमिव । (७) अमृते-मोक्षे दीप्यमानः । (८) जगतामप्युपरि संस्थानमावासं प्राप्स्यति । अपरोऽप्यर्थलेशः-पानीयेन पूर्णः सन् जनमस्तके स्थितिं लप्स्यते । (९) प्रसरणशीलानां निर्गच्छतां किरणानां हस्तानां च गणैः । (१०) जनानाम् । (११) एतत्पूर्वोक्तम् । (१२) अग्रे । (१३) कथयतीव । (१४) सुवर्णनिर्मितकलशः ॥६८॥

[१]विभाव्य [२]भुवनत्रये [३]स्वविभवाङ्ककारव्रजा-
न्विजेतुमनसाऽमुना किमु जिनेशितुः [४]सद्मना ।
[५]सपत्ननिवहस्मयाम्बुनिधिमाथमन्थाचलं,
[६]शिरःशिखरसंस्फुरन्निबिडदण्डरत्नं [७]दधे ॥६९॥

(१) दृष्ट्वा । (२) त्रैलोक्ये । (३) स्वशोभानां प्रतिमल्लगणान् । "दूरं गौरगुणैरहङ्कृतिभृतां जैत्राङ्ककारे चरत्" इति नैषधे । (४) प्रासादेन । (५) वैरिगणाहङ्कारसागरमथने मन्दरम् । (६) उपरितनशृङ्गे दीप्यमानं दृश्यमानं वा निबिडं दृढं दण्डरत्नम् । (७) धृतम् ॥६९॥

---

1. ०तुमुत्सुकीभावुकः समेत्य समनोनिपो भजति चैत्यशृङ्गे स्थितः ॥ हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]निभाल्य [२]नलिनीधवं [३]स्वविभवेन [४]संस्पर्द्धितां,
दधानमधिकं[५] क्रुधोद्धुषितवर्ष्मणा[६]ऽर्चिर्मिषात् ।
जिनाधिपतिसद्मना [७]सुरपथे [८]स्वदण्डस्फुर-
त्करः [९]परिबुभूषया [१०]द्विष इवैष [११]ऊर्ध्वीकृतः ॥७०॥

(१) दृष्ट्वा । (२) सूर्यम् । (३) निजश्रिया सह । (४) स्पर्द्धनशीलताम् । (५) अतिशयेन कोपेनोत्कण्ठकितवपुषा । (६) कान्तिकपटेन । (७) सुरपथे-गगने । (८) स्वस्य यो दण्डः, स एव दीप्यमानपाणिः । (९) पराभवितुं-चपेटादिना इच्छया । (१०) वैरिणः । (११) उच्चैश्चक्रे ॥७०॥

[१]विजित्वरविभूतिभिः [२]प्रतिपदं [३]परिस्पर्द्धिनो,
[४]विजित्य जिन[५]सद्मना [६]जगति वै[७]जयन्तादिकान् ।
[८]द्विषद्विजयबोधिका[९]ऽध्रियत मूर्ध्नि मन्येऽमुना,
[१०]विहारशिखरे [११]मरुत्तरलवैजयन्ती व्यभात् ॥७१॥

(१) प्रतिस्पर्द्धिजयनशीललक्ष्मीभिः । (२) प्रत्यहम् । (३) स्पर्द्धाकरणशीलात् । (४) जित्वा । (५) चैत्येन । (६) विश्वे । (७) इन्द्रप्रासादप्रमुखान् । (८) वैरिणां विजयकरणज्ञापयित्री । (९) धृता । (१०) चैत्यशृङ्गे । (११) पवनचपलपताका ॥७१॥

[1]अर्हद्दिनमु[२]दित्वरद्युमणिचण्डिमाडम्बरो-
द्धुरप्रसृमरप्रभाप्रकरतापसन्तापितः ।
[३]रसं [४]रसितु[५]मम्बराम्बुधिवधूप्रवाहान्तरे,
[६]दिवि [७]प्रकटितो ध्वजः [८]स्वरसनेव जैनौकसा ॥७२॥

(१) दिनं दिनं प्रति । (२) उदयनशीलस्य रवेश्चण्डताया आडम्बरेणोत्कटाः प्रसरणशीलाः प्रभाः कान्तयस्तासां तप्त्या सन्तापः-सञ्ज्वर उष्मा ततः । (३) जलम् । (४) पातुम् । (५) गङ्गाप्रवाहमध्ये । (६) गगने । (७) प्रकटीकृता । (८) पताकारूपस्वजिह्वा ॥७२॥

न कश्चि[१]दुपलब्धिमात्र [२]जनसंशयच्छेदकृ-
न्न कोऽपि च [३]शिवंगमी [४]जगति [५]पूर्ववद् [६]दृश्यते ।
[७]महोदयविधायकोऽर्हति[८] निषेव्यतां साम्प्रतं,
[९]मही [१०]महिमसम्पदां [१२]तदयमेक[११] [१२]एवाऽचलः ॥७३॥

[१]सदा[२]ऽऽकृतिवपुः [३]पदं [४]परिचरामि यस्य [५]प्रभोः,
[६]प्रकाशितमि[७]दं स्वयं [८]जगति तेन [९]मत्स्वामिना ।

1. दिनं दिनमु० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[10]पटु [11]प्रकटयाम्यहं [12]गणिवदस्य तीर्थस्य त-
[14]त्प्रभाव[13]मतिशयिनं त्रिभुवनो[15]द्विचिन्त्येति किम् ॥७४॥

[1]जिनेन्द्रसदनाम्बरान्तरनुषङ्गिशृङ्गाङ्गणा-
निलप्रचलकेतनस्फुरदकुण्ठकण्ठीरवः ।
पुर[2]स्त्रिजगदङ्गि[3]नामिति [4]निजान्तिकावासभाग्-
रणज्झणितिकिङ्किणीक्वणमिषेण किं [5]भाषते ॥७५॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

(१) ज्ञानवान् । (२) जनानां सन्देहनिवारकः । (३) मुक्तिगामुकश्चरमशरीरी । (४) भुवने । (५) पूर्वस्मिन् काल इव । (६) विलोक्यते । (७) मोक्षदायकः । (८) सेवायोग्यताम् । (९) स्थानम् । (१०) माहात्म्यान्येव सम्पत्तयस्तासाम् । (११) अद्वैतः । (१२) अयमेव शत्रुञ्जयपर्वतः ॥७३॥

(१) नित्यम् । (२) आकार एव कायो यस्य । (३) चरणम् । (४) भजामि । (५) यस्य जिनस्य । (६) प्रतिपादितम् । (७) इदं पूर्वोक्तं शैलमाहात्म्यम् । (८) भुवने । (९) तेन-मम प्रभुणा वीरेण । (१०) स्पष्टम् । (११) प्रकटि(टी)करोमि । (१२) गणधर इव । यथा जिनेनाऽर्थात्प्रतिपादितं सूत्रं गणभृद्विस्तारयति तथाऽहमपि शत्रुञ्जयस्य । (१३) अनुत्तरम् । (१४) माहात्म्यम् । (१५) इति विचार्य ॥७४॥

(१) प्रासादस्य गगनमध्ये सानुषङ्गोऽस्याऽस्तीति तादृक्शृङ्गोपरि पवनप्रचले ध्वजे दृश्यमानामन्दमृगेन्द्रः । (२) जगतां यावज्जनानाम् । (३) इत्यमुना प्रकारेण । (४) स्वसमीप-स्थानकभाजां रणज्झणितिशब्दं कुर्वाणानां घुर्घुटिकानां ध्वनिच्छलेन । (५) कथयति ॥७५॥

[1]स्वमौ[2]ज्झ्य [3]भुवि [4]निर्वृतौ [5]गतम[6]वेत्य [7]सिंहध्वजं,
[8]यियासुर[9]नु [10]तं स्वयं [11]द्युनिशसेविता [12]स्नेहतः ।
[13]इतः [14]प्रचलितो[15]ऽम्बरोपगतचैत्यशृङ्गध्वना,
[16]ध्वजाङ्कगतकेसरी [18]कलयति स्म [17]लक्ष्मीमिह ॥७६॥

(१) स्वमर्थात्केसरिणम् । (२) त्यक्त्वा । (३) भूमौ । (४) मोक्षे । (५) यातम् । (६) ज्ञात्वा । (७) महावीरदेवम् । (८) गन्तुमिच्छुः । (९) अनु पश्चात् । (१०) तं जिनम् । (११) निरन्तरचरणसेवकत्वेन । (१२) प्रेम्णः-स्नेहात् । (१३) भूमेः सकाशात् । (१४) प्रस्थितः । (१५) गगनालिङ्गिप्रासादशिखरमार्गेण । (१६) पताकोत्सङ्गसङ्गत आकृत्या कृत्वा स्वयमत उत्प्रेक्षा-सिंहः । (१७) शोभाम् । (१८) धत्ते ॥७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]मृगाङ्ककरसङ्गमक्षरदमन्दपाथःप्लवै-
[२]र्यदुच्चशिखरं[1] [३]तमीमणिमणीगणैर्निर्मितम्[2] ।
[४]रजोभिरवगुण्ठितं [५]प्रबलगन्धवाहव्रजै-
[६]र्वपुः [७]पवितु[८]मात्मनो जिनगृहं [९]निशि [१०]स्नाति किम् ॥७७॥

(१) चन्द्रकिरणसङ्गमात्पतदविरलजलपूरैः । (२) प्रासादस्य गगनसङ्गिशृङ्गम् । (३) चन्द्रकान्तरत्नर्निर्मितम् । (४) धूलीधूसरितम् । (५) उत्कटपवनप्रकरैः । (६) शरीरम् । (७) पवित्रि(त्री)कर्त्तुम् । (८) स्वस्य । (९) रात्रौ । (१०) स्नानं करोति ॥७७॥

[१]स्फुटस्फटिककल्पिता [२]क्वचन [३]जाह्नवीवा[४]ऽवनी,
क्वचिन्म[५]रकताङ्किता [६]स्थिरजला [७]यमीवाऽजनि ।
[९]कृता[८]रुणमणीगणैः [१०]किमुत [११]कुङ्कुमै[१२]रर्चिता,
क्वचिद्वि[१३]कचचम्पकैः [१४]परिचितेव [१५]चन्द्राञ्चिता ॥७८॥

(१) प्रकटं यथा स्यात्तथा श्वेतरत्नै रचिता । (२) कुत्रापि । (३) गङ्गेव । (४) भूमी । (५) नीलमणिनिर्मिता । (६) अचपलसलिला । (७) यमुनेव । (८) पद्मरागैः । (९) कृता । निर्मितेत्यर्थः । (१०) उत्प्रेक्ष्यते । (११) घुसृणैः । (१२) पूजिता । (१३) स्मितचम्पककुसुमैः । (१४) सहितेव । (१५) सुवर्णेन निर्मिता ॥७८॥

[१]सुरासुरनरस्फुरन्मिथुनचारुचित्रव्रजः,
[२]पुपोष [३]सुषमां जि[४]नावसथमण्डपस्याऽन्तरे ।
[५]जगत्त्रयमिवा[६]ऽऽगतं [७]विमलशैलयात्राकृते,
स्थितं किम[८]तिभावतः पुन[९]रिहाऽर्हतः[१०] सन्निधौ ॥७९॥

(१) देवदानवमानवानां शोभां प्राप्नुवतां मिथुनानां-युगलानां चारूणि चित्राणि आलेख्यानि, तेषां गणः । (२) पुष्णाति स्म । (३) सातिशायिनीं शोभाम् । (४) प्रासादमण्डपस्य मध्ये । (५) त्रैलोक्यम् । (६) समेतम् । (७) शत्रुञ्जयस्य यात्रार्थम् । (८) अधिकवासनात् । (९) इह प्रासादे । (१०) भगवत्समीपे ॥७९॥

[१]वरीतुम[२]मृताह्वया[३]मिह [५]पतिवरां [४]कन्यकां,
[६]स्वयंवरणमण्डपे किमु[७]पजग्मिवांसः [८]समम् ।
[९]जिनेन्द्रगृहमण्डपे [3]बभु[१०]रनल्पशिल्पीकृताः,
[११]सुरासुरधरास्पृशां [१२]समुदया [१३]ददन्ते मुदम् ॥८०॥

(१) पाणौ ग्रहीतुम् । (२) मुक्तिनाम्नीम् । (३) इह चैत्ये । (४) स्वयंवराम् । (५)

1. ०खरात्तमी० हीमु० । 2. ०तात् हीमु० । 3. लसदन० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कन्याम् । (६) स्वयंवरस्थानम् । (७) समागताः । (८) समकालम् । (९) प्रासादमध्यमण्डपे । (१०) बहवो रचना गोचरीकृताः । (११) देवदानवनराणाम् । (१२) व्रजाः । (१३) 'ददि दाने' आत्मनेपदी ॥८०॥

[१]भवच्चरणसेवनैरधिगता [२]द्युलोकश्रियं,
विनैव[३] नरजन्मना दिश [४]शिवश्रियं श्रीप्रभो ! ।
[५]उपेत्य [६]जिनमन्दिरान्तरमितीव [७]विज्ञीप्सया,
भजन्ति [८]सुरसुभ्रुवः प्रभुं[९]मनन्यचित्रोपधेः ॥८१॥

(१) श्रीमत्पदपद्मसेवाभिप्राप्ताः । (२) स्वर्गलोकलक्ष्मीम् । (३) मनुष्यावतारं विनैव । (४) मोक्षलक्ष्मीम् । (५) समागत्य । (६) चैत्यमध्ये । (७) विज्ञप्तिं कर्त्तुमिच्छया । (८) देव्यः । (९) असाधारणालेख्यमिषात् ॥८१॥

[१]प्रयोजयति [२]नः सदा [३]स्वपदसाभिलाषीभव-
त्तपस्वितपसां [४]व्ययीकृतिविधौ विभो ! [५]जम्भभित् ।
[६]इमां [७]जहि विडम्बनां किमिति भाषितुं मण्डपे-
ऽथ [८]वाऽप्सरस [९]आगताः [१०]परिचरन्ति [११]चित्रोपधेः ॥८२॥

(१) प्रेषयति । (२) नः-अस्माकमप्सरसाम् । (३) इन्द्रपदप्राप्त्यभिलाषेण तपः कुर्वतां तापसानां तपसाम् । (४) क्षयीकरणप्रकारे । शक्रप्रेषिता अप्सरसः प्रेक्ष्य ध्यानभङ्गात्तद्रूप-मोहितास्तां कामयन्ते तपस्विनः ततः सर्वं स्वकीयं तपो हारयन्तीति प्रसिद्धिः । (५) शक्रः । (६) येषां तेषां वृद्धकृशाजातिप्रमुखतापसाङ्गलक्षणां विडम्बनाम् । (७) निवारय । (८) उर्वशीप्रमुखाप्सरसः । (९) समेताः । (१०) सेवन्ते । (११) द्वितीयपक्षे चित्रव्याजात् ॥८२॥

[१]कुतूहलिकृतासितोपलतलोर्ध्वमध्यां क्वचि-
न्[२]महारजतनिर्मिता जिननिकेतनस्तम्भकाः ।
वि[३]चित्रसुरविभ्रमं [४]प्रदधतः श्रियं बिभ्रते,
[५]तलोपरि विचालभाग्वनभृतः किमु [६]स्वर्नगाः ॥८३॥

(१) केनापि कौतुकिना शिल्पिना निर्मितानि नीलरत्नैस्तलमूर्ध्वभूर्मध्यं येषां तादृक्ष्(शः) । (२) स्वर्णरचितस्तम्भाः । (३) नानाप्रकारं देवानां विलासम् । (४) धारयन्तः । (५) अधः शिखरं मध्यं च भजन्ते, तादृशानि विपिनानि भद्रसालनन्दनपाण्डुकसौमनसाख्यानि बिभ्रतीति । (६) तादृशा मेरव इव ।

हरि[१]र्य इह [२]सेवकस्तव जिनेन्द्र ! [३]सोऽस्मद्द्विष-
न्वि[४]धापय [६]मिथस्त[५]तस्त्व[७]दमुना समं [८]सौहृदम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतीव [९]गदितुं [१०]वृषध्वजजिनालयस्तम्भको-
पधैर[११]खिल[1]भूधराः [१३]प्रभु[१२]मुपेत्य [१४]शीलन्त्यमी ॥८४॥

(१) य इन्द्रः । (२) श्रीमत्सेवकः । (३) सोऽस्माकं परमद्वेषी । (४) कारय । (५) तस्मात्कारणात् । (६) परस्परम् । (७) इन्द्रेण सार्द्धम् । (८) मैत्र्यम् । (९) कथयितुम् । (१०) ऋषभचैत्यस्तम्भदम्भात् । (११) सर्वे शैलाः । (१२) आगत्य । (१३) ऋषभम् । (१४) सेवन्ते ॥८४॥

[१]अनन्यगुणवाहिनीशितु[२]रनन्तसातैकभूः,
कृते[३] तव निरीक्षता[४]ऽऽत्मज ! मया [५]शिवस्मेरदृक् ।
[६]तदेहि [७]वृणु तां[८] कनीमिति समेत्य [९]वक्तुं [१०]पुरः,
स्थितेव मरुदेव्यभात्[११]करिवशांसमा[१२]सेदुषी ॥८५॥

(१) असाधारण[गुण]समुद्रस्य । (२) अन्तातीतस्य सौख्यस्याऽद्वैतस्थानम् । (३) त्वत्कृते । (४) पुत्र ! । ऋषभ ! । (५) मुक्तिकन्या । (६) तस्मात्कारणादागच्छ । (७) परिणय । (८) मुक्तिकुमारीम् । (९) इति भाषितुम् । (१०) अग्रे स्थिता । (११) करिकान्तास्कन्धम् । (१२) भजती ॥८५॥

अयं [१]श्रयति मां सदा [३]तनय ! [२]वाहनव्याजत-
स्त[४]दुद्धरतमाममुं [५]श्रितहितो महान् यद्भवेत् ।
इतीव[६] गदितुं मुदा [७]भगवतः [८]पुरस्तस्थुषी,
[९]समेत्य [१०]मरुदेव्यसौ [११]द्विप[2]पते[१२]र्युतां[१३]ऽसासिता ॥८६॥

(१) आश्रयति । (२) यानस्य कपटात् । (३) पुत्र ! ऋषभ ! । (४) तस्मादेनमुद्धर-संसारान्मोचय । (५) आश्रितवत्सलः । (६) इति वक्तुम् । (७) ऋषभस्य । (८) पुरः स्थिता । (९) आगत्य । (१०) हैमनाममालावृत्तौ मरुदेवा मरुदेव्यपीति । (११) गजेन्द्रस्य । (१२) अथवा । केचित्कारिणी करिणं प्रतिपादयन्ति, ततो द्वे उत्प्रेक्षे । (१३) स्कन्धमाश्रिता ॥८६॥

[१]महोदयमृगीदृशा सह [२]विनोदनिर्मित्सया,
वि[३]लासमणिमन्दिरं [४]विमलशैलचूलोपरि ।
[५]अकारि [६]वृषकेतुना [७]स्वयमिवाऽत्र [८]नाभीभुवा,
[९]युगादिजिनसद्मनि श्रयति [१०]गर्भगेहः श्रियम् ॥८७॥

(१) शिवयुवत्या सार्द्धम् । (२) विविधविलासाः, तान्निर्मातुमिच्छया । (३) लीलारत्नगृहम् । (४) शत्रुञ्जयशृङ्गोपरि । (५) कारितम् । (६) ऋषभजिनेन । (७) आत्मना । (८) विधात्रा कत्रा । (९) मूलप्रासादे । (१०) गर्भगृहः ॥८७॥

---

1. ०भूभृतः हीमु० । 2. गजपते० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]अनेकनरनिर्जरोरगपुरन्दरोपासितं,
[२]सदःसदनमुन्नये [३]विमलशैलभूमीभृतः ।
[४]वृषाङ्कजिनवासवौकसि [५]विचित्रतौर्यत्रिक-
प्रपञ्चपटुमण्डपे श्रियमुवाह गर्भालयः ॥८८॥

(१) बहवो मनुष्या देवा नागास्तेषामिन्द्रास्तैः सेवितम् । (२) सभागृहम् । "नृपस्य नाऽतिप्रमनाः सदोगृहं" इति रघुवंशे । (३) शत्रुञ्जयराजस्य । (४) ऋषभप्रासादे । (५) विचित्राणि नानाप्रकाराण्याश्चर्यकारीणि वा गीतनृत्यवाद्यत्रयाणि, तेषां प्रपञ्चेन-विस्तारेण स्पष्टीभूतो मण्डपो यत्र ॥८८॥

[१]सुरासुरनरेन्द्रिरादिमसमग्रकामप्रदा,
कृता[२]म्बुजभुवा लता [३]ऋतुभुजाम[४]पूर्वा किमु ।
[५]रसायनमिवा[६]ऽन्तरामयजुषां च [७]सम्यग्दृशां,
दृशां किम[८]मृगाञ्जनं [९]वृषभमूर्त्तिरत्रा[१०]ऽऽबभौ ॥८९॥

(१) देवदानवमानवादिसर्वकामितदायिका । (२) विधिना । (३) कल्पवल्ली । (४) असाधारणा । (५) पारदरजतस्वर्णाद्यौषधपाचितं रसायनम् । (६) अन्तरङ्गरोगभाजाम् । (७) सम्यग्दृष्टीनाम् । (८) सुधाञ्जनमिव । (९) जिनमूर्त्तिः । (१०) अस्मिन्प्रासादे ॥८९॥

[१]युगादिसमये यथा [२]भुवनमुद्धृतं [३]संसृते-
[४]स्तथैव पुनरुद्धराम्यहम[५]वद्यकाले कलौ ।
[६]विचिन्त्य किमिदं हृदा [७]वृषभकेतुर[८]त्रा[९]ऽऽत्मना-
[१०]ऽवतीर्य कुरुते[११] स्थितिं स्थिरतया[१२]ऽऽत्ममूर्त्तिच्छलात् ॥९०॥

(१) तृतीयारकपर्यन्ते । (२) जगदुद्धृतम् । (३) संसारात् । (४) तेनैव प्रकारेण । (५) निकृष्टकाले-कलौ । (६) विमृश्य । (७) ऋषभः । (८) अत्र-शत्रुञ्जये । (९) स्वयम् । (१०) आगत्य । (११) तिष्ठति । (१२) स्वप्रतिमामिषात् ॥९०॥

[१]चतुष्कपृथिवीं ततः [२]परिचरन्स [३]विस्मेरिता-
रविन्दसवयोविलोचनयुगेन [४]योगीश्वरः ।
[५]जगद्विजयिनीं [६]जिनाधिपतिवेश्मलक्ष्मीं [७]पिबन्
हृदा [८]त्रिजगदिन्दिरां [९]करगतामिवा[१०]ऽमन्यत ॥९१॥

(१) 'चउक'भूमीम् । (२) सेवमानः । (३) विकसितकमलतुल्यनयनद्वन्द्वेन । (४) मुनीन्द्रः । (५) विश्वप्रासादजित्वरीम् । (६) प्रासादशोभाम् । (७) सादरं विलोकयन् । (८) त्रैलोक्यलक्ष्मीम् । (९) हस्ते आगतामिव । (१०) मेने ॥९१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]जिनेन्द्रभवनं [२]शिखोदयनभःपरीरम्भिणं,
[३]व्रतिक्षितिशतक्रतुः [1]स [४]चरणश्रिया [५]सङ्गतः ।
[2][६]सुमेरुमु[७]डुमालया सममिवौ[८]षधीनायकः,
[९]प्रदक्षिणयितुं मुदा[१०]ऽऽरभत गीतिभिः [११]सुभ्रुवाम् ॥९२॥

(१) प्रासादः । (२) शिखरस्योदयेनोच्छ्रायेन गगनालिङ्गनशीलम् । "उच्छ्रे(त्से)द उदयोच्छ्रायौ" इति शिखोच्चत्वे । (३) सूरिः । (४) चारित्रलक्ष्म्या । (५) युतः । (६) मेरुपर्वतम् । (७) तारकश्रेण्या सार्द्धम् । (८) विधुः । (९) प्रदक्षिणीकर्तुम् । (१०) प्रारभत । (११) स्त्रीणां गानैः ॥९२॥

स [१]देवकुलिकान्तरे [२]जिनपुरन्दरान्संमदा-
दवन्दत तदा [३]जिनाधिपनिकेतनस्या[४]ऽभितः ।
[५]मरुद्वसतिवत्ततः [६]सुरपरम्परोपासिता,
[७]व्यलोकि [८]विभुना [९]पुरः [१०]प्रमुदितेन [११]राजादनी ॥९३॥

(१) लघुदेवगृहाणामन्तरे । (२) जिनबिम्बान् । (३) मूलप्रासादस्य । (४) स(प)रितः । (५) स्वर्ग इव । (६) देवमालाशीलिता । (७) दृष्टा । (८) सूरिणा । (९) अग्रे । (१०) हृष्टेन । (११) राजादनी - "नवनवति पूर्ववारान् यस्मिन्समवासरद्युगादिजिनः । राजादनीतरुतले विमलगिरिरयं जयति तीर्थम् ॥" इति पूर्वसूरिस्तवे ॥९३॥

[१]अवर्ध्यत [२]समौक्तिकै [३]रजतहेमपुष्पव्रजै-
[४]र्जगद्गुरुरिवो[५]ऽङ्घ्रिभिः [६]सुमनसां [७]समूहैः श्रिता ।
[८]गिरेरिव [९]घनागमोन्नमदमन्दकादम्बिनी,
[१०]ववर्ष [११]पयसां [१२]भरैः [१३]शिरसि [१४]सङ्घभर्त्तुश्च या ॥९४॥

(१) वर्द्धिता । (२) मुक्ताफलसहितैः । (३) रूप्यस्वर्णकुसुमैः । (४) जिनः हीरसूरिर्वा । (५) जनैः । (६) देवानां पुष्पाणां वा । (७) गणैराश्रिता । (८) पर्वतस्य । (९) प्रावृट्काले उन्नमन्ती बहुला मेघमाला । (१०) वर्षति स्म । (११) पयसां-दुग्धानां जलानां च । (१२) समूहैः । (१३) मस्तके । (१४) सङ्घपतेः ॥९४॥

[१]असावपि किम[२]क्षयाजनि न [३]सिद्धशैलाश्रया-
[४]दनन्तयतिनः [५]शिवश्रियमवापु[६]रस्यास्तले ।
[७]युगादिजिनपादुका किम[८]धिदेवतास्या [९]मरु-
द्रुवीव [१०]विहितेहिता श्रियमुवाह [११]राजादनी ॥९५॥

---

1. स शमपद्मया हीमु० । 2. प्रदक्षिणयितुं मुदारभत गीतिभिः सुभ्रुवां, सुमेरुमुडुमालयेव सममौषधीनायकः ॥ हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) राजादन्यपि । (२) क्षयमलभमाना । (३) मन्त्रतन्त्रविद्यानां विविधाः सिद्धयो यस्य स सिद्ध उच्यते । सिद्धश्चासौ शैलश्च, तस्य य आश्रयस्तस्मात् । (४) अनन्ताः साधवः । "ब्रह्मशर्म किल चारुयतीवे"ति नैषधे । (५) मुक्तिम् । (६) अस्या अधोभुवि । (७) ऋषभदेवपादुका । (८) अधिष्ठात्री देवीव । (९) कामधेनुः । (१०) सम्पूरितमनोरथा । (११) प्रियालतरुः ॥९५॥

[१]विहारमिव [२]संमदाद्[३]व्रतिवसुन्धरावासवः,
प्रदक्षिणयति स्म तत्[४]प्रथमतीर्थकृत्पादुकाम् ।
[५]जिनाधिपमिवा[६]ऽध्वनि [७]द्रुमपरम्परा तं तदा,
ननाम किमु भक्तितः [८]फलभराच्च राजादनी ॥९६॥

(१) प्रासादमिव । (२) हर्षात् । (३) सूरिः । (४) युगादिजिनपादुकाम् । (५) अर्हन्तमिव । (६) मार्गे । (७) तरुपङ्क्तिः । (८) फलभारेण ॥९६॥

[१]समीक्ष्य [२]शिखिभोगिनौ [३]स सखिवन्मिथः सङ्गतौ,
ततो यतिमतङ्गजो [४]जिननिशीथिनीनायकान् ।
[५]जसूप्रथमठक्कुरप्रवररामजीकारितो-
ल्लसज्जिनविहारयोस्त्रिचतुरास्ययो[६]र्नेमिवान् ॥९७॥

(१) दृष्ट्वा । (२) मयूरसर्पौ । (३) सूरिः । (४) जिनेन्द्रान् । (५) जसूठारस्तथा रामजीनामा ताभ्यां निर्मापितौ त्रिमुखचतुर्मुखौ विहारौ, तयोर्विषये । (६) नमति स्म ॥९७॥

स[१] भक्तिमिव [२]नाभिभूप्रभुपुरो[३]ऽनिशस्थायिनं,
[४]प्रणम्य [५]गणधारिणं तदनु [६]पुण्डरीकाभिधम् ।
[७]जिनेन्द्र इव [८]देशनासदन[९]मादिदेवालयं,
समं [१०]मनुजराजिभिः [११]श्रमणपुङ्गवः [१२]प्राविशत् ॥९८॥

(१) सेवासक्तमिव । (२) ऋषभदेवाग्रे । (३) नित्यं वसनशीलम् । (४) नत्वा । (५) पुण्डरीकनामानम् । (६) गणधरम् । (७) अर्हन्निव । (८) समवसरणम् । (९) ऋषभविहारम् । (१०) मानवमालिकाभिः समम् । (११) सूरिः । (१२) प्रविष्टः ॥९८॥

[१]प्रणम्य [२]जननीं जिनेशितुरि[३]भं समासेदुषीं,
स [४]गर्भभवनं पुनः [५]किमु न दे[६]वयुक्छन्दकम् ।
जिनं [७]स्वयमिव स्थितं [८]विकचनेत्रपत्रैः [९]पिब-
न्नवा[१०]ऽङ्मनसगोचरां [११]मुद[१२]मविन्दत श्रीप्रभुः ॥९९॥

1. ०के हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) नत्वा । (२) मरुदेवाम् । (३) हस्तिस्कन्धमारूढाम् । (४) गर्भालयम् । (५) उत्प्रेक्ष्यते । (६) देवच्छन्दकम् । (७) स्वस्वरूपेण । (८) विकसितनयनपर्णकैः । (९) सादरमवलोकयन् । (१०) वचनमनसोर्विषयातीताम् । (११) प्रीतिम् । (१२) प्राप ॥९९॥

[1]जिनानननिशीथिनीपतिनिरीक्षणप्रोल्लसद्-
हृदन्तरमुदम्बुधिस्फुरदभङ्गभङ्गैरिव ।
स [2]गौतमगणीन्द्रवच्चै[3]रममादिमं श्रीजिनं,
[4]सुधामधुरिमाङ्कितै[5]रभिनवैः स्तवैस्तु[6]ष्टुवे ॥१००॥

(१) जिनवक्त्रचन्द्रालोकनेनोल्लासं गच्छन्यो हृदयमध्यस्थप्रमोदाम्बुधिस्तस्य स्फुरद्भिरखण्ड-कल्लोलैरिव । (२) गौतमस्वामिवत् । (३) महावीरम् । (४) पीयूषस्य माधुर्यकलितैः । (५) नूतनैः । (६) 'ष्टुञ्' धातुरुभयपदी ॥१००॥

[1]जय [2]त्रिदशशेखरोन्मिषितपुष्पमालागल-
न्मरन्दकणमण्डलीस्नपितपादपद्मद्वय ! ।
जया[3]ऽमृतनितम्बिनीहृदयतारहारो [4]जग-
त्त्रयीजनसमीहितं [5]त्रिदशसालव[6]न्पूरयन् ॥१०१॥

(१) सर्वोत्कर्षेण प्रवर्त्तस्व । (२) सुराणामवतंसानां स्मितकुसुमानां मालिकाभ्यः पतन्तीभिर्मकरन्दबिन्दुधोरणीभिः धौतचरणकमलयुगल ! । (३) मुक्तिकान्ताया हृदयस्थले उज्ज्वलहारः । (४) त्रैलोक्यलोककामितम् । (५) कल्पद्रुरिव । (६) यच्छन्, हे पूरयन् ! सम्बोधने च । शत्रानशाविति प्रक्रियासूत्रेण सम्बोधनेऽपि शतृप्रत्ययः । तथा-"गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्" इति नैषधेऽपि सम्बोधनपदम् ॥१०१॥

जयो[1]ल्लसितकेवलामलतमात्मदर्शोदरा-
नुबिम्बितजगत्त्रयाखिलपदार्थसार्थ ! प्रभो ! ।
जय [2]त्रिभुवनाद्भुतातिशयपद्मिनीसद्मना,
[3]विनिद्रवनवीरुधा [4]विटपिव[5]त्परीरम्भित[1] ! ॥१०२॥

(१) लोकालोकप्रकटीकारकं यत्केवलज्ञानं तदेवाऽतिशायि निर्मलदर्पणमध्यम्, तत्र प्रतिबिम्बिताः त्रैलोक्यस्य समस्ता वस्तुव्रजा यस्य । (२) त्रिजगत्सु आश्चर्यकारिणो येऽतिशयास्त एव तेषां वा लक्ष्मीः, तया । "पद्मिनी कमलकमलिन्यो" रित्यनेकार्थः । (३) विकचकाननवल्ल्या । (४) द्रुम इव । (५) आलिङ्गित ! ॥१०२॥

1. ०समालिङ्गित हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय [1]प्रकटयन्[2]पथो रविरिवाऽथ [3]मथ्नं[4]स्तमः,
[5]कुदृग्भिरिव [6]कौशिकैर्जगति [7]दुर्निरीक्ष्यः पुनः ।
[8]गजेन्द्र इव वज्रिणः [9]स्फुरदखण्डशौण्डीरिमा,
[10]मृगारिरिव [11]निर्भयः परिभवन्[12]कुरङ्गान्पुनः ॥१०३॥

(१) प्रकटीकुर्वन् । (२) मार्गान् । (३) दलयन् । (४) अज्ञानं ध्वान्तं च । (५) कुपाक्षिकैः । (६) घूकैः । (७) दुःखेन निरीक्षितुं योग्यः । (८) ऐरावण इव । (९) जगति विस्फूर्त्तिं गच्छन्पूर्णबलः । (१०) केसरीव । (११) भयरहितः । (१२) कुत्सितान् रङ्गान्, कुमतानि मिथ्यात्वादीनि वा परिभवन् मृगांश्च ॥१०३॥

जयो[1]ऽनिमिषसानुमानिव [2]सुजातरूपः पुनः,
[3]प्रभञ्जनभरैः कथञ्चन न कम्प्रभावं भजन् ।
[4]सुधांशुरिव [5]बोधयन्[6]कुवलयं [8]विलासै[7]र्गवां,
[9]समुल्लसितगौरिमा [10]कलितशीतलेश्यः पुनः ॥१०४॥

(१) मेरुरिव । (२) शोभनमुत्पन्नं रूपं स्वर्णं च यस्य । (३) प्रकर्षेण भञ्जना उपमर्दना व्याघातकारिण उपसर्गाः प्रतिकूलदेवादयो वा, तेषां गणैश्चालयितुमशक्यः । न मनो ध्यानभेदमाश्रयन् । (४) चन्द्र इव । (५) प्रतिबोधयन् विकाशयंश्च । (६) भूमण्डलं उत्पलं च । (७) वाचां चन्द्रिकानां च । (८) विस्तारैः । (९) उल्लसद्गौरत्वं यस्य । "गौरं तु पीतश्वेतयोः" । (१०) धृता शीतला लेश्या शैत्यं च येन ॥१०४॥

जय [1]प्रशमयन्[2]मनोभवभटं [3]महाबोधिवत्
[4]कुदृक्कमलकाननोन्नमदकाण्डचण्डाम्बुदः ।
[5]सलीलदलिताखिलप्रबलदोषदोषातमः-
स्फुरद्विमलकेवलाम्बुरुहबन्धुबिम्बोदयः ॥१०५॥

(१) निर्दलयन्, यमातिथिं कुर्वन् । (२) स्मरवीरम् । (३) बौद्ध इव । (४) कुमतान्येवाऽम्बुजानां वनानि, तत्रोन्नतीभवन्नाडम्बरीभवन्नप्रस्तावदुर्द्धरमेघ इव । "बालातपमिवाब्जाना-मकालजलदोदयः" इति रघुवंशे । तथा- "विद्राणपङ्कजसरसि जलदानेहसी"ति चम्पूकथायाम् । (५) लीलया सहितं यथा स्यात्तथा विध्वस्तानि, समग्रा उत्कटा दोषा अष्टादशसङ्ख्याकास्त एव रात्रिसम्बन्धिध्वान्तानि येन तादृशो दीप्यमानो निर्मलो लोकालोकप्रकाशकृत्केवलज्ञानरूपः मार्तण्डमण्डलस्याऽभ्युदयो यस्य ॥१०५॥

जयो[1]ऽमृतविभूतिभाग्[2]घन इवाऽति[3]धीरध्वनि-
[4]निरञ्जनत[5]योदितो [6]जलजव[7]द्विशुद्धाशयः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[८]सुधारस इव प्रभो ! [९]सकलजन्तुजीवातुका,
[११]भवा[१०]द्भवभृ[१२]तोऽम्बुधेर्जगति [१३]पोतव[१४]त्तारयन् ॥१०६॥

(१) अमृतं-मोक्षो जलं च तस्य तेन वा शोभाभाजनः । (२) मेघ इव । (३) गम्भीरशब्दः । (४) निर्गतमञ्जनं रागद्वेषोपलेपो यस्य तत्त्वेन । (५) प्रकटितः । (६) शङ्ख इव । "निवेश्य दध्मौ जलजं कुमार" इति रघुवंशकाव्ये । (७) निर्मलमनः(नाः) श्वेतश्च । (८) पीयूष-पान इव । (९) समस्तजीवजीवनौषधम् । (१०) भविकान् । (११) संसारात् । (१२) समुद्रात् । (१३) यानपात्र इव । (१४) निस्तारयन्, पारं प्रापयन् ॥१०६॥

जये[१]श इव [२]कालभिच्छ्रि[३]तशिवश्च [४]मृत्युञ्जयो,
वह[५]न्निरवलम्बतां [६]गगनवत्पदं [७]ज्योतिषाम् ।
[८]युगादिसमये पुन[९]र्जगदशेषसृष्टिं सृजन्,
[१०]सरोजतनुजन्मवत्[११]केलमराललीलागतिः ॥१०७॥

(१) शम्भुरिव । (२) कालस्य कलेर्दैत्यस्य वा भेदकः । (३) श्रिता मुक्तिः पार्वती च येन । (४) मृत्युं जयतीति पराभवतीति । (५) निराश्रयताम् । (६) नभ इव । (७) तेजसां ग्रहनक्षत्रतारकाणां च । (८) तृतीयारकपर्यन्ते । (९) जगतां जगज्जनानां सृष्टिं-उग्रभोगादि-कुलस्थापनां शिल्पानां शिल्पिनां च शिक्षां गृह-चैत्य-प्राकार-यान-नगर-पुर-ग्रामादिनिर्माणं व्यवहारस्थिति-पाणिग्रहण-राज्यपालनादिकर्मनिर्माणा[दि]व्यवहारम् । (१०) धातेव । (११) प्रधानहंसवल्लीलया गमनं यस्य । हंसेन गमनं यस्य ॥१०७॥

[१]शरत्समयपङ्कजाकर इव [२]प्रसन्नाशयः,
[३]कुशेशयपलाशवन्नि[४]रुपलेपभावं भजन् ।
[५]प्रमद्वरपदं दधन्न च कदाऽपि [६]भारुण्डव-
[७]द्विशेषक इवा[८]ऽलिकं वि[९]मलभूधरं [१०]भूषयन् ॥१०८॥

(१) शरत्कालसर इव । (२) प्रसन्नमनाविलं आशयो-हृदयं मध्यं च यस्य । (३) कमलदलवत् । (४) लेपरहितः । (५) प्रमत्तताम् । (६) भारुण्डपक्षीव । (७) तिलक इव । (८) भालम् । (९) <u>शत्रुञ्जय</u>पर्वतम् । (१०) अलङ्कारयन् ॥१०८॥

इत्य[१]भिष्टुत्य सूरीश्वरः श्रीजिनं, [२]भालविन्यस्तहस्तद्वयाम्भोरुहः ।
[३]ईष्यशाखी [४]फलाप्तेरिवा[५]ऽऽमोदवान्, [६]प्राणमद्भू[७]तलालम्बिमौलिस्थलः ॥१०९॥

(१) स्तुत्वा । (२) ललाटे स्थापितं पाणियुगलमेव कमलं येन । (३) वसन्ततरुरिव । (४) फलस्य यात्राकरणलक्षणस्य सस्य च लाभात् । (५) आमोदो-हर्षः परिमलश्च तद्युक्तः । (६) नमति स्म । (७) भूमण्डलाश्रयशीलं मस्तकं यस्य ॥१०९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]निववृते [2]प्रमदेन्दिरयान्वितः, [3]स [4]जिनगर्भगृहान्तरतस्ततः ।
[5]चतुरिकोदरतो[6]ऽभिनवोढया, वर इवा[7]ऽमृतदीधितिवक्त्रया ॥११०॥[1]

(१) निवृत्तः । निर्गतः । (२) हर्षलक्ष्म्या सहितः । (३) सूरिः । (४) ऋषभदेवस्य गर्भालयात् । (५) 'चउरी'ति लोकप्रसिद्धं परिणयनस्थानं, तन्मध्यात् । (६) नवपरिणीतया । (७) स्त्रिया ॥११०॥

[1]अदीक्षयत्तत्र [2]स कांश्चि[3]दिभ्य-तनूभवा[4]न्गौतमवद्गणीन्द्रः ।
कांश्चित्[5]ककुश्रेष्ठिमुखाङ्गभाज-स्तु[6]र्यव्रतोच्चार[7]मकारयच्च ॥१११॥

(१) दीक्षां दत्ते स्म । (२) सूरिः । (३) व्यवहारिपुत्रान् । (४) गौतमस्वामीव । (५) पत्तनसत्कककुनामा श्रेष्ठी तत्प्रमुखान्जनान् । (६) ब्रह्मव्रतोच्चारम् । (७) कारयति स्म ॥१११॥

[1]पुण्डरीकान्तिकस्थास्तु-रथोद्दिश्य [2]वशी [3]विशः ।
[4]श्रीशत्रुञ्जयमाहात्म्यं, [5]वृषाङ्कवदभाषत ॥११२॥

(१) पुण्डरीकप्रतिमासत्कदेवकुलिकाबहिर्द्वारि स्थितः । (२) सूरिः । (३) जनानुद्दिश्य । (४) शत्रुञ्जयपर्वतमहिमानम् । (५) ऋषभदेव इव ॥११२॥

यत्तीर्थे[1]ऽन्यत्र [2]शुद्धाध्यवसितिविशदध्यानतः [3]पूर्वकोट्या,
[4]प्राणी [6]बध्नाति [5]पुण्यं भवति [8]भवभृतां [7]तत्क्ष[9]णेना[10]ऽप्यमुष्मिन् ।
भेतव्यं [11]पातकेभ्यो भुवि न भविजनै[12]र्भेद्यनिर्भेददक्षे,
क्ष्माभृ[13]त्यस्मिन्श[14]रण्ये पुन[15]रहिमरुचीवा[16]ऽन्धकारोत्करेभ्यः ॥११३॥

(१) अन्यस्मिन् तीर्थे । (२) निष्पापपरिणामेन कृत्वा यच्छुक्लध्यानं तस्मात् । (३) पूर्वाणां कोट्या । (४) जन्तुः । (५) सत्कर्म । (६) उपार्जयति । (७) तत्पुण्यम् । (८) भविनाम् । (९) क्षणमात्रशुभध्यानेन । (१०) अत्र शत्रुञ्जये भवति । (११) पातककारकैः पापेभ्यो न भीतिरानेतव्या । (१२) भेद्यस्य-दुष्कर्मादेः भेदने-विदारणे खण्डीकरणे निपुणे । (१३) अस्मिन्श्रीशत्रुञ्जयशैले सति । (१४) शरणागतवत्सले । (१५) सूर्ये । (१६) स[म]स्ततमोभरेभ्य इव ॥११३॥

अ[1]र्हद्देशनवेश्मनीव [2]सततं [3]सन्त्यज्यते[4]ऽस्मिन्मि[5]थः,
[6]पारीन्द्रद्विरदादिजन्मिनिवहै[7]राजन्मविद्वेषिता ।
राज्ये [8]नीतिमतः [9]क्षितेरधिपते[11]र्व्राता इवो[10]र्वीस्पृशां,
[12]सर्वे [13]सन्त्य[14]कुतोभया [15]यदचलोत्सङ्गे पुनः [16]स्थायुकाः ॥११४॥

(१) समवसरणे इव । (२) निरन्तरम् । (३) मुच्यन्ते । (४) पर्वते । (५) परस्परम् । (६) सिंहगजप्रमुखसत्वनिकरैः । (७) अवतारमुत्पत्तिं मर्यादीकृत्य विरोधिता-वैरम् । (८) न्यायभाजः । (९) नृपस्य । (१०) जनानाम् । (११) गणा इव । (१२) समस्ताः । (१३)

1. अतः परं हीमु०पुस्तकान्तर्गतः ११३तमः श्लोकोऽत्र नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्त्तन्ते । (१४) न विद्यते कुतश्चित्कस्मादपि भयं येषाम् । (१५) यस्य-शत्रुञ्जयस्याऽङ्के । (१६) वसनशीलाः ॥११४॥

[1]स्वर्णोदयार्बुदब्रह्म-गिर्याद्यष्टशतान्मितैः ।
[2]सुतैरिवो[3]त्तुङ्गशृङ्गैः, [4]परितः [5]परिवारितः ॥११५॥

(१) स्वर्गगिरि-उदयगिरि-ब्रह्मगिरि-एतत्प्रमुखाण्यष्टाधिकशतप्रमितैः । (२) पुत्रैरिव । (३) गगनावगाहिभिः शिखरैः । (४) सर्वतः । (५) परिवृतः ॥११५॥

तीर्थमास्ते न [1]विश्वेऽप्यदः[2] सन्निभं, [3]विश्वकर्त्रै[4]ति रेखा कि[5]मेषा कृ[6]ता ।
स्वर्गिणां[7] निम्नगावत्पुनाना[8] जनान्, यत्र[9] शत्रुञ्जये [11]भाति [10]कल्लोलिनी ॥११६॥

(१) त्रैलोक्येऽपि । (२) अस्य तुल्यम् । (३) विधात्रा । (४) इति हेतोः । (५) प्रत्यक्षा रेखा । (६) निर्मिता इव । (७) गङ्गेव । (८) जनान्पवित्रीकुर्वाणा । (९) विमलगिरौ । (१०) शत्रुञ्जयनाम्नी नदी । (११) शोभते ॥११६॥

[1]केवलज्ञानितीर्थेशतीर्थे [2]पुरा [3]स्नात्रनिर्मित्सये[4]शानजम्भद्विषा ।
[5]सिद्धसिन्धो[7]र्मु[6]दाऽऽनायि यस्मिन्नसौ [8]जह्नुनेव [9]प्रवाहो नगे[10]ऽष्टापदे ॥११७॥

(१) गतचतुर्विंशत्यां प्रथमतीर्थकृतः केवलज्ञानिनाम्नो जिनस्य तीर्थे वारके विद्यमाने वा । (२) पूर्वम् । (३) शत्रुञ्जयपर्वते प्रासादे स्थापिते स्नात्रकरणेच्छया । (४) ईशाननाम्ना द्वितीयसुरलोकाधिपेन । (५) गङ्गामध्यात् । (६) आनीता । (७) हर्षेण । (८) सगरचक्रिसुतेन । (९) गङ्गाप्रवाहः । (१०) अष्टापदगिरौ ॥११७॥

[1]रसकूपीदिव्यौषधि-सुवर्णमणिरत्नभूमिरेष गिरिः ।
[2]शिव इव [3]सकलाः सिद्धीः, पुन[4]र्दधानः श्रियं श्रयते ॥११८॥

(१) रसकूपिका तथा दिव्यप्रभावा औषधयः स्वर्णरजतकारिण्यः, अष्टमहाभयस्तम्भिन्यः, रोगविनाशिन्यश्च, स्वर्ण-हेम-मणयश्चन्द्रकान्ताद्या रत्ना[नि] कर्केतनादीनि, तेषां भूमिः स्थानम् । (२) ईश्वर इव । (३) सकला अणिमाद्याः सिद्धीः । (४) धारयन् । अत्र स्थितानामयं गिरिः सर्वाः सिद्धीर्विधत्ते इत्यर्थः ॥११८॥

सूर्योद्यानं[1] सुरेन्दोर्दिशि [2]विपिनमिव स्वःसदां भाति यस्मिन्
स्व[3]र्गोद्यानं त्व[4]पाच्यां दिशि [5]गिरिकमलानीलचेलं किमेतत् ।
चन्द्रोद्यानं [6]प्रतीच्यां [7]विविधसुमभरै[8]र्भूषितं [9]भूषणैः किं,
[10]लक्ष्मीलीलाविलासं [11]धनददिशि पुनः किं तदीयं [12]निकुञ्जम् ॥११९॥

(१) सूर्योद्यानं प्राच्यां दिशि । (२) नन्दनवनमिव । (३) स्वर्गोद्यानं नाम वनम् । (४) दक्षिणस्यां दिशि । (५) शैललक्ष्म्या नीलवस्त्रमिव । (६) चन्द्रोद्यानं प्रतीच्यां दिशि । (७) नानाकुसुमैः । (८) शोभितम् । (९) आभरणैरिव । (१०) लक्ष्मीलीलाविलासं वनम् । (११) उत्तरस्यां दिशि । (१२) चैत्ररथं वनमिव । इदं शत्रुञ्जयमाहात्म्यानुसारि, अधुना तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषामदृश्यमानत्वादिति ॥११९॥

[1]राकामृगाङ्का इव यत्र [2]पद्मा-करा [3]रमां [4]काञ्चन [5]चिन्वते स्म ।
कुण्डान्य[6]खण्डान्यपि [7]नागगेहा-[8]त्पीयूषकुण्डानि किमु[9]द्धृतानि ॥१२०॥

(१) पूर्णिमाचन्द्रा इव । (२) तटाकाः । (३) लक्ष्मीम् । (४) असाधारणाम् । (५) पुष्णन्ति स्म । (६) अभग्नानि समस्तानि च । (७) पातालात् । (८) अमृतकुण्डानि । (९) गृहीतानि । पातालेऽमृतकुण्डानि सन्तीति श्रुतिः ॥१२०॥

[1]कलितललितरङ्गत्तुङ्गतारङ्गसङ्गी-मिलदलिकुलकेलिस्मेरदम्भोजपुञ्जः ।
श्रिय[2]मयति तटाक[3]श्चिल्लणाख्योऽत्र [4]नन्दी-सर इव [5]दनुजारिश्रेणिभिः सेव्यमानः[1] ॥१२१॥

[1]क्वचिदुपरिकपर्दिप्राक्सरः [2]पालिशालि-स्मितशिखरिशिखाग्रस्थायुकानेकपक्षि ।
[3]विलसति विमलाद्रौ [4]स्वां [5]जलाधारभावा-भ्युदितजगदकीर्त्ति [6]हन्तु[7]मेत्य [8]स्थि[2]ते किम् ॥१२२॥ युग्मम् ॥

(१) विधृता मनोज्ञाः प्रचलन्त उच्चैस्तरास्तारङ्गास्तरङ्गसमूहास्तेषां सङ्गोऽस्त्यस्येति मकरन्दपानार्थमागच्छतां भ्रमरवृन्दानां क्रीडा यत्र, तादृग्विकसत्कमलव्रजो यत्र । (२) प्राप्नोति । (३) चिल्लणाभिधसरः । (४) देवपद्माकर इव । (५) सुरराजीभिरुपास्यमानः । क्रीडार्थमिति शेषः ॥१२१॥

(१) कस्मिन्नपि स्थाने शत्रुञ्जयोर्ध्वभूमौ कपर्दिसरोवरम् । (२) पालौ शोभनशीलास्तथा स्मेरा ये तरवस्तेषां शाखाग्रेषु वसनशीला अनेकजातीया विहङ्गमा यत्र । (३) भाति । (४) स्वकीयाम् । (५) प्रधाननिर्देशाद् डलयोरैक्याज्जाड्याश्रयत्वेनोत्पन्नां विश्वत्रयेऽप्यकीर्त्तिम् । (६) निवारयितुम् । (७) समागत्य । (८) द्वावपि तटाकौ शत्रुञ्जये वसतः स्म, चिल्लणाख्यः कपर्दिनामा च ॥१२२॥ युग्मम् ॥

[1]स्फुटमिव [2]घटितानां [3]स्फो[3]टिकाश्मव्रजानां, क्वचन [4]खनिरपूर्वा [5]त[4]न्दुलानां विभाति ।
[7]उदयति [6]किल [8]दृष्टिः(ष्टेः) [9]साऽ[10]ऽदिमातुः [11]पुरस्ता-दिव [12]शतधृतिपुत्र्याः [13]केसराङ्कूरराजी ॥१२३॥

(१) प्रकटं यथा स्यात्तथा । (२) निर्मितानाम् । (३) स्फटिकोपलगणां(नाम्) । (४) खानिः । (५) तण्डुलानाम् । (६) किलेत्येवं श्रूयते दृश्यते च । (७) प्रकटीभवति । (८) दृष्टेरग्रे । (९) सा तन्दुलखानिः । (१०) मरुदेवायाः । (११) अग्रे । मरुदेवीदृष्टेः पुरस्तन्दुलखनिरस्तीति । (१२) सरस्वत्याः । (१३) काश्मीरदेशे ब्राह्म्या दृशोः पुरस्तात् कुङ्कुमप्ररोहश्रेणीव ॥१२३॥

1. ०मानम् हीमु० । 2. स्थितं हीमु० । 3. वेधसा स्फाटिकानां हीमु० । 4. ०तण्डु० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]हृदभिलषितसिद्धीरै[2]हिकामुष्मिकाद्या-[3]स्त्रिजगति [4]ददतो मे के[5] [6]पुरो [7]यूयमध्वे ।
इति किमु [8]सुरवृक्षानै[9]हिकार्थान्ददाना-[10]स्तृणयति [11]खगरावैर्य[12]द्वटः सिद्धनामा ॥१२४॥

(१) हृदयेन-मनसा कामिताः सिद्धीः । (२) इहलोकसम्बन्धिनीः परलोकसम्बन्धिनीश्च, तत्प्रमुखाः । इहलोकेऽपि बह्वीरपि सिद्धीर्जीवः कामयते । (३) त्रिभुवनेऽपि । त्रिजगज्जनानामित्यर्थः । (४) यच्छतः । (५) ममाऽग्रे । (६) यूयं के वराकाः । (७) भवथ । (८) कल्पद्रुमान् । (९) इहलोकसम्बन्धिवस्तुप्रदानसमर्थान् । (१०) तिरस्करोति । (११) विहङ्गमविरुतैः । (१२) शत्रुञ्जयस्य सिद्धवटः ॥१२४॥

[1]यस्मिन्नि[2]त्थम[3]शापि [4]पात्रसलिलक्षेपात्[5]क्रुधा [6]साधुना
काकः [7]कोऽपि [9]कदाऽपि [10]मास्त्विह [8]नगे [11]जातप्रवेशः क्वचित् ।
[12]मातङ्गऽस्य[1] [13]सतामि[14]वौकसि [15]ततस्[16]तत्राऽप्यभू[18]दक्षयं
स्थाने [17]तद्वचसा[18]ऽम्बु [19]पद्मनदव[20]द्विश्वैकमाहात्म्यभृत् ॥१२५॥

(१) पर्वते । (२) अनेन प्रकारेण । (३) शप्तः । (४) यतिसम्बन्धे भाजनात्सलिल-क्षेपणेन ढौलनेन । (५) कोपेन । (६) पात्रस्वामिना मुनिना । (७) कोऽपि काकः । (८) अस्मिन्शत्रुञ्जये । (९) कदाचिदपि । (१०) मा भवतु । (११) जातो-भूतः प्रवेशः-समागमो यस्य । (१२) चाण्डालस्य । (१३) उत्तमजातीनाम् । (१४) मन्दिरे । (१५) तदनन्तरम् । (१६) तत्र-स्थाने जलक्षेपणभूमौ । (१७) साधुगिरा । (१८) पानीयमक्षयम् । (१९) पद्महृद इव । (२०) त्रैलोक्येऽप्यसाधारणमहिमधाम ॥१२५॥

[1]महीपालभूभृन्मुखाणामिवैत-[2]न्नृणां [3]कुष्टकष्टादिनिर्घातनिष्णम् ।
[4]मरुल्लोलकल्लोललीलायमाना-रविन्दव्रजं सूर्यकुण्डं विभाति ॥१२६॥

(१) महीपालनामा राजा तत्प्रमुखाणाम् । (२) नराणाम् । (३) अष्टादशकुष्टरोगाणां निवारणचतुरम् । (४) पवनैर्ये चपलास्तरङ्गास्तेषु लीलया चरत्कमलानां व्रजो यत्र ॥१२६॥

[1]पुण्डरीकाचलोर्वीव, [2]महिमैकनिकेतनम् ।
[3]राजादनी विभात्येषा, [4]मुषिताशेषकल्मषा ॥१२७॥

(१) शत्रुञ्जयभूमिरिव । (२) माहात्म्यस्याऽद्वैतं गृहम् । (३) प्रियालतरुः । (४) नाशितसमग्रपापा ॥१२७॥

[1]ऐहिकामुष्मिकानल्पसङ्कल्पिता-न्य[3]ङ्गभाजां [2]सृजन्ती [3]त्रिलोकीभुवाम् ।
[4]वेधसा [5]स्वर्गिणां [6]गौ[7]रपूर्वेव या, [8]निर्मिता राजते यत्र राजादनी ॥१२८॥

(१) इहलोकसम्बन्धिनः परलोकसम्बन्धिनश्च बहवो मनोरथास्तान् । (२) पूरयन्ती ।

1. ०ङ्गो महतामि० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) त्रिजगज्जनानाम् । (४) विधिना । (५) देवानाम् । (६) धेनुः । कामगवीव । (७) असाधारणा । सर्वाभिलाषकारकत्वात् । (८) कृता ॥१२८॥

वर्षत्यसौ [१]शिरसि [२]सङ्घपतेः [३]पयोभि-
[४]र्जम्भारिराजिरिव [५]जन्ममहे जिनेन्दोः ।
[६]मुक्त्यङ्गना पुनरियं [७]वयसीव [८]रङ्गा-
[९]त्पुंसा[१०]ऽनुषङ्गयति [११]सङ्गमकामुकेन ॥१२९॥

(१) मस्तके । (२) सङ्घाधिपस्य । (३) दुग्धैः । (४) चतुःषष्टिसुरेन्द्रा इव । (५) जिनेन्द्रजन्माभिषेके पानीयैः । (६) शिववधू । (७) सखीव । (८) स्नेहादानन्दाद्वा । (९) पुरुषेण । (१०) सङ्गमं कारयति । (११) सङ्गमाभिलाषुकेण ॥१२९॥

[१]सम्प्राप्तः [२]पूर्ववारान्नवनवतिमितान[३]ादिदेवस्तले[४]ऽस्या-
[५]स्तत्रा[६]ऽर्चेवा[७]ऽर्चनीयाऽस्त्य[८]सुरनरमरुत्पुङ्गवैः [९]पादुकाऽस्य ।
[१०]भ्रश्यत्पर्णादिचूर्णैर्भुव[११]नतनुभृतां [१२]भूतवेतालरक्षो-
यक्षाद्याशेषदोषान[१३]पहरति पुनर्या च [१४]रोगान्सु[१५]धेव ॥१३०॥

(१) समवसृतः । (२) नवनवति पूर्ववारान् । (३) ऋषभप्रभुः । (४) राजादनीतरुतले । (५) तत्र-प्रियाद्रुमाधः । (६) भगवत्प्रतिमेव । (७) पूजयितुं योग्या । (८) त्रिभुवनतै(जनैः) । (९) ऋषभदेवपादुका । (१०) स्वयं निष्पततां पत्रप्रमुखाणां क्षोदैः । (११) जगज्जनानाम् । (१२) भूतप्रेतादिशेषदोषान् । (१३) नाशयति । (१४) कुष्टादिरोगांश्च । (१५) अमृतमिव ॥१३०॥

[१]श्रीवाचंयमपञ्चकोटिकलितः [२]श्रीपुण्डरीको गणी,
[३]चैत्र्याम[४]त्र [५]दिने महीमिव[६] जयी सिद्धिं मुदा[७]ऽसाधयत् ।
यत्किञ्चित्क्रियते जनैरिह [८]नगे [९]दानोपवासादिकं,
तत्स्या[१०]त्तेन [११]दिनेऽत्र कोटिगुणितं दानं[१२] सुपात्रे यथा ॥१३१॥

(१) श्रिया युक्तानां मुनीनां पञ्चकोटिभिः सहितः । (२) पुण्डरीकनामा गणधरः । (३) चैत्रेण युक्ता पौर्णमासी-चैत्री, तस्याम् । चैत्रपूर्णिमायामित्यर्थः । (४) अत्र-<u>शत्रुञ्जये</u> । (५) दिवसे । (६) जित्वरनृपः । (७) साधितवान् । (८) <u>विमलाचले</u> । (९) विश्राणनोपवसनादिकम् । (१०) तेन कारणेन पञ्चकोटिमुनिमोक्षगमनहेतुना । (११) चैत्रीदिने । (१२) सुपात्रदानमिव ॥१३१॥

[१]शाश्वताद्रिरिवो[२]ऽनन्त-समयस्थायुको[1]ऽस्त्यसौ ।
[३]कालक्रमात्पुनर्धत्ते, [४]शशीवोपचयक्षयौ ॥१३२॥

---

1. ०कोऽस्त्ययम् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) शाश्वता मन्दरादय: पर्वतास्तद्वत् । (२) न विद्यते आगमिष्यत्काले कदाप्यन्तो यस्य, तावन्तं कालं यावत्स्थायुक:-स्थास्नु: । (३) कालक्रमात्-समयपरिपाट्या । (४) चन्द्र इव । (५) वृद्धिं क्षयं च ॥१३२॥

[1]तालध्वजढङ्काभिध-कदम्बलौहित्यरैवताद्यचला: ।
विलसन्[2]महिमानो[1]ऽमी, [3]यत्प्रतिकाया इवाऽऽभान्ति ॥१३३॥

(१) ऐते पञ्चाऽपि शैला: शत्रुञ्जयस्य मुख्यशि[ख]राणि । (२) शत्रुञ्जयसदृशमाहात्म्या: । (३) प्रतिबिम्बानीव ॥१३३॥

[1]माहात्म्यमे[2]तस्य समग्रमे[3]कै-कस्याऽपि शृङ्गस्य कदाऽपि [4]वक्तुम् ।
[4]प्रभुर्भवेत्कोऽपि तदाप्त एव, तरीतुम[5]ब्धेरिव वारि पोत: ॥१३४॥

(१) महिमानम् । (२) शत्रुञ्जयस्य । (३) एकस्याऽपि शिखरस्य । (४) कोऽपि वक्तुं न प्र[भ]वेत् । यदि कदाचिन्महिमानं वक्तुं समर्थीभवेत्स तीर्थकृदेव, नान्य: । (५) जलधिजलं तरीतुं कोऽपि नालम् । यदि समर्थस्तदा यानपात्रम् ॥१३४॥

[1]तदत्र प्राप्यते[2]ऽनल्पं, यद्वस्तु [3]क्वापि [4]नाऽऽप्यते ।
[5]मेरौ न[6] सन्त्यदभ्रां किं, दुष्प्रापा: स्वर्द्रुमा [7]मरौ ॥१३५॥

(१) तत्तत्प्रसिद्धमौषधी-रत्न-रसकूपिकादि । (२) बहु-पदे पदे । (३) अन्यत्र । (४) यन्नाम्नाऽपि न श्रूयते । (५) मेरुगिरौ । (६) किं कल्पद्रुमा बहवो न सन्ति । (७) ते मरुस्थल्यां नाम्नाऽपि कदाचित् श्रूयते न हि ॥१३५॥

[1]षष्ठै: [2]सप्तभि[3]रष्टमाष्टमयुतै[4]र्यस्मिन्कृतै[5]र्निजलै-
स्ता[6]र्तीयीकतया मिते [7]किल [8]भवे प्राप्नोति सिद्धिं सुधी: ।
[7]यस्मिन्नार्षभिकारितां [9]मणिमयीं मूर्त्तिं[10] जिनेन्दो[11]र्नम-
स्कुर्वन्[12]स्वर्णगुहागतां[13]मपि भवेदे[14]कावतारी भवे ॥१३६॥

(१) उपवसनद्विकै: । (२) सप्तसङ्ख्यै: । (३) अष्टमेनोपवासत्रिकेण सहितै: । (४) पर्वते । (५) पानीयरहितैश्चतुर्विधाहारप्रत्याख्या[न]युतै: । (६) त्रयाणां सङ्ख्या पूरण-स्तृतीयस्तृतीय एव-तार्तीयीक: । तीयादिकण् स्वार्थे वा वक्तव्य:, तस्य भावस्तार्तीयीकता, तया । किल-इति पूर्वा[चा]र्यपरम्परया बृहद्ग्रन्थवाक्यै: । जनने-तृतीये भवे इत्यर्थ: । (७) गिरौ । (८) भरतचक्रिकारिताम् । (९) रत्नमयीम् । (१०) ऋषभप्रतिमाम् । (११) प्राणमन् । (१२) स्वर्णनाम्न्यां गिरिकन्दरायां तिष्ठन्तीम् । (१३) पुनरन्यार्थे । (१४) एकमेव जन्म यस्य, तादृग्भवेत् ॥१३६॥

[1]अत्रा[2]ऽनन्तजिना [3]अनन्तमुनिभि: [4]सिद्धा [5]विशुद्धाशया,
[6]ध्यानै[7]र्वह्निभिरि[8]न्धनप्रकरव[9]न्निर्दह्य [10]कर्म्मव्रजम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[12]सिद्धक्षेत्रमतो [13]निगद्यत इदं [14]चेदीहते [15]मानसं,
[16]सिद्धिं [17]वस्[18]तद्[19]इह स्वयं [20]वसति सा सत्स[21]ङ्गमाकाङ्क्षिणी ॥१३७॥

(१) शत्रुञ्जये । (२) अनन्तास्तीर्थकृतः । (३) अनन्तैः साधुभिः सार्द्धम् । (४) मुक्तिं गताः । (५) शुक्लध्यानजुषः । (६) प्रणिधानैः । (७) अनलैरिव । (८) काष्ठव्रजमिव । (९) दग्ध्वा । (१०) कर्मसमूहम् । (११) अस्मात्कारणात् । (१२) सिद्धानां क्षेत्रं स्थानं-सिद्धक्षेत्रम् । (१३) कथ्यते । (१४) यदि कामयते । (१५) चित्तम् । (१६) मोक्षलक्ष्मीम् । (१७) वो-युष्माकम् । (१८) तत्-तर्हि । (१९) इह-शत्रुञ्जये । (२०) सा-मोक्षलक्ष्मी-रात्मनैव निवसति । (२१) उत्तमैः समं सङ्गमस्य स्पृहयालुः ॥१३७॥

इत्यद्वैतप्रभावं विमलशिखरिणो भाषमाणो विशिष्य,
श्रीमत्प्राचीनसूरीश्वर इव भगवानङ्गभाजां समाजे ।
सिद्धक्षेत्रेऽवतस्थे कतिचन दिवसान् किं न सिद्धो भविष्णु;
स्वेन श्रीतीर्थभर्त्तुः पदपरिचरणानन्दसान्द्रो मुनीन्द्रः ॥१३८॥

इति पं.देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये सङ्घागमन-यात्राकरण-माहात्म्यवर्णनो नाम पञ्चदशः (षोडशः) सर्गः ॥१५ (१६) ॥ ग्रं० २९३ ॥

(१) अमुना प्रकारेण । (२) असाधारणमहिमानम् । (३) विमलाचलस्य । (४) कथयन् । (५) विशेषप्रकारेण । (६) पूर्वाचार्य इव । (७) हीरविजयसूरिः । (८) भव्यानाम् । (९) सभायाम् । (१०) शत्रुञ्जये । (११) कियत्सङ्ख्याकान् । (१२) वासरान् । (१३) तिष्ठति स्म । (१४) मुक्तो भवनशीलः । अथ विद्यामन्त्रतन्त्रसिद्धिप्रमुखैः कृत्वा सिद्धः, सिद्धपुरुषो भवितुमिच्छुः सर्वसिद्धिमानित्यर्थः । (१५) स्वेनाऽऽत्मना । (१६) ऋषभदेवस्य । (१७) चरणसेवो-त्पन्नप्रमोदेन स्निग्धः प्रमोदमेदुरः ॥१३८॥

पञ्चदशः (षोडशः) सर्गः ॥३९२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐं नमः ॥

सप्तदशः सर्गः ॥

[१]अथ [२]व्रतीन्द्रोऽभ्युदयं[३] दधाने, [५]बिम्बे [४]नभस्य[६]म्बुजबान्धवस्य ।
[७]मूर्ध्ना धृते [८]पूर्वदिशेव [९]भद्र-कुम्भे [१०]स [११]नाभेयजिनं ननाम ॥१॥

(१) <u>शत्रुञ्जय</u>यात्राकरणानन्तरम् । (२) <u>हीरविजयसूरि</u>ः । (३) उद्गमं बिभ्रति । उदिते इत्यर्थः । (४) गगने । (५) मण्डले । (६) भानोः । (७) मस्तकेन । (८) प्राचीदिशा । (९) मङ्गलकलशे । (१०) सूरिः । (११) ऋषभतीर्थनाथम् ॥१॥

[१]अन्यान[२]नन्यां मुद[३]मादधानः, पुन[४]र्व्यनंसीत्स[५] [६]जिनावनीन्द्रान् ।
शत्रुञ्जयाद्रेरिव [७]भूषणेषु, [८]शेषेषु [९]चैत्येषु [१०]हिरण्मयेषु ॥२॥

(१) परान् । (२) असाधारणाम् । (३) आ-सामस्त्येन मनोवाक्कायैर्बिभ्राणः । क्वचित् कुमार-सम्भवादौ धरणार्थेऽप्यादधान इति दृश्यते च । (४) नमति स्म । (५) सूरिः । (६) जिनराजान् । (७) आभरणेषु (८) अवशिष्टेषु । (९) प्रासादेषु । (१०) स्वर्णनिर्मितेषु ॥२॥

[१]शत्रुञ्जयोर्वीधरसार्वभौम-मौलेर्दधानो [२]विशदाशयं सः ।
[३]अवातर[४]न्निर्जरनिर्झरिण्या, इव [५]प्रवाहो [६]मिहिकाद्रिशृङ्गात् ॥३॥

(१) <u>विमलगिरि</u>चक्रिशिखरात् । (२) निर्मलं चित्तमुज्ज्वलमध्यं च । (३) उत्तरति स्म । (४) गङ्गायाः । (५) जलपूरः । (६) हिमाचलशिखरात् ॥३॥

[१]अलंकरोति स्म [२]स [३]पादलिप्त-पुरं [४]पुरन्ध्रीगणगीयमानः ।
[५]सहस्ररश्मेरिव [६]रश्मिराशि-[७]रुदीयमानद्विजराजबिम्बम् ॥४॥

(१) भूषयति स्म । (२) सूरिः । (३) <u>पालीताणा</u>भिधनगरम् । (४) वनितावर्गैर्गीयमानः । (५) सूर्यस्य । (६) करनिकरः । (७) उदयच्चन्द्रमण्डलम् ॥४॥

[१]स [२]प्रार्थितो [३]द्वीपजनव्रजेन, [४]स्वपत्तनं [५]पावयितुं व्रतीन्द्रः ।
चित्रादिना[६] सारथिनेव केशी[७], वशीशिता [८]श्वेतबिकाभिधानम् ॥५॥

(१) सूरिः । (२) विज्ञप्तः । (३) <u>द्वीपबन्दिर</u>सङ्घलोकेन । (४) निजनगरम् । (५) पवित्रं कारयितुम् । (६) <u>श्रावस्ती</u>नगरीं राजकार्यार्थं गतेन <u>चित्रसारथिना</u> । (७) <u>केसी</u>नामा गणधरः । (८) <u>श्वेतम्बिका</u>निजनगरीम् ।

[१]निश्चिक्य [२]चित्ते[३]ऽजयपार्श्वभर्त्तु-र्यात्रां स [४]शत्रुञ्जयव[५]द्व्रतीन्द्रः ।
कथञ्चि[६]दप्याग्रहमस्य [७]मेने, [८]सेनेशवत्सोऽपि ततः [९]प्रतस्थे ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) निश्चयं कृत्वा । अवश्यं मया यात्रा कार्येति निश्चयः । (२) मनसि । (३) अजयनाम्ना दशरथपित्रा राज्ञा स्थापितस्याऽजयपार्श्वस्य । अधुना 'अझारो पार्श्वनाथ' इति प्रसिद्धस्य । (४) शत्रुञ्जयशैलस्येव । (५) सूरिः । (६) इत्याशयेन द्वीपसङ्घस्य विज्ञप्तिम् । (७) मानयति स्म । (८) सेनापतिर्नृप इव । (९) चलितः । (१०) पादलिप्तपुरात् ॥६॥

[1]तत्प्रक्रमोपस्थितयात्रिकाणां, [2]तदाऽऽ[3]वलीभि[4]र्विवले, [5]गिरीन्द्रात् ।
[6]अम्भोधिवेलाभिरिवो[7]पकण्ठ-गिरे[8]र्गभीरारवबन्धुराभिः ॥७॥

(१) शत्रुञ्जये यात्रासमये समागतानां जनानाम् । (२) सूरिप्रस्थानसमये । (३) श्रेणीभिः । (४) पश्चाददद्व्याघुटितं-स्वस्वपुरं प्रति प्रस्थितम् । (५) शत्रुञ्जयात् । (६) समुद्रजलकल्लोलमालाभिः । (७) वेलाशैलात् । (८) मन्द्रध्वनिभिः । यात्रिकश्रेणी[भि]रपि शत्रुञ्जयसूरिप्रशंसास्तवादिगम्भीर-शब्दै रम्याभिः ॥७॥

[1]मुहुः [2]प्रसर्पन्[3]पथि कण्ठपीठं, [4]विभुज्य [5]पारीन्द्र इवा[6]ऽलुलोके ।
[7]उवाह [8]सौहित्यमसौ न [9]दर्शं-दर्शं पुनः [10]सिद्धधराधरं तम् ॥८॥

(१) वारं वारम् । (२) प्रचलन् । (३) मार्गे । (४) वक्रीकृत्य "गिरा विभुर्द्वारि विभुज्य कण्ठ" मिति नैषधे । (५) केसरीव । (६) पश्यति स्म । (७) दधौ । (८) तृप्तिम् । (९) दृष्ट्वा दृष्ट्वा । (१०) शत्रुञ्जयगिरिम् ॥८॥

[1]एतां [2]धरित्रीं [3]त्रिजगत्पवित्री-कर्त्रीं [4]सवित्रीमिव [5]शर्मदात्रीम् ।
[6]स्वजन्मभूमीमिव [7]भूस्पृशो [8]मे, [9]मोक्तुं मनो नो[10]त्सहते [11]कथञ्चित् ॥९॥

(१) शत्रुञ्जयसम्बन्धिनीम् । (२) भूमीम् । (३) त्रिभुवनपावित्र्यकारिकाम् । (४) जननीमिव । (५) सुखदायिनीम् । (६) आत्मनो जन्मस्थानकमिव । (७) भूचरस्य । (८) मे जनस्य च । (९) विहातुम् । (१०) उत्साहं कुरुते । (११) केनापि प्रकारेण ॥९॥

[1]कदम्बलौहित्यकढंकताल-ध्वजादिकूटैः [2]कटकैरिवैषः ।
[3]सगर्वगन्धर्वगजेन्द्रगर्जैः, [4]श्रितोऽस्ति [5]शत्रुञ्जयभूधरेन्द्रः ॥१०॥

(१) कदम्बकादिशिखरैः । (२) सैन्यैरिव । (३) गीतकलाभिः वेगातिशयेन च साहङ्काराः किन्नरा अश्वाश्च करिवराश्च ते वा तेषां च गर्जाः ध्वनिविशेषा येषु । (४) आश्रितः । (५) शत्रुञ्जयनामा गिरीन्द्रः, रिपुजित्वरराजेन्द्रश्च ॥१०॥

[1]प्रपूज्य [2]पुष्पैः [3]किसलैः फलैश्च, यो वृक्षलक्षैः [4]क्षितिभृन्महेन्द्रः ।
[5]उपास्यते [6]त्यक्तुमिवं[1] [7]स्ववान-स्पत्यं [8]गतिं [9]वल्गुमथाँधिगन्तुम् ॥११॥

(१) पूजयित्वा । (२) कुसुमैः । (३) पल्लवैश्च । (४) गिरिराजः । (५) सेव्यते । (६)

---

1. ०वात्मवान० हीमु० ।

मोक्तुम् । (७) स्वकीयं वनस्पतिभावम् । (८) स्वर्गादिकाम् । (९) मनोज्ञाम् । (१०) प्राप्तुम् ॥११॥

[१]एते [२]मिथः [३]प्रीतिपरीतचित्ताः, [४]सिंहेभमुख्या अपि [५]मुक्तवैराः ।
[६]तिर्यग्भवेऽपि [७]स्पृहयेव [८]सिद्धेः, [९]सिद्धाचलेन्द्रं [१०]परिशीलयन्ति ॥१२॥

(१) वन्यसत्त्वाः । (२) परस्परम् । (३) स्नेहव्याप्तमनसः । (४) सिंहगजप्रमुखाः । (५) त्यक्तान्योन्यविरोधाः । (६) तिरश्चां जन्मन्यपि । (७) वाञ्छयेव । (८) मोक्षस्य, अन्यस्य वा मन्त्रयन्त्रस्वर्णादिसिद्धेरीहया । (९) शत्रुञ्जयशैलं सिद्धं पुरुषं वा । (१०) सेवन्ते ॥१२॥

[१]धात्राऽत्र[२] [३]विश्वाचलचारिमश्रीः, [४]पिण्डीकृतै[५]कत्र [६]दिदृक्षतेव ।
[७]इत्यू[८]हमानेन [१०]गिरीन्द्रलक्ष्मीं, [११]समीक्षमाणेन [९]मुनीश्वरेण ॥१३॥

[१]शत्रुञ्जयोर्वीधरसन्निधाने, [२]शत्रुञ्जया शैवलिनी [३]न्यभालि ।
[४]परांहसा [५]स्वं मलिनं[६] विभाव्य, पुत्रीव[७] जह्नोः [८]पवितुं समेता ॥१४॥

पञ्चभिः कुलकम् ।

(१) विधिना । (२) अत्र-जगति । (३) सर्वेषां विश्वस्य वा पर्वतानां चारुत्वलक्ष्मीः । (४) पिण्डतां प्रापिता । (५) एकस्मिन्स्थाने । (६) द्रष्टुमिच्छता । (७) अमुना प्रकारेण । (८) वितर्कं कुर्वता । (९) सूरिणा । (१०) शत्रुञ्जयशोभाम् । (११) पश्यता ॥१३॥

(१) शत्रुञ्जयशैलसमीपे । (२) शत्रुञ्जयनाम नदी । (३) दृष्टा । (४) समागतान्यजनसङ्गमाज्जातपापेन । (५) आत्मानम् । (६) मलिनं ज्ञात्वा । (७) गङ्गा । (८) पवित्रीकर्त्तुं समेता ॥१४॥

[१]पद्मानि [२]यस्यां [३]व्यलसन्मुं[४]खानि, [५]पयःसुरीभिः [६]प्रकटीकृतानि ।
[७]अमानमाहात्म्यमहीधरेन्द्र-दिदृक्षयेव [८]स्मितनेत्रपत्रैः ॥१५॥

(१) कमलानि । (२) शत्रुञ्जयायाम् । (३) विरेजुः । (४) वदनानि । (५) जलदेवताभिः । (६) जनदृग्गोचराणि कृतानि । (७) प्रमाणातीतो महिमा यस्य, तादृशस्य शत्रुञ्जयस्य द्रष्टुमिच्छया । (८) विकचनयनदलैः ॥१५॥

नेदृक्[१]परं[२] तीर्थ[३]मुदेति [४]मुक्ति-क्षेत्रं [५]त्रिलोक्यामपि [६]तत्समीपे ।
[७]शत्रुञ्जयासिन्धुमिषेण रेखा-[८]ऽऽचिख्यासये[९]तीव कृता[१०] विधात्रा ॥१६॥

(१) ईदृशं शत्रुञ्जयतुल्यम् । (२) अपरम् । (३) जागर्त्ति । (४) मुक्तिस्थानकम् । (५) जगत्रयेऽपि । (६) शत्रुञ्जयपार्श्वे । (७) नदीकपटात् । (८) कथयितुमिच्छया । (९) इत्यमुना प्रकारेण । (१०) एतस्य सदृशं परं तीर्थं नास्तीत्यतोऽयमेव रेखावान् । तस्मादस्य समीपे शत्रुञ्जया सरिद्रूपा विधिना रेखा कृतास्तीति ॥१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]पयःप्लवक्रीडदनेकपौर-पुरन्ध्रिपुञ्जः [२]सरिति [३]व्यराजत् ।
[४]नमश्चिकीर्षुः [५]श्रमणावनीन्दोः, [६]पादाम्बुजं [७]वारिसुरीभरः किम् ॥१७॥

(१) जलप्रवाहे जलकेलिं कुर्वतीनां बहूनां नगरजनयुवतीनां व्रजः । (२) शत्रुञ्जयायाम् । (३) शोभते स्म । (४) नमस्कारं कर्त्तुमिच्छुः । (५) हीरसूरिराजस्य । (६) पदकमलम् । (७) जलदेवतागणः ॥१७॥

[१]पतिव्रताऽपी[२]श्वरवार्द्धिभर्तृ-द्वयेति [३]कौलीनम[४]पाचिकीर्षुः ।
[५]शत्रुञ्जयं [६]सेवितुमा[७]त्मना[८]गा-न्मिषेण[९] यस्या [१०]हरशेखरेव ॥१८॥

(१) स्वकान्तं विना नान्यं पुमांसं मनसापि कामयते इति पतिरेव व्रतं सतीत्वव्यञ्जकं यस्याः सा पतिव्रता । सती इत्यर्थः । ईदृश्यपि । (२) शम्भुपयोधिलक्षणयोर्वल्लभयोर्युगलं यस्याः । (३) एवं विश्वे स्वनिन्दाम् । (४) निराकर्त्तुकामा । (५) विमलाचलम् । (६) उपासितुम् । (७) स्वेन । (८) आयाता । (९) शत्रुञ्जया सरिद्दम्भात् । (१०) गङ्गा ॥१८॥

[१]या [२]शान्तनोर्वीमघवाङ्गजानां, [३]महामयापायवतां [७]चतुर्णाम् ।
[४]चिकित्सकीवा[५]ऽत्र [६]महीन्द्रमुक्ति-श्रीसङ्गमे[८]ऽपि [९]प्रतिभूरि[१०]र्वाऽभूत् ॥१९॥

(१) शत्रुञ्जया नदी । (२) ईक्ष्वाकुवंशीयशान्तनुराजेन्द्रपुत्राणाम् । (३) महाव्याधि-व्यसनभाजाम् । (४) अगदङ्कारिकेव । (५) अत्र-जगत्याम् । (६) राजलक्ष्म्या मुक्तिलक्ष्म्याश्च सङ्गमे । (७) तेषां चतुःसङ्ख्याकानाम् । (८) पुनः । (९) साक्षिणी । (१०) जाता ॥१९॥

[१]तीर्थेषु [२]पाथःप्रथितेषु गत्या, [३]पृथक्पृथ[४]क्खिद्यति [५]लोक एषः ।
शत्रुञ्जयेतीव[६] विचिन्त्य [७]सर्व-तीर्थावतारा [८]विधिना [९]व्यधायि ॥२०॥

(१) मुक्तिगमनस्थानेषु । (२) नदीकुण्डसरःप्रमुखेषु जलेषु विख्यातेषु । (३) पृथक्पृथग्गमनैः कृत्वा । इतस्ततः पर्यटनेन । (४) खेदं प्राप्नोति । (५) मध्यमलोकसञ्जातो जनः । (६) इति हृदि जनस्य खेदकारणं विचार्य । (७) सर्वेषां भूर्भुवस्स्वस्त्रयीनां पर्वतनदीकुण्डसरः-प्रभृतीनामवतरणमनुप्रवेशो यस्याम् । (८) लोकेशेन ब्रह्मणा । (९) कृता ॥२०॥

[१]उत्तीर्णवांस्तां[२] [३]सरितं [४]व्रतीन्दुः, सिन्धुं [५]सुराणामिव [६]चक्रपाणिः ।
[७]ईर्यापथिक्यां कपटा[८]दतिष्ठद्[१०]-द्रष्टुं [९]क्षणं [११]तामिव [१२]कल्मषघ्नीम् ॥२१॥[2]

(१) उल्लङ्घितवान् । (२) शत्रुञ्जयाम् । (३) नदीम् । (४) सूरिः । (५) गङ्गामिव । (६) द्रौपद्या धातुकीखण्डात्समानयनसमये हरिः । (७) ईर्यापथिकीप्रतिक्रमणदम्भेन । (८) स्थितः । (९) क्षणमात्रम् । (१०) विलोकयितुम् । (११) शत्रुञ्जयाम् । (१२) पापहन्त्रीम् । अतस्तद्दर्शनं यतीनामुचितम् ॥२१॥

1. पथिक्याश्च कृते तटे स्थाद्-द्रष्टुं हीमु० । 2. एतौ २१-२२तमश्लोकौ हीमु० पुस्तके व्युत्क्रमेण (२२-२१) स्तः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]शत्रुञ्जयाद्रे[2]र्महिमैकसिन्धोः, [3]सान्निध्यतो[4]ऽसावपि सिन्धु[6]रासीत् ।
[5]माहात्म्यभूमिः [7]किमु किं न [8]गङ्गा-सङ्गेन [9]गङ्गीयति सिन्धु[10]रन्या ॥२२॥

(१) विमलाचलस्य । (२) माहात्म्यस्याऽद्वैतसमुद्रस्य । (३) सामीप्यात् पार्श्वे स्थित्याः । (४) असौ-शत्रुञ्जया सरिदपि । (५) महिम्नां प्रभावानां(णां) निधानं-स्थानम् । (६) जाता । (७) दृष्टान्तेनाऽर्थं स्पष्टयति । (८) गङ्गायाः सङ्गमेन - गङ्गाजलसम्पर्केण । (९) गङ्गेवाऽऽचरति, गङ्गैव भवति । "गङ्गीयत्यसितापगा" इति खण्डप्रशस्तौ । (१०) अपरापि नदी ॥२२॥

[1]पुन्नागनारङ्गरसालसाल-प्रियालहन्तालतमालतालैः ।
[2]कदम्बजम्बीरसनिम्बजम्बू-सर्जार्जुनैरञ्जनवञ्जुलैश्च ॥२३॥

[1]कङ्केल्लिभि[2]र्भूषिततीरभूमि-[3]र्यावन्मनोऽभीप्सितदानदक्षा ।
[4]स्वःसालतायाः [5]स्पृहया[6]ऽऽत्मनीव, [7]सर्वैर्द्रुमैः [8]सिन्धु[9]रुपास्यते या ॥२४॥ युग्मम् ॥

(१) सुरपर्णिका वृक्षविशेषः, नागरङ्गः प्रसिद्धः, सहकारः, असनः, राजादनः, हन्तालनामा देशविशेषप्रसिद्धतरुः, तापिच्छः, तालः प्रसिद्धः । (२) नीपं धाराकदम्बः, जम्बीरः प्रसिद्धः, पिचुमन्दयुक्तः, जम्बू प्रसिद्धः, देवदारुः, अर्जुनः मेरौ प्रसिद्धः वृक्षविशेषः, वानीरः ॥२३॥

(१) अशोकैः । (२) शोभिततटभूमिः । (३) सर्वेषां मानसिकानां कामानां प्रपूरणे कुशला । कामितकामधेनुरित्यर्थः । (४) कल्पद्रुमभावस्य । (५) वाञ्छया । (६) स्वस्मिन्विषये । (७) समग्रैर्द्रुमैः । (८) शत्रुञ्जया नदी । (९) सेव्यते ॥२४॥ युग्मम् ॥

[1]कदा [2]पुनर्दर्शने[3]मस्य [4]भावि, [5]ध्यायन्निदं [6]स्वीयहृदा [7]मुनीन्दुः ।
[8]तीर्थं स [9]तीर्थेशमिव [10]प्रणम्य, [11]पथि [12]प्रतस्थे [13]प्रथितावदातः ॥२५॥

(१) कस्मिन्काले । (२) व्याघुट्य । (३) शत्रुञ्जयस्य । (४) भविष्यति । (५) चिन्तयन् । (६) निजमनसा । (७) सूरिः । (८) शत्रुञ्जयम् । (९) जिनमिव । (१०) नत्वा । (११) मार्गे । (१२) प्रचचाल । (१३) विश्वविख्यातचरितः ॥२५॥

[1]मेरूनिव [2]क्वापि [3]सुवर्णवर्ण्यान्, कुत्राऽपि [4]रौप्यानिति [5]शर्वशैलान् ।
[6]अप्यां[7]श्मगर्भानिव [8]विन्ध्यभूध्रा-[9]न्सिद्धाद्रिकूटान्पथि [10]दृष्टवान्सः ॥२६॥

(१) सुराद्रीन् । (२) कस्मिन्नपि स्थाने । (३) शोभनवर्णैः कनकैर्विवर्णनीयान् । (४) रजतमयान् । (५) कैलाशानिव । (६) पुनः । (७) मरकतमणिमयान् । (८) विन्ध्याचलानिव । (९) शत्रुञ्जयशिखराणि । (१०) ददर्श ॥२६॥

[1]कुत्राऽपि बन्धूनिव [2]नन्दनस्य, [3]निकुञ्जपुञ्जान्[4]सुमनोऽभिरामान् ।
[5]वेणीरिव [6]व्योमपयोधिपत्न्याः, [7]कूलङ्कषाः क्वापि [8]विशुद्धवारः ॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इवाऽऽत्मदर्शान्धरणीन्दिरायाः क्वचित्तटाकांश्च पयःप्रपूर्णान् ।
मित्राणि सुत्रामपुरः किमत्र, श्रीवासवेश्मानि पुनः पुराणि ॥२८॥

हृल्लेखितामाकलयद्भिरात्मा-वतंसतां नेतुमिदंपदाब्जम् ।
श्राद्धैरिवाऽनेकजनैः प्रणम्य-मानः स पश्यन्प्रचचाल मार्गे ॥२९॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

(१) कस्मिन्नपि प्रदेशे । (२) देववनस्य । (३) वनसमूहान् । (४) पुष्पैर्देवैश्च रम्यान् । (५) प्रवाहानिव । (६) गङ्गायाः । (७) नदीः । (८) निर्मलनीराः ॥२७॥

(१) दर्पणानिव । (२) भूमिलक्ष्म्याः । (३) जलभृतान् । (४) अमरावत्याः । (५) सुहृदः । (६) भूमण्डले । (७) लक्ष्मीवसनगृहाणि ॥२८॥

(१) उत्कण्ठाम् । (२) दधानैः । (३) स्वस्य शेखरभावम् । (४) प्रापयितुम् । (५) सूरिचरणकमलम् । (६) श्रावकैरिव । (७) बहुभिरन्यजनैः । (८) दृग्विषयीकुर्वन् । (९) प्रस्थितः ॥२९॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

क्रमद्वयीचङ्क्रमणक्रमेणा-ऽतिक्रम्य शक्रो व्रतिनां स मार्गम् ।
वस्वोकसारावरजां किमत्रा-ऽजयाभिधानं पुरमाससाद ॥३०॥

(१) चरणयुगलेन चरणपरिपाट्या । (२) उल्लङ्घ्य । (३) सूरीन्द्रः । (४) पन्थानम् । (५) धनदनगर्या लघुभगिनीमिव । (६) अत्र-द्वीपसमीपभूमौ । (७) अजयाभिधानं नगरम् । (८) प्राप ॥३०॥

तत्राऽजयोर्वीरमणस्य पिण्डी-भवद्यशः किं शशिजित्वरश्रि ।
सूरीन्दुरालोकयति स्म चैत्य-मचिन्त्यमाहात्म्यजिनाङ्किताङ्कम् ॥३१॥

(१) अजयपुरे । (२) अजयनामराजस्य दशरथजनकस्य । 'अधुनाऽजयभूपाल-भाग्येनेयमिहाऽऽगता' इति शत्रुञ्जयमाहात्म्ये । (३) पिण्डतां गच्छत् । (४) चन्द्रचन्द्रिका-जयनशीलशोभम् । (५) हीरसूरिः । (६) पश्यति स्म । (७) प्रासादम् । (८) चिन्तयितुमशक्यं -विचारगोचरातीतं माहात्म्यं प्रभावो यस्य, तादृशेनाऽजयपार्श्वनाथबिम्बेनाऽऽकलित उत्सङ्गो मध्यं वा यस्य ॥३१॥

प्रीत्या प्रणत्याऽजयपार्श्वमत्रा-ऽभिष्टुत्य वृत्रारिरिव व्रतीन्द्रः ।
अकीर्त्तयत्क्वाप्युपविश्य तस्य, माहात्म्यमित्यङ्गभृतां पुरस्तात् ॥३२॥

(१) हार्देन । (२) नमस्कृत्य । (३) अझाराभिधपार्श्वबिम्बम् । (४) प्रासादे । (५) स्तुत्वा । (६) शक्र इव । (७) सूरिः । (८) उवाच । (९) बहिर्धर्मशालायाम् । (१०) अजयपार्श्वमहिमानम् । (११) इत्यग्रे वक्ष्यमाणम् । (१२) जनानामग्रे ॥३२॥

---

1. ०यन्पुरतोऽजिहीत हीमु० । 2. ०रजामिवाऽत्रा० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]कश्चिन्महेभ्यो [2]व्यवहर्त्तु[3]मब्धि-मध्याध्वना [4]प्रास्थित [1]सागराह्वः ।
[5]क्वाऽस्त्यत्र पुत्रीं[6] जलधे[7]र्विलोक्य, [8]गृह्णाम्यहं [9]तामिति किं [10]वितर्क्य ॥३३॥

(१) कोऽपि सागरनामा व्यवहारी । (२) व्यापारं कर्त्तुम् । (३) समुद्रमध्यमार्गेण । (४) प्रचलितः । (५) अत्र सागरे कुत्राऽस्ति । (६) लक्ष्मीः । (७) दृष्ट्वा । (८) तां स्वीकरोमि । (९) श्रियम् । (१०) विचार्य ॥३३॥

[1]दुर्दैवयोगा[2]ज्जलधौ [3]जजृम्भे, [4]तदा कुतश्चि[5]ज्जलज(द)[6]स्तमोवत् ।
[7]चिखेल [8]योषेव [9]तडि[10]त्तदङ्के, [11]जगर्ज [12]मत्तेभ इवो[13]त्कटं सः[14] ॥३४॥

(१) अभाग्योदयात् । (२) समुद्रे । (३) प्रससार । (४) तस्मिन्नवसरे । समुद्रमध्यागमनवेलायाम् । (५) मेघः । (६) अन्धकार इव । (७) क्रीडति स्म । (८) वनितेव । (९) विद्युत् । (१०) मेघोत्सङ्गे । (११) गर्जति स्म । (१२) मदोद्धतगज इव । (१३) दुःश्रवम् । (१४) मेघः ॥३४॥

[1]ततो[2]ऽहिकान्तः [3]परिवर्त्तवात, इव [4]प्रवृत्तः [5]परितः [6]पयोधौ ।
[7]कपोतपोता इव [8]तस्य [9]पोता, [10]निपेतु[11]रुत्पत्य [12]नभस्य[13]धस्तात् ॥३५॥

(१) मेघप्रसरणानन्तरम् । (२) पवनः । (३) कल्पान्तवात इव । (४) प्रसृतः । (५) सर्वत्र । (६) समुद्रमध्ये । (७) पारापतबालका इव । (८) समुद्रव्यवहारिणः । (९) वाहनानि । (१०) पतन्ति स्म । (११) उच्चैर्गत्वा । (१२) आकाशे । (१३) अधः समुद्रजले ॥३५॥

[1]रङ्गत्तरङ्गावलि[2]रम्बुराशे-[3]रालम्बमाना[4]म्बर[5]मम्बुपूरैः ।
राजी [6]गिरीणामिव [7]तुङ्गिमान-[8]माबिभ्रती [9]प्रादुरभू[10]त्तदानीम् ॥३६॥

(१) प्रचलत्कल्लोलमाला । (२) जलधेः । (३) आश्रयन्ती । (४) गगनम् । (५) जलप्लवैः । (६) शैलश्रेणी । (७) अत्युच्चभावम् । (८) धारयन्ती । (९) प्रकटीभूता । (१०) तस्मिन्नवसरे ॥३६॥

[1]पाठीनपीठाण्डजन[क्रचक्र]-कुम्भीरपुञ्जैः [2]प्रकटीभवद्भिः ।
[3]वन्यैरिवा[4]ऽरण्य[5]मगण्यहिंस्रै-[6]र्भयानकोऽम्भोधिरभूत्तदा[7]ऽस्य ॥३७॥

(१) पाठीनपीठा मत्स्यविशेषाः, अण्डजाः सामान्यमत्स्याः, नक्रचक्राः, कुम्भीरा - मगरजातयस्तेषां व्रजैः । (२) दृग्गोचरमागच्छद्भिः । (३) वनभवैः । (४) अटवीम् । (५) गणनातीतैर्हिंसनशीलसत्त्वैः व्याघ्रसिंहशार्दूलशरभादिजीवैः । (६) भयङ्करः । (७) सागरव्यवहारिणः ॥३७॥

[1]क्रोधोद्धतव्याल[2]मिवोपयातं, [3]प्रकोपितं [4]दुष्टमिवाऽथ [5]चण्डम् ।
स [6]सागरो [7]भैरवसागरं तं, [8]द्रष्टुं न [9]दृष्ट्याऽपि यदा शशाक ॥३८॥

1. जलधेर्निभाल्य हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कोपेनोत्कटं दुष्टगजं सर्पं वा । (२) समागतम् । (३) कोपं प्रापितः । (४) दुर्जनमिव । (५) कुटिलाशयं दुर्दान्तम् । (६) सागरश्रेष्ठी । (७) भयावहसमुद्रम् । (८) अवलोकितुम् । (९) लोचनेनाऽपि । (१०) समर्थीबभूव ॥३८॥

[१]संवर्त्तवत्[२]तत्र [३]तदा [४]स्वपोत-लोकक्षयं [५]प्रेक्षितुमक्षमः सन् ।
[६]विलासवाप्यामिव [७]वार्द्धिमध्ये, यावत्स [८]झम्पां [९]प्रगुणः [१०]प्रदत्ते ॥३९॥

(१) प्रलयकाले इव । (२) समुद्रे । (३) तस्मिन्नवसरे । (४) निजवहनजनसंहारम् । (५) द्रष्टुमसमर्थः सन् । (६) क्रीडादीर्घिकायामिव । (७) समुद्रजलान्तः । (८) सम्पातपाटवं -जले पतनम् । (९) उत्साहवान् । (१०) ददाति ॥३९॥

[१]कृष्टेव [२]तद्भाग्यभरै[३]स्तदा[४]ऽऽवि-र्भूया[५]भ्रमार्गे[६]ऽब्धिगभीरावा ।
[७]पद्मावती वाचमिमा[८]मुवाच, [९]मा [१०]वत्स ! [१४]कार्षीरि[१२]ह [१३]साहसं [१४]त्वम् ॥४०॥

(१) आकृष्याऽऽनीतेव । (२) सागरव्यवहारिसुकृतसमूहैः । (३) सागरे पतनसमये । (४) प्रकटीभूय । (५) गगने । (६) समुद्रवन्मन्द्रशब्दा । (७) नागेन्द्रस्य पत्नी । (८) वदति स्म । (९) इमामग्रे वक्ष्यमाणाम् । (१०) मा इति निषेधे । (११) हे पुत्र ! । (१२) समुद्रे । (१३) झम्पालक्षणं साहसम् । (१४) त्वं सर्वथा मा कार्षीः ॥४०॥

मध्ये[१]ऽम्बुधे[२]रस्ति [३]समस्तदुःख-पाथोधिमन्थावनिभृत्प्रभावः(वम्) ।
[४]निधानम[५]म्भोनिधिमेखलाया, इवाऽन्तरे [६]पार्श्वजिनेन्द्रबिम्बम् ॥४१॥

(१) समुद्रस्य जलमध्ये । (२) विद्यते । (३) समस्तक्लेशसागरस्य मथने मन्थाचलस्य -मन्दराद्रेस्तुल्यमाहात्म्यम् । (४) निधिमिव । (५) भूमेर्मध्ये । (६) पार्श्वनाथमूर्त्तिः ॥४१॥

[१]जलात्त[२]दा[३]नाय्य जनैः [४]प्रपूज्य, [५]संस्थापितं स्वे [६]वहने [७]धनेश ! ।
[८]उत्तालवातूलमिवा[९]ऽर्कतूलं, [१०]विघ्नं [१२]पुरै[११]तं[1] [१२]हरति [१३]त्वदीयम् ॥४२॥

(१) समुद्रपानीयात् । (२) तत्पार्श्वबिम्बम् । (३) कर्षयित्वा । (४) पूजयित्वा । (५) रक्षितम् । (६) स्वकीययानपात्रे । (७) व्यवहारिन् ! । (८) त्वरितप्रवर्तमानपवनसमूह इव । (९) अर्कवृक्षस्य पिचुमिव । (१०) प्रत्यूहम् । (११) एतं जलदपटलादिरूपम् । (१२) पुरा हन्ति(हरति) । हरिष्यतीत्यर्थः । 'यावत्पुरायोगे भविष्यदर्थे वर्त्तमानेति' सूत्रेणाऽत्र पुरा हन्तीति हनिष्यतिप्रयोगः स्यात् । (१३) तव इमं त्वदीयम् ॥४२॥

मो[१]द्धाटयेः [२]स्वस्तरुपत्रपेटां, [३]सम्प्रापये[५]द्वीपपुरं पुन[४]स्ताम् ।
[६]परस्य [७]पृथ्व्या इव [७]वासवस्य, [८]तत्रा[९]ऽजयोर्वीशितु[१०]रर्पयेस्त्वम् ॥४३॥

(१) मा विकाशीकुर्याः । (२) कल्पद्रुमपत्रघटितां मञ्जूषाम् । (३) अनुद्घाटितद्वारामेनाम् ।

1. °रैतद्धरति° हीमु° ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) नये: । (५) द्वीपनाम्नि नगरे । (६) अन्यस्य । (७) भूमेरिन्द्रस्य । (८) तत्र द्वीपपुरे । (९) अजयराजस्य । (१०) यच्छे: ॥४३॥

[१]उद्घाट्य पेटां प्रकटां[२] प्रणीय, [३]चित्रादिवल्लीमिव [४]पार्श्वमूर्त्तिम् ।
[५]छिनत्त्वि[६]दंस्नात्रजलाभिषेकात्, शतं [७]स स[८]प्तोत्तरमङ्गरोगान् ॥४४॥

(१) द्वारं विकाशीकृत्य । (२) दृग्गोचरां कृत्वा । (३) चित्रावल्लीमिव । (४) श्रीपार्श्वनाथप्रतिमाम् । (५) नाशयतु । (६) अस्या: पार्श्वप्रतिमाया: स्नात्रजलसिञ्चनात् । (७) स अजयनृपस्त्रिखण्डभोक्ता । (८) सप्तोत्तरशतस्वशरीरामयान् हन्तु । "स दिश: सकला जिष्णु-र्जयन्प्राग्भवकर्मणा । सप्तोत्तरशतेनाथ व्याधिभि: परिपीडित: ॥१॥ आक्रामन्निति भूपालान्बला-त्सौराष्ट्रमण्डलम् । क्रमात्प्रापदखण्डाज्ञस्त्रिखण्डावनिमण्डन: ॥२॥" इति शत्रुञ्जयमाहात्म्ये ॥४४॥

[१]आसादितप्राणितवत्पुन: [२]स्वं, [३]विदन्नि[४]शम्येति [५]गिरं [६]त्रिदश्या: ।
[७]आनाययन्नी[८]रधिनीरमध्या-ज्जनै: [९]स [१०]पोते [११]जिनमूर्त्तिपेटाम् ॥४५॥

(१) सम्प्राप्तजीवितव्यमिव । (२) आत्मानम् । (३) मन्यमान: । (४) आकर्ण्य । (५) वाणीम् । (६) पद्मावत्या: । (७) आनायिता । (८) समुद्रजलमध्यात् । (९) व्यवहारी । (१०) वहने । (११) पार्श्वप्रतिमासम्बन्धिनीं पेटाम् ॥४५॥

[१]क्षणा[२]द[३]दृश्योऽभव[४]दिन्द्रजाल-मिवो[२]पसर्गो[५]ऽथ विभो:[६] प्रभावात् ।
[७]चमत्कृतस्त[८]त्स[९] विलोक्य पेटा-[१०]मभ्यर्च्य [११]भोगादि पुरो[१२] चकार ॥४६॥

(१) क्षणमात्रात् । (२) जलदेवताजनितोपद्रव: । (३) क्षणदृष्टनष्टोऽजनिष्ट । (४) इन्द्रजालमिव । (५) वहने पार्श्वनाथप्रतिमासमागमनानन्तरम् । (६) भगवन्माहात्म्यात् । (७) विस्मयं प्राप्त: । (८) जलदेवतादिविघ्नविनाशादि । (९) सागर: । (१०) पूजयित्वा । (११) काकतुण्डायु(द्यु)त्क्षेपम् । (१२) पेटाया अग्रे चकार ॥४६॥

[१]ततो[२]ऽनुकूलै: [३]पवनै: [४]पयोधौ[1], [५]प्रवर्त्तितस्त[६]द्व्यवहारिपोत: ।
[७]मत्तद्विप: [८]सादिभि[९]र्ध्वनीवा[१०]ऽऽलानं [११]सुखं [१२]द्वीपपुरं [१३]प्रपेदे ॥४७॥

(१) विघ्नविगमानन्तरम् । (२) सुखप्रवृत्तिकारिभि: । (३) वातै: । (४) समुद्रे । (५) प्रेरित: । (६) सागरयानपात्र: । (७) मदोद्धतहस्तीव । (८) आधोरणै: । (९) मार्गे । (१०) आलानस्तम्भम् । (११) सुखेन निर्विघ्नम् । (१२) द्वीपनगरम् । (१३) प्राप ॥४७॥

[१]उत्तीर्य [२]तर्याश्च बलिं [३]विकीर्य, [४]पेटामु[५]पादाय सुतामि[६]वाऽब्धे: ।
[७]इहा[८]ऽऽह्वयन्किं हरितां[९] महेन्द्रा-न्पा[१०]र्श्वं प्रणन्तुं [११]घनतूररावै: ॥४८॥
[१]आगान्नृ[२]पाभ्यर्ण[३]म[४]थाऽर्णवीयं, वस्तू[५]पदीकृत्य [६]निवेद्य [७]वृत्तम् ।
[८]पेटां [९]डुढौके स पुर: [१०]क्षितीन्दो-[११]रुजां [१२]चिकित्सामिव तां [१३]द्विधाऽपि ॥४९॥

1. पयोनिधौ हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) समुद्रोपकण्ठ आगत्य । (२) वेडायाः । (३) चतुर्दिक्षु बलि-बाकुलादि क्षिप्त्वा । (४) मञ्जूषाम् । (५) गृहीत्वा । (६) लक्ष्मीमिव । (७) पेटापार्श्वे । (८) आकारयन् । (९) दशदिक्पालान् । (१०) पार्श्वजिनम् । (११) बहुवादित्रशब्दैः ॥४८॥

(१) आगतः । (२) अजयराजसमीपे । (३) पश्चात् । (४) समुद्रसम्बन्धि वस्तु । (५) ढौकयित्वा । (६) कथयित्वा । (७) स्वोपसर्गापगमादिवार्त्ताम् । (८) मञ्जूषाम् । (९) उपदीचकार । (१०) राज्ञोऽग्रे । (११) रोगाणाम् । (१२) प्रतिक्रियाम् । (१३) द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम् । अन्तरङ्गरोगाणां-कर्मणाम्, बाह्यरोगाणां ज्वरादीनां च प्रतिक्रियां-निवारिणीम् ॥४९॥ युग्मम् ॥

[१]प्रणीय [२]पूजां [३]क्षितिपेन [४]पूर्वं, [५]प्रोद्घाटितायाः [६]प्रमदेन [७]तस्याः ।
[८]पार्श्वप्रभुः [९]प्रादुरभूत्[१०]तमोभि-[११]द्द्यौस्वानिव [१२]प्राग्गिरिकन्दरायाः ॥५०॥

(१) कृत्वा । (२) अर्चाम् । (३) राज्ञा । (४) प्रथमम् । (५) प्रकाशीकृताया । उद्घाटितद्वारायाः । (६) हर्षेण । (७) पेटायाः । (८) पार्श्वनाथः । (९) प्रकटीबभूव । (१०) तमोऽज्ञानमन्धकारं च तस्य भेत्ता । (११) रविरिव । (१२) उदयाचलगुहायाः ॥५०॥

[१]पार्श्वेशितुः [२]स्नात्रजलाभिषेका-न्नतो[३]ऽजयोर्वीन्द्रतनूलतायाः ।
[४]महामयोत्थः [५]प्रशशाम [६]तापो, [७]भूमेरिव [८]ग्रीष्मभवो[९]ऽब्दवर्षात् ॥५१॥

(१) पार्श्वनाथस्य । (२) स्नपनपानीयसिञ्चनात् । (३) अजयराजस्य शरीरात् । (४) उत्कृष्टरोगजनितः । (५) शान्तिं प्राप । (६) [नि]दाघः । (७) पृथिव्या इव । (८) उष्णकालोत्पादितः । (९) मेघवृष्टेः ॥५१॥

महामह[१]ः कोऽपि [२]महीहिमांशौ, [३]प्रावर्त्तता[४]ऽनामयतामवाप्ते ।
[६]मेने जनो [७]यत्र [८]निजं [९]प्रपन्न-स्वःप्राज्यसाम्राज्यमिव [१०]प्रमोदात् ॥५२॥

(१) अतिशायी उत्सवः, अद्भुतवैभवः । (२) राजनि । (३) प्रससार । (४) नीरोगताम् । (५) प्रपन्ने । (६) अमन्यत । (७) यस्मिन्महोत्सवे । (८) आत्मानम् । (९) प्राप्तं स्वर्गस्य समग्रं सम्यक्प्रकारेण वा आधिपत्यं यत्र । (१०) हर्षातिशयादिति ॥५२॥

[१]तदो[२]पतापप्रकरैर्वियुक्तः, [३]साकेतनेताऽप्यधिकं [४]दिदीपे ।
[५]घनात्ययन्यक्कृतनीरवाहो-परोधनिर्मुक्त इ[६]वाऽमृतांशुः ॥५३॥

(१) स्नात्रजलाभिषिञ्चनानन्तरम् । (२) रोगगणैर्विरहितः । (३) अयोध्याधिपतिः । (४) अतिशायितया दीप्यते स्म । (५) शरत्कालेन पराभूतस्य मेघस्य रुन्धनान्निर्मुक्तो-निर्गतः । (६) चन्द्रः ॥५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]ततो[२]ऽजयाख्यं नगरं [३]निवास्य, [४]पुरीमयोध्यामपरामिवा[५]ऽत्र ।
[६]केनाऽपि [७]सिद्धायतनं [८]सुरेण, [९]मुक्तं कि[१०]मस्मिंश्च [११]विधाप्य [१२]चैत्यम् ॥५४॥
[१]संस्थाप्य [२]तं [३]तत्र [४]जिनेन्द्रबिम्बं, [५]सिद्धिश्रियेवोपयमं[६] स्वकीयम् ।
[७]काङ्क्षन्निव [८]द्वादशसूर्यतेजो, दत्वा[९]ऽर्चितुं द्वादश[१०] शासनानि ॥५५॥
[१]भूमीभुजां [२]शेखरयन्शि[३]रस्सु, [४]स्वाज्ञां सुमानामिव[५] मालिकां सः ।
[६]स्वर्गीव [७]नीरोगतनुः [८]क्रमेण, [९]स्वां [१०]राजधानीं पुनर[११]ध्युवास ॥५६॥
त्रिभिर्विशेषकम्[1] ॥

(१) रोगापगमानन्तरम् । (२) अजयाभिधं नगरम् । (३) वासयित्वा । (४) अन्या साकेतनगरी, "साकेतं कोसलाऽयोध्या "इति हैम्याम् । (५) द्वीपसमीपे । (६) अनिर्दिष्टनाम्ना । (७) शाश्वतचैत्यम् । (८) देवेन । (९) आनीय मुक्तम् । (१०) अजयपुरे । (११) शिल्पिभिः कारयित्वा । (१२) प्रासादम् ॥५४॥

(१) स्थापयित्वा । (२) सागरमहेभ्यानीतं पूर्वोक्तप्रभावम् । (३) अजयपुरे । (४) पार्श्वप्रतिमाम् । (५) मोक्षलक्ष्म्या समम् । (६) स्वकीयं विवाहम् । (७) संस्थाप्य वाञ्छन् । (८) द्वादशसङ्ख्याकानां रवीणां प्रतापम् । (९) पूजयितुमर्पयित्वा । (१०) द्वादश ग्रामान् ॥५५॥

(१) राज्ञाम् । (२) अवतंसीकुर्वन् । (३) मस्तकेषु । (४) निजामाज्ञाम् । (५) पुष्पमालामिव । (६) देव इव । (७) रोगरहितवपुः नृपः । (८) आगमनप्रयाणपरिपाट्या । (९) निजाम् । (१०) वासनगरीमयोध्याम् । (११) आश्रयति स्म ॥५६॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।

[१]ध्यातो[२]ऽधुना[३]ऽप्येष [४]पयोधिमध्ये, [५]प्रयाति [६]वातेऽप्य[2][७](न)नुकूलभावम् ।
[८]निर्विघ्नय[९]न्पोत इवा[१०]ऽङ्गभाजः, [११]प्रभुः [१२]सुखं [१३]लम्भयति [१४]प्रतीरम् ॥५७॥

(१) ध्यानगोचरीकृतः स्मृतो वा । (२) अस्मिन्वर्तमानकालेऽपि । (३) पार्श्वनाथः । (४) जलधिजलान्तराले । (५) गच्छति सति । (६) पवने । (७) मनोऽ[न]नुकूलताम् । (८) वहनानां सुखप्रवर्तकानां विघ्नरहितान् कुर्वन् । (९) यानपात्र इव । (१०) जनान् । (११) पार्श्वनाथः । (१२) सातेनैव । (१३) प्रापयति । (१४) तटभूमीं-स्ववेलाकूलम् ॥५७॥

[१]बहूदितैः [२]किं [३]भवदीयभाग्यै-[४]रारोपितस्तेन [५]महीधनेन ।
[६]सुपर्वशाखीव [७]समीहितानि, [८]यच्छं[९]श्चिरं [१०]नन्दतु [११]पार्श्वनाथः ॥५८॥

(१) अनल्पैः कथितैः । (२) किमस्तु । (३) युष्मत्सम्बन्धिभिः सुकृतैः । (४) उप्तः । (५) अजयनृपेण । (६) कल्पतरुरिव । (७) कामितानि । (८) ददानः । (९) बहुकालं यावत् । (१०) विजयताम् । (११) श्रीपार्श्वः ॥५८॥

1. इतः परं हीमु०पुस्तकान्तर्गतः ५७तमः श्लोकोऽत्र नास्ति । 2. ०वाते प्रतिकूलभावम् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]तत्रो[2]पदिश्ये[3]ति [4]जनान्[5]मुमुक्षु-क्षोणीऋमुक्षा [6]क्षणम[7]क्षिलक्ष्यम् ।
[7]प्रणीय [8]नत्वा च तमा[9]त्मना [10]तत्पुरं [11]पवित्रीकृतवान्स [12]तद्वत् ॥५९॥

(१) चैत्यवेदिकायाम् । (२) उपदेशं-देशनां दत्वा । (३) इत्युक्तप्रकारेण पार्श्वनाथागमनवृत्त्या । (४) जनानुद्दिश्य । (५) श्रीहीरविजयसूरिः । (६) क्षणमात्रम् । (७) दृग्गोचरीकृत्य । (८) नमस्कारं कृत्वा । (९) स्वयम् । (१०) अजयपुरम् । (११) पुनाति स्म । (१२) श्रीपार्श्वनाथ इव ॥५९॥

[1]द्वीपस्य [2]सङ्घोऽप्य[3]खिलो [4]मुनीन्दो-[5]रभ्यागमत्[6]तत्र [7]सहाङ्गनाभिः ।
[8]माहात्म्य[9]मद्वैत[10]मवेत्य तस्य, [11]शुश्रूषया [12]लेखगणः किमेषः ॥६०॥

(१) द्वीपबन्दिरस्य । (२) जनसमुदायः । (३) समग्रः । (४) सूरेः । (५) सम्मुखमाजगाम । (६) अजयपुरे । (७) स्त्रीभिः सार्द्धम् । (८) महिमानम् । (९) असाधारणम् । (१०) ज्ञात्वा । (११) सेवितुमिच्छया । (१२) देवव्रजः ॥६०॥

[1]लोकम्पृणान्वीक्ष्य गुणान्[2]गणेन्दोः, [3]प्रीता [4]प्रणीया[5]ऽगणितात्ममूर्त्तीः ।
[6]नम्रागतस्त्रैणमिषेण [7]लक्ष्मी-[8]र्नमस्यति [9]स्तौति च [10]गायतीव ॥६१॥

(१) विश्वाह्लादकान् । (२) गणधरस्य । (३) सन्तुष्टचित्ता । (४) कृत्वा । (५) गणनातीताः स्वशरीरयष्टीः । (६) नमनशीलतया समागतं यद्वशामण्डलं, तस्य कपटेन । (७) जलधिनन्दना । (८) नमस्करोति । (९) स्तुतिगोचरीकरोति । (१०) गानविषयमानयतीव । वार्द्धेः सामीप्यात्तत्तनयागमनं युक्तमेव ॥६१॥

[1]ततः [2]प्रतस्थे [3]प्रभु[4]रुन्नताख्यं, पुरं प्रति [5]प्रीतिमना मुनीन्द्रः ।
[6]मेघागमे [7]मानसम[8]भ्रमार्गः(र्ग)-वहाप्रवाहादिव राजहंसः ॥६२॥

(१) सङ्घागमनानन्तरमजयपुरात् । (२) प्रचलितः । (३) सूरिः । (४) उन्नतनामनगराभिमुखम् । (५) पार्श्वयात्रया हृष्टमानसः । (६) वर्षाकाले । (७) मानसं नाम हंसवाससरः । (८) गङ्गाजलपूरात् ॥६२॥

[1]शिरोधृतश्वेतसुवर्णकुम्भाः, काश्चि[2]ल्लसन्ति स्म [3]विलासवत्यः ।
[4]श्यामादिवाऽलक्ष्म्य इवोद्वहत्यः, [5]सम्पूर्णचन्द्राम्बुजबन्धुबिम्बान् ॥६३॥

(१) मस्तकोपरि कलिता उज्ज्वलाः शोभनवर्णा रूप्यस्वर्णानां वा कलशा याभिः । (२) शोभन्ते । (३) विलासो-गजेन्द्रगमनादिकः शृङ्गारादिविभ्रमो वा विद्यते यासां ताः । (४) रजनिदिनश्रिय इव । (५) अखण्डचन्द्रमार्त्तण्डमण्डलान् । चन्द्रसूर्याणां बहुत्वापेक्षया बहुवचनम् ॥६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1][१]अवाकिरन्काश्चन [२]मुक्तिकाभि-[३]र्नवोपयन्तारमिवा[४]ऽक्षतैस्[५]तम् ।
[६]सिद्धाद्रियात्रोद्भवपुण्यलक्ष्म्या, [७]नवोढयाऽ[८]लङ्क्रियमाणपार्श्वः ॥६४॥

(१) वर्द्धयन्ति स्म । (२) लघुमौक्तिकैः । (३) नवपरिणीतवरमिव । (४) लाजैः । (५) सूरिम् । (६) विमलाद्रियात्रोदितसुकृतश्रिया । (७) नवपरिणीतया नवाश्रितया वा । (८) भूष्यमाणसमीपः ॥६४॥

[1]अवाकिरन्काश्चन मुक्तिकाभि-[१]रभ्येत्य [२]वाचंमयसार्वभौमम् ।
[३]क्षीरोर्मयो [४]मेरुमिव [५]प्रमाथ-कालोच्छलद्भूरिपयःपृषद्भिः ॥६४॥ पाठान्तरम् ॥

(१) सम्मुखमागत्य । (२) सूरीन्द्रम् । (३) क्षीरशब्देन क्षीरसागरस्तस्य कल्लोलाः । यथा रघुवंशे-''क्षीरोर्मय इवाच्युत'' । (४) सुराचलमिव । (५) प्रकर्षेण मथनसमय-समुत्पतद्भि-र्जलकणैः ॥६४॥ पाठान्तरम् ॥

[१]गीतिं [२]जगुर्[३]नागरिकाः [४]किरन्तीं, [५]सुधां [६]सुधादीधितिमण्डलीवत् ।
[७]यां [८]श्रोत्र[९]पत्रैर्विनिपीय [१०]चित्रा-[११]र्पितैरिवाऽभूयत [१२]मार्गमार्गैः ॥६५॥

(१) गानम् । (२) गायन्ति स्म । (३) द्वीपोन्नतनगरपुरन्ध्र्यः । (४) वर्षन्तीम् । (५) अमृतम् । (६) अमृतद्युतिमण्डलीमिव । (७) गीतिम् । (८) कर्णपर्णैः । (९) सादरं श्रुत्वा धयित्वा च । (१०) आलेख्यलिखितैरिव । (११) जातम् । (१२) वर्त्मनो मृगसमूहैः ॥६५॥

[१]गजाधिरुढा [२]व्यरुचन्[३]कुमारा, [४]विभूषिता [५]भूषणधारणीभिः ।
[६]प्रवालपुष्पावलिशालमानाः, [७]प्रस्थप्ररूढा इव [८]बालसालाः ॥६६॥

(१) सिन्धुरस्कन्धाध्यासिनः । (२) राजन्ति स्म । (३) बालकाः । (४) अलङ्कृताः । (५) आभरणमालाभिः । (६) पल्लवकुसुमश्रेणिभिः शोभमानाः । (७) शिखरोद्गताः । (८) लघुवृक्षाः ॥६६॥

काश्चित्[१]कुमार्यः [२]शिबिकाः श्रयन्त्यो, [३]माणिक्यभूषा [४]वपुषा [५]वहन्त्यः ।
[६]कुतूहलाद्[७]भूवलयं भजन्त्यो, [८]विमानयाना इव [९]नाकिकन्याः ॥६७॥

(१) बालिकाः । (२) याप्ययानानि । (३) रत्नालङ्कारान् । (४) शरीरेण । (५) धारयन्त्यः । (६) कौतुकेन । (७) महीमण्डलमालम्बमानाः । (८) देवयानाधिरूढाः । (९) देवकुमारिकाः ॥६७॥

---

1. हीमु०पुस्तके एतच्छ्लोकद्वयमेवं वर्तते- अवाकिरन्काश्चनमुक्तिकाभि-रभ्येत्य वाचंयमसार्वभौमम् ।
क्षीरोर्मयो मेरुमिव प्रमाथ-कालोच्छलद्भूरिपयःपृषद्भिः ॥६५॥
मुक्ताफलैः काश्चिदवाकिरंस्तं नवोपयन्तारमिवाऽत्र लाजैः ।
सिद्धाद्रियात्रोद्भवपुण्यलक्ष्म्या नवोढयाऽलङ्क्रियमाणपार्श्वः ॥६६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]गत्या जितोऽनेन [२]किमभ्र[३]कुम्भी, द्रष्टुं[४] तमित्यु[५]त्सुकितो[६]ऽब्धिमध्यात्[७] ।
[८]किमेयिवाने[९]ष [१०]तदन्ववायः, [११]शृङ्गारितास्त[१२]त्र गजा विरेजुः ॥६८॥

(१) मन्थरगमनविलासेन । (२) किं-कथं केन प्रकारेण । (३) ऐरावणः । (४) सूरिमवलोकयितुम् । (५) उत्कण्ठितः । (६) अमुना प्रकारेण । (७) समुद्रजलमध्यात् । (८) आगतवान् । (९) एष प्रत्यक्षदृश्यमानः । (१०) गजघटारूपः । ऐरावणस्य समुद्रमध्यान्निःसृतत्वात्तत्र च समुद्रस्य सामीप्यादियमुत्प्रेक्षा । (११) सिन्दूरादिशृङ्गारप्रापिताः । (१२) सूरिसम्मुखागमनावसरे ॥६८॥

[१]पर्याणितास्तत्र [२]तुरङ्गमास्ते[३], रेजुर्ज[४]वाधःकृतवातवेगाः ।
[५]यैर्निर्जिता [६]भानुमतस्तु[७]रङ्गा, [८]ह्रियेव ना[९]ऽद्यापि भुवं [१०]स्पृशन्ति ॥६९॥

(१) पल्ययनयुक्तीकृताः । (२) हयाः । (३) ते इति तादृशा येऽग्रे उत्प्रेक्षां प्रापिताः । अथवा ते इति सिन्धुकच्छादिजातीयाः प्रसिद्धाः । (४) वेगविनिर्जितवायुरंहसः । (५) यैस्तुरगैः पराजिताः । (६) सूर्यस्य । (७) हयाः । (८) लज्जयेव । (९) अद्य दिनं यावत् । (१०) भुवं न स्पृशन्ति - भूमौ नागच्छन्ति । लज्जिता हि मुखं दर्शयितुमनलंभूष्णवः ॥६९॥

[१]रथाङ्गभाजस्त्व[२]रमाणताक्ष्याः, [३]सुजातरूपा [४]धननन्दकाश्च ।
[५]अम्भोजनाभा इव [६]कामराम-शोभाः [७]शताङ्गाः [८]शतशः प्रचेलुः ॥७०॥

(१) रथाङ्ग-रथचक्रं सुदर्शनचक्रं वा भजन्ते इति । (२) शीघ्रगामिनो वाजिनो गरुडाश्च येषाम् । (३) शोभनं जातमुत्पन्नं रूपं आकारविशेषः स्वर्णं च येषु । (४) बहून्हर्षयन्तीति, निबिडनन्दकनाम खड्गं च येषां ते । (५) कृष्णा इव । (६) काममतिशयेन रामा-मनोज्ञा शोभा येषां तथा प्रद्युम्नबलभद्राभ्यां शोभा येषाम् । (७) रथाः । (८) शतसङ्ख्याः ॥७०॥

[१]तूरस्वरै[२]श्चित्कृतिभी रथानां, [३]हयालिहेषा [४]गजगर्जितैश्च ।
[५]नृणां [६]स्तवादिध्वनितै[७]र्व्रतीन्दोः, [८]श्लोकैरिवा[९]ऽपूरि [१०]समग्रलोकः ॥७१॥

(१) वाजि(दि)त्रनिर्घोषैः । (२) चित्कारशब्दैः । (३) अश्वश्रेणीनां हेषारवैः । (४) हस्तिनां गर्जितैः । (५) श्राद्धभाट्टगायनादिजनानाम् । (६) स्तुतिछन्द(दो)गान्धर्वप्रमुखशब्दैः । (७) हीरसूरेः । (८) यशोभिरिव । (९) पूर्णीकृतः । निर्भरं भृत इत्यर्थः । (१०) समस्तश्चतुर्दिक्पर्यन्तभूमी यावद्भुवनम् ॥७१॥

[१]स्त्रीभ्य[२]स्तदा [३]य(त)द्गुणगायनीभ्यः, पै[४]ञ्जूषपीयूषरसाभिषेकाम् ।
[५]वाणी[६]मधीत्या[७]ऽभ्यसितुं [८]वनस्थाः, [९]शिष्या इवा[१०]ऽऽसन्कलकण्ठका[११]न्ताः ॥७२॥

(१) दशाभ्यः सकाशात् । (२) सूरीन्द्रगुणानां गानं कर्त्रीभ्यः । (३) सम्मुखागमनसमये । (४) श्रवणयोः सुधारससिञ्चकाम् । (५) वाग्विलासम् । (६) पठित्वा । (७) अभ्यासं कर्त्तुम् । (८) वनस्थायिनः (९) शिष्या अप्यधीत्यैकान्तेऽभ्यसन्ति, तद्वत् । (१०) जाताः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) कोकिलाः ॥७२॥

[1]ध्वनन्नफेरीसखभूरिभेरी-भाङ्काररावैः [2]प्रतिशब्दितेन ।
नन्तुं [3]सवेशाम्बुधिशायिशौरिः, [4]प्रबोध्यते [5]सूरिसमागमे किम् ॥७३॥

(१) शब्दायमाना नफेर्यो-मुखेन वादनीयवाद्यविशेषाः, ता एव सखा सहाया यासां, तादृश्यो भूरयो बहुला भेर्यः-दुन्दुभयस्तासां भाङ्कारशब्दैः । (२) प्रतिध्वनिना । (३) समीपस्थसागरे शेते इत्येवंशीलः-कृष्णः । (४) निर्निद्रीक्रियते । (५) प्रभोरुन्नतपुरप्रवेशोत्सवे ॥७३॥

[1]तदाऽ[2]ब्धिमध्यप्रतिशब्दसान्द्रैः, [3]स्मरध्वजौघध्वनिपूर्यमाणैः ।
[4]प्रमोदमाद्यत्तुमुलैर्जनानां, [5]व्योमेव भूः[6] [7]शब्दगुणा किमासीत् ॥७४॥

(१) तस्मिन्प्रभुप्रवेशमहोत्सवे । (२) समुद्रजलान्तं प्रतिनादैर्निबिडीभूतैः । (३) वादित्रमण्डली-रावैभ्रियमाणैर्बहुलीक्रियमाणैः । (४) हर्षातिशयेन मदं प्राप्नुवतां जनानामतिबहुल-शब्दैः । (५) गगनमिव । (६) भूमिरपि । (७) शब्द एव गुणो यस्यास्तादृशी जज्ञे ॥७४॥

[1]तदुत्सवे [2]मूर्च्छति [3]भूर्भुवःस्व-स्त्रयीप्रसत्तिं [4]प्रदिशत्य[5]पूर्वाम् ।
[6]अलञ्चकार [7]प्रभु[8]रुन्नताख्यं, पुरं [9]हरिर्द्वा[10]रवतीमिवाऽसौ ॥७५॥

(१) तस्मिन् प्रभुप्रवेशमहे । (२) वृद्धिमतिशायितां श्रयति सति । (३) त्रिजगज्जनानां प्रसन्नतां-प्रमोदप्रकर्षम् । (४) यच्छति । (५) असाधारणाम् । (६) भूषयति स्म । (७) हीरसूरिः । (८) उन्नतनाम नगरम् । (९) विष्णुः । (१०) द्वारिकामिव ॥७५॥

[1]तस्मिन्न[2]तेर्गोचरयांचकार, [3]चैत्येषु [4]तीर्थाधिपतीन्[5]मुदा सः ।
[6]कण्ठीरवः [7]शैलगुहामिवा[8]ऽथा[9]-ऽनैषीद्[10]द्विभूषां [11]वसतिं [12]व्रतीन्द्रः ॥७६॥

(१) उन्नतपुरे । (२) नमस्कृतेर्विषयं नयति स्म । ननामेत्यर्थः । (३) प्रासादेषु । (४) जिनान् । (५) हर्षेण । (६) सिंहः । (७) गिरिकन्दराम् । (८) अथ-पश्चात् । (९) प्रापयति स्म । (१०) शोभाम् । (११) उपाश्रयम् । (१२) सूरिः ॥७६॥

[1]ततः [2]समुद्दिश्य [3]महेभ्यसभ्यान्, [4]धर्मोपदेशं स [5]वशी [6]दिदेश ।
[7]पीयूषवत्ते[8]ऽपि [9]नीपीय [10]वत्सा, इवा[11]ऽवहन्[12]सम्मदमेदुरत्वम् ॥७७॥

(१) उपाश्रये पादावधारणानन्तरम् । (२) उद्देशं कृत्वा । (३) व्यवहारिसदस्यान् । (४) देशनाम् । (५) जितेन्द्रियः । (६) ददौ । (७) अमृतमिव नवं दुग्धमिव वा । (८) इभ्यसभ्या अपि । (९) रसयित्वा । (१०) तर्णका इव । (११) दधुः । (१२) हर्षेण पुष्टताम् ॥७७॥

[1]क्षेत्रेषु[2] [2]नीरैरिव [3]नीरवाहा, [4]द्युम्नांशुकै[5]रर्थिषु [6]ते [7]ववर्षुः ।
[8]प्रभावनां [9]श्रीफलपूगपूगै-श्चक्रुस्ततो [10]रूपकनाणकैश्च ॥७८॥

---

1. तदाऽद्रिमध्य० हीमु० । 2. ०ष्विवाम्बूनि नभोम्बुवाहा द्युम्नांशुकान्यर्थिषु हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कृषिभूमीषु । (२) जलैः । (३) जलदाः । (४) द्रव्यवस्त्रैः । (५) याचकेषु । (६) इभ्याः । (७) वर्षन्ति स्म । (८) सम्मुखसमागतानां सकलजनानां विश्राणनाम् । (९) नालिकेरक्रमुकनिकरैः । (१०) रूप्यनाणकैः ॥७८॥

[1]अन्येऽपि [2]सङ्घाः [3]पुरपत्तनेभ्यो-[4]ऽभ्येत्या[5]ऽभजन्[6]सूरिसहस्त्ररश्मिम् ।
[7]अश्वादिदानानि [8]ददु[9]र्महेन्द्रा, इव [10]प्रमोदाद्वयवादसान्द्राः ॥७९॥

(१) अपरेऽपि । (२) श्राद्धवर्गाः । (३) देवकपत्तन-वेलाकूल-मङ्गलपुर-जीर्णदुर्ग-नवीननगरादिभ्यः । (४) प्रभुपार्श्वे समेत्य । (५) सेवन्ते स्म । (६) सूरिराजम् । (७) वाजिप्रमुखाणि बहुदानानि च । (८) यच्छन्ति स्म । (९) नृपा इव । (१०) हर्षाणामसाधारणभावेन बहलीभूताः ॥७९॥

[1]आगृह्ण[2]तस्तान[3]नुगृह्य लोका-[4]स्तत्रां[5]ऽशुसङ्घो[6]ऽशुमतीव तिष्ठन् ।
[7]पर्जन्यकालो[8]ऽभ्रमिवो[9]न्नताख्यं, [10]व्यातन्तनी[11]दुन्नतिमत्पुरं सः ॥८०॥

(१) आग्रहं-विज्ञप्तिं कुर्वतः । (२) तान् द्वीपोन्नतजनान् । (३) अनुग्रहं-प्रसादं कृत्वा । (४) तत्रोन्नतनगरे । (५) किरणनिकरः । (६) भास्वति । (७) वर्षाकालः । (८) मेघमिव । (९) उन्नतनाम पुरम् । (१०) वितनोति स्म । (११) उन्नतियुक्तम् ॥८०॥

[1]घोरा[2]मनुष्ठानविधां [3]विधातु-[4]रुग्रं [5]तपस्तेज [6]उदीयते स्म ।
[7]दोषालि[8]र्मालम्भयतो [9]व्रतीन्दो-रिवो[10]त्तराशां [11]भजतो [12]गभस्तेः ॥८१॥

(१) अपरेषां मन्दसत्त्वानां भयङ्कराम् । (२) क्रियानुष्ठानप्रकारम् । (३) कर्त्तुः । (४) परैरन्यपाक्षिकैरसह्यम् । (५) तपसां ज्योतिः प्रतापश्च । (६) प्रकटीभवन्ति स्म । (७) दोषाणामपगुणानां रात्रीणां च श्रेणीम् । (८) निघ्नन्तः । (९) सूरेः । (१०) धनददिशम् । (११) श्रयतो । (१२) भास्करस्य ॥८१॥

[1]स्वश्राद्धसौधाहृतभक्तभोगा-द्यभिग्रहान्सो[2]ग्रह[3]मग्रहीत्सः ।
[4]श्रीबप्पभट्टिव्रतिशीतकान्ति-रिव [5]क्षितीन्द्रप्रतिबोधधुर्यः ॥८२॥

(१) निजश्रावकाणां तपापक्षश्राद्धानां सौधादानीतस्य भक्तस्याऽऽहारस्याऽऽदान-प्रमुखाभिग्रहान् । "भक्तं भक्तस्य नो कल्प्ये" दित्यादिकान् । (२) अपरैर्वाचकप्रज्ञांस(श)-साधुभिर्बहुविज्ञप्तोऽपि निर्बन्धात् । (३) गृह्णाति स्म । (४) श्रीबप्पभट्टिसूरिरिव । (५) राज्ञः पातिसाहेरामनृपस्य च प्रतिबोधे धुरीणः ॥८२॥

[1]जिनं [2]हृदम्भोजविलासराज-हंसायमानं [3]प्रणयन्[4]कदाचित् ।
[5]विधाय [6]बाह्येन्द्रियमौनमुद्रां, [7]ध्यानं [8]स [9]योगीन्द्र इव [10]व्यधत्त ॥८३॥

(१) वीतरागम् । (२) हृदयकमलकर्णिकायां क्रीडायां राजमराल इवाऽऽचरन्तम् । (३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुर्वन् । (४) कस्मिन्नपि समये । (५) कृत्वा । (६) बाह्यानां स्पर्शनघ्राणचक्षुःश्रवणानामिन्द्रियाणां मौनमुद्रां-समस्तव्यापारनिषेधम् । (७) चित्तैकाग्र्यम् । (८) सूरिः । (९) योगाधिरूढ इव । (१०) चकार ॥८३॥

[1]नीरन्ध्रपाथःपरिपूर्यमाण-पर्जन्यपुञ्जोर्जितगर्जितं किम् ।
[2]कदाऽपि रु[3]च्चैश्चरणेन्दिरायाः, [4]स्वाध्यायसान्द्रध्वनिमोदधार ॥८४॥

(१) सान्द्रस्य दृढस्य वा पयोभिर्भ्रियमाणस्य निर्गतं रन्ध्रं परस्थानं यथा स्यात्तथा पयोभि-र्भ्रियमाणस्य मेघमण्डलस्य प्रोद्दामगर्जारवमिव । (२) कस्मिन्नपि प्रस्तावे । (३) चारित्र-लक्ष्मीवल्लभः । (४) स्वाध्यायस्य बाढस्वरेण सिद्धान्तादिगणनरूपस्य निर्घोषं-धीरगम्भीररवम् । (५) चकार ॥८४॥

[1]तत्र प्रतिष्ठात्रितयी[2]मतुच्छो-त्सवोच्छलच्छेकमनःप्रमोदाम् ।
चक्रे मुनीन्द्रो [3]भुवनत्रयस्या[4]ऽधिपत्यलक्ष्मीः [5]स्पृहयन्नि[6]वाऽन्तः ॥८५॥

(१) उन्नतनगरे । (२) बहुलमहोत्सवेन वर्द्धमानः विदग्धानां हृदये हर्षो यस्याम् । (३) त्रैलोक्यस्य । (४) राज्यश्रियम् । (५) वाञ्छन्निव । (६) चित्ते ॥८५॥

[1]उग्रं तपो [2]धन्य इ[3]वाऽनुतिष्ठ-न्ना[4]द्यं [5]चतुर्मासकर्मा[6]ततान ।
[7]अपाटवात्किञ्चन [8]काययष्टेः, पुन[9]र्द्वितीयं [10]कुरुते स्म [11]तस्मिन् ॥८६॥

(१) अत्युत्कटम् । (२) धन्यानगार इव । (३) कुर्वन् । (४) प्रथमम् । (५) वर्षासमयम् । (६) ज्येष्ठस्थितिं व्यधत्त । (७) रोगादिना मन्दत्वादिकारणात् । (८) शरीरस्य । (९) द्वयोः सङ्ख्यापूरकम् । (१०) कृतवान् । (११) उन्नतपुरे ॥८६॥

[1]अथ [2]व्रतादानदिनात्तपो [3]य-त्ती[4]व्रं [5]व्रतीन्द्रेण [6]विधीयते स्म ।
[9]बभूव [7]यस्तस्य [8]परिच्छदश्च, [10]श्रीवीरव[12]त्किञ्चिदि[13]होच्यते [11]तत् ॥८७॥

(१) अथेति अधिकारान्तरकथनम् । (२) दीक्षाग्रहणवासरादारभ्य । (३) यत्किञ्चित्तप एकाशनादिकम् । (४) तीव्र-घोरं षष्ठाष्टमादि । (५) सूरिणा । (६) कृतम् । (७) पुनर्यः -यावत्सङ्घ्यस्तस्य प्रभोः । (८) परिवारः । (९) आसीत् । (१०) श्रीमहावीरस्येव । (११) तत्पूर्वोक्ततपोऽनुष्ठानादि । (१२) किञ्चिद्-देशमात्रम् (१३) इह ग्रन्थे मया यथाश्रुतं कथ्यते ॥८७॥

सूरीन्दुरेकाशनकं [1]न [2]याव-ज्जीवं [3]जहौ [4]न्यायमिव [5]क्षितीन्द्रः ।
[6]पञ्चाऽपि चासौ [6]विकृती[7]रहासी-द्दुर्णा[8]न्स्मरस्येव [9]पराबुभूषुः ॥८८॥

(१) दीक्षाग्रहणदिनादेकाशनकम् । (२) आजन्म । (३) न तत्याज । (४) नयम् । (५) नृपः । (६) दधिदुग्धप्रमुखाः पञ्चसङ्ख्याकाः । (७) जहाति स्म । (८) शब्दरूपगन्धर-सस्पर्शाख्यान्पञ्च कामगुणान् । (९) पराभवितुमिच्छुः ॥८८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]द्रव्याणि [2]वल्भावसरे व्रतीन्दुः, [3]सदा[4]ऽऽददे [5]द्वादश नो[6]ऽधिकानि ।
[7]किं [8]भावनाः [9]पोषयितुं [10]विशिष्य, [11]भवाब्धिपारप्रतिलम्भयित्रीः ॥८९॥

(१) धान्यपानीयादीनि । (२) भोजनसमये । (३) नित्यम् । (४) जग्राह । (५) सूर्यसङ्ख्यया । (६) नाऽपराणि । (७) किमुत्प्रेक्षायाम् । (८) द्वादशसङ्ख्याका अनित्यादि-भावनाः । (९) पुष्टा कर्त्तुम् । (१०) विशेषप्रकारेण । (११) संसारसमुद्रस्य पारस्य प्रापयित्रीः ॥८९॥

[1]व्रतिक्षितीन्द्रेण [2]ससप्तपञ्च-त्रिंशन्मिताः [3]कातरितान्यसत्वाः ।
[4]आहारदोषाः [5]कृतपापपोषा, [6]द्वेष्या इव [7]द्वेषजुषा [8]निषिद्धाः ॥९०॥

(१) प्रभुणा । (२) सप्तयुताः पञ्चत्रिंशत्, एतावता द्विचत्वारिंशन्मिताः । (३) कातरं करोतीति कातरयति, कातर्यते स्म कातरितः । यथा नैषधे-''सितच्छत्रितकीर्त्तिमण्डल'' इति, इति व्युत्पत्त्या । कातरीकृता अपरे प्राणिनो यैस्ते । (४) भुक्तेर्दोषाः । (५) निर्मितदुष्कर्मपुष्टयः । (६) वैरिण इव । (७) विरोधिना । (८) निवारिताः ॥९०॥

[1]अंहोद्रुहा[2]माभरणानि [3]भिक्षोः, किं [4]द्वादशानां [5]प्रतिमारमाणाम् ।
तपांसि यो [6]द्वादशभेदभिन्ना-न्य[7]पूपुषत्[8]कायम[9]शूशुषच्च ॥९१॥

(१) पापद्रोहकारिणीनाम् । (२) अलङ्काराः । (३) साधोः । (४) द्वादशसङ्ख्याकानाम् । (५) प्रतिमालक्ष्मीना(णा)म् । (६) अनशनोनोदरिकामुखानि षड्बाह्यानि, प्रायश्चित्तविनयादिकानि षडभ्यन्तराणि, इति द्वादशप्रकाराणि तपांसि । (७) पुष्णाति स्म-दृढमनस्त्वेन चक्रे । (८) शरीरम् । (९) तैस्तपोभिः शोषयति स्म-कृशीचकार ॥९१॥

[1]गुरोः [2]समीपे [3]विजयादिदान-वाचंयमेन्दो[4]र्विधिना [5]व्रतीन्द्रः ।
[6]आलोचनां [7]द्विर्[8]ग्रहयांबभूव, लो[9]कद्वयस्येव [10]विशुद्धये सः ॥९२॥

(१) धर्माचार्यस्य । (२) पार्श्वे । (३) विजयदान इतिनामसूरीन्द्रस्य । (४) निःशल्यत्वेन शास्त्रविधिना च । (५) सूरिः । (६) पापप्रकाशनपूर्वकप्रायश्चितविशेषग्रहणम् । (७) द्विर्वारम् । (८) गृह्णाति स्म । (९) वर्त्तमानागामुकयोर्लोकयोः । भवयोरित्यर्थः । (१०) निर्मलताकृते ॥९२॥

[1]उपोषणानां [2]त्रितयीं [3]व्यतानी-त्सूरीन्दुरालोचनयो[4]र्द्वयोः सः ।
[5]समीहमानो [6]मनसा[7]ऽधिगन्तुं, [8]पदं [9]त्रिलोकाग्रभवं किमेषः ॥९३॥

(१) उपवासानाम् । (२) शतत्रयीम् । (३) चक्रे । (४) द्वयोरालोचनाप्रायश्चित्तयोः । । (५) कृत्वा वाञ्छन् । (६) हृदयेन । (७) प्राप्तुम् । (८) स्थानम् । (९) जगत्त्रयस्योपरि सञ्जातम् ॥९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]षष्ठान्सपादां [2]द्विशतीं व्रतीन्द्रो, [3]व्यातन्तनीति स्म स [4]नीतिचन्द्रः ।
[5]साग्रेऽपि गव्यूतिशतद्वये [6]स्व-माहात्म्यमिच्छन्[7]जिनवत्किर्मु[8]र्व्याम् ॥९८॥

(१) पञ्चविंशत्यधिकशतद्वयम् । (२) उपवासद्वयलक्षणान्षष्ठान् । (३) चकार । (४) न्यायमार्गप्रकटीकरणे चन्द्रतुल्यः । (५) साग्रे इति पञ्चविंशतिगव्यूत्यधिके । गव्यूतिः-क्रोशद्वयं, तादृग्गव्यूतिशतद्वये । सपादगव्यूतिशतद्वयप्रमाणे इत्यर्थः । इति हैमनाममालावृत्तिव्याख्यानम् । (६) स्वमहिमानं - सप्तेतिप्रशमनादिकम् । (७) तीर्थकृत इव । (८) भूमौ ॥९८॥

[1]द्वासप्ततिं [2]सूरिसहस्त्ररश्मि-स्[3]तेदष्टमानां पुनरा[4]ततान ।
विद्मश्च[5]तुर्विंशतिकात्रिकस्य, [6]प्रसत्तिमा[7]धातुमना [8]जिनानाम् ॥९५॥

(१) द्विसप्ततिः । (२) सूरीन्द्रः । (३) आलोचनाया अष्टमानाम् । (४) चक्रे । (५) अतीतानागतवर्तमानलक्षणस्य चतुर्विंशतिकात्रयस्य । (६) प्रसादम् । (७) कर्त्तुकामः । (८) तीर्थकृताम् ॥९५॥

चक्रे य [1]आचाम्लसहस्त्रयुग्मं, [2]स्वयं [3]जिनं [4]स्तोतुं[5]मवेक्षितुं वा ।
[6]पृथक्सहस्त्रे रसनेक्षणानां, [7]विद्मः [8]फणीन्दोरिव [9]लिप्समानः ॥९६॥

(१) आचाम्लानां विंशतिशतीम् । (२) आत्मना । (३) भगवन्तम् । (४) स्तुति-गोचरीकर्तुम् । (५) नयनविषयं नेतुं वा । (६) भिन्नं भिन्नं विंशतिशतीं जिह्वानां नयनानां च । (७) वयमेवं जानीमः । (८) शेषनागस्येव । तस्य हि सहस्त्रफणत्वेन नयनानां जिह्वानां च द्विसङ्ख्याभाक्त्वेन द्विसहस्त्री स्यात् । तथा- "यस्याऽस्मिन्नुरगप्रभोरिव भवेज्जिह्वासहस्त्रद्वय"-मिति चम्पूकथायाम् । (९) वाञ्छन् ॥९६॥

[1]आचाम्लकै[2]र्विंशतिसम्मितानि, यः स्थानकान्या[3]तनुते स्म सूरिः ।
[4]निजस्य [5]विंशत्यसमाधिपूर्व-स्थानान्य[6]पाकर्त्तुमना इवैषः ॥९७॥

(१) आचाम्लैः कृत्वा । (२) विंशतिः विंशतिस्थानकानि । (३) कृतवान् । (४) आत्मनः । (५) विंशतिसङ्ख्याकान्यसमाधिस्थानानि । (६) निराचिकीर्षुः ॥९७॥

[1]चक्रे पुन[2]र्निर्विकृतीः सहस्त्रे[3], द्वे सूरि[4]रद्वैतधृतिं [5]दधान ।
किं संसृतिं [6]निर्विकृतिं विधातुं, [7]हृषीकपङ्क्तिं किमु[8]त [9]स्वकीयाम् ॥९८॥

(१) चकार । (२) षण्णामपि विकृतीनां त्यागेन निर्विकृतीस्तपोविशेषान् । (३) विंशतिशतीः । (४) असाधारणां धृतिं-रसनारसलाम्पट्यपरित्यागरूपाम् । (५) बिभ्रत् । (६) विकृतिर्भूयो दोषात्पादकत्वेनाऽनन्तजन्ममरणोपपेयलक्षणा विकृतिस्तद्रहितां विरलां कर्त्तुमित्यर्थः । (७) इन्द्रियपञ्चकम् । (८) विकाररहितं वा । (९) आत्मीयाम् ॥९८॥

[1]स [2]एकदत्तिस्फुरदेकसिक्थ-मुखाणि(नि) तीव्राणि [3]तपांसि [4]चक्रे ।
प्रभुः [5]प्रणेतुं [6]स्पृहयन्निवैक[7]-भवाम[8]नन्तामपि [9]संसृतिं स्वाम् ॥९९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सूरिः । (२) एकस्मिन्वारकेऽविच्छिन्नं पानीयान्नादिकं पात्रे पतेत्, सा एका दत्तिरुच्यते। यस्मिन्नेकाशनाचाम्ले वा एकमेव सिक्थकं भुज्यते नाऽन्यत्तदेकसिक्थकम् । तत्प्रमुखाणि । (३) बहूनि तपांसि (४) कृतवान् । (५) कर्त्तुम् । (६) वाञ्छन् । (७) एक एव भवो मनुष्यादिजन्मादिर्यस्यां सा एकभवा । (८) न विद्यतेऽन्तः पारो यस्याः सा । (९) संसारम् ॥९९॥

[1]उपोषणानामपुषत्स[2]हस्त्र-त्रयं स [3]तस्योपरि षट्शतीं च ।
[4]सरोजजन्मा धरणीधरेन्द्रं[5], सुधाशनानामिव [6]चारुचूलाम् ॥१००॥

(१) उपवासानाम् । (२) त्रिसहस्त्रीम् । (३) तस्या अधिकानि षट्शतानि (४) विधाता । (५) मेरुम् । (६) विशिष्टचूलिकाम् ॥१००॥

[1]एकाशनाचाम्लयुतैर्यतीन्दु-रुपोषणैर्नि[2]र्गलितान्तरायम् ।
[3]त्रयोदश व्यातनुते स्म [3]मासा-न्शि[4]क्षामिव [5]स्वीयगुरोस्तपोऽसौ ॥१०१॥

(१) एकभक्ताचामाम्लोपवसनरूपैस्तपोभिः । (२) निर्विघ्नम् । (३) त्रयोदश मासान् । (४) आसेवनाग्रहणादिकां शिक्षामिव । (५) श्रीविजयदानसूरेस्तपः ॥१०१॥

[1]त्रिधा [2]समाराद्धुमनाः [3]समग्र-ज्ञानानि चै[4]कादशयुग्ममासान् ।
तपांसि तीव्राणि चकार [5]योगैः, [6]परीषहान्जेतुमि[7]वेहमानः ॥१०२॥

(१) मनोवाक्कायैः । (२) आराधयितुकामः । (३) सर्वाणि मतिश्रुतज्ञानादिमानि ज्ञानानि । (४) द्वाविंशतिमासान्यावत् । (५) योगवहनादिभिः । (६) द्वाविंशतिपरीषहान्जेतुम् । (७) इच्छन्निव ॥१०२॥

[1]उग्रैस्तपोभि[2]र्द्युनिशं [3]त्रिमासीं, यः [4]सूरिमन्त्रं [5]विधिना[6]ऽऽरराध ।
[7]श्रीशासनाधित्रिदशै[8]र्वशीन्द्रः, [9]स्वयं [10]स्वयंभूरिव [11]सेव्यमानः ॥१०३॥

(१) अष्टमाचाम्लादिरूपैः । (२) रात्रौ दिवा च । (३) त्रीन्मासान्यावत् । (४) आचार्यमन्त्रम् । (५) सम्यक्प्रकारेण शास्त्रोक्तविधिना । (६) आराधयति स्म । (७) श्रिया युक्तैर्जिनशासनाधिष्ठातृभिर्देवैः । (८) जितेन्द्रियाणां स्वामी । (९) आत्मना । (१०) जिन इव । (११) आराध्यमान उपास्यमानः ॥१०३॥

[1]सूरीन्दुरे[2]काग्रमनाश्चतस्त्रः, [3]स्वाध्यायकोटीर्ग[4]णयाम्बभूव ।
[5]निर्वेदिताशेषशरीरभाजां, चतुर्गतीनामिव जैत्रमन्त्रान् ॥१०४॥

(१) हीरसूरिः । (२) एकतानचेता अव्यग्रहृदयः । (३) सिद्धान्तादिगणनरूपस्य स्वाध्यायस्य चतस्त्रः कोटीः । (४) गणयति स्म – परावर्त्तयति स्म । (५) खेदं प्रापिता अशेषाः प्राणिनो याभिः । (६) नरकतिर्यग्नरसुरलक्षणानां चतुर्णां गतीनाम् । (७) जयनशीलान्मन्त्रान् ॥१०४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]ग्रन्थावलीं [२]निर्मितवान्विशुद्धां, [३]निजां मनोवृत्तिमिव व्रतीन्द्रः ।
[४]अदीक्षयद्यः [५]शतशो वशीशः, [६]शिष्यान्स्व[७]शिष्यीकृतशक्रसूरिः ॥१०५॥

(१) शास्त्रश्रेणीम् । (२) शोधयति स्म । (३) यथा निजचित्तवृत्तिर्विशुद्धा कृताऽस्ति । (४) प्रव्राजयति स्म । (५) शतसङ्ख्याकान् । (६) विनेयान् । (७) विद्यया कृत्वा स्वान्तेवासीकृतबृहस्पतिः ॥१०५॥

[१]यत्पण्डिताः [२]सार्द्धशतं [३]बभूवुः, [४]सम्प्राप्तसिद्धान्तपयोधिपाराः ।
[५]दिवेर्ष्ययैकं[६] धिषणं [७]दधत्या, [८]वागीश्वराः किं [९]विधृता [१०]धरित्र्या ॥१०६॥

(१) यस्य प्रभोः पण्डितपदधारिणः । (२) एकपञ्चाशदुत्तरं शतम् । (३) सञ्जाताः । (४) अधिगतागमसागरपाराः । (५) स्वर्गेण सममीर्ष्यया । (६) एकमेव वाचस्पतिम् । (७) बिभ्राणया । (८) बृहस्पतयः पण्डिताश्च । (९) धारिताः । (१०) भुवा ॥१०६॥

[१]सप्ताऽभवन्[२]वाचकवारणेन्द्रा, यस्यो[३]ल्लसद्वागलहरीविलासाः ।
[४]गाम्भीर्यभाजो [५]गुणरत्नपूर्णा-स्तरङ्गिणीनामिव[६] जीवितेशाः ॥१०७॥

(१) सप्तसङ्ख्याकाः । (२) उपाध्यायकुञ्जराः । (३) स्फुरन्तो वाचामेव कल्लोलानां विभ्रमा वैचित्र्यो वा येषाम् । (४) गम्भीरभावं भजन्तः । (५) गुणा एव मणयस्तैः सम्पूरिताः । (६) समुद्रा इव ॥१०७॥

[१]क्षमां दधानस्य च [२]गौरिमाणं, [३]पदाब्जभृङ्गायितचक्रिणश्च ।
द्वे [७]यस्य जाते [४]यतिनां सहस्रे, [५]विलोचनानामिव [६]भोगिभर्त्तुः ॥१०८॥[1]

(१) क्षान्तिमुपशमं भुवं च । (२) पीतिमानं श्वेतिमानं च । (३) चरणकमले भ्रमरा इवाऽऽचरिता महाराजानः सर्पाश्च यस्य । (४) साधूनाम् । (५) नयनानाम् । (६) शेषनागस्य । (७) यस्य गच्छे साधुसहस्रद्वयमासीदिति ॥१०८॥

[१]व्रजे [२]यतीनां [३]विजयाद्यसेन-प्रभो[६]र्ददौ [४]सूरिपदं य [५]एकम् ।
[७]नक्षत्रताराग्रहमण्डलेऽपि, [८]विधा [९]यथा राजपदं सुधांशोः ॥१०९॥

(१) प्रकरे । (२) मुनीनाम् । (३) श्रीविजयसेनगुरोः । (४) आचार्यपदम् । (५) एकमेव । (६) दत्ते स्म । (७) नक्षत्राणां ताराणां ग्रहाणां कदम्बकेऽपि । (८) विधाता । (९) राज इति पदप्रतिष्ठां विधोरेव दत्तवान्नान्यस्य ॥१०९॥

[१]यस्योपदेशाद्[२]बहवो [३]विहाराः, [४]संजज्ञिरे [५]मन्दिरचैत्ययुक्ताः ।
[६]त्वष्ट्रा [७]क्षितौ [८]वस्तुमिवा[९]ऽमृतस्वः-श्रीभि[१०]र्व्यधाप्यन्त [११]विलाससौधाः ॥११०॥

1. अतः परं हीमु०पुस्तकस्थः १११तमः श्लोकोऽत्र नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) श्रीहीरसूरेर्वचनात् । (२) अनेके । (३) प्रासादाः । (४) सञ्जाताः । (५) गृहचैत्यैः सहिताः । गृहचैत्यान्यपि बहून्यासन् । (६) विश्वकर्मणा । (७) भूमण्डले । (८) वासं कर्त्तुम् । (९) अपवर्गस्वर्गलक्ष्मीभिः । (१०) निर्मापिताः । (११) क्रीडानिवासाः ॥११०॥

[1]पञ्चाश[2]दर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठां, प्रभुः [3]पृथिव्याम[4]नुतिष्ठति स्म ।
[5]दिशश्चतस्रो[7]ऽप्यपुना[6]द्विहारैः, [8]प्रभाप्रसारैरिव [9]भानुमाली ॥१११॥

(१) पञ्चाशत्सङ्ख्याकाः । (२) जिनप्रतिमानां प्रतिष्ठा महामहोत्सवपुरस्सराः । (३) भूमौ-गुर्जर-सौराष्ट्र-मेदपाद-मरु-मेवातमण्डलादिषु । (४) करोति स्म । (५) पूर्वा-दक्षिणा-पश्चिमा-उत्तरालक्षणाश्चतस्रोऽपि दिशः । (६) स्वविहरणैः । (७) पवित्रीकरोति स्म । (८) कान्तिप्रचारैः । (९) भास्वानिव ॥१११॥

[1]यस्मिन्[2]पुनाने [3]भुव[4]मर्बुदाद्रि-सम्मेतसिद्धाचलरैवतेषु ।
[5]सङ्घाधिपाः [6]पाण्डववत्शतानि, [7]त्रीणि त्रिकेणाऽभ्यधिका[8]न्यभूवन् ॥११२॥

(१) श्रीहीरविजयसूरीन्द्रे । (२) पवित्रीकुर्वाणे । (३) पृथिवीम् । (४) अर्बुदाचल - सम्मेतशैल-शत्रुञ्जय-रैवताचलप्रमुखेषु तीर्थेषु । (५) सङ्घपतयः । (६) पाण्डुनृपपुत्रा इव । (७) त्र्युत्तरा त्रिशती । (८) सञ्जाता ॥११२॥

[1]आत्मा [2]भृतो [3]येन [4]जिनेश्वराद्रि-तीर्थादियात्रोद्भवपूर्णपुण्यैः ।
[5]प्राक्शृङ्गिशृङ्गागमनोद्गतांशु-भरैरिवा[6]ऽम्भोरुहिणीवरेण ॥११३॥

(१) निजात्मा । (२) सम्पूरितः । (३) सूरिणा । (४) जिनेश्वराद्रिः शत्रुञ्जयशैल-स्तत्प्रमुखतीर्थानां यात्रोद्भूतानां सुकृतैः । "पञ्चाशदादौ किल मूलभूमे-र्दशोर्ध्वभूमेरपि विस्तरोऽस्य । उच्चत्वमष्टैव तु योजनानि मानं वदन्तीह जिनेश्वराद्रेः ॥" इति नगरपुराणोक्तमन्तर्वाच्येष्वस्तीति । (५) पूर्वाचलस्य शिखरे समागमनात्प्रकटीभूतकिरणनिकरैः । (६) भास्करेण ॥११३॥

[1]धात्रीं [2]पवित्रीं [3]सृजतो[4]ऽस्य [5]पाद-न्यासे [6]दुकूला[7]न्यध्रियन्त [8]भव्यैः ।
[9]तीर्थाधिराजस्य [10]चतुर्निकाय-सुरैरिव [11]स्वर्णसरोरुहाणि ॥११४॥

(१) भूमीम् । (२) पावनीम् । (३) कुर्वतः । (४) सूरेः । पादचारेण चरत इत्यर्थः । (५) चरणयुगस्थापनस्थाने । (६) क्षौमाणि । (७) स्थाप्यन्ते स्म । (८) श्राद्धवर्गैः । (९) जिनपतेरिव । (१०) भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकदेवैः । (११) कनककमलानि ॥११४॥

[1]स्तम्भादितीर्थे [2]जलदागमे[3]ऽस्मि-[3]न्स्थिते [4]कदाचि[5]द्देविकव्रजेन ।
[6]कोटि[7]र्व्ययेऽसृज्यत [6]टङ्ककानां, [8]श्रीविक्रमाम्भोरुहबन्धुनेव ॥११५॥

(१) स्तम्भतीर्थे । (२) वर्षाकाले । चतुर्मासीमधितस्थुषि । (३) तस्मिन् भगवति । (४) कस्यामपि चतुर्मास्याम् । (५) तत्रत्यश्राद्धवर्गेण । (६) टङ्ककानामेककोटिः । (७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्ययीकृता । (८) विक्रमार्केणेव ॥११५॥

[१]प्रेक्ष्य [२]प्रियं [३]शक्रवशा [४]अहिल्या-[1]सक्तं [५]समेताः [६]क्षितिमीर्ष्ययेव [७]।
[८]मृगीदृशो [९]न्युञ्छनकानि [१०]यस्य, [११]प्रायो व्यधू [१२]रूपकनाणकेषु(न) ॥११६॥

(१) दृष्ट्वा । (२) स्वभर्त्तारम् । अर्थादिन्द्रम् । (३) इन्द्राण्यः-शक्रकान्ताः । (४) गौतमऋषिपत्न्यामहिल्यायामासक्तम् । (५) समागताः । (६) भूमण्डलम् । (७) भर्त्तरि विषयेऽसूयया । (८) स्त्रियः । (९) निर्मित्सतानि । (१०) सूरीश्वरस्य । (११) बाहुल्येन । (१२) रजतानां नाणकेन महमुंदिकाप्रमुखेण ॥११६॥

पुरीम[१]पापामिव [२]पञ्चवक्त्र-ध्वजो [2]जिनोर्वीविभुरु[३]न्नताह्वाम् ।
कृत्वा[५] पवित्रां [४]चरणारविन्दैः, कुर्वं[६]श्चतुर्मासकमन्तिमं [७]सः ॥११७॥

वाचंयमेन्दु[१]र्निजम[२]ल्पमा[३]यु-र्वि[४]दांचकाराऽथ [५]हृदा [६]तदानीम् ।
[७]स्वेनो[८]पचेतुं पुनरेष [९]पुण्य-[१०]मगण्यमै[११]च्छद्[१२]द्रविणं [१३]धनीव ॥११८॥ युग्मम् ॥[3]

(१) अपापानाम्नीं नगरीम् । (२) महावीरजिनः । (३) उन्नत इति संज्ञां पुरीम् । (४) निजपादपद्मविन्यासैः । (५) पवित्रीकृत्य । (६) तद्भवे चतुर्मासकापेक्षया चरमम् । (७) सूरिः ॥११७॥

(१) स्वकीयम् । (२) स्तोकम् । (३) जीवितकालम् । (४) अज्ञासीत् । (५) मनसा । (६) तस्मिन्प्रस्तावे । (७) आत्मना । (८) पुष्टं कर्त्तुम् । (९) धर्मम् । (१०) अतिशायिनम् । (११) वाञ्छति स्म । (१२) द्रव्यम् । (१३) व्यवहारीव ॥११८॥ युग्मम् ॥

[१]संलेखनां [२]तत्र [३]तपोविचित्रां, स वृत्रशत्रु[४]र्व्रतिनां [५]वितेने ।
[६]विधित्सयेवो[७]त्सुकितो[८]ऽन्तरात्म-शुद्धे[९]र्बहिःस्नानमिवा[१०]ऽङ्गशुद्धेः ॥११९॥

(१) संलिख्यन्ते सन्तक्ष्यन्ते तुच्छीक्रियन्ते कर्माणि अनयेति संलेखना-तपोविशेषः । (२) उन्नतनगरे । (३) षष्ठाष्टमादिभिर्नानाप्रकाराम् । (४) यतीन्द्रः । (५) चक्रे । (६) कर्त्तुमिच्छया । (७) उत्कण्ठितः । (८) अन्तरात्मनो-जीवस्य शुद्धेर्निर्मलतायाः । (९) बाह्यस्नानमिव । (१०) बाह्यशरीरपवित्रीकरणतायाः ॥११९॥

[१]प्राचीनसूरीन्द्र इव [२]प्रणीय, [३]संलेखनामेष [४]विशिष्य सूरिः ।
[५]आराधनां प्रारभतेति [६]शान्त-रसारविन्दैकविलासहंसः ॥१२०॥

(१) पूर्वाचार्य इव । (२) कृत्वा । (३) दुष्करतपोविशेषरूपाम् । (४) विशेषप्रकारेण । (५) आराध्यन्ते । सर्वपापपरित्यागेन पुराकृतानां दुरितानां च मिथ्यादुष्कृतेन त्रिधा सेव्यन्तेऽर्हदादयो

1. ०सक्तं क्षितावक्षमया किमेताः हीमु० । 2. जिनेन्द्रः पुनरुन्नता० । हीमु० । अस्य श्लोकस्य अन्तिमे द्वे चरणे न विद्येते हीमु०पुस्तके । 3. एतौ श्लोकौ हीमु० पुस्तके युग्मत्वेन न निर्दिष्टौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्यां सा । (६) नवमो रस उपशमलक्षणः स एव पद्मं तत्राऽद्वैतक्रीडाकरणविषये कलहंसः ॥१२०॥

[1]अम्भोजनाभा इव ये [2]त्रिलोक्याः, [3]सिषेविरे [4]नीरधिनन्दनाभिः ।
[5]भूता [6]भविष्यन्ति [7]वसन्ति [8]सार्वा-स्ते [10]मे [9]शरण्याः [11]शरणीभवन्तु ॥१२१॥

(१) नारायणा इव । (२) जगत्त्रयस्य । (३) सेविताः । (४) लक्ष्मीभिः । (५) अतीते काले केवलज्ञानिप्रमुखाः सञ्जाताः । (६) अनागते काले पद्मनाभजिनाद्या उत्पत्स्यन्ते । (७) अधुनाऽपि श्रीसीमन्धरजिनादिका वर्त्तन्ते । (८) तीर्थकराः । (९) शरणागतवत्सलाः । (१०) मम (११) त्राणाय भवतु ॥१२१॥

[1]यै[2]रन्तरे [3]ध्यानधनञ्जयस्य, [4]प्रज्वाल्य [5]दुष्कर्ममलं [6]विशुद्धः ।
[7]असर्जि [8]जाम्बूनदव[9]न्निजात्मा, ते सन्तु [10]सिद्धाः शरणं [11]शरण्याः ॥१२२॥

(१) यैः सिद्धैः । (२) मध्ये । (३) प्रणिधाम(न)वह्नेः । (४) ज्वालयित्वा । (५) पापकर्ममलम् । (६) निर्मलः । (७) कृतः । (८) स्वर्णमिव । (९) स्वजीवः । (१०) मुक्तात्मानः । (११) शरणे साधवः ॥१२२॥

[1]वितन्वते ये [2]भ्रमरा इवा[3]ऽऽत्म-वृत्तिं [4]स्मरं [5]घ्नन्ति च [6]शम्भुवद्ये ।
ते [7]साधवः स्युं शरणं [8]तपस्या-धुरं [9]धुरीणा इव [10]धारयन्तः ॥१२३॥

(१) कुर्वते । (२) भृङ्गा इव । (३) निजजीविकां - सा(मा)धुकरीं वृत्तिम् । (४) कन्दर्पम् । (५) व्यापादयन्ति । (६) ईश्वरा इव । (७) ते मुनयः । (८) व्रतधुरम् । (९) धुरीणा वृषभा इव । (१०) बिभ्रताः ॥१२३॥

[1]मज्जज्जनस्याऽस्ति [2]करावलम्ब, इवा[3]ऽतिभीमे [4]भववारिधौ यः[5] ।
भूयात्स धर्मः [6]शरणं [7]सुधांशु-सुधामिवा[8]ऽन्तः [9]करुणां [10]दधानः ॥१२४॥

(१) ब्रूडतो लोकस्य । (२) हस्तावलम्बनमिव । हस्ताभ्यां गृहीत्वा कर्षक इत्यर्थः । (३) अतिशयेन भयकारिणि । (४) संसारसमुद्रे । (५) धर्मः । (६) संसारभीतस्य मम त्राणाय । (७) चन्द्रामृतमिव । (८) मध्ये । (९) कृपाम् । (१०) श्रयन् ॥१२४॥

[1]ज्ञाने ममा[2]ऽष्टौ [3]समयादिकाती-चाराः [4]प्रमादा इव [5]शुद्धधर्मे ।
[6]शङ्कादिका अष्ट च [7]दर्शनेऽती-चारा [8]मदा दे[9]हभृतीव [10]जाताः ॥१२५॥

[1]कर्माणि [2]जन्ताविव ये ममाऽती-चाराः पुन[3]र्मातृगताश्च[4]रित्रे ।
[5]मिथ्यासतां ते [6]बहुगर्ह्यवाचो, [7]व्याहारवन्मे [8]निखिला [9]इदानीम् ॥१२६॥ युग्मम् ॥

(१) ज्ञानाचारे । (२) अष्टसङ्ख्याकाः । (३) कालविनयादिका अतिचाराः । (४) प्रमादा इव । (५) निर्मलधर्मविषये । (६) शङ्काकाङ्क्षाद्याः । (७) दर्शनाचारे । (८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानधनादिका मदा अष्टौ । (९) प्राणिनि । (१०) जज्ञिरे ॥१२५॥

(१) अष्टकर्माणि । (२) जीवे । (३) अष्टप्रवचनमातृसम्बन्धिनः । (४) चारित्राचारे । (५) मिथ्याभवन्तु । (६) वाचालस्य । (७) वचनानीव । (८) समस्ताः । (९) इदानीमस्मिन्प्रान्तसमये ॥ १२६॥ युग्मम् ॥

[1]तपस्सु ये [2]द्वादश भेदभिन्ने-[3]ष्वहर्मणीनामिव [4]मण्डलेषु ।
[5]वीर्येऽ[6]भवन्येऽत्र [7]भवे ममाऽती-चारप्रचाराश्च [8]मृषाऽऽसतां ते ॥१२७॥

(१) तपआचारेषु । (२) द्वादशभिः कृत्वा पृथक्पृथक् । (३) सूर्याणामिव । (४) बिम्बेषु । (५) वीर्याचारे । (६) जाताः । (७) अस्मिन्जन्मनि । अस्मिन्नित्युपलक्षणात्परस्मिन्नपि जन्मनि । (८) असत्या भवन्तु ॥१२७॥

[1]एकेन्द्रिया [2]भूजलवह्निवायु-वनान्य[3]ऽहन्यन्त मया[4]ऽङ्गिनो ये ।
[5]विभ्राम्यता [6]भूरिभवेषु [7]कर्म-वशेन [8]देशेष्विव [9]दैशिकेन ॥१२८॥

(१) एकमेव स्पर्शनलक्षणमिन्द्रियं येषां ते । (२) पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः । (३) हताः । (४) प्राणिनः । (५) भ्रमणीं कुर्वता, पर्यटता । (६) भूरिष्वन्तातीतेषु भवेषु -जन्ममरणलक्षणेषु । (७) कर्मायत्तेन । (८) जनपदेष्विव । (९) पान्थेन ॥१२८॥

[1]सन्ध्ये दिनानामिव [2]जन्मिनां द्वे[3], येषां [4]हृषीके भवतो [5]हतास्ते ।
मया [6]जलौकःकृमिशुक्तिशङ्ख-मुखाः [7]प्रमादैकवशंवदेन ॥१२९॥

(१) प्रभातदिवसावसानलक्षणे द्वे सन्ध्ये । (२) जन्तूनाम् । (३) द्विसङ्ख्ये द्वे स्पर्शनरसनलक्षणे । (४) इन्द्रिये भवतः । (५) निपतिताः । (६) जलसर्पिणी गण्डोलकः, अब्धिमण्डूकी, त्रिरेखादिकाः । (७) अनवधानताया आयत्तेन ॥१२९॥

[1]विशां [2]वयांसीव भवन्ति येषां, [3]त्रीणीन्द्रियाणीह [4]शरीरभाजाम् ।
[5]गोपालिकामत्कुणकीटिकाद्या, [6]व्यापादितास्ते तु मया [7]कथञ्चित् ॥१३०॥

(१) नराणाम् । (२) बाल्ययौवनवार्द्धक(क्य)लक्षणा दशाः । (३) स्पर्शनरसनघ्राणलक्षणाणि(नि) त्रीणीन्द्रियाणि । (४) देहिनाम् । (५) धनेडिकानि । (६) हताः । (७) केनाऽपि प्रकारेण-जानता अजानता वा ॥१३०॥

[1]चत्वारि येषां पुनरिन्द्रियाणि, [2]नाभीभवस्येव [3]मुखानि सन्ति ।
ते [4]मक्षिकाभृङ्गपतङ्गकर्ण-कीटोर्णनाभप्रमुखा हताश्च ॥१३१॥

(१) चत्वारि-स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्लक्षणानि । (२) ब्रह्मणः । (३) वदनानि । (४) भ्रमरशलभशतपदीतन्तुवायप्रमुखाः ॥१३१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]महाव्रतानीव [2]मुनीश्वराणां, [3]पञ्चेन्द्रियाणीह भवन्ति येषाम् ।
[4]पापर्द्धिकेनेव [5]महीचरास्ते, सम्प्रापिताः [7]प्रेतपतेर्निकेतम् ॥१३२॥

(१) महान्ति, कातरैरल्पसत्त्वैर्धारयितुमशक्यानि प्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रह-विरमणलक्षणानि, व्रतानि-नियमविशेषाः । (२) साधुसिन्धुराणाम् । (३) स्पर्शनरसनघ्राणनयन-श्रवणलक्षणानि । (४) आखेटिकेनेव । (५) भूचराः । (६) नीताः । (७) यममन्दिरम् ॥१३२॥

[1]जीवान्तिकेनेव [2]वियद्विहारा, [3]आलेख्यशेषत्वम[4]वापितास्ते ।
[5]कैवर्त्तकेनेव [6]पयश्चरास्ते, कथासु शेषत्व[7]मवापिताश्च ॥१३३॥

(१) शाकुनिकेनेव विहङ्गघातुकेनेव । (२) खचराः । (३) पञ्चत्वम् । (४) प्रापिताः । (५) धीवरेणेव । (६) जलचराः । (७) निहताः ॥१३३॥

[1]अर्हन्निदेशोदितचन्द्रसान्द्र-चन्द्रातपोद्वेलकृपापयोधौ ।
[2]मीनायमानेन [3]मुनीन्दुनेव, [4]स्वात्मेव [5]नामात्ति गणो[6]ऽङ्गभाजाम् ॥१३४॥

(१) जिनाज्ञारूप उद्गतशशिनो बहलेन चन्द्रातपेन-ज्योत्स्नया कृत्वा वेलामुल्लङ्घ्य यात उद्वेल उत्कण्ठो(ण्ठितो) यो दयासमुद्रस्तस्मिन् । (२) मत्स्य इवाऽऽचरितेन । (३) सुसाधुना । (४) स्वजीव इव । (५) न ज्ञातः । (६) जन्तुजातम् ॥१३४॥

[1]अमर्षणेनेव [2]रुषा [3]हसेन, [4]वैहासिकेनेव च [5]भीरुणेव ।
[6]भयेन [7]लोभेन च [8]गृध्नुनेव, मया यद[9]प्यल्प[10]मजल्प्य[11]लीकम् ॥१३५॥

(१) क्रोधनेनेव । (२) क्रोधेन । (३) हास्येन । (४) विदूषकेनेव हास्यकर्त्रेव । (५) भयभीतेनेव । (६) भीत्या । (७) तृष्णया । (८) लोलुपेनेव लोभासक्तेन । (९) स्तोकमपि । (१०) भाषितम् । (११) मिथ्यावाक्यम् ॥१३५॥

[1]पृ(ऋ)क्थं [2]परेषां [3]परिमोषिणेव, मया [4]कथञ्चिद्य[5]ददत्त[6]मात्तम् ।
[7]प्रयोजने [8]सत्यपि य[9]त्तृणाद्यं, क्वचिद्वि[10]नाऽऽदेश[11]मुपाददे [12]च ॥१३६॥

(१) द्रव्यम् । (२) परजनानाम् । (३) चौरेणेव । (४) केनापि प्रकारेण । (५) तेन स्वयमविश्राणितम् । (६) गृहीतम् । (७) कार्ये । (८) विद्यमानेऽपि । (९) तृणप्रमुखम् । (१०) पराज्ञां विना । (११) गृहीतम् । (१२) पुनः ॥१३६॥

[1]मरुन्मृगाक्ष्या [2]मरुतेव [3]दिव्यं, [4]नार्या [5]नरेणेव च [6]मानवीयम् ।
मया [7]तिरश्चेव [पुन]स्ति[8]रश्च्या, तै[9]रश्च[10]माचर्यत मै[11]थुनं यत् ॥१३७॥

(१) देव्या सह । (२) देवेनेव । (३) देवतासम्बन्धि । (४) स्त्रिया समम् । (५) पुरुषेण । (६) मनुष्यसम्बन्धि । (७) तिर्यग्जातीयेनेव । (८) तिर्यग्जातीयया स्त्रिया । (९) तिर्यक्सम्बन्धि । (१०) आचीर्णम् । (११) कामक्रीडा ॥१३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]सखीमिव [2]स्वःशिवपद्मधाम्नो-[3]र्निरीहतां [4]मुग्धतया [5]विहाय ।
[6]दूतीमिवा[7]ऽऽदत्य च [8]दुर्गतीनां, [9]गृद्धिं मयो[11]ऽऽदायि [10]परिग्रहो यत् ॥१३८॥

(१) वयसीमिव । (२) स्वर्गापवर्गलक्ष्म्योः । (३) निस्पृहताम् । (४) मौग्ध्यात् । (५) त्यक्त्वा । (६) सन्देशहारिकामिव । (७) आदरपरीभूय । (८) दुष्टानां गतीनां नारकादीनाम् । (९) सर्वेषु वस्तुषु प्राप्तास्ते(प्राप्ते)षु काङ्क्षाम् । (१०) धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिः । (११) गृहीतः-स्वीकृतः ॥१३८॥

[1]मरुद्द्रुमान्मे[2]रुरिवेन्द्रियाणि, [3]देहीव [5]बाणानि[व] [4]पञ्चबाणः ।
[6]मुखानिवा[7]ऽनङ्गरिपुश्च [8]सम्यङ्-[9]नाऽधारयं पञ्चमहाव्रता[10]न्यत् ॥१३९॥

(१) कल्पवृक्षान् । (२) सुरगिरिः । (३) मनुष्य इव । (४) कामः । (५) शरान् । (६) वक्त्राणि । (७) ईश्वरः । (८) मनोवाक्कायैः त्रिकरणशुद्ध्या । (९) न धृतवान् । (१०) व्रतशब्दः पुंनपुंसके ॥१३९॥

[1]निशाचरेणेव [2]निशाशनं य-न्मया [3]कथञ्चित्[4]प्रविधीयते [स्म]।
[5]कौसीद्यमाद्यन्मनसेव किञ्चि-[6]च्छैथिल्यमा[7]लम्ब्यत [8]यत्क्रियासु ॥१४०॥

(१) रात्रिचारिणा राक्षसेनेव । (२) रात्रिभोजनम् । (३) केनाऽपि मिथ्यात्वाज्ञानादि-प्रकारेण । (४) कृतमाचरितम् । (५) आलस्येनोन्मत्तीभवच्चित्तेन । (६) शिथिलता -किञ्चित्कृतमकृतं करिष्यते वाऽग्रे इत्याद्यम् । (७) आश्रितम् । (८) अनुष्ठानेषु ॥१४०॥

[1]प्रमादभाजा [2]नियमा मया ये, [3]बभञ्जिरे भ्रान्तिभृता[4] भवेषु ।
[5]छायाद्रुमा [6]गण्डगलन्मदान्धं-भविष्णुनेवो[7]द्धुरसिन्धुरेण ॥१४१॥

(१) प्रमत्तत्वभाजा । (२) अभिग्रहाः । (३) भग्नाः । (४) भ्रमणीकारिणः, संसारेषु-नानाभव-परंपरासु कर्मवैचित्र्याद्भ्राम्यतेत्यर्थः । (५) छाययोपलक्षितास्तरवो, येषां छाया कदाचिदपि परावृत्तिं नोपेति । अथवा पत्रपल्लवपुष्पफलप्रमुखशोभायुताः छायावृक्षाः । (६) कपोलयो निष्पन्नदानवारिभिरन्धं भवनशीलेन । (७) उत्कटगजेन ॥१४१॥

[2]अपेक्षया [1]पञ्चमहाव्रतानां, [3]स्वर्भूधराणामिव [4]भूधरेषु ।
[5]अणुष्व[6]हर्बन्धुमितव्रतेषु, मया [7]विराद्धं [8]गृहमेधिना यत् ॥१४२॥

(१) सर्वविरतिव्रतानाम् । (२) अपेक्षया-महाव्रतेषु तु सर्वथैव सर्ववस्तुभ्यो विरमणं तस्मात्तानपेक्ष्य । (३) मेरूणामिव । (४) अन्यपर्वतेषु । (५) अणुषु-ह्रस्वेषु । सर्वत्राऽपि देशतो विरमणत्वात् । (६) सूर्यप्रमितेषु-द्वादशसु । (७) भङ्गातिचारादिकरणेन । (८) गृहमेधिना सता ॥१४२॥

1. ०तीनामृद्धिं हीमु० । 2. प्राणीव हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]संसाधकेषु [२]त्रिदिवापवर्ग-[1]मार्गस्य [३]योगेष्विव [४]योगिनेव ।
[५]वीर्यं प्रयुक्तं[६] न मया [७]कथञ्चित्, [८]प्रमादमन्दीकृतमानसेन ॥१४३॥

(१) प्रदायकेषु । स्वायत्तीकारकेष्वित्यर्थः । (२) स्वर्लोकमोक्षमार्गस्य । (३) यम-नियमप्रणिधानाद्यङ्गवत्सु योगेषु-मोक्षप्राप्तिकारणीभूतेषु ध्यानविशेषेषु । (४) योगभाजेव । (५) पुरुषकारः-सम्यगुद्यमः । (६) न कृतम् । (७) गुर्वादिप्रेरणयापि । (८) प्रमत्ततया क्रियानुष्ठानेषु कुण्ठीकृतं चित्तं येन ॥१४३॥

[१]एतद्य[२]दन्यच्च [३]मयार्जि पाप-[४]मस्मिन्भवेऽन्येषु [५]पुनर्भवेषु ।
[६]अधर्मिणा[७]ऽनर्थ इव [८]त्रिधाऽपि, [९]निन्दामि सम्यक्तदहं [१०]समग्रम् । ॥१४४॥

सप्तदशभिः कुलकम् ॥

(१) एतत्पूर्वाधिकारोक्तम् । (२) पुनरितरत् । (३) मयोपार्जितम्-सञ्चितमाचरितं वा । (४) अस्मिन्विद्यमाने भवे-जन्मनि । (५) अन्येषु-अतिक्रान्तेषु अनन्तेषु भवेषु । (६) अधर्मवता-पापस्वभावेन पुंसा । (७) अनर्थः परघातादिः । (८) त्रिकरणशुद्ध्या । (९) जुगुप्सामि । (१०) समस्तमपि ॥१४४॥

[१]अष्टादशो[२]ऽब्रह्मवदं[३]हसां तु, स्थानानि या[४]न्याचरितानि [५]पूर्वम् ।
[६]तान्यप्यशेषाणि [७]मृषा [८]भवन्तु, क्ष[९]णाद्यथा [१०]द्यूतकृतां [११]वचांसि ॥१४५॥

(१) अष्टादशसङ्ख्याकानि । (२) अब्रह्मसेवनस्थानानि । (३) पापस्थानकानि । (४) यानि कृतानि । स्वयं कृतानि परैश्च कारितानि । (५) प्राक्समये-अस्मात्प्रस्तावात्पूर्वम् । (६) तानि समग्राणि । (७) मिथ्या । (८) सन्तु । (९) क्षणमात्रादेव । (१०) दौरोदरिकाना(णा)म् । (११) वचनानि ॥१४५॥

[१]कोपं [२]हृदः [३]शल्यमिव [४]प्रहाय, [५]सत्त्वान[६]शेषान्क्ष[७]मयामि [८]सम्यक् ।
मया[९]ऽर्दिताः [१०]प्रागिह वैरि[११]णेव, [१२]क्षाम्यन्तु ते मय्य[१३]नुदीतवैराः ॥१४६॥

(१) प्राक्कृतक्रोधम् । (२) हृदयात् । (३) वैरिणा परमवैरेण केनाऽपि प्रकारेण हृदि निक्षिप्तं शस्त्रं-काष्ठघटितकीलिकाशूकशलाकादिकं वा । (४) मुक्त्वा । (५) जीवान् । (६) सर्वान् । (७) पादयोर्लगित्वा स्वापराधं विनयामि । (८) मनोवाक्कायैः । (९) पीडिताः । (१०) पूर्वजन्मनि इहभवे वा । (११) शत्रुणेव । (१२) क्षमां कुर्वन्तु । उपशाम्यन्त्वित्यर्थः । (१३) न प्रकटीकृतविरोधाः । मुक्तविरोधा इत्यर्थः ॥१४६॥

[१]मैत्री मम [२]स्वेष्विव [३]सर्वसत्त्वे-ष्वा[४]स्तां [५]क्षितिस्वर्बलिवेश्मजेषु ।
[६]धर्मो[७]ऽर्जितो [८]वैभववन्मया य-स्तं [९]प्रीतचेता [१०]अनुमोदयामि ॥१४७॥

1. ०दुर्गस्य हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सखिता । (२) आत्मीयेष्विव । (३) समस्तजन्तुषु । (४) भवतु । (५) भूलोकपाताललोकदेवलोकोत्पन्नेषु-नरनागनाकिषु । (६) पुण्यम् । (७) उपार्जितं सञ्चितम् । (८) विभव इव । (९) हृष्टमनाः । (१०) अनुमोदनां कुर्वे ॥१४७॥

[१]वृन्दं [२]द्रुमाणामिव [३]पुष्पकाला-द्यस्मादृ[४]ते[५]ऽन्यद्वि[६]फलं [७]व्रतादि ।
[८]शुभः स [८]भावोऽस्तु ममाऽ[९]पवर्ग-मार्गानुलग्नाङ्गभृतां [१०]सहायः ॥१४८॥

(१) निकरः । (२) तरूणाम् । (३) वसन्तात् । (४) शुभभावात् । (५) विना । (६) निष्फलम् । (७) व्रतादिपालनप्रमुखम् । (८) विशुद्धपरिणामो भवतु । (९) मोक्षमार्ग-प्रवृत्तप्राणिनाम् । (१०) सखा ॥१४८॥

[१]भुक्तेन [२]येनाऽत्र [३]कदाचिदात्मा, न [४]दारुणा [५]वह्निरिवा[६]ऽऽप [७]तृप्तिम् ।
[८]शिवङ्गमीव [९]स्वजनानुषङ्गं, [१०]कृत्स्नं तमाहारमहं [१०]जहामि ॥१४९॥

(१) भक्षितेन । (२) आहारेण । (३) कस्मिन्नपि काले । (४) काष्ठेन । जातिवाचित्वा-देकवचनम् । (५) अग्निः । (६) प्राप्तः । (७) सन्तोषम् । (८) मोक्षं गमिष्यतीत्येवं शीलः । (९) स्वजनवर्गस्य सङ्गम् । (१०) समग्रं जहामि ॥१४९॥

[१]सद्माऽस्ति यः [२]पद्ममिवा[३]ऽष्टसिद्धि-श्रीणां [४]जगत्कल्पितकल्पसालः ।
[५]अलीव [६]पद्मे [७]रमतां मदीये[८], चित्ते [९]चिरं [१०]श्रीपरमेष्ठिमन्त्रः ॥१५०॥

(१) गृहम् । (२) कमलमिव । (३) अष्टमहासिद्धिलक्ष्मीना(णा)म् । (४) त्रैलोक्यलोक-कामितपूरणे कल्पद्रुमः । (५) भ्रमर इव । (६) कमले । (७) क्रीडतु । (८) मम मनसि । (९) चिरमाभवम्, आसंसारं वा । (१०) नमस्कारः ॥१५०॥

[१]वाध्रीणसस्येव [२]विषाणमे[३]को, वर्तेत मे[४] कश्च न वर्ततेऽन्यः ।
पुनर्धरित्र्या इव [५]वृत्रशत्रुः, [६]कस्याऽपि न स्यामहमत्र[७] विश्वे ॥१५१॥

(१) गण्डकस्येव । (२) शृङ्गम् । (३) अहमेकमेवाऽस्मि । (४) मम कोऽप्यन्यो नास्ति । (५) नृप इव । (६) अहं कस्याऽपि नास्मि । (७) अस्मिन्जगति ॥१५१॥

[१]भवेन्मदीयेन्द्रियमन्दिरस्य, यदि [२]प्रमादो[३]ऽवसरेऽत्र [४]दैवात् ।
[५]त्रिधाऽपि [६]देहादिममा[७]त्मनाऽहं, [८]परिग्रहं बाह्यमिव त्यजामि ॥१५२॥

(१) स्यान्ममाऽङ्गस्य । "जुहाव यन्मन्दिरमिन्द्रियाणा" मिति नैषधे । (२) प्रमादो नाम त्यागः । (३) अस्मिन्प्रस्तावे । (४) आयुःकर्मक्षयात् । (५) मनोवाक्कायैः । (६) शरीरप्रमुखम् । (७) स्वेनेव । (८) बहिर्भवपरिग्रहमिवाऽन्तरङ्गपरिग्रहमपि-क्रोधमानमायालोभादिपरिवारोपध्या-दिकमपि सर्वमपि त्यजामि ॥१५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]शमी [२]शमीगर्भमि[३]वैकतान-मना [५]दधानः [४]प्रणिधानम[६]न्तः ।
[७]अर्हत्समक्षं [८]दशमी [९]दशम्यां, व्यधाद्वि[१०]धिज्ञो[११]ऽनशनं [1][१२]वशीशः ॥१५३॥

(१) 'खेजडी' वृक्षः । (२) अग्निम् । (३) लयानुगतमानस एकाग्रचित्तः । (४) ध्यानम् । (५) बिभ्रत् । (६) मनसि । (७) जिनसमक्षम् । (८) वर्षीयान् । "निशि दशमितामागच्छन्त्या"मिति नैषधे । प्रान्तसमयेऽपि दशमिता दृश्यते । (९) दशमीवासरे । (१०) शास्त्रोक्तप्रकारवेत्ता । (११) आहारपरित्यागम् । (१२) जितेन्द्रियाधिपः ॥१५३॥

[१]भोक्तुं [२]भुवं [३]द्यां च [४]समं [५]मघोनो, [६]द्वितीयरूपादिव [७]विक्रमार्कात् ।
[८]त्रि[2]नेत्रनेत्राननकेकियान-वक्त्रत्रियामापतिसम्मितेऽब्दे १६५२ ॥१५४॥

(१) पालयितुम् । (२) पृथिवीम् । (३) स्वर्गं च । (४) समकालम् । (५) शक्रस्य । (६) अपरदेहादिव । (७) विक्रमनृपात् । (८) त्रिनेत्रः - शिवस्तस्य नेत्रे द्वे, आननानि च पञ्च, तथा केकियानः-कार्त्तिकेयस्तस्य वक्त्राणि षट्सङ्ख्याकानि, तथा त्रियामापतिश्चन्द्र एकः, इत्यङ्कानां वामतो गत्या विक्रमनृपाद् द्विपञ्चाशदधिकषोडशशतवर्षे इत्यर्थः ॥१५४॥

[१]नभस्यमासस्य [२]नमत्पयोद-कदम्बकाडम्बरिणो [३]नभोवत् ।
[४]प्रभोः प्रभावादिव [५]शुभ्रितायां, तिथौ [६]सुरद्वेषिनिषूदनस्य ॥१५५॥

(१) नभस्यमासस्य-भाद्रपदस्य । (२) उन्नतीभवतां मेघानां मण्डलम्, तेनाऽम्बरवतः । (३) गगनस्येव । (४) हीरसूरेर्महिम्न इव । (५) धवलीभूतायाम् । (६) एकादश्याम् ॥१५५॥

कान्ते[१] तमीना[२]मुदिते [४]मुनीन्दो-स्[३]तत्प्रक्रमे [४]वक्त्रदिदृक्षयेव ।
स्फुरत्सु[५] तारेषु गुरोः[६] पथीव, [८]यातुर्दि[७]वं [९]क्षिप्तसुमेषु [१०]देवैः ॥१५६॥

(१) चन्द्रे । (२) उद्गते सति । (३) अनशनसमये । (४) गुरोर्वदनस्य द्रष्टुमिच्छया । (५) तारके दीप्यमानेषु । (६) श्रीहीरसूरेर्गमनस्य मार्गे । (७) स्वर्लोकम् । (८) गमनशीलस्य । (९) विकीर्णकुसुमेषु । (१०) सुरैः ॥१५६॥

[१]महेभ्यवत्सन्[२]निधिशालमाना-[३]नाकार्य [४]कार्यज्ञतयो[५]ऽनगारान् ।
[६]तदैहिकामुष्मिकसर्वशर्म-निर्माणदक्षाः[७]प्रवितीर्य [८]शिक्षाः ॥१५७॥

(१) व्यवहारिण इव । (२) समीपे शोभननिधिभिश्च शोभमानान् । (३) आहूय । (४) कृत्यज्ञाने निपुणत्वेन । (५) साधून् । (६) तेषां साधूनामिहलोकपरलोकसम्बन्धिनां समग्रसुखानां करणे कुशलाः । (७) दत्त्वा । (८) अनुशास्तीः ॥१५७॥

[१]अहो ! युवाभ्यां [२]विजयादिसेन-व्रतिक्षितीन्द्रान्प्रति वाच्य[३]मेतत् ।
[४]युष्माकमङ्केऽस्ति [५]गणोऽखिलोऽपि, [६]स [८]शासनीयः [७]शिशुवत्स्वकीयः ॥१५८॥

1. शमीशः हीमु० । 2. नेत्रत्रिनेत्रा० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अहो इति सम्बोधने । (२) श्रीविजयसेनसूरिराजान्प्रति । (३) एतन्मया निगद्यमानं वक्तव्यम् । (४) श्रीमतामुत्सङ्गे । (५) समस्तोऽपि गच्छो वर्त्तते । (६) स गच्छः । (७) स्वकीयः शिशुर्बालक इव । (८) पालनीयः ॥१५८॥

[१]श्रीवाचकेन्द्रौ [२]विमलादिहर्ष-सोमादिराजद्विजयाभिधानौ ।
[३]निजा[४]वमात्याविव [५]सूरिभास्वान्, सं[७]योज्य वा[६]चेति [1]पुन[८]र्मुखाब्जम् ॥१५९॥

(१) उपाध्यायवृद्धौ । (२) विमलहर्ष-सोमविजयनामानौ । (३) आत्मीयौ । (४) प्रधानाविव । (५) हीरसूरिः । (६) तौ प्रति इति-पूर्वोक्तं गणपालनलक्षणया वाण्या । (७) योजयित्वा । (८) वदनारविन्दम् ॥१५९॥

[१]प्रणीय [२]पूर्णाश्चतुरक्षमाला-[३]श्चतुर्गतीनामिव [४]वारयित्रीः ।
गन्तुं गतिं[५] पञ्चमिकामिवाऽथो, स पञ्चमीं [६]प्रारभता[७]ऽक्षमालाम् ॥१६०॥
सप्तभिः कुलकम् ॥

(१) कृत्वा । (२) समाप्तिं प्राप्ताः । (३) चतसृणां नारक-तिर्यग्-नर-सुरलक्षणानां गतीनां-गमनस्थानकानाम् । (४) निषेधयित्रीः निषेधिकाः । (५) पञ्चमीं गतिं-मोक्षलक्षणाम् । (६) आरब्धवान् । (७) अक्षमालाम् ॥१६०॥ सप्तभिः कुलकम् ॥

[१]अथो[२]न्नताख्यस्य पुरस्य पार्श्वे, [३]ग्रामे [४]सपद्मे [५]सरसीरुहीव ।
[६]समुद्रशायीव युतो[७]ऽङ्गजेन, [९]द्विजागुणीः [८]कोऽपि बभूव [८]भट्टः ॥१६१॥

(१) अथेत्येतस्मिन्समये । (२) उन्नतनगरसमीपे । (३) क्वापि ग्रामे । (४) सह लक्ष्म्या वर्त्तते यः स सश्रीके । (५) कमले इव । (६) विष्णुरिव । (७) पुत्रेण स्मरेण च युक्तः । (८) कश्चिद्भट्टः । (९) ब्राह्मणमुख्यः ॥१६१॥

[१]दिव्यं विमानं [२]पवमानमार्गे, [३]नक्तं [४]दृशा बिम्बमि[५]वैन्दवीयम् ।
[६]सनन्दनो मन्दिर[७]चन्द्रशाला-[८]मालम्बमानः [९]स [१०]विलोकते स्म ॥१६२॥

(१) देवसम्बन्धि । (२) गगने । (३) रात्रौ । (४) नयनेन । (५) चन्द्रमण्डलमिव । (६) सपुत्रः । (७) सश्रीक(शिरोगृह)भूमीम् । (८) श्रयन् । (९) भट्टः । (१०) पश्यति स्म ॥१६२॥

[१]परस्परं [२]वार्त्तयतां सुराणां, [३]तदा नराणमिव [४]देवमार्गे ।
[५]इदं [६]तदन्त[७]र्ध्वनितं तमायां, [८]शुश्राव स [९]श्रोत्रपुटेन [१०]भट्टः ॥१६३॥

(१) मिथः । (२) वार्त्तां कुर्वताम् । (३) तस्मिन्सूरेर्निर्वाणसमये । (४) आकाशे । (५) इदं कथ्यमानम् । (६) विमानमध्ये । (७) शब्दध्वनिम् । (८) शृणोति स्म । (९)

---

1. निजं मुखा० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निजकर्णेन । (१०) विप्रः ॥१६३॥

सौमङ्गलाद्या इव नाभिसूनो-र्वक्त्रं व्रतीन्दोरिह जीवतोऽस्य ।
विलोकयामश्च यथा कृतार्थाः, स्यामः सुरास्तेत्त्वरितं चरन्तु ॥१६४॥

(१) भरतप्रमुखा इव । (२) ऋषभदेवस्य । (३) मुखम् । (४) सूरेः । (५) उन्नतनगरे । (६) प्राणान्बिभ्रतः । (७) भगवतः । (८) पश्यामः । (९) कृतकृत्याः । (१०) भवामः । (११) तस्मात्कारणात् । (१२) शीघ्रम् । (१३) प्रचलन्तु ॥१६४॥

एवं सुराणां वदतां तदानीं, क्षणाददृश्यं तदभूद्विमानम् ।
सौदामिनीमण्डलमम्बुदाना-मिवाऽतिगर्जां सृजतां गभीराम् ॥१६५॥

(१) अमुनाप्रकारेण । (२) कथयताम् । (३) देवानाम् । (४) तस्मिन्समये । (५) दृष्टेरगोचरम् । (६) जातम् । (७) विद्युद्वितानम् । (८) मेघानाम् । (९) गर्जारवम् । (१०) कुर्वताम् । (१०) मन्द्राम् ॥१६५॥

श्रीहीरसूरिः[1] श्रयति स्म शुक्ल-ध्यानं दधानः स सुधाशसौधम् ।
काङ्क्षन्महानन्दपुरे प्रयातुं, प्राक् तस्य मार्गस्य दिदृक्षयेव ॥१६६॥

(१) श्रीहीरविजयसूरिः । (२) भजते स्म । (३) शुक्लध्यानं ध्यायन् । (४) देवगृहम् । (५) वाञ्छन् । (६) मोक्षनगरे । (७) गन्तुम् । (८) प्रथमम् । (९) मुक्तिपदव्याः । (१०) द्रष्टुमिच्छया ॥१६६॥

अस्तं गभस्तेरिव कोकलोकः, शोकाकुलो बाष्पजलाविलाक्षः ।
श्रुत्वा गुरोः स्वर्गमनं निशायां, जनव्रजो द्वीपपुरादुपागात् ॥१६७॥

(१) भानोः । (२) चक्रवाकव्रजः । (३) खेदमेदुरः । (४) अश्रुनीरैर्व्याप्तनयनः । (५) सूरेः । (६) परलोकगमनम् । (७) रात्रौ । (८) श्राद्धवर्गः । (९) द्वीपनगरात्तत्काल-मेवाऽऽगतः ॥१६७॥

ल्यारीसहस्रद्वयसङ्गृहीत-कथीपकाख्यादिमदिव्यवस्त्रैः ।
श्राद्धा व्यधुर्मण्डपिकां मुनीन्दो-रिवाऽऽप्तभर्त्तुः शिबिकां महेन्द्राः ॥१६८॥

(१) शलाकाकाराणां रजतमयानां ल्यारिकाणां-नाणकविशेषाणां विंशतिशत्या व्ययेनाऽऽनीतैः कथीपकानामवस्त्रविशेषास्तत्प्रमुखमनोज्ञवसनैः । (२) श्रावकाः । (३) चक्रुः । (४) 'माण्डवी' इति प्रसिद्धाम् । (५) जिनेन्द्रस्य । (६) याप्ययानमिव । (७) शक्राः ॥१६८॥

ते ल्यारिकाभिर्व्रतिपस्य सार्द्ध-सहस्रयुग्मप्रमिताभिरङ्गम् ।
अपूपुजन्भक्तिभरोल्लसन्तो, जिनेशितुर्मूर्तिमिव प्रसूनैः ॥१६९॥

---

1. सूरिस्ततः संश्रयति स्म हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) द्वीपश्राद्धाः । (२) रूपकनाणकैः । (३) सूरेः । (४) पञ्चविंशतिशतप्रमाणैः । (५) शरीरम् । (६) पूजयन्ति स्म । (७) भक्तेरतिशयेनोत्सुकीभवन्तः । (८) तीर्थकृतः । (९) प्रतिमाम् । (१०) कुसुमैः ॥१६९॥

[1]नभोनभस्याविव [2]निस्सरद्भिः, [3]पयःप्रवाहैर्नयने [4]वितन्वन् ।
[5]यावज्[6]जनो [7]मण्डपिका[8]ममुष्या-ऽ[9]लङ्कारयामास शरीरयष्ट्या ॥१७०॥

(१) श्रावणभाद्रपदाविव । (२) निष्पतद्भिः । (३) बाष्पपूरैः । (४) कुर्वन् । (५) यावदिति यस्मिन्समये । (६) श्राद्धवर्गः । (७) माण्डवीम् । (८) सूरेः । (९) शरीरयष्ट्या भूषयन्ति । मण्डपिकायां गुरुवपुः शाययति ॥१७०॥

[1]विमानघण्टापटुनादसान्द्र-ध्वनत्सुघोषेव [2]गभीररावा ।
[3]घण्टावली [4]ताव[5]ददृश्यमाना-ऽप्य[6]ध्वानिताऽ[7]दिध्वनद[8]भ्रमार्गे ॥१७१॥

(१) सौधर्मस्वर्गसम्बन्धिनां द्वात्रिंशल्लक्षविमानानां घण्टानां प्रकटध्वनिभिर्बहलीभूतशब्दायमानसुघोषाघण्टेव । (२) मन्द्रशब्दा । (३) घण्टामालिका । (४) तस्मिन्नवसरे । (५) दृशोरगोचरा । (६) जनैरताड्यमानापि । (७) शब्दायते स्म । (८) गगनमार्गे ॥१७१॥

[1]वाद्यौघमाद्यन्निनदै[2]र्जिनस्ये-वा[3]ऽमुष्य [4]निर्वाणमहं [5]प्रणेतुम् ।
किमा[6]ह्वयन्तस्[7]त्रिदशान्[8]शेषा-[9]नादाय [10]तां श्राद्धजनाः [11]प्रचेलुः ॥१७२॥

(१) वादित्रव्रजबहलीभवद्ध्वनिभिः । (२) तीर्थकृत इव । (३) सूरेः । (४) परलोकगमनमहोत्सवम् । (५) कर्त्तुम् । (६) आकारयन्त इव । (७) देवान् । (८) सर्वान् । (९) गृहीत्वा । (१०) मण्डपिकाम् । (११) प्रचलन्ति स्म ॥१७२॥

[1]ध्वजव्रजै[2]रूर्जितसान्ध्यरागो-पयुक्तव[3]द्विष्णुपदं [4]सृजन्तः ।
[5]आदायतां मण्डपिकां मुनीन्दोः, [6]संस्कारभूमी[7]मनय[8]ज्जनास्ते ॥१७३॥

(१) पताकानिकरैः । (२) प्रबलप्रातःसायंतनसन्ध्यासम्बन्धिरक्तिम्ना कलितमिव । (३) गगनम् । (४) कुर्वन्तः । (५) गृहीत्वा । (६) श्मशानभुवम् । (७) प्रापयन्ति स्म । (८) ते श्राद्धलोकाः ॥१७३॥

[1]महीन्दिरायाः [2]शिरसीव [3]नील-मणीप्रणीतातपवारणस्य ।
[4]रसालसालस्य [5]तलेऽखिलास्ते, [6]स्वांसस्थलान्मण्डपिका[7]ममुञ्चन् ॥१७४॥

(१) महालक्ष्म्याः । (२) मस्तके । (३) मरकतरत्ननिर्मितछत्रस्य । (४) सहकारतरोः । (५) अधोभूमौ । (६) निजस्कन्धप्रदेशात् । (७) मुमुक्षुः ॥१७४॥

[1]संस्कारोपस्करमथ, [2]तत्रा[3]ऽऽनिन्युर्जना [4]गतोत्साहाः ।
[5]चन्दनदलिकादिममिव, [6]गीर्वाणाः [7]सार्वनिर्वाणे ॥१७५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) गुरुशरीरसंस्करणाय समुदायम् । (२) संस्कारभूमौ । (३) आनयन्ति स्म । (४) विगतोद्यमाः । (५) श्रीखण्डकाष्ठप्रमुखम् । (६) देवाः । (७) जिनमुक्तिगमनसमये ॥१७५॥

[1]व्यालानुषङ्गवशतो [2]वसतेर्वनान्ते, [3]पुष्पश्रिया [4]फलरसैरपि [5]वन्ध्यभावात् ।
आगान्[6]मुमुर्षु[7]रतिदुःखगणेन [8]गन्ध-सारः कि[9]मत्र [10]तिथिसङ्ख्यमणप्रमाणः ॥१७६॥

(१) सर्पैः समं सङ्गमवशात् । (२) वनमध्ये वसनाच्च । (३) कुसुमशोभया । (४) सस्यानां, "फलं तु सस्य" मिति हैम्याम्, रसैर्निःस्यन्दैः । (५) मोघत्वात् । "यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलपुष्पवर्जितो विहित" इति वचनात् । (६) मर्त्तुमिच्छुः । (७) अधिकदुःखातिशयेन । (८) श्रीखण्डः । (९) अत्र संस्कारस्थानके । (१०) पञ्चदशमणप्रमाणः ॥१७६॥

[1]घृतमिव [2]पितृनिधन-भवो[3]ऽगुरुद्रवस्तत्र [4]पञ्चसेरमितः ।
[5]सुहृदिव [6]सस्नेहो[7]ऽगुरु-रप्यानीतो [8]मणत्रितयः ॥१७७॥

(१) आज्यम् । (२) पितुर्दध्नो मथनान्मारणादुत्पन्नम्, तथा तातस्य कृष्णागुरोर्निदाघाद्दलनात्सञ्जातः । (३) 'चूआ' इति नामाऽगुरुद्रवः । (४) पञ्चसेरप्रमाणः । (५) मित्र इव । (६) स्नेहः -द्रवश्चूआभिधः प्रीतिश्च तेन युक्तः । (७) काकतुण्डः । (८) त्रिमणमानः ॥१७७॥

श्यामत्वमात्मपितृघातकपातकं च, गौरीशविग्रहहुताशनसेवनाभिः ।
सारङ्गनाभिनिवहः प्रणिहन्तुकाम-स्तत्राऽऽजगाम किमु सेरयुगप्रमाणः ॥१७८॥

(१) कृष्णताम् । (२) स्वस्य पितुः कस्तूरिकामृगस्य घातान्मारणादुत्पन्नं पापम् । (३) शिवशरीरस्य, "क्षितिजलपवनहुताशन-यजमानाकाशसोमसूर्याद्याः । अष्टौ शिवमूर्त्तय" इत्युक्तेः, वह्नेः परिचरणाभिर्वह्निप्रवेशैरित्यर्थः । (४) मृगनाभिनिकरः । (५) निवारयितुमिच्छुः । (५) संस्कृतिस्थाने । (६) समागतः । (७) सेरद्वयप्रमाणः ॥१७८॥

[1]दिवं [2]गतस्याऽपि [3]विभोरमुष्य, [4]श्लोकस्त्रि[5]लोक्यामपि [6]पोस्फुरीति ।
[7]विवक्षयेतीव पुरो[8] नराणा-मागात्[9]त्रिसेरीप्रमितः [10]सिताभ्रः ॥१७९॥

(१) स्वर्गम् । (२) यातस्याऽपि । (३) श्रीहीरसूरेः । (४) यशः-सर्वदिग्गामुकम् । (५) जगत्त्रयेऽपि । (६) अतिशयेन स्फुरति । (७) वक्तुमिच्छया । (८) जनानामग्रे । (९) सेरत्रिकमितः । (१०) कर्पूरः ॥१७९॥

[1]ज्योतिःकुमारा इव [2]तीर्थभर्त्तुः, [3]प्रज्वाल्य पूर्वं [4]ज्वलनं [5]चितायाम् ।
सूरेः[6] शरीरस्य [7]शरीरिणस्ते, [8]संस्कारमा[9]तन्वत [10]चन्दनाद्यैः ॥१८०॥

(१) अग्निकुमारदेवाः । (२) जिनस्य । (३) सन्धुष्य । (४) कृशानुम् । (५) दाघस्थाने । (६) हीरसूरिदेहस्य । (७) श्राद्धाः । (८) अग्निसंस्कारम् । (९) चक्रुः । (१०) चन्दनप्रमुखैर्द्रव्यैः ॥१८०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]सप्तसहस्त्राः [२]सर्वाः, [३]सम्भूय ल्यारिका [४]इह [५]व्ययिताः ।
[६]सप्ताऽपि [७]दुर्गतीरिव, [८]निषेद्धुमेतैः [९]समुत्सुकितैः ॥१८१॥

(१) सप्तसहस्त्रप्रमाणाः । (२) सर्वा अपि वस्त्रादीनां चन्दनादीनां पूजानां च । (३) एकत्र कृत्वा । (४) संस्कारावसरे । (५) व्ययीकृताः । (६) सप्तसङ्ख्याका अपि । (७) नरकगतीः । (८) निवारयितुम् । (९) उत्कण्ठितैः ॥१८१॥

[१]चैत्ये [२]श्रीफलतन्दुलान्[३]जिनपुरस्तै[४] ढौकयित्वा ततः,
[५]संस्तुत्य [६]प्रणिपत्य भक्तिभरिता [८]जग्मुर्गृहाना[७]त्मनाम् ।
[९]गीर्वाणा इव [१०]वासवप्रभृतयो [११]नन्दीश्वरे[१२]ऽष्टाहिकाः,
[१३]निर्माया[१४]ऽनुसमेतयौवतयुता [१५]निर्वाणकल्याणके ॥१८२॥

(१) प्रासादे । (२) नालिकेरशालिप्रमुखकणश्रेणीम् । (३) प्रतिमापुरस्तात् । (४) संस्कारकारिणः । उपलक्षणात्परेऽपि द्वीपोन्नतनगरश्रावकाः । (५) संस्तवमजितशान्ति-शान्तिस्तवादि कृत्वा कथयित्वा च । (६) प्रणम्य । प्रणामश्च भक्तिनिर्भराणामेव । (७) आत्मीयान्गेहान् । (८) गताः । (९) देवा इव । (१०) शक्रप्रमुखाः । (११) नन्दीश्वरद्वीपे स्वस्वाञ्जनरतिकरदधिमुखा-दिगिरिषु । (१२) अष्टाह्निकामहोत्सवम् । (१३) कृत्वा । (१४) पश्चात्समागतयुवतीसमूहकलिताः । (१५) भगवन्निर्वाणकल्याणकसमये ॥१८२॥

[१]तस्मिन्नेव निशावसानसमये [२]दिव्यश्रियं [३]संश्रय-
न्साहि[४]श्रीमदकब्बरावनिपतेः [५]श्रीहीरसूरीश्वरः ।
[६]प्राग्वाग्बद्ध इवा[७]ऽभ्युपेत्य [८]सविधे [९]प्राचीनरूपाञ्चितो,
मित्रस्येव [१०]निजं [११]द्युलोकगमनं [१२]प्राक्स्नेहतः [१३]प्रोचिवान् ॥१८३॥

(१) यस्यां निशायां हीरसूरयः स्वर्लोकमलञ्चक्रुस्तत्र रात्रिपर्यन्तसमये-ब्राह्मे मुहूर्त्ते । (२) देवतासम्बन्धिनीं लक्ष्मीम् । (३) बिभ्राणः । (४) पातिसाहिश्चतुर्दिगन्तदेशाधिपस्य हस्त्यश्वपुरनगरग्रामदुर्गकोट्टहेमरूप्यमणिमौक्तिकप्रमुखाशेषलक्ष्मीशालिनः अकब्बरस्य । (५) श्रीहीरविजयसूरीन्द्रः । (६) प्राचीनवाचा नियन्त्रित इव । (७) समागत्य । (८) पार्श्वे । (९) सूरिसम्बन्धिना पूर्वस्वरूपेन(ण) कलितः । (१०) आत्मीयम् । (११) स्वर्लोकगमनम् । (१२) प्राचीनमिलनसञ्जातप्रीत्या । (१३) कथयति स्म ॥१८३॥

[१]तन्मूर्त्तिसंस्कृतिपदे [२]सुरसृष्टनाट्य-[३]मालोक्य [४]तीर्थ इव [५]नागरनैगमेन ।
[६]तत्सन्निधिस्थकृषिरक्षणदीक्षितेन, [७]प्रातः [८]पुरीजनपुरस्त[९]दुदीर्यते स्म ॥१८४॥

(१) सूरिदेहसंस्कारस्थाने । (२) देवनिर्मितनाटकम् । (३) दृष्ट्वा । (४) शत्रुञ्जयादि-तीर्थभूमाविव । (५) नागरजातीयेन वणिजा । (६) सूरिसंस्कारस्थानसमीपकृतकृषिरक्षणे गृहीतप्रतिज्ञेन । (७) प्रातःकाले । (८) नगरलोकस्याऽग्रे । (९) निगदितम् ॥१८४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]दिव्यविमानविलोकन-वार्त्तां [2]पुनरेत्य [3]सत्यवा[4]ग्विप्रः ।
[6]न्यगद[5]न्नगरजनानां, स्व[7]प्नविदां स्वप्नमिव पुरतः ॥१८५॥

(१) देवतासम्बन्धिविमानदर्शनस्य वृत्तान्तम् । (२) समागत्य । (३) सूनृतभाषी । (४) ब्राह्मणः । (५) समस्तमनुष्याना(णा)मग्रे । (६) कथयति स्म । (७) स्वप्नज्ञानां पुरो यथा स्वप्नं निवेद्यते ॥१८५॥

[1]तस्यामेव [2]त्रियामायां, स [3]माकन्दो वसन्तवत् ।
पूर्वं[4] मञ्जरितोऽनल्पैः[6], फलैः [7]सम्पूरितस्त[5]तः ॥१८६॥

(१) सूरिनिर्वाणसम्बन्धिन्यामेव । (२) रात्रौ । (३) संस्कारस्थानस्थसहकारतरुः । (४) पूर्वं मञ्जरीयुतोऽभूत् । (५) पश्चात् । (६) फलपटलैः । (७) पूर्णीभूतः ॥१८६॥

[1]चित्रीयमाणै[2]श्चित्तान्त-र्यात्रायामिव [3]यात्रिकैः ।
[4]समाजग्मे [5]समं [6]तत्र, [7]नागरैर्ना[8]गरीसखैः ॥१८७॥

(१) आश्चर्यं प्राप्नुवद्भिः । (२) मनोमध्ये । (३) यात्राकारकैः । (४) समागतम् । (५) एककालम् । (६) सूरिशरीरसंस्कारस्थानसहकारे । (७) नागरलौकैः । (८) स्त्रीसहितैः ॥१८७॥

[1]शेषा इव [2]त्रिभुवनाधिपतेः [3]प्रमोदा-ल्लोकाः [4]सहैव [5]जगृहुः [6]सहकारिकास्ताः ।
[7]प्रस्थापयन्पुनर[8]कब्बरपातिसाहे-[9]रद्वैतविस्मयकरी[10]रुपदा इवैताः[11] ॥१८८॥

(१) शीर्षाः । 'सेस' इति प्रसिद्धाः । (२) परमेश्वरस्य । (३) हर्षात् । (४) समकालं समेत्य । (५) गृह्णन्ति स्म । (६) करीरिकाः 'कइरी' इति नाम्ना प्रसिद्धाः । (७) प्रेषयामासुः । (८) पातिसाहेः । (९) असाधारणाश्चर्यकारिकाः । (१०) प्राभृतानि । (११) सहकारिकाः ॥१८८॥

[1]लाडकीति [2]प्रिया यस्य, [3]मूर्त्ता श्रीरिव [4]वेश्मनि ।
[5]स्वर्गवी किमसौ [6]स्वर्गा-[7]द्भूमण्डल[8]मुपागता ॥१८९॥

स [1]द्वीपबन्दिरश्रेष्ठी, [2]मेघनामा [3]परीक्षकः ।
[4]आर्षभिर्वृ[5]षभस्येव, [6]सूरेः स्तू[7]पमकारयत् ॥१९०॥ युग्मम् ॥

(१) लाडकीनाम्ना । (२) पत्नी । (३) शरीरवती । (४) गेहे । (५) कामधेनुः । (६) स्वर्लोकात् । (७) भूमौ । (८) समेता ॥१८९॥

(१) द्वीपनगरस्य श्रेष्ठी । (२) मेघ इति नाम यस्य । (३) पारिखः । (४) भरतः । (५) ऋषभदेवस्य । 'भ्रातृशतप्रतिमामात्मप्रतिमां च स्तूपशतं च मा कश्चिदाक्रमणं करिष्यतीति तत्रैकं भगवतः स्तूपं शेषाणि एकोनशतभ्रातृणाम्', इति हारिभद्र्यां मलयगिर्यां चावश्यकवृत्तौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) हीरसूरेः । (७) स्तूपं कारियति स्म ॥१९०॥ युग्मम् ॥

[1]आकृष्टा इव तिष्ठन्तः, [2]प्रभावैस्तत्[3]प्रभोरिह ।
[4]अर्हन्मूर्त्तेरिवै[5]तस्य, सुराः [6]सान्निध्यमा[7]दधुः ॥१९१॥

(१) आकृष्याऽऽनीता इव । (२) माहात्म्यैः । (३) हीरसूरीश्वरस्य । (४) जिनप्रतिमाया इव । (५) स्तूपस्य । (६) सन्निधिताम् । लोकरक्षाकामितपूरणादिकं सान्निध्यम् । (७) कुर्वते स्म ॥१९१॥

तत्राऽर्चितुं स्तूपमकब्बरेण, समीपभूमी कियती वितीर्णा ।
सिद्धाचले सिद्धनृपेण नाभि-भवं यथा द्वादश सन्निवेशाः ॥१९२॥

(१) तत्र स्तूपसमीपे । (२) पूजयितुम् । (३) स्तूपम् । (४) साहिना । (५) समीपस्थानकभूमिका । (६) कियत्प्रमाणा । (७) दत्ता । (८) शत्रुञ्जये । (९) सिद्धराजजयसिंहेन देवेन । (१०) ग्रामाः ॥१९२॥

[1]माकन्दमोचाबकुलप्रियाल-कङ्केल्लिकुन्दादितरूपयुक्तम् ।
[2]तस्यां[3]ऽभितोऽभूत्[4]सुमनोद्रुमाङ्कं, वनं सुमेरोरिव [5]भद्रसालम् ॥१९३॥

(१) सहकार-कदली-केसर-राजादना-ऽशोक-मुचकुन्दप्रमुखद्रुमकलितम् । (२) स्तूपस्य । (३) परितः । (४) कुसुमकलितास्तरवोऽङ्के यस्य कल्पवृक्षाङ्कितं वा मध्यं यस्य । (५) भद्रसालनाम, पार्श्वभूमौ ॥१९३॥

[1]यात्रिक[2]स्तत्र यात्रां [3]जिनेन्द्राद्रिव-[4]न्निर्मिमीते [5]चतुर्दिग्विभागागतः ।
[6]कामिकस्वर्गिणे[7]वाऽमुना [8]कामितं, पूर्यते[9]ऽन्यच्च सेवा[10]सु हेवाकिनाम् ॥१९४॥

(१) यात्राकारकः । (२) स्तूपे । (३) शत्रुञ्जये इव । नगरपुराणोक्तमिदं विमलाचलनाम । (४) करोति । (५) चतुर्भ्यो दिशां प्रदेशेभ्य आगतः । (६) कामिकपूरकसुरेणेव । (७) अभिलाषः । (९) अन्यदिति यात्राकारकाणां तेन कामितं चरितमेव पूर्णीक्रियते-प्रदीयते इत्यर्थः । (१०) सेवनशीलानाम् ॥१९४॥

[1]तत्प्रक्रमे [2]विजयसेनगुरु[3]र्हमाऊ-सूनुं [4]पृणन्[5]सदसि [6]लाभपुरे [7]बभूव ।
[8]धर्मावनीप्रियतमं पुरिं लक्षणाद्य-वत्यामिव [10]व्रतिपुरन्दरबप्पभट्टिः ॥१९५॥

(१) तस्मिन्हीरसूरिस्वर्गगमनकालात्प्राक्काले । (२) श्रीविजयसेनसूरिः । (३) अकब्बरपातिसाहिः(हिम्) । (४) प्रीणयन् । (५) सभायाम् । (६) होरनगरे । (७) अभूवन् । (८) धर्मराजम् । (९) लक्षणावत्यां नगर्याम् । (१०) बप्पसूरिरिव ॥१९५॥

1. अन्वतिष्ठंश्चतुर्दिग्विभागागता यात्रिकास्तत्र यात्रां जिनेन्द्राद्रिवत् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]वादे [२]वादिगणान्[३]विजित्य [४]समरे [५]दैत्यानि[व] [६]श्रीपतिः,
[१०]कीर्त्तिस्तम्भमिवाऽऽत्मनो [७]नृपपुरः [९]संस्थाप्य [८]धर्मं पुनः ।
[११]श्यामीकृत्य मुखान्य[१२]शेषकुदृशां [१३]पूषेव [१४]काकद्विषां,
[१५]सूरिः [१७]कारयति स्म भूमिवलये स्वीयां [१६]जयोद्घोषणाम् ॥१९६॥

(१) विवादावसरे । (२) ब्राह्मणगणान्प्रतिवादिनः । (३) जित्वा । (४) सङ्ग्रामे । (५) असुरानिव । (६) नारायणः (७) पातिसाहिपुरः । (८) जैनधर्मम् । (९) स्थापयित्वा । (१०) आत्मनः कीर्त्तिस्तम्भमिव । (११) कृष्णानि कृत्वा । (१२) कुमतीनां वदनानि । (१३) सूर्य इव । (१४) कौशिकानाम् । (१५) विजयसेनसूरिः । (१६) आत्मीयजयपटहम् । (१७) वादयति स्म ॥१९६॥

[१]तस्य [२]स्फुरन्मानम[३]कब्बरेण, प्रीत्या [४]स्फुरन्मानमिवा[५]ऽर्प्पयित्वा ।
स(स्व)[६]बन्धुवत्स्वीय[७]जनैरुपैतः, [८]सम्प्रेषितो [९]हीरगुरोः [१०]समीपे ॥१९७॥

(१) सूरेः । (२) फुरमानम् । (३) साहिना । (४) जगच्चमत्कारकारिसन्मानमिव । (५) समर्प्य । (६) स्वभ्रातरमिव । (७) स्वकीयजनेन कलितम् । (८) प्रेष्यते स्म । (९) हीरसूरेः । (१०) पार्श्वे ॥१९७॥

[१]सोऽप्या[२]कर्णितहीरसूरिमघवाङ्गापाटवः [३]सञ्चरन्,
[४]याव[५]द्गूर्जरदेशलक्ष्मितिलकं [६]सम्प्राप्तवान्[७]पत्तनम् ।
[८]सन्तप्तत्रपुराशिसिञ्चनमिव [९]श्रुत्यो[१०]रशर्मावहं,
[११]स्वर्लोकोपगमं [१२]गुरो[१३]र्गणधरस्ता[१४]वत्समाकर्णयत् ॥१९८॥

(१) श्रीविजयसेनसूरिरपि । (२) श्रवणविषयीकृतहीरसूरिशक्रशरीरमान्द्यः । (३) अनवच्छिन्नप्रयाणैः प्रचलन् । (४) यस्मिन्समये । (५) गूर्जरमण्डललक्ष्म्या भालस्थलतिलकायमानम् । (६) प्राप्तः । (७) अणहिल्लपत्तनम् । (८) अग्नितापितत्रपूणां राशेः श्रवसि क्षेपणमिव । (९) कर्णयोः । (१०) दुःखकारि । (११) देवलोकगमनम् । (१२) श्रीहीरसूरेः । (१३) गच्छाधिराजः । (१४) श्रुतवान् ॥१९८॥

[१]श्रुत्वा [२]तद्व[३]ज्राहत, इवाऽभवद्[४]बाष्पपूर्णनयनयुगः ।
[५]एष पुन[६]र्दुःखादिद-[७]मजीगद[८]द्गद्गदध्वनितः ॥१९९॥

(१) आकर्ण्य । (२) गुरोः स्वर्लोकगमनम् । (३) वज्रेण ताडिव इव । (४) अश्रुभिः पूरितलोचनयुगलः । (५) सूरिः । (६) असातात् । (७) वारं वारं वक्ति स्म । (८) दुःखभरादपटुध्वनितः ॥१९९॥

[१]उच्छिन्नः [२]सुरभूरुहो[३]ऽप्यपगता [४]स्वर्धामधेनुः पुन-
[५]र्भग्नः [६]कामघटो [७]मणिः सुमनसां [८]चूर्णीबभूव क्षणात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[९]दग्धा [१०]चित्रलता [११]गतः [१२]शकलतां [१३]हा ! [१४]दक्षिणावर्त्तभृत्
[१५]कम्बुं [१६]स्वर्गिगृहं [१७]गते त्वयि गुरो ! [१८]श्रीहीरसूरीश्वर ! ॥२००॥

(१) उच्छेदं प्राप्तः । (२) कल्पवृक्षः । (३) व्यापन्ना । (४) कामधेनुः । (५) ठिक्करीभूतः । (६) कामकुम्भः । (७) चिन्तामणिः । (८) चूर्णतां लेभे । (९) ज्वलिता । (१०) चित्रवल्ली । (११) प्राप्तः । (१२) खण्डताम् । (१३) हा इति खेदे । (१४) दक्षिणदिशि आवर्त्तं बिभर्त्तीति । (१५) शङ्खः । (१६) देवमन्दिरम् । (१७) याते । (८) श्रीहीरविजयसूरे ! ॥२००॥

[१]हा ! हा ! [२]भूघनबोधनैकविबुध ! [३]श्रीसूरिचूडामणे !,
हा ! [४]सिद्धान्तसमुद्रमन्दरगिरे ! हा ! [५]शासनाहर्मणे ! ।
हा ! हा ! [६]यौक्तिकवाक्पुरन्दरगुरो ! [७]वैराग्यवारांनिधे !
हा ! [८]कारुण्यनिधे ! [९]विधेर्वशतया त्वं [१०]कुत्र यातः प्रभो ! ॥२०१॥

(१) हा हा इति पुनः पुनः खेदवाक्ये । (२) मुद्गलेन्द्राकब्बरसाहिप्रतिबोधनेऽद्वैतनैपुण्यवान् । (३) श्रिया युक्ता ये सूरयस्तेषां मुकुटायमान ! । (४) आगमसागरावगाहनमेरुगिरे ! । (५) जिनशासनभानो ! दीपकत्वात् । (६) युक्तिमद्वचनभाषणे वाचस्पते ! (७) वैराग्यसमुद्र ! । (८) कृपानिधे ! (९) दैवस्याऽऽयत्तत्वेन । (१०) अस्मान्मुक्त्वा त्वं कस्मिन्स्थाने गतः ॥२०१॥

[१]अद्या[२]ऽस्तं गतवान्[३]सहस्रकिरणश्[४]चन्द्रोऽपि [५]तन्द्रां गतः,
[७]शुष्कः [६]क्षीरनिधि[८]र्विधे[९]र्विलसितै[१०]र्मे[११]रुर्विलीनः पुनः ।
[१२]भूमौ [१३]श्रीजिनसार्वभौमविभवभ्राजिष्णुतां [१४]बिभ्रति,
[१५]श्रीसूरीश्वरहीरहीरविजये [१६]गीर्वाणगेहं [१७]गते ॥२०२॥

(१) एवं ज्ञायते । (२) अस्तमितः । (३) भास्करः । (४) शशी अपि । (५) तन्द्रावशीभूतः । (६) क्षीरसागरः । (७) शोषं प्राप्तः । (८) दैवस्य । (९) विजृम्भितैः । (१०) स्वर्णाचलः । (११) द्रवीभूतः । (१२) भूमण्डले । (१३) जिनेन्द्रवैभववत्तीर्थकरातिशयलक्ष्मीवच्छोभनशीलताम् । (१४) धारयति । (१५) श्रिया युक्ता ये सूरय आचार्यास्तेषामीश्वरा अतिशायिशोभाभाजस्तेषु हीरः-रत्नायमाने हीरविजयसूरीन्द्रे (१६) स्वर्गम् । (१७) प्राप्ते । एवंविधः समयो जातः ॥२०२॥

[१]गर्जन्ति [२]प्रतिमन्दिरं [३]प्रमुदिता [४]मिथ्यादृशः [५]कौशिकाः,
[६]श्रीमत्सङ्घसरोजकानन[७]मिदं [८]म्लानिं च धत्तेऽधुना ।
[९]सम्प्राप्तप्रसराः [१०]स्फुरन्ति [११]परितो [१२]नक्तंचरा [१३]दुर्दृशो,
याते[१४]ऽस्तं गवि [१५]हीरसूरितरणौ [१७]स्फूर्त्ति [१६]तमः [१७]शीलति ॥२०३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) गर्जारवं कुर्वन्ति । (२) गृहं गृहं प्रति । (३) हृष्टाः सन्तः । (४) मिथ्यात्विनः । (५) कौशिका इवेति गर्भितोत्प्रेक्षा । (६) शोभायुक्तसङ्घरूपकमलकाननम् । (७) प्रत्यक्षं दृश्यमानम् । (८) सङ्कोचमञ्चति । चतुर्विधसङ्घरूपपद्मवनं विच्छायीभूतमास्ते । (९) लब्धावकाशाः । आसादितविस्तरा वा । (१०) स्फूर्त्ति श्रयन्ति-प्रसरन्ति । (११) चतुर्दिक्षु । (१२) निशाचरा राक्षसा इव । (१३) दुष्टदर्शनाः कुपाक्षिका । (१४) दिवं सम्प्राप्ते । (१५) <u>हीरसूरि</u>भास्करे । (१६) तमोऽज्ञानं ध्वान्तम् । (१७) प्रकटीभवति । ॥२०३॥

[१]कातर्यमुत्सृज्य [२]विधाय [३]धैर्यं, दुःखं [४]तनूकृत्य [५]स [६]कृत्यविज्ञः ।
[७]गणः [८]गणीन्द्रो [९]गुणिनां [१०]वरेण्यः, [११]प्राचीनसूरीन्द्र इव [१२]प्रशास्ति ॥२०४॥

(१) श्रीगुरुविरहेण विधुरीभावं कातरत्वं त्यक्त्वा । (२) कृत्वा । (३) धीरतामवलम्ब्य । (४) गुरुं दुःखमपि स्वल्पीकृत्य । (५) सूरिः । (६) कार्यकुशलः । (७) गच्छम् । (८) सङ्घे प्रवचनेऽधीतिनां मध्ये स्वामी । (९) गुणवताम् । (१०) प्रकृष्टः । (११) पूर्वाचार्य इव । (१२) अधुना पालयतीत्यर्थः ॥२०४॥

[१]श्रीसूरिहीरविजये [२]भजति [३]द्युलोक[४]मभ्युद्गते [५]विजयसेनगणावनीन्द्रे ।
[६]प्रीतिं [७]जना [८]दधति [९]शीतरुचौ प्रयाते[१०], क्षेत्रान्तरं [११]समुदिते[१२]ऽशुमतीव [१३]कोकाः ॥२०५॥

(१) श्रिया युक्तः सूरिः <u>हीरसूरि</u>स्तस्मिन् । (२) स्वर्लोकम् । (३) श्रयति सति । (४) अभ्युदयं प्राप्ते । (५) <u>विजयसेनसूरीन्द्रे</u> । (६) धर्मस्नेहं प्रमोदं वा । (७) लोका । (८) धारयन्ति । (९) चन्द्रे । (१०) दीपान्तरं याते सति । (११) उदयं गते । (१२) भास्करे । (१३) चक्रवाकाः ॥२०५॥

[1][१]साम्राज्यं [२]वारांनिधि-वसनावलयस्य [३]सार्वभौम इव ।
[४]जिनशासनस्य राज्यं, [६]भजते [५]श्रीविजयसेनविभुः ॥२०६॥

(१) सम्यगाधिपत्यम् । (२) भूमण्डलस्य । (३) चक्रवर्त्तीव । (४) जिनशासनस्यैश्वर्यम् । (५) <u>श्रीविजयसेनसूरिः</u> । (६) इदानीं श्रयते ॥२०६॥

[2]श्री[१]विजयदेवसूरी-श्वरेण सहितो [२]हरि[३]र्जयेनेव ।
[४]श्रीविजयसेनसूरि-क्षमापतिः [५]पर्वतायुः स्तात् ॥२०७॥

(१) पट्टालङ्कारकारिणा श्रीविजयदेवसूरीन्द्रेण सहितः । (२) शक्रः । (३) जयदत्ते(न्ते)-नेव । (४) <u>श्रीविजयसेनसूरिराजः</u> । (५) पर्वततुल्यायुर्भवतात् ॥२०७॥

---

1. तत्पट्टोदयभूधर-भास्वान्श्रीविजयदेवसूरीन्द्रः । भजते तपगणराज्य-श्रियमुर्वीसार्वभौम इव ॥२०९॥ हीमु० ।
2. सीहगिरेरिव व्रज्र-स्वामी तस्यैष पदपयोधिविधुः । श्रीविजयदेवसूरि-क्षोणीन्द्रः पार्वतायुः स्यात् ॥२१०॥ हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथाऽऽशीर्वादावसरः -

[१]यावन्मा[२]र्त्तण्डमुख्यग्रहणकलितो भूभृतां चक्रवर्त्ती,
[३]प्रीतिं पी[४]यूषपूरैः [५]सृजति [६]जनदृशां [७]शर्वरीसार्वभौमः ।
यावत्पा[८]थोजपाणि[९]र्हरिदलसदृशामा[१०]स्यपद्मप्रकाशी,
यावद्[११]भूपीठभारं [१२]भजति नि[१३]जफणामण्डलैः [१४]कुण्डलीन्द्रः ॥२०८॥

[१]यावज्जम्भारिधूमध्वजजलजसुहृत्सूनुरक्षःस्रवन्ती-
कान्तावासाहिकान्तत्रिनयनसवयः पार्वतीशा [२]दिगीशाः ।
यावत्पा[३]थोधिपृथ्वीधरगुरुगुरुतां बिभ्रती [४]रत्नगर्भा,
[1][५]जन्तून्यावत्[६]पुनीते [७]त्रिजगति [८]भगवद्भारती [९]स्वःस्रवन्ती ॥२०९॥

[१]स्थेमानं [२]गाहमानो [३]बलमथनपथे यावदौ[४]त्तानपादि-
र्यावत्[५]कल्लोललेखाविलिखितदिविषत्पद्धतिः [६]सिन्धुकान्तः ।
[2]श्री[७]मद्रूपाङ्गजादिव्रतिविधुमधुकृच्चुम्ब्यमानांह्रिपद्म-
स्ता[८]वज्जी[९]यात्स[१०] [११]कम्माङ्गजमुनिमघवा [१२]पार्श्वदेवप्रसादात् ॥२१०॥

[त्रिभिर्विशेषकम्]

इति पं०देवविमलगणिविरचिते श्रीहीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये शत्रुञ्जययात्राकरणानन्तरप्रस्थान-शत्रुञ्जयासिन्धूत्तरणा-ऽजयपार्श्वनाथयात्राकरण-तन्महिमवर्णन-द्वीपसङ्घसम्मुखागमनोन्नतनगरपवित्रीकरण-संलेखनाराधनाविधाना-ऽनशनपूर्वकस्वर्लोकगमन-श्रीविजयसेनसूरिगणैश्वर्याऽशीर्वादवर्णनो नाम षोडशः (सप्तदशः) सर्गः । सम्पूर्णं चैतत्काव्यमजायत श्रीपार्श्वनाथप्रसादाच्चिरं नन्दतु ।

इति षोडशः (सप्तदशः) सर्गः ॥१६(१७)॥ ग्रन्थाग्र ३०५॥

सूत्रसर्वसङ्ख्या सप्ता(प्त)दशसर्गः ॥१७॥ ग्रन्थाग्रसूत्रसङ्ख्या ४१९२॥

सूत्र-वृत्तिसर्वैकत्रमीलने ग्रं० ९७४५ ॥

(१) यावत्कालम् । (२) सूर्यप्रमुखग्रहसमूहसहितो मेरुगिरिरस्ति । (३) प्रमोदम् । (४) अमृतरसप्रसरैः । (५) करोति । (६) लोकलोचनानाम् । (७) चन्द्रः । (८) सूर्यः । (९) दिग्मृगाक्षीणाम् । (१०) वदनकमलविकाशकः । (११) भूमण्डलभारम् । (१२) श्रयति । (१३) स्वफणाचक्रवालैः । (१४) शेषनागः ॥२०८॥

(१) यावत्कालम् । (२) इन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवायुकुबेरेशानाः । (३) अष्टौ दिक्पालाः । (४) समुद्राणां गिरीणां चाऽतिशायिभारं बिभ्रती । (५) वसुधा । (६) प्राणिनः । (७) पवित्रयति । (८) त्रिभुवने । (९) जिनवाणी । (१०) गङ्गा च ॥२०९॥

1. जन्तून् यावत्पुनाति त्रिभुवनभवनान्भारती विश्वभर्तुः हीमु० ।

2. यावत्सिद्धस्रवन्तीतपनतनुरुहाभारतीसङ्गमश्च श्रीमत्पार्श्वप्रसादाज्जगति विजयतां हीरसौभाग्यकाव्यम् । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्थिरताम् । (२) अवलम्बमानः । (३) गगने । (४) ध्रुवः । उत्तानपादस्य राज्ञोऽपत्यमिति । (५) तरङ्गावलीसमालिङ्गिताकाशमार्गः । (६) रत्नाकरः । (७) सूरिश्रिया कलितो यो रूपादेवीतनुजन्मा श्रीविजयदेवसूरिरपरेऽपि मुनिचन्द्रास्तैरेव भ्रमरैश्चुम्ब्यमानं चरणकमलं यस्य सः । (८) तावत्कालम् । (९) सर्वोत्कर्षेण प्रवर्त्तताम् । (१०) स पूर्वव्यावर्णितस्वरूपः । (११) कम्मानामवणिग्मुख्यस्तस्य नन्दनः - श्रीविजयसेनसूरिराजः । (१२) श्रीमच्चिन्तामणि-पार्श्वनाथ प्रसादात् ॥२१०॥ [त्रिभिर्विशेषकम्]

इति श्रीहीरसौभाग्य(सुन्दर)काव्यस्य कतिचित्पर्यायाः । इति सप्तदशसर्गः सम्पूर्णः ।

ग्रन्थाग्र ५३८ वृत्तितो ज्ञेयो सर्वसङ्ख्या ग्रन्थाग्र ५५५१ ॥

*संवत् सोल १६७१ वर्षे भाद्रवा शुदि पंचमी शनिवासरे श्रीअहमदाबादनगरे वास्तव्य हाजापटेल प्रपाटके पं.श्रीदेवदासशिष्य कुंअरजी लिखितम् ॥

याद्रसं पुस्तके दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया । यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयताम् ॥

वाच्यमाना चिरं नन्दितात् चन्द्रार्कयावत् ॥

★ एष पाठो हील०प्रान्ते दृश्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट - १

हीरसुन्दरकाव्यसत्कपद्यानामकाराद्यनुक्रमः

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
अंहोद्रुहामाभरणानि भिक्षोः०	१७	९१
अगण्यपुण्यादिव पक्त्रिमान्निजा०	१४	१७६
अगाधभववारिधेरभिलषद्भिरेतुं०	१६	१०
अतिप्रमाणा नृप ! जिह्मगामिनो०	१४	१६५
अत्राऽनन्तजिना अनन्तमुनिभिः०	१६	१३७
अथ प्रदेशी च स केशिनाऽमुना०	१४	१
अथ व्रतादानदिनात्तपो०	१७	८७
अथ व्रतीन्द्रोऽभ्युदयं दधाने०	१७	१
अथ सा त्रिदशीसूरि०	९	१
अथ सुहृद इव स्वं सारवस्तु०	१५	१
अथाऽधिरुह्योर्ध्वधरां स किंचना०	१४	६
अथाऽर्बुदाद्रेखतीर्य भूमीं०	१३	१
अथाऽऽकारिताः श्रावकास्तेन०	११	३४
अथाऽऽत्मधाम्नीव स शेखमन्दिरे०	१४	१५४
अथाऽऽरुह्य वाह्यानि ते श्राद्धलोकाः०	११	४९
अथाऽऽह्वातुमीहांबभूवाऽब्धिनेमी०	११	१
अथैनमापृच्छ्य स भूमिभूषणं०	१४	११६
अथो जल्पतस्तान्प्रति श्रीव्रतीन्दोः०	११	८०
अथो पाथोजिनीनाथो०	९	६१
अथो पृथिव्या उशना इवाऽसौ०	१३	१२९
अथो लाटलक्ष्मीललामायमानं०	९	१४४
अथोन्नताख्यस्य पुरस्य पार्श्वे०	१७	१६१
अदत्तमादत्त न यस्त्रिधाऽपि तं०	१४	४४
अदीक्षयत्तत्र स कांश्चिदिभ्य०	१६	१११
अदृग्गोचरपारस्य०	९	९
अद्याऽस्तं गतवान्सहस्रकिरण०	१७	२०२
अधीश्वराणां नवमं दिशां वा०	१३	१६९
अध्याप्य देवगुरुणा स्वविनेयवर्गैः०	१०	९२
अध्वरोद्धुः सुधाधामचण्डद्युतो०	१२	५६

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
अनक्षिलक्ष्याऽपि यथाऽनुमीयते०	१४	१७
अनर्णिमर्मणिमालाशालिनी यस्य०	१५	२५
अनन्यगुणवाहिनीशितुरनन्तर०	१६	८५
अनन्यशिवकन्यकां मनसि०	१६	६२
अनश्वरी श्रीर्युवना किमु ध्रुवा०	१४	२१
अनाध्यायिकाऽऽस्ये तिथिर्वास्यते०	११	८५
अनित्यताभावनया पदार्थ०	१३	१८१
अनीकं शुभं भूभुजो येन जज्ञे०	११	३०
अनुगृहाण गृहाण पुरस्कृतं०	११	१३७
अनुन्नीतसम्प्राप्तमद्भृत्यवर्गं०	११	४३
अनेकनरनिर्जरोरगपुरन्दरोपासितं०	१६	८८
अनेहसीव युग्मिनां०	१४	१९५
अन्याननन्यां मुदमादधानः०	१७	२
अन्येऽपि सङ्घाः पुरपत्तनेभ्यो०	१७	७९
अपास्य पीयूषरसं जिजीविषु०	१४	२०
अपि धृतसुरसिन्धुर्नागरङ्गी०	१५	१७
अपि प्रपन्नो भुवने धुरीणतां०	१२	१११
अपि यतिपर्जन्योदित०	१३	२२२
अपि स्वापकर्त्तुर्जनस्योपकार०	११	६८
अपूरयन्केऽपि तदा त्रिरेखान्०	१३	७३
अपेक्षया पञ्चमहाव्रतानां०	१७	१४२
अपेक्षां च न क्वापि कुर्वन्ति०	११	६२
अभङ्गभोगाम्बुधिशम्बरीयतां०	१४	१८
अभाजि युष्माभिरिवाऽनुगामिभिः०	१४	२६
अभितः सितयद्वसतेर्विशदः०	१२	९२
अभिवन्द्य विभोः पादां०	१४	२५५
अभ्रभ्रमाद्यदभिमात्ययशोलुलाय०	१०	५४
अभ्रमूवल्लभेनेवोत्खातः०	९	६३
अभ्रविभ्राजियन्मेदिनीभृद्भृगु०	१२	६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
अभ्रैरनीकैरिव दिग्विभागा०	१३	१११
अमन्तुजन्तुव्ययपातकेना०	१३	१२५
अमरपुरीकृतलज्जे०	९	१५०
अमर्षणेनेव रुषा हसेन०	१७	१३५
अमितरजतरत्नस्वर्णशृङ्गैरस०	१५	५
अमी न गृह्णान्ति मदीयपुस्तकं०	१४	१०३
अमी नृशंसाः परघातिनः क्षितेः०	१४	१६६
अमी प्रजाम्भोजरमाहिमागमा०	१४	१७५
अमी मूलकर्मेव तच्चित्तवृत्तेः०	११	३७
अमी वीङ्खां प्रकुर्वन्ति०	९	११०
अमीभिरुक्तिर्मम सृज्यते न०	१४	१००
अमुं च जानीथ न मुद्गलेश्वरं०	१४	१०७
अमुं नमन्तीमिव वीचिसञ्चयै०	१४	१३६
अमुष्य मुख्याः शकुनाः परःशताः०	११	१०३
अमुष्य शिष्येषु गवेषयन्नहं०	१४	९१
अम्बरालिङ्गिशृङ्गावलीपल्वलो०	१२	६२
अम्भोजनाभा इव ये त्रिलोक्याः०	१७	१२१
अम्भोभृताभ्रभ्रमदभ्रलेखा०	१३	१००
अयं श्रयति मां सदा तनय०	१६	८६
अयं हन्ति दावाग्निवद्वन्यजन्तून्०	११	७७
अयमानीयताऽमीभि०	९	९२
अयाच्यन्त किं चाऽम्बुदाः०	११	६५
अयि ! स्वस्तिमन्त्यो नृपाम्भोजनेत्राः०	११	२९
अरुन्तुदं कुपक्षाणा०	९	१२६
अर्कांशुसम्पर्किपतङ्गकान्ता०	१५	७२
अर्घ्यं मुदस्राम्बुभिरुल्लसद्भि०	१३	१२२
अर्जुनश्रीदधो मर्त्यमालास्फुर०	१२	६१
अर्त्याऽब्धिमग्नं प्रत्यूष०	९	४३
अर्थात्क्षमाधरपदं क्वचिदप्रवृत्तं०	१०	१०९
अर्बुदाधित्यकामभ्रविभ्राजिनीं०	१२	७४
अवर्ध्यत समौक्तिकै रजतहेम०	१६	९४
अर्हता त्रातुमात्मार्श्रितान्संसृते०	१२	१७
अर्हद्देशनवेश्मनीव सततं०	१६	११४
अर्हन्निदेशोदितचन्द्रसान्द्र०	१७	१३४
अर्हन्मतैकमलयोद्०	९	२१
अलं मन्दवद्गो विलम्बैः सगर्भा०	११	४८
अलंकरोति स्म स पादलिप्त०	१७	४
अलङ्कारमालां दधाना वसाना०	११	९२
अलङ्कृतिज्योतिषकाव्यनाटक०	१४	८७
अलिकचुम्बिकराम्बुरुहद्वयः०	११	१३८
अलिके तिलकस्येव०	१४	२५९
अवग्रहं प्राप्य महीहिमत्विषो०	१४	१५
अवनिरर्जनिजानिः प्रेमरामा०	१०	१२२
अवनिवलयवासवो वशीन्द्रो०	१०	१२३
अवन्दत स टोकराभिधविहार०	१६	४५
अवमत्येति दीक्षां स ०	९	१३२
अवाकिरन्काश्चन मुक्तिकाभि०	१७	६४
अवाकिरन्काश्चन मुक्तिकाभि०	१७	६४
अवामेव वामाऽप्यमुष्याऽनुकूलं०	११	९९
अविरलमणिशृङ्गैर्नैकनाकिद्रुमैश्च०	१५	५०
अवेत्य कलितोकसं नभसि०	१६	६३
अवेत्य चेतस्यमुना समुन्नतिं०	१४	१११
अवेत्य जगदीहितं प्रददतं ०	१६	६५
अशीलि शीलेन जितेन येन किं०	१४	१४३
अशेषविषयान्तराद्व्यतिकरेऽत्र०	१६	९
अश्रान्तदण्डनिहताहववादनीय०	१०	२६
अश्रान्तानन्तपदवी०	९	३०
अश्रावि सङ्घेन ततः प्रवृत्ति०	१३	४५
अश्वानिवाऽक्षाणि निरीहभावै०	१३	१७९
अष्टादशाऽब्रह्मवदंहसां तु०	१७	१४५
असङ्ख्येषु सङ्ख्येषु विद्वेषिलक्षा०	११	१०
असर्जि सृष्टिर्विधिना नवा किं०	१३	८०

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
असातस्य लेशोऽपि तेनैकपद्यां०	११	१७
असावपि किमक्षयाजनि०	१६	९५
असुरसुरनराणां श्रेणिभिः सप्रियाणां०	१५	३६
असूयता शुभ्रिमविभ्रमाय०	१२	१२२
असौ मुहुर्मीनभुजः शने फलं०	१४	७३
अस्तं गभस्तेरिव कोकलोकः०	१७	१६७
अस्त्यद्रिप्रभुनन्दनोऽर्बुदगिरिर्यस्मिं०	१३	२१९
अस्माभिरीशितरदृश्यत दर्शनेषु०	१०	९१
अहर्दिनमुदित्वरद्युमणिचण्डिमा०	१६	७२
अहो ! पश्यताऽस्य प्रभोः०	११	९०
अहो ! युवाभ्यां विजयादिसेन०	१७	१५८
अहो निरीहैर्महतां वतंसै०	१३	१८७
अहोरात्रस्थास्नूदयदमितभास्वद्०	१५	६७
आउआपुरेशो जगडूः किमन्य०	१३	२४
आकस्मिकं तुमुलमेतदनन्यजन्य०	१०	५२
आकालिकीकुलिशशैवलिनीशवह्नि०	१०	३१
आकाशवत्कविबुधश्रियमादधाना,०	१०	८५
आकृष्टा इव तिष्ठन्तः०	१७	१९१
आक्रम्य दैत्यारिपदं स्थितस्या०	१३	१०४
आगादथाऽभिमुखमस्य०	१४	२६४
आगान्नृपाभ्यर्णमथाऽर्णवीयं०	१७	४९
आगामिनो गवां पत्युः०	९	४७
आगृह्णतस्ताननुगृह्य लोकां०	१७	८०
आघाटनगरक्षोणी०	१४	२००
आचाम्लकैर्विंशतिसम्मितानि०	१७	९७
आजगामाऽथ कम्माङ्गजन्मा०	१२	६
आज्ञा यदम्बुनिधिनेर्मिविधोरधारि०	१०	५८
आज्ञां तवाऽऽसाद्य समग्रभूमी०	१३	४७
आतपत्रत्रयी यत्र रेजे प्रभोः०	१२	२०
आत्म(प्त)लक्ष्मीलताया इवोद्यत्फलं०	१२	२४
आत्मा भृतो येन जिनेश्वराद्रि०	१७	११३
आदर्शिकायामिव पुण्यपापे०	१३	१३८
आदिश्यतां देव ! निदेश्यमित्थं०	१३	२०३
आनन्दवृन्दारकनिर्झरिण्यां०	१२	११८
आप्तोक्तिरत्नगर्भाया०	९	११२
आरुरुक्षुर्मुमुक्षुक्षितीन्द्रस्ततो०	१२	७३
आरुह्य बाहं पितुरिन्द्रसूनुः०	१३	५८
आरुह्याऽर्बुदभूधरं जिनपतीन्नत्वा०	१४	२६६
आलुलोकेऽमुना गर्भगेहः पुना०	१२	१०६
आलेख्यशेषीकृतकामदस्यो०	१३	७
आशुगोलालसालाङ्गहारो०	१२	८१
आश्मगर्भीयसन्दर्भविभ्राजिनीः०	१२	४८
आसादितप्राणितवत्पुनः स्वं०	१७	४५
आसाद्य दर्शनं तस्याः ०	९	७४
आसेदुषीभिरवने विदुषीर्भिरक्षु०	१०	४
आस्ते श्रीजयविमलो०	९	१३
आस्तेऽभ्रंलिहरैवताद्रिरपरः०	१३	२१८
इतः शासनं शासितुर्नः प्रजाना०	११	४६
इति काचिदुवाच हर्यद्रिषती०	१४	२१३
इति निशम्य दयोदयगर्भितं०	१४	१८२
इति नृपणिवाणीं कर्णपेयां०	१३	२२५
इति पृषती शंसति दयितं स्वं०	१४	२२१
इति व्रतान्सप्त बिभर्ति संयत०	१४	६१
इतोऽभ्युदयते भानु०	९	३५
इत्थममी प्रति दयिताः प्राचु०	१४	२३१
इत्यद्वैतप्रभावं विमलशिखरिणा०	१६	१३८
इत्यन्तरुदयत्प्रीति०	९	२२
इत्यप्यवक्कि न पदप्रचारैः०	१३	१९२
इत्यभिष्टुत्य सूरीश्वरः श्रीजिनं०	१६	१०९
इत्यतर्क्यत तेनाऽन्त०	९	१९
इत्यवक्सोऽपि कान्ते !ऽधृतिं भूपते०	१४	२१४
इत्युदित्वा प्रभुं नत्वा०	९	२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
इदं गदित्वा विरते व्रतीन्द्रे०	१३	१४७
इदं गदित्वाऽन्तरिते स्थिते नृपे०	१४	१०४
इदं च राज्यं नरकप्रतिश्रुतेः०	१४	१६७
इदं तदादत्त समस्तपुस्तकं०	१४	९४
इदं तदाकर्ण्य सकर्णकेसरी०	१४	९६
इदं निगद्य व्यरमत्स तस्य०	१३	१४३
इदं निगद्याऽब्धिगभीरघोषं०	१३	१२६
इदं निशम्य प्रमदं दधन्नृपः०	१४	६४
इदं विनिर्दिश्य समुद्रकाञ्ची०	१३	१७७
इदं व्रतीन्द्राः क्षितिशीतदीधिते०	१४	१०५
इन्द्रनीलमणिशालिजालका०	९	१४७
इमं विकल्पं परिकल्प्य चेतसा०	१४	१०१
इमा अनिशनिम्नगा बहुजडाशया०	१६	५७
इमे चले मेचकिमाङ्किते च०	१३	१६४
इयं तु पूज्येषु परोपकारिता०	१४	१७७
इवाऽनूरुदर्चिःपतीन्पूर्वशैलं०	११	५९
इवाऽऽत्मदर्शान्धरणीन्दिरायाः०	१७	२७
इह जिनालयवज्रविनिर्मिता०	१२	९१
उग्रं तपो धन्य इवाऽनुतिष्ठ०	१७	८६
उग्रैस्तपोभिर्द्युनिशं त्रिमासीं०	१७	१०३
उच्छिन्नः सुरभूरुहोऽप्यपगता०	१७	२००
उज्झित्वा शमिनोऽशेषा०	९	९६
उत्कण्ठुलास्तन्दुललाजमुक्ता०	१३	८९
उत्कन्धरावनिधराधिकधीरभावै०	१०	३४
उत्तंसैरिव पत्कजैः शिवपुरीं०	१४	२६५
उत्ताननक्र इव वक्त्रकजं०	१०	३
उत्तीर्णवांस्तां सरितं व्रतीन्दुः०	१७	२१
उत्तीर्य तर्याश्च बलिं विकीर्य०	१७	४८
उत्थाय निशीथिन्यां०	१४	२०५
उत्पथं प्रस्थितांस्तन्वतश्चापलं०	१२	५३
उदयदरुणबिम्बेनैकतो नैशनिर्य०	१५	३४
उदयशिखरिणीव श्रीमदम्भोजबन्धु०	१२	१२९
उदीतमङ्गैरिह रुद्रविग्रहै०	१४	८६
उद्घाट्य पेटां प्रकटां प्रणीय०	१७	४४
उद्धर्षनिध्यानधृतावधान०	१३	७९
उद्योतं शासने तेने०	९	१३३
उद्वेलिताखिलशरीरिकृपापयोधीन्०	१४	१८८
उन्नालमम्बुजमिव श्रियमापदेक०	१०	७५
उपकर्तुं जलदा इव०	११	१५४
उपभुज्य प्रियां प्राचीं०	९	५६
उपरि परिसरद्भिः पद्मरागाश्मगर्भ०	१५	२३
उपाकारि किं कैरवैर्वा चकोरै०	११	६६
उपायनीकृत्य नृपैरिवैत०	१३	४६
उपायनीकृत्य मणीहिरण्य०	११	१३२
उपेत्य ताभ्यां तदभाषि भूपते०	१४	११२
उपोषणानां त्रितयीं व्यतानी०	१७	९३
उपोषणानामपुषत्सहस्र०	१७	१००
उरो मुरारेः सुभगत्वलक्ष्म्याः०	१३	१७२
ऊचे कापि पिकं पिकीनि०	१४	२२५
ऊचे हंसीति हंसं किमु तव०	१४	२२७
ऊर्ध्वंदमा क्वचन मौलिविलासिहस्ता०	१०	९०
ऋतौ वसन्तेऽवनिजन्मनेव०	१३	१२३
ऋषिः कुंअरजीनामा०	९	१०६
एकं किमद्वैततया जगत्यां०	१३	१६७
एकत्र जाग्रत्त्रिजगद्विभूति०	१३	९१
एकाशनाचाम्लयुतैर्यतीन्दु०	१७	१०१
एकेन्द्रिया भूजलवह्निवायु०	१७	१२८
एकोऽहमेव त्रिजगज्जनानां ०	१३	३०
एतत्कृपाणनिहताहितकुम्भिकुम्भ०	१०	२२
एतत्तुरङ्गमगणा दिवि सम्पराये०	१०	४३
एतद्दिनेशशशिभूदिनयामिनीभ्यां०	१०	२४
एतद्भवद्भयगृहीतदिशो दिगीशा०	१०	४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
एतद्भवन्निजनिशुम्भभविष्णुशङ्का०	१०	३८
एतद्भुजारणिसमुत्थमहोहुताश०	१०	२९
एतद्यदन्यच्च मयार्जि पाप०	१७	१४४
एतद्वयं मानसमानसाङ्क०	१३	१९४
एतद्व्यतिकरेऽनेक०	९	८७
एतन्महस्त्रिभुवनभ्रमणीविलासं०	१०	३२
एतस्य दृष्टिरजनिष्ट विभो ! सदृक्षा०	१०	९३
एतां धरित्रीं त्रिजगत्पवित्रीं०	१७	९
एते मिथः प्रीतिपरीतचित्ताः०	१७	१२
एतेन दुर्गतिरशोष्यत भूपमुख्य०	१०	१००
एवं सुराणां वदतां तदानीं०	१७	१६५
एवमालापिता तेनं०	९	१२
एष निघ्नंस्तमो विश्वमुद्बोधयन्०	१२	३०
एष निपीय कवेरिव वाणीं०	११	१४८
एषामाशिषमखिल०	१३	२२४
एषैव पूस्त्रिजगतीजयिनी निवस्तु०	१०	८२
ऐश्वर्यमीशत इव प्रभुतां सुरेन्द्रा०	१०	५९
ऐहिकामुष्मके सौख्ये०	९	११३
ऐहिकामुष्मिकानल्पसङ्कल्पिता०	१६	१२८
कङ्केल्लिभिर्भूषिततीरभूमि०	१७	२४
कञ्चुकिप्राञ्चिताः शेषगेहाः इव०	१२	३९
कण्ठपीठीलुठत्पार्वणश्वेतरुक्०	१२	६४
कण्ठपीठीलुठत्प्राण०	९	६५
कति व्रतानीह वहध्वमात्मना०	१४	३७
कथीपकस्याऽऽस्तरणं ततः०	१४	१३
कदम्बलौहित्यकढंकताल०	१७	१०
कदा पुनर्दर्शनमस्य भावि०	१७	२५
कदाचिज्जगत्कर्णपूरायमाणां०	११	४१
कदाचिद्वसन्तस्य सन्देशवाचो०	११	६३
कदापि नैमित्त(त्ति)कवत्तपस्विनो०	१४	६०
कर्त्ता च हर्त्ता निजकर्मजन्य०	१३	१४९
कर्माणि जन्ताविव ये ममाऽती०	१७	१२६
कलिं कृतीकर्तुमयं स्वयं वपु०	१४	७८
कलिक्षितीन्द्रानिव दुर्बलश्रुती०	११	१४०
कलितललितरङ्गत्तुङ्गतारङ्ग०	१६	१२१
कलौ स्वकामिताप्राप्ते०	९	११६
कल्पावनीरुहवनानि महीमघोना०	१०	३०
कल्याणराजद्विजयाभिधानो०	१३	१२
कल्याणवान्कुत्र कियत्परे वा०	१३	३८
कश्चिन्महेभ्यो व्यवहर्त्तुमब्धि०	१७	३३
कश्मीराध्वनि पल्वलो जयनल०	१४	२७५
का सा पुरी प्रापि दशां दमीशै०	१३	१७६
कातर्यमुत्सृज्य विधाय धैर्य०	१७	२०४
कान्तागमे धृताताम्रा०	९	६९
कान्ते तमीनामुदिते मुनीन्दो०	१७	१५६
कामचापभ्रुवः स्फारशृङ्गारिणीः०	१३	२०९
कामिनीभिः किराताधिभर्त्तुस्ततो०	१२	५०
काश्चित्कुमार्यः शिबिकाः श्रयन्त्यो०	१७	६७
काऽपि प्रियं वदति वारणवैरिणीति०	१४	२१५
काऽपि मयूरी वदति मयूरं०	१४	२२३
काऽप्याचख्यौ प्रियमिति करिणी०	१४	२११
किं पाथेयमिवाऽऽदाय०	९	४२
किं प्रिये पूर्णिमाशर्वरी चन्द्रिका०	१२	१९
किं बहुनाऽऽशुगसूनो०	११	१५५
किं राजधानी शममेदिनीन्दो०	१३	१७१
किन्नर्य इव नागर्यः(र्यो)०	९	९८
किमखिलकुलशैलान्जेतुकामः०	१५	३३
किमम्बुमुक्चक्रिणमैक्ष्य वात०	१३	१०८
किमाविर्बभूवे स्वभावेन धर्म०	११	७९
किमुत्तरं स्यादिह मन्दधीव०	१३	१९३
किरन्त्याऽमृतं प्रीणितानेकजन्तो०	११	८७
किमभ्यर्थ्यते केनचिच्चण्डरोचि०	११	६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
कीर्त्तिस्वःसरिदद्रियत्पिबजना०	१४	२९८
कुक्षिसात्कृतमवेक्ष्य सिंहिका०	१२	८८
कुतूहलकृतासितोपलतलोर्ध्वमध्यां०	१६	८३
कुत्रचित्तोरणस्रग्विलासश्रियं०	१२	७८
कुत्रचित्पर्वते कुर्वतेऽन्तर्मदै०	१२	८०
कुत्रचिद्वाणिनी स्त्रग्विणी शालिनी०	१२	२
कुत्राऽपि केलिविहगा मगधा०	१०	८३
कुत्राऽपि बन्धूनिव नन्दनस्य०	१७	२७
कुत्राऽपि मौरजिकमण्डलवाद्यमान-०	१०	८०
कुन्दरुङ्नीरमुङ्नीलकण्ठः पुन०	१२	५९
कुरङ्गनाभीमपहाय भूषितुं०	१४	१९
कुराणवाक्यं किमिदं यथार्थं०	१३	१४२
कुर्वन्कुवलयोल्लासं०	९	२९
कुर्वन्निव गिरेः शृङ्गे ०	९	७१
कुलाङ्गनाभिः प्रभुमूर्ध्नि हैमन०	१४	१२०
कुले धैर्यभाजामिवाऽधीश ! साहेः०	११	३२
कृतप्रदोषो पितृसूरिवाऽशनि०	१४	५०
कृत्वा क्रमादनुचान०	९	१३८
कृपालुतां वः किमहो !महीयसी०	१४	११
कृष्टेव तद्भाग्यभरैस्तदाऽऽवि०	१७	४०
केकायन्ते कलितलनाकेलयो०	१४	२३९
केलिवापीपयोमज्जनव्याजतो०	१२	४६
केवलज्ञानितीर्थेशतीर्थे०	१६	११७
केऽपि कुतूहलकलिता०	११	१२३
कैलाशलक्ष्मीतिलकायमान०	१२	११७
कोपं हृदः शल्यमिव प्रहाय०	१७	१४६
कोऽपि मेधाविमूर्द्धन्यो०	९	१०५
क्रमद्वयीचङ्क्रमणक्रमेणा०	१७	३०
क्रमाच्चतुर्मासकवासरान्पयो०	१४	१३०
क्रमादचलचक्रिणः श्रमणपुङ्गवः०	१६	३०
क्रमादमीषामभिधाः सुधारस०	१४	१५५

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
क्रमादहम्मदावाद०	९	८०
क्रमादुपक्रम्य समाधिना भवी०	१४	२५
क्रमाद्वटदले फुल्ला०	११	१०९
क्रमान्महादेशमिवाऽवनीशितु०	१४	१२७
क्रमाभ्यामतिक्रम्य सन्देशहारि०	११	२२
क्रमेण धरणीभृतः समधिगम्य०	१६	४०
क्रमेण वाचंयमयामिनीमणि०	१४	१५३
क्रोधोद्धतव्यालमिवोपयातं०	१७	३८
क्वचन कनकरत्नाधित्य०	१५	४४
क्वचन कनकशृङ्गे रङ्गिभृङ्गा०	१५	५५
क्वचन करटियाना मेखला०	१५	५१
क्वचन करिणि मग्ने केलिलोके०	१५	३२
क्वचन जिनगृहान्तर्दह्यमानागुरुभ्यः०	१५	६२
क्वचित्पवनवर्त्मवन्मृगपतङ्गचित्रा०	११	११२
क्वचिदपि कमलानामात्मनो०	१५	३५
क्वचिदपि कलधौतप्रस्थसंस्थान०	१५	७
क्वचिदपि मुचकुन्दोऽमन्दनिस्यन्द०	१५	२४
क्वचिदपि रुचिचञ्चत्पद्मराग०	१५	६०
क्वचिदपि लसदभ्रस्फाटिकोत्तुङ्ग०	१५	४२
क्वचिदपि सरिदम्भो गाहितुं ०	१५	३०
क्वचिदवहदपाचीवीचिमालीव सेतु०	१५	३८
क्वचिदुदरशयालून्प्रौढगर्भान्महेला०	१५	३१
क्वचिदुपरिकपर्दिप्राक्सरः पालिशालि०	१६	१२२
क्वचिद्विकचकानने मधुपगीतिमिश्रां०	१६	३५
क्वचिन्नृपसमीपवद्विविधवाहिनी०	११	११३
क्वापि झात्कारिणा निर्झराम्भः०	१२	७९
क्वापि विश्लेषयन्तीर्बकान्जीवना०	१२	४५
क्वापि शक्तिं वहद्भिः कुमारैरिवा०	१२	३२
क्वापि शार्दूलविक्रीडितं दृश्यते०	१२	३
क्वापि शृङ्गं विनीलं तमालैः शशी०	१२	५८
क्वापि स्थपुटितां क्वापि०	११	१०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
क्षणाददृश्योऽभवदिन्द्रजाल०	१७	४६
क्षमां दधानस्य च गौरिमाणं०	१७	१०८
क्षयं प्रलयकालजं निजमवेक्ष्य०	१६	५८
क्षितीन्द्र ! तेषामिदमादिमं व्रतं०	१४	३९
क्षेत्रेषु नीरैरिव नीरवाहा०	१७	७८
क्षोणीक्षितः क्षितिरुहानिव वायुरंहः०	१०	५७
क्ष्माकान्तकोटीरमणीमरीचि०	१३	१७८
क्ष्माचक्रचक्रीत्यथ थानसिंह०	१३	१९१
खड्गाहतोद्धतमतङ्गजदन्तकुम्भ०	१०	५०
खुदाह्वयश्रीपरमेश्वरस्या०	१३	१३७
खुरैरखानि प्रचलत्तुरङ्गै०	१३	७५
गगनगतयदग्रस्फारकासारफुल्ल०	१५	४६
गजा इव जनास्ततः सलिलकेलि०	१६	२०
गजाधिरुढा व्यरुचन्कुमारा०	१७	६६
गजोऽप्यजो गोष्पदमम्बुधिर्मुगो०	१४	५४
गणकेरविणीरमणः श्रमणै०	९	१४९
गते तमसि तद्गिरेरिव निरीक्षणा०	१६	२८
गते प्रिये क्वापि निजे जनार्दने०	१४	१४९
गत्या जितोऽनेन किमभ्रकुम्भी०	१७	६८
गम्भीरभावं दधता जिनं च०	१०	११०
गर्जन्ति प्रतिमन्दिरं प्रमुदिता०	१७	२०३
गर्भाश्मगर्भचन्द्राश्म०	९	३१
गलदमलमरन्दोन्मादिरोलम्बरावा०	१५	२७
गवामधीशं भुवनोपकारिणं०	१४	५९
गह्वरे भूभृतां गुप्तं०	९	४८
गान्धर्विकाः क्वचद(न)०	१०	७८
गिरं धरेन्दोर्हृदये निधाय०	१३	५०
गिरीन्द्रमारोहति लङ्घतेऽम्बुधीन्०	१४	५६
गीतिं जगुः केचन रासकांश्च०	१३	७४
गीतिं जगुर्नागरिकाः किरन्ती०	१७	६५
गुणश्रेणीमणीसिन्धोः०	१४	२०२
गुरुर्जगादेति कदाऽपि कीटिका०	१४	७
गुरुर्जगावाचरणं तथाऽप्यदः०	१४	८
गुरुर्जगौ ज्यौतिषिका विदन्त्यदो०	१४	६६
गुरुर्जगौ बह्वविदिशत्स मह्यं०	१३	१८६
गुरुवचसा नृपदत्ता०	१४	२७३
गुरोः समीपे विजयादिदान०	१७	९२
गुरोरुपादाय रहस्यविद्यां०	१४	२८८
गुहागृहशयानानां०	१५	७४
गृहादथाऽऽनायितमङ्गजन्मना०	१४	८४
गृह्णतो गिरमुदीत्वरदन्त०	११	१३९
गोपालशैलेऽथ सुपर्वसद्मा०	१४	२४८
गोशीर्षसौरभ्यमिवाऽनिलेन०	१३	१८२
गोष्ठीं सृजन्क्षितिसितांशुरशेषशास्त्रा०	१०	८७
गौरीमहेश्वरगणा स्फटिकावनद्ध०	१०	६५
ग्रन्थावलीं निर्मितवान्विशुद्धां०	१७	१०५
ग्रामक्षमाभृद्वनदेशदुर्गा०	१३	२६
ग्रामाश्वद्विपताम्रखान्र्याधिर्पातः०	१४	२५८
ग्रीष्मागमेनेव मयाऽध्वगानां०	१३	१८९
घनलसदपकण्ठा रूक्मरूप्यद्रिभागा०	१५	१५
घनादधीतामिव शेखशक्रो०	१३	१२७
घनैरायुरापूर्तिभिश्च प्रजानां०	११	१४
घृतमिव पितॄनिधन०	१७	१७७
घोरामनुष्ठानविधां विधातु०	१७	८१
चक्रे पुनर्निर्विकृतीः सहस्रे०	१७	९८
चक्रे य आचाम्लसहस्रयुग्मं०	१७	९६
चक्रे श्रमणशक्रेण०	९	५५
चण्डरुक्किरणमण्डलस्मयं०	१२	१०४
चतुरङ्गचमूचलनप्रसृतै०	११	१२७
चतुर्जलधिमेखलावनिनिकेतलोकैस्ततः०	१६	१६
चतुर्थारकवल्लोका०	९	११८
चतुर्वार्द्धिसंवर्त्तकीभूततेज०	११	२८

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
चतुर्षु वेदेष्विव पञ्चमं वा०	१३	१६८
चतुष्कपृथिवीं ततः परिचरन्स०	१६	९१
चतुष्कमधिरोहणान्वयविहारयोरन्तरा०	१६	५५
चत्वारि येषां पुनरिन्द्रियाणि०	१७	१३१
चन्द्रश्चङ्क्रमणक्लान्तं०	९	३२
चपलशफरनेत्रा बन्धुरावर्तनाभी०	१५	६१
चलत्सु विमलाचलं निखिलयात्रिकेषु०	१६	१४
चलद्बलाकं कलधौतकुम्भैः०	१३	७८
चातुर्गतीयार्त्तिमहान्धकूपो०	१३	२१
चित्ते दधच्चित्रमिति क्षितीन्द्रः०	१३	१८८
चित्ते विचिन्त्य भयमभ्रपथेऽभियाति०	१०	७४
चित्रीयमाणैश्चित्तान्त०	१७	१८७
चिरं जीव नन्देति दूतौ ०	११	६
चुचुम्बेऽम्बरं यन्मणीमण्डपेन०	१२	१२०
चूर्णैरिव स्वक्रमपद्मपांशुभिः०	१३	२०५
चेतश्चमत्कारकरीस्त्रिलोक्या०	१३	१८
चेतसीति विचिन्त्याऽसौ ०	९	११४
चैत्यं प्रदक्षिणीचक्रे०	१२	१०८
चैत्यमूर्द्धविधुकान्तनिष्पत०	१२	८९
चैत्यस्य पु(प)रितो देव०	१२	१०७
चैत्ये श्रीफलतन्दुलान्जिनपुरस्ते०	१७	१८२
चौलुक्यचैत्यं विधृतामृतश्रि०	१२	१२७
चौलुक्यावनिजानिनेव निखिले०	१४	२३८
छायापथे निरवलम्बतया वसन्ती०	१०	७६
जगत्यसाधारणता व्यतर्कि वः०	१४	१२
जगद्गिरिविजित्वरं महिमभिर्महीं०	१६	६६
जगन्ति यस्याऽनुभवेऽनुबिम्बिता०	१४	२८
जगन्मानसानामिवाऽऽकृष्टिरज्जून्०	११	५७
जगाद गाजी गणपुङ्गवं पुनः०	१४	८२
जगाम स स्वर्गिमृगीदृशां दृशा०	१४	९०
जङ्गमं सार्वभौमं किमुर्वीभृतां०	१२	४९
जडिमशिशिमवर्षायुष्कलोलस्वभावो०	१५	१३
जडिम्ना निजां दूषितामङ्गयष्टीं०	११	८८
जडीकरणभीतितो हिमगिरेः०	१६	१९
जना जैनपक्षैकदक्षा क्षितिक्षि०	११	३६
जनारवैरागमनं मुनीन्दो०	१३	५
जनार्दनस्येव मर्मर्यमन्दिरा०	१४	१६२
जनार्दनान्दोलनकेलयेऽभवत्०	१४	१४०
जनुष्मतां शालिशया इवाऽऽत्मना०	१४	३५
जम्बूप्रभवमुख्यानां०	१४	२४७
जय त्रिजगदीहितामरतरो०	१२	११३
जय त्रिदशशेखरोन्मिषितपुष्पमाला०	१६	१०१
जय त्रिभुवनाशिवप्रशमनात्म०	१२	११५
जय त्रिलोकीजनकल्पपादपा !०	१४	१४४
जय प्रकटयन्पथो रविरिवाऽथ०	१६	१०३
जय प्रणतपूर्वदिक्प्रणयिमौलिमा०	१२	११४
जय प्रमथितान्तराहितपताकिनी०	१२	११६
जय प्रशमयन्मनोभवभटं०	१६	१०५
जयाऽनिमिषसानुमानिव सुजातरूपः०	१६	१०४
जयाऽमृतविभूतिभाग्घन०	१६	१०६
जयेश इव कालभिच्छ्रितशिवश्च०	१६	१०७
जयोल्लसितकेवलामलतमात्मदर्शो०	१६	१०२
जलधिभवनजम्भारातिसार०	१५	८
जलात्तदानाय्य जनैः प्रपूज्य०	१७	४२
जलावगाहागतदन्तिपङ्क्तिभि०	१४	१३५
जलैर्वहाया इव मेघमालिका०	१४	५१
जहेषिरेऽश्वाश्च गजा जगर्जु०	१३	८८
जातोक्षलक्ष्मा भगवानदर्शि०	१२	११०
जिनं हृदम्भोजविलासराज०	१७	८३
जिनाधिपसभाजनाप्लवविधान०	१६	५०
जिनाननिशीथिनीपतिनिरीक्षण०	१६	१००
जिनास्यपद्मे मकरन्दविभ्रमं०	१४	३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
जिनेन्द्रभवनं शिखोदयनभः०	१६	९२
जिनेन्द्रसदनाग्रतोऽद्युतदनल्प०	१६	५९
जिनेन्द्रसदनाम्बरान्तरनुषङ्गिशृङ्गा०	१६	७५
जीवान्तिकेनेव वियद्विहारा०	१७	१३३
जीविकामिव नभोऽम्बुपावलेः ०	९	१५१
जृम्भकव्रजवज्जन्मोत्सवे०	९	१०१
ज्ञात्वाऽशक्तिमितो विराटनगरे०	१४	२६०
ज्ञाने ममाऽष्टौ समयादिकाती०	१७	१२५
ज्योतिःकुमारा इव तीर्थभर्त्तुः०	१७	१८०
झरज्झरपयःप्लवप्रसरशीतलोर्वीतले०	१६	३३
तं गुणैरप्रतीकाशं०	९	१५
तं रैवतोर्वीधरवत्पवित्री०	१२	१२५
तं व्याजहारेति महीमहेन्द्रो०	१३	१७४
तं सादिमाद्यः सुरताणनामा०	१३	२८
तडिद्वता तस्य निजातिपातुकां०	१४	१२५
ततः कुकुद्मानिव भूमिमानसौ०	१४	२
ततः कोशवद्भूमहेन्द्रस्य मुद्रां०	११	२५
ततः क्षितीन्द्रो व्रतिनां व्रतीश्वरं०	१४	८३
ततः क्षितौ स्वस्य यथैकरूपतां०	१४	१०
ततः क्षोणिशक्राशयं तौ बुभुत्सू०	११	७
ततः खरहताभिधां वसतिमभ्युपेत्य०	१६	४८
ततः पूर्वसूरीन्द्रवत्प्राच्यदेशे०	११	८३
ततः प्रतस्थे प्रभुरुन्नताख्यं०	१७	६२
ततः प्रदित्सुर्गुरवे स किञ्चना०	१४	१५८
ततः श्रमणशर्वरीपतिरुपत्यकायां०	१६	२६
ततः स यावत्कुरुते तदुच्चकै०	१४	९
ततः समुद्दिश्य महेभ्यसभ्यान्०	१७	७७
ततः स्वाशयसंवादि०	९	८४
ततस्तदुन्मुद्य पुरो धराविधो०	१४	८५
ततो गुणागण्यमहीमहार्णवा०	१४	९३
ततो दूतयुग्मं क्षमापूषलेखं०	११	२०

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
ततो बभाण प्रभुरब्धिनन्दना०	१४	१७२
ततोऽजयाख्यं नगरं निवास्य०	१७	५४
ततोऽजूहवद्दूतयुग्मं वियुग्मी०	११	२
ततोऽनुकूलैः पवनैः पयोधौ०	१७	४७
ततोऽन्यैः समं साधुभिः सूरिसिंहः०	११	९१
ततोऽल्पकर्मा तपसेव संसृतिं०	१४	१३१
ततोऽस्या धर्मलाभाशी०	९	२६
ततोऽहिकान्तः परिवर्त्तवात०	१७	३५
तत्पुराधिपतिसाधुर्धरित्री०	११	१२८
तत्प्रक्रमे विजयसेनगुरुर्हमाऊ०	१७	१९५
तत्प्रक्रमोपस्थितयात्रिकाणां०	१७	७
तत्र च व्यतिकरेऽटवीविय०	१४	२१०
तत्र प्रतिष्ठात्रितयीमतुच्छो०	१७	८५
तत्र वित्रासयन्शात्रवानर्जुनो०	१२	३३
तत्राऽजयोर्वीरमणस्य पिण्डी०	१७	३१
तत्राऽर्चितुं स्तूपमकब्बरेण०	१७	१९२
तत्राऽस्ति श्राद्धमूर्द्धन्यः०	९	१००
तत्राऽऽगमन्पत्तनादि०	९	७७
तत्राऽऽनन्द्य जनान्दिनानि ०	११	१११
तत्रोपदिश्येति जनान्मुमुक्षु०	१७	५९
तत्समीक्षोत्सुकीभूतदिङ्नायके०	१२	१०
तदत्र प्राप्यतेऽनल्पं०	१६	१३५
तदद्रितलहट्टिकाप्रथितपादलिप्ताभिधं०	१६	२
तदा कुमारीभिरभासि भास्व०	१३	५९
तदा चकोरायितमर्णवायितं०	१४	११७
तदा मुदितमानसा निखिलयात्रिकाणां०	१६	२४
तदा मुदोर्वीवलयोर्वशीवशो०	१४	७०
तदा वराणां द्विजवत्कनीनां०	१३	११०
तदाऽब्धिमध्यप्रतिशब्दसान्द्रैः०	१७	७४
तदाऽभवद्भूमिनभःप्रचारिणां०	१४	११८
तदाऽर्थिवाञ्छावचनानुरूपं०	१३	९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
तदिष्टगोष्ठीसमये महीहरे०	१४	१५७
तदीयां गिरं कर्णिकावत्सुवर्णा०	११	७५
तदुक्तियुक्तौ सनिदर्शनायां०	१३	१३०
तदुत्सवे मूर्च्छति भूर्भुवःस्व०	१७	७५
तदुदितमधिगत्य चित्रमन्त०	११	१५६
तदोपतापप्रकरैर्वियुक्तः०	१७	५३
तद्गुणश्रेणिनिर्वर्णनानन्दितो०	१२	७५
तद्हास्तिकाश्वीयरथोद्धुताभि०	१३	७७
तनुश्रिया येन निजौजसा पुन०	१४	१४१
तनूमन्त्रिदेशं नृपस्येव लेखं०	११	५८
तन्निर्जयोद्यतनिजस्य भयादवेत्य०	१०	६
तन्मताधिकृतान्वेष०	९	१०९
तन्मूर्त्तिसंस्कृतिपदे सुरसृष्टनाट्य०	१७	१८४
तपस्वी सभस्मा श्मशानाश्रयो वा०	११	१२
तपस्सु ये द्वादश भेदभिन्ने०	१७	१२७
तपांसि वः सन्त्यनघानि कश्चि०	१३	१७५
तपागच्छश्रिया लीला०	९	११९
तमस्विन्या विधोः पत्यु०	९	५३
तमित्यभिष्टुत्य हृदा दधन्मुदं०	१४	१४६
तमीप्रियतमो मध्यं०	९	३८
तमीश इव तारकैर्ग्रहपति०	१६	५६
तरङ्गिणीवेणिमिवाऽम्भसां प्रभु०	१४	२९
तरन्ति च सितच्छदा इव परे०	१६	२१
तरीव वार्द्धौ तमसीव शारदा०	१४	१४५
तस्थौ समाः स कियतीः०	१०	६२
तस्मिन्जगन्मल्लमहीन्द्रमन्त्री०	१४	२५३
तस्मिन्नतेर्गोचरयांचकार०	१७	७६
तस्मिन्नेव निशावसानसमये०	१७	१८३
तस्मिन्विनिहितं सूरि०	९	१०२
तस्य पूरयतो विश्व०	९	९७
तस्य स्फुरन्मानमकब्बरेण०	१७	१९७
तस्यां महीहिमकरेण हमांउनाम्ना,०	१०	१०
तस्यामेव त्रियामायां०	१७	१८६
तस्याऽङ्गजोऽभवदकब्बरभूमिभानु-०	१०	१२
तां वाचकेन्द्रादधिगम्य वार्त्तां०	१३	४१
ताडङ्का इव कर्णपूरपदवी०	१०	११९
ताण्डवं तन्वतीर्बिभ्रमैर्हस्तकान्०	१२	१०२
तालध्वजढङ्काभिध०	१६	१३३
तावल्लीलाविलासं कलयति०	१५	७७
तिमिरिति कान्तां मदनविनोदी०	१४	२३३
तीर्थकृद्वक्त्रचन्द्रेक्षणोद्वेलिता०	१२	२५
तीर्थमास्ते न विश्वेऽप्यदःसन्निभं०	१६	११६
तीर्थेशितेव समव०	९	९०
तीर्थेषु पाथःप्रथितेषु गत्या०	१७	२०
तुमुलैर्बन्दिवृन्दानां०	११	१२२
तुरङ्गममतङ्गजाग्रिमशताङ्गरङ्ग०	१६	१८
तूरस्वरैश्चित्कृतिभी रथानां०	१७	७१
तूर्याणां यामिनीयाम०	९	५४
तृणादि नोपाददते च किञ्चना०	१४	४३
तृष्णां महीतलमहेन्द्र ! विभुर्विरत्या०	१०	१०६
ते ल्यारिकाभिर्व्रतिपस्य सार्द्ध०	१७	१६९
तेन नवरोजदिवसा०	१४	२७२
तेष्वा(ऽप्या)सन् शासने जैने ०	९	१२५
तेऽपि पत्नीपरीरम्भिणो भाषितै०	१४	२०७
तैः शासितुः शासनतः पृथिव्या०	१३	२०१
त्यक्ततारपरीवारा छिन्नध्वान्तक०	९	५१
त्रयोदशं वाऽम्बुजबान्धवानां०	१३	१७०
त्रिजगज्जनगीयमानया०	१४	२०८
त्रिदिवसदनभूभृत्सार्वभौमाध्वरोधो०	१५	४०
त्रिदिवसदनमार्गोत्सङ्गरङ्गत्तरङ्गै०	१५	१४
त्रिधा समाराद्धुमनाः समग्र०	१७	१०२
त्रियामाविरामा इवाऽम्भोजबन्धुं०	११	४४

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
त्रिलोकीमपि कुर्वाणं०	९	९९
त्रिलोक्या इवाऽध(धी)शितुर्भूमिभर्त्त०	११	९
त्वं चिरं नन्द सूरीन्द्रे०	९	२५
त्वया विश्राणिता देव०	९	१४
त्वयाऽऽरोपि केतुः कुले योगभाजा०	११	९७
दण्डं स्वपाणौ दधतं स्वबाहा०	१३	१६५
दत्तां सुरेभ्यो हरिणाऽम्बुनाथ०	१३	४२
दत्वोदयं त्वमेवाऽस्तं०	९	४०
दधाति धाता गिरिशश्च शक्तिभृ०	१४	७७
दधानेन धर्म्यां धुरं किं क्षितीन्द्रः०	११	७८
दधुस्तदा जन्मजुषो विभूषां०	१३	५७
दम्भोलिपाणिनगरीविभवाभिभाव-०	१०	९
दयान्वितं धर्ममवाप्य सद्गुरो०	१४	११३
दिग्गजेन्द्रावगाहेनोत्पन्नाः ०	९	४६
दिदृक्षुरंतन्महिमानमभ्र०	१३	८
दिनद्वयं तद्यदुवंश्यबाहुज०	१४	१४८
दिनानिकतिचित्सूरि०	१२	१२८
दिनान्तसन्ध्यासमयस्वधाशना०	१४	९२
दिवं गतस्याऽपि विभारमुष्य०	१७	१७९
दिव्यं विमानं पवमानमार्गे०	१७	१६२
दिव्यविमानविलोकन०	१७	१८५
दुखं कामगवी परा चरति०	१२	९५
दुरन्तदुःखाद्विषयात्तु बिभ्यता०	१४	२४
दुर्जनमल्लो दुर्जन०	१४	२४५
दुर्दैवयोगाज्जलधौ जजृम्भे०	१७	३४
दूतास्यपद्मद्रहनिर्गतेति०	१३	२१३
दृशोर्गोचरो न श्रुतेः प्राघुणश्च०	१०	१२१
दृष्ट्वा यान्तं जघन्याया०	९	३७
देवीनिगदितागण्य०	९	८१
देशनामन्दिरं श्रीजिनेन्दोः पुरो०	१२	११
देशनामन्दिरे यत्र जाम्बूनदः०	१२	२२

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
देशनाम्भोदधारां सुधाया इव०	१२	५१
द्यावाभूमीपराभूष्णुं०	९	६४
द्युतामिवाऽर्काः पयसामिवाऽर्णवा०	१४	६८
द्यूतकृदिवाऽक्षविलस०	११	१४२
द्रक्ष्यामि दिष्ट्याऽद्य मुनीन्द्रचन्द्र०	१३	१२४
द्रव्याणि वल्भावसरे व्रतीन्दुः०	१७	८९
द्रुमद्रोणिषु सञ्चिन्वन्नुल्ल०	९	७०
द्वापञ्चाशदगजमित०	१४	२४९
द्वाराणीव महानन्द०	१३	२१५
द्वासप्ततिं सूरिसहस्ररश्मि०	१७	९५
द्विजोद्भासितः सिद्धिसस्यैकधारी०	११	५२
द्वितीयराशौ शतमन्युसूरि०	१३	९
द्विपद्विपिद्विपद्वेष्य०	११	१०८
द्विपस्य सङ्घोऽप्यखिलो०	१७	६०
द्विपैर्व्यतायन्त पटिष्ठघण्टा०	१३	६४
द्विवेललीलाप्रविसारिवेला०	११	१०५
द्वीपाधिपत्वमिह नो वनवासभाजो०	१०	८८
धत्ते स्म कम्पमभिषेणयति क्षितीन्द्रे,०	१०	१६
धनादि जगदीहितं प्रभाविताऽस्मि०	१६	६७
धन्यास्ते नृपते ! फलेग्रहि०	१०	११८
धरातुराषाट् शमिनां शशी पुनः०	१४	३
धराधिविबुधैरिता किमु सहैव०	१६	१७
धरेश ! येनाधरितो महिम्ना०	१०	१११
धरेशधामाधरिताद्रिसूदनो०	१४	१४
धर्मोदयस्येव मुहूर्त्तमात्म०	१३	१५३
धात्राऽत्र विश्वाचलचारिमश्रीः०	१७	१३
धात्रीं पवित्रीं सृजतोऽस्य पाद०	१७	११४
धात्रीधृतौ फणसहस्रभृताभ्यसूयां०	१०	६९
धात्रीपवित्रीकृतये प्रणीत०	१३	८२
धामसाधिमभृतः कलयन्त्यः०	११	१४५
धीरिमाधःकृते शीलतीव त्रपा-०	१२	१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
ध्यातोऽधुनाऽप्येष पयोधिमध्ये०	१७	५७
ध्रुवं दधानं चतुराननीं च०	१३	२०
ध्वजव्रजैरुर्जितसान्ध्यरागो०	१७	१७३
ध्वनन्नफेरीसखभूरिभेरी०	१७	७३
न कदाचन गोचरा मनाक्०	१०	११४
न कश्चिदुपलब्धिमात्र जनसंशय०	१६	७३
न क्वापि कामीव जहाति कान्ता०	१३	१५९
न चैवं हृदा चिन्तनीयं यतीन्दो०	११	६७
न देव ! देवः परमेशितुः परः०	१४	४०
न धेनुरन्या सुरभेः सुधाभुजां०	१४	७५
न राजहंसान्क्वचन प्रवासयन्०	१४	१२८
नक्राद्यानुपसृत्य तत्प्रियतमा०	१४	२३७
नक्षत्रपद्धतेः प्रात०	९	४१
नगरनिगमदुर्गग्रामसारामसीमा०	१५	३
नभःस्थलीसंवलिताम्बुवाहान्०	१३	१०९
नभश्चराम्भश्चरभूमिचारिणां०	१४	१७९
नभस्यमासस्य नमत्पयोद०	१७	१५५
नभोगमनभेषजव्रजविधेरनुग्राहिणो०	१६	३
नभोनभस्याविव निस्सरद्भिः०	१७	१७०
नभोम्भोदगर्जोर्जितस्तोत्रराव०	११	५३
नभोऽम्बुपानाब्द इवाऽनधीता०	१३	८१
नमति स्म मुनीश्वरं पुरी०	११	१२९
नमनेन मुनीशिता परे०	१२	१२६
नमश्चिकीर्षयाऽमीषां०	१३	२१२
नम्राङ्गभाजां भगवन्नखेषु०	१३	८६
नयनपुटनिपेयामाश्रयन्काययष्टीं०	१५	४
नरेन्द्र ! यावद्व्रतिनां विलोक्यते०	१४	९७
नरोरगस्वर्गृहसार्वभौमता०	१४	३४
नवोद्धृतं दध्न इवाऽम्बुधेः सुधां०	१४	१७१
नवोऽम्बुधेः कूलमिवाऽनुकूल०	१३	१४०
नाभिदघ्ने हृदेऽम्भोविहारालसा०	१२	४४
निःशेषोचितकर्मकर्मठधियं०	१४	२६८
निःश्रेयसस्येव सुखं जिनेन्द्रं०	१३	२२
निःस्वानवृन्दे प्रददुः प्रहारान्०	१३	७१
निकटविटपिपत्रिव्रातवातप्रपाति०	१५	२९
निक्वणत्किङ्किणीर्मारुतान्दोलिता०	१२	८६
निखिलभुवनभारोद्धारनिर्वेदभाजा०	१५	९
निखेलियोषास्तनचन्दनद्रवैः०	१४	१३७
निगद्येति जिनाधीश०	९	६
निगद्येति विश्रान्तयोरेतयोस्तां०	११	१३
निग्रन्थपृथिवीनाथ०	१२	९३
निजनामाङ्कं कृत्वा०	१४	२७९
निजस्य बहलीभवत्यपि महोत्सवे०	१६	६०
निजां तनूजां धरणीप्रचारिणी०	१४	१३९
निजानुकूलीभवतां तनूमतां०	१४	१०८
निजानुरागिणीर्वीक्ष्य०	९	६७
निजौजसैवाऽमदयन्मनांसि०	१३	११३
निदाघति व्रीडवहापयःप्लवे०	१४	४९
निधानेशरम्भाकुमारीगणेशा०	९	१४५
निनंसोर्जिनाधीशकल्याणकोर्वी०	११	८१
निपीय नगपुङ्गवं विकचनेत्रपत्रैर्भव०	१६	२५
निपीय स श्रोत्रपुटैः सुधाशनः०	१४	६७
निपीयमाना श्रवणाञ्जलिभ्यां०	१३	९५
निपीयमानो नयनैर्मृगीदृशा०	१४	१२२
निपीयेति तद्वाग्विलासामृतं स०	११	३३
निभाल्य नलिनीधवं स्वविभवेन०	१६	७०
निभाल्य निःशेषमिदं स्वचक्षुषा०	१४	८८
निम्बजम्बीरजम्बूकदम्बद्रुमान्०	१२	४
नियन्त्र्य हन्तुं स्वर्भाणुं०	९	३९
निरञ्जनः कम्बुरिव व्यपास्त०	१३	१४४
निर्गत्वरप्रसृमरद्युतिवारिपूर०	१५	७३
निर्ग्रन्थनाथः स विधाय गोष्ठीं०	१४	२८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
निर्जितस्त्वत्सुहृन्मन्मुखेन ह्रिया०	१२	४२
निर्जित्य स्वमतैश्वर्यं०	९	११५
निर्वर्ण्य वर्ण्यविभवैः स्वभवैः०	१०	६८
निर्विण्णा इव जज्ञिरेऽश्रवणत०	१४	३०१
निववृते प्रमदेन्दिरयान्वितः०	१६	११०
निवृत्य पृथ्वीपुर(रु)हूतपार्श्वात्०	१३	५१
निवेशिता ये नरकेषु नारका०	१४	१७३
निशम्य तद्भाषितमेष धात्री०	१३	१३१
निशम्य वाचंमयवासवस्य०	१३	९६
निशम्य सूरिर्नृपतेरिमां गिरं०	१४	१६४
निशाचरेणेव निशाशनं०	१७	१४०
निशाशनायितेनाऽभ्र०	९	४५
निशास(श)नं नीतिजुषा निषिध्यते०	१४	५८
निशि तारैरिवाऽऽकाशो०	९	८९
निशितायसशल्यानि०	९	१२७
निशेषदेशककुदं भुवि भाति०	१०	१
निश्चिक्य चित्तेऽजयपार्श्वभर्त्तु०	१७	६
निष्कुहा(टा)नोकहोत्फुल्लपुष्पोच्चये०	१२	४३
नीत्वा बहिर्निजमनःसदनान्निहन्य०	१०	९९
नीत्वाऽस्तोकान्बन्दीलोकान्०	१४	२०३
नीरन्ध्रपाथःपरिपूर्यमाण०	१७	८४
नृणां शासिता त्वं वयं शासनीया०	११	३८
नृपं प्रति व्याहृतवानिति व्रती०	१४	८१
नृपैर्मूर्ध्नि माले[व] दध्रे ममाऽऽज्ञा०	११	१५
नृशंसनिकषात्मजव्रजनिवासतो०	१६	८
ने(नै)ककायान्प्रणीय स्वयं दर्शयन्०	१२	९
नेदृक्परं तीर्थमुदेति मुक्ति०	१७	१६
नैकक्रोशमितं न दृग्विषयभाक्पारं०	१४	१९३
नैतां श्रोत्रवसतंसिकां विरचयन्०	१४	३००
न्यगददनिमिषीनं मीनमेत०	१४	२३२
पइ(पै)गम्बरैर्नः समयेषु सूरे०	१३	१३६

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
पक्षिणस्तत्क्षणात्क्षोणिचक्रेन्दुना०	१४	२०६
पचेलिमान्प्राक्तनकर्मरोगान्०	१३	९४
पञ्चाशदर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठां०	१७	१११
पञ्चाऽपि देवतरवोऽधरिताः०	१०	५५
पट्टधुर्येऽङ्गजे राज्ञा०	९	१६
पण्डा चित्रस(शि)खण्डिनां०	१०	१२०
पण्डिताखण्डलं श्रीमज्जयाद्य०	९	९१
पतिर्यतीनां जगदुत्तमाङ्गो०	१३	२१६
पतिव्रताऽपीश्वरवार्द्धिभर्तृं०	१७	१८
पद्मानि यस्यां व्यलसन्मुखानि०	१७	१५
पयःपूरितप्रावृषेण्याम्बुदाना०	११	५४
पयःप्लवक्रीडदनेकपौर०	१७	१७
पयोदा इव प्रावृषेण्या नमन्तः०	११	७४
परःशताः कौतुकिना पयोनिधिं०	१४	१५९
परम्पराभिः पुरसुन्दरीणां०	१३	६०
परस्परं वर्त्तयतां सुराणां०	१७	१६३
पराङ्मुखीस्याद्विषयाइ(द्व)तिव्रजो०	१४	४५
परार्ध्यसङ्ख्यैः पुरुषैः परिष्कृतः०	१४	१२१
परिग्रहं यो जलमम्बुदाविलं०	१४	३१
परिग्रहः संयमिनाऽपवादव०	१४	५५
पर्याणितास्तत्र तुरङ्गमास्ते०	१७	६९
पर्याण्यन्ते स्म वाहा हरिहरय०	११	११७
पलाशतां बिभ्रति यातुधाना०	१४	१९६
पवित्रयंस्तीर्थं इवाऽध्वजन्तून्०	१३	४३
पाञ्चालिकाप्रौढविलासवीक्षा०	१३	१९
पाठीनपीठाण्डजन[क्रचक्र]०	१७	३७
पाणौ रणाङ्गणगतस्य कृपाणयष्टिः०	१०	४९
पातालावटकोटरान्तरपतत्पाथोधिने०	१४	२२०
पादपीठलुठन्मूर्धा०	९	१३४
पान्थानिव महानन्द०	९	१४१
पायं पायं विभोर्वक्त्र०	१२	११२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्क	श्लोकाङ्क
पारीन्द्र इव सूरीन्द्रः०	९	१३५
पार्श्वेशितुः स्नात्रजलाभिषेका०	१७	५१
पिकीव पञ्चमोद्गारं०	९	३
पिण्डीभवद्भूभृति वस्तुपाल०	१२	११९
पितेव सूनुना साकं ०	९	१३७
पिबन्मुनीन्द्रस्य शमामृतं दृशा०	१४	७९
पींपाढिनाम्नि स्वपुरे प्रभोर्मरु०	१४	२५७
पुण्डरीकाचलोर्वीव०	१६	१२७
पुण्डरीकान्तिकस्थास्नु०	१६	११२
पुण्यभाजां हृदाकृष्टिमन्त्रानिव०	१२	८४
पुनः स्वल्पेऽपि कार्येऽहं०	९	२७
पुन्नागनारङ्गरसालसाल०	१७	२३
पुपोषभाषां स्वमुखेन शेखः०	१३	१३५
पुरं पुनानेऽम्बरवन्मुनीन्द्रे०	१३	२९
पुरः प्रचलितैर्जनैर्घननिरुद्धवर्त्मान्तरः०	१६	१५
पुरश्चरन्तः पथि हर्षहेषा०	१३	६९
पुरस्तात्तयोः प्रीतिमान्मुद्गलेशो०	११	२६
पुरस्सरास्तस्य सुरा मरुद्गवी०	१४	५२
पुरातनैरार्चरितानि सूरिभि-०	१४	६२
पुराभवत्प्रीतिपदं वयस्यव०	१४	८९
पुरीमपापामिव पञ्चवक्त्र०	१७	११७
पुरे लाटलक्ष्मीललामायमाने०	११	१६
पुरेऽनयीवाऽवनिमानुपेयिवान्०	१४	६५
पुरो न मे किञ्चन तेन वृत्तं ०	१३	१९७
पूरिताशेषदिग्ध्वान०	९	१२९
पूर्वापराम्बुनिधिसैकतसीमभूमी०	१०	४७
पूषद्विषं प्रसाद्याऽम्भो०	९	६२
पृ(ऋ)क्थं परेषां परिमोषिणेव०	१७	१३६
पृषत्सपत्नैरिव वन्यजन्तवः०	१४	१७४
पृषदिति कान्तां निगदति भूभृद्०	१४	२२२
पोत्रिणी वदति काचन दयितं०	१४	२१९
पौष्पेन(ण) चापेन जये त्रिलोक्याः०	१३	१०२
प्रक्रमे तत्र तत्रत्य०	९	८३
प्रक्षाल्य दुग्धाम्बुधिना पयोभिः०	१३	८३
प्रणम्य जननीं जिनेशितुरिभं०	१६	९९
प्रणम्य ते प्रभोः पदा०	१४	२०४
प्रणिघ्नन्वने व्याधवन्नैकसत्त्वा०	११	७२
प्रणीय पूजां क्षितिपेन पूर्वं०	१७	५०
प्रणीय पूर्णाश्चतुरक्षमाला०	१७	१६०
प्रणीयाऽभिभूतिं सुधास्वःस्रवन्ती०	११	९५
प्रतापदेवीतनयस्तदुत्सवे०	१४	१२४
प्रतिक्रम्य चतुर्मासीं ०	९	७९
प्रतिशिखरममुष्मिन्निस्सरन्निर्झरौघा०	१५	५९
प्रतिष्ठमानः पुरतो व्रतीन्दु०	१३	४
प्रतिष्ठमानस्य ततो व्रतीन्दोः०	१३	३४
प्रतिष्ठासमानस्य मे वाङ्निषेध्री०	११	८४
प्रत्यतिष्ठत्परोलक्षा०	९	१४०
प्रत्यूषे मखभुग्लेखा०	९	६०
प्रत्यूहकृत्कोऽपि न नः समाधेः०	१३	१८०
प्रदक्षिणो दक्षिणवारिजः पुनः०	१४	५३
प्रदेशीव केशिव्रतिक्षोणिशक्रे०	११	६१
प्रपासु गिरिपद्धतेरमृतपानवद्यात्रिके०	१६	३१
प्रपूज्य पुष्पैः किसलैः फलैश्च०	१७	११
प्रबुद्धैरबोधीति तोत्रालफ(फा)लं०	११	२१
प्रबोधं विदधत्प्रात०	९	२४
प्रबोधयन्सुदृक्पद्मान्०	९	७८
प्रभुं बभाज तैः सार्द्धं०	९	९३
प्रभुः प्रियस्येव सधर्मचारिणी०	१४	१३३
प्रभुः शुभंयुर्वरिवर्त्ति नीति०	१३	३९
प्रभुतोपगतः प्रभुभक्तिभरैः०	१२	९७
प्रभुर्भद्रवान्कच्चिदास्ते हमाऊ०	११	२७
प्रभोः पदाम्भोजयुगं पुरीजना०	११	१२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
प्रभोःशिरसि भूरुहैर्विदधिरे०	१६	३७
प्रभोरागमनोदन्तः०	११	११५
प्रभोर्नखैर्नम्रनितम्बिनीनां०	१३	८७
प्रभोर्नन्दिमहे हेम०	९	१३९
प्रभोर्निपीयोपगमं प्रमोद०	१३	४८
प्रभोर्वाक्सुधासारमाकण्ठमेते०	११	८६
प्रमाणमाज्ञा जगतीवसन्तिका०	१४	११५
प्रमादभाजा नियमा मया ये०	१७	१४१
प्रमोदभरमेदुरः प्रथममेव सङ्घस्तदा०	१६	२२
प्रयोजयति नः सदा स्वपदसाभि०	१६	८२
प्रलम्बबर्हिर्मुखशाखिशाखा०	१३	१६०
प्रवर्त्तको यः सुगतेश्च दुर्गते०	१४	३२
प्रवासिहृद्वारिधिमाथमन्था०	१३	१०१
प्रवृत्त्य वार्त्तास्वितरासु तत्फलं०	१४	६९
प्रशान्तै रसैः पूरितः पूर्णकामो०	११	९४
प्रश्नयामास भट्टारकाधीश्वरो०	१२	८
प्रसाधिकाभिः परमाणुमध्या०	११	११९
प्रसृत्वरः शम्बरवैरिविक्रमो०	१४	२२
प्रह्लादेन ततो गुरुन्प्रति०	१४	२६९
प्राक्काश्यपीपतिरकब्बरपातिसाहि०	१०	६४
प्रागागमे प्राभृतवत्किमेषां०	१४	१९९
प्राग्भूमिभृत्स्वाभ्युदयाभिलाषी०	१३	११५
प्राग्वत्कदाचिन्मृगयां न जीव०	१४	१९८
प्राग्वागडावन्तिविराटखान०	१३	११
प्राघुणः श्रवणयोः श्रमणेन्दो०	११	१२६
प्राचीनजैननरपति०	१४	२८२
प्राचीनसूरीन्द्र इव प्रणीय०	१७	१२०
प्राचीनाप्रागुदीचीन०	१४	२४२
प्राचीपतिं विबुधराजबलारिघाति०	१०	८९
प्राच्यामिव प्रतीच्यां स्व०	९	१२२
प्रातःसन्ध्या व्यभाद्वह्नि०	९	५७

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
प्रातर्दिग्दन्तिनां गङ्गां०	९	५९
प्राप्ते प्रियेऽब्देऽजनि भूजनीयं०	१३	१०५
प्राप्याऽनुशास्तिं प्रभुतोंऽशुलक्ष्मीं०	१३	२५
प्राभातिकं कृत्यमथ प्रणीय०	१३	११६
प्रारभ्य मेचकनभोदशमीं शमीश०	१४	१८९
प्रारेभे भानुना व्योम्नि ०	९	७३
प्रालेयेन खिलीकृतः शिखरव०	१४	२७६
प्रावर्त्तयत्पुनर्भवो०	१४	२०९
प्रावीण्यमन्यर्हितकर्मणि०	१४	१८३
प्रियाश्चकोरानपि खञ्जरीटान्०	१४	२३०
प्रीणन्प्राणिनभोऽम्बुपान्प्रविदध०	९	१५२
प्रीतिप्रह्वैः प्रभुस्तत्र०	९	७६
प्रीतिलह्वां रमयति रहः स्वां०	१४	२४०
प्रीत्या प्रणत्याऽजयपार्श्वमत्रा०	१७	३२
प्रेक्षाप्रस्खलिताखिलाम्बरचरव्राते०	११	१३०
प्रेक्ष्य क्षणं कामरसोन्मदिष्णू०	१३	१०६
प्रेक्ष्य क्षपाक्षये चन्द्रं०	९	३६
प्रेक्ष्य प्रियं शक्रवशा अहिल्या०	१७	११६
प्रेषीत्पुरोऽसौ मिलितुं क्षितीन्द्रं०	१३	३३
प्रैषीत्ततः प्रैष्ययुगं सलेख०	१४	२८६
प्रोहेत्यसौ मां स नृपः कृपावा०	१४	२२९
फतेपुरं सागरमेखलाया०	१३	३५
बभर्ति हेतीर्न तनूनपादिवा०	१४	३०
बभाण भूयः प्रभुरेतमेत०	१३	१४८
बभुर्विभूषांशुतडिद्वितानान्०	१३	५४
बभूव वल्भावसरोऽधुना०	१३	१५१
बलिनिलयनिकेतैरान्मनः स्थूलमूलै०	१५	४५
बहलमलयजन्मामोदिता ०	१५	५२
बहलसलिलपूर्णातूर्णयानाभ्रिकाभिः०	१५	१२
बहूदितैः किं भवदीयभाग्यै०	१७	५८
बाह्यं हन्ति तमो द्विधाऽपि०	१०	११२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
बाह्वाबाह्वविजिघांसुधातुकतपस्ते०	१३	२०८
बिब्रतीभिः खगान्यत्र विभ्राजिन०	१२	२१
बिभ्रतो वाहिनीर्यस्य वार्धिप्लवा०	१२	६९
बिभ्राणा अपि बाह्यतो विशदतां०	११	१४६
बुधैर्न दोषाकरवंशजाते०	१३	१६६
ब्रवीमि वः किं बहु येन निःस्पृहा०	१४	९८
ब्रह्मपुत्री स्मिता नेकपद्माङ्किता०	१२	२८
भक्तिप्रह्वमना जिनाधिपमता०	११	११०
भक्त्या नताङ्गो बहुमन्यमानः०	१३	१२८
भक्त्या सुरत्राणनृपोऽभिगम्य०	१३	६
भट्टारकेन्द्रो विमलादिहर्षो०	१३	३२
भवच्चरणसेवनैरधिगता ०	१६	८१
भवच्छिद्रदर्शी भवेद्वा यदन्यः०	११	११
भवन्ति योग्या विभवा भवादृशां०	१४	१६८
भवभ्रमीभङ्गिभरो भवीव०	१३	१४५
भवसलिलनिधेरिवैकसेतुं०	९	१५३
भवाहितभिदोदयत्परमसातमाशंसतां०	१६	६
भवेन्मदीयेन्द्रियमन्दिरस्य०	१७	१५२
भाङ्कारिभेरीनिनदन्नफेरी०	१३	६५
भाति भामण्डलं राजवैरादिवा०	१२	१८
भाविसूरेरभूत्तस्यो०	९	९४
भासते शातकुम्भाश्मगर्भोपल०	१२	६८
भास्वतः कान्तिवद्वारुणीरागिणीः०	१२	४७
भास्वत्करा इव सुदूरभुवः समेता०	१४	१८६
भास्वानिव प्रकटयत्यानवद्यमार्गं०	१०	८८
भीरुभावान्निजं व्यालमालाकुलं०	१२	३१
भुक्तेन येनाऽत्र कदाचिदात्मा०	१७	१४९
भुजगभवनमध्यं व्याप्नुवन्स्थूलमूलैः०	१५	११
भूपं प्रति प्राक्प्रहितोऽथ तावत्०	१३	३६
भूपेऽभिषेणयति यत्र रजोऽभिवृष्ट्या०	१०	१८
भूभृतस्तुङ्गिमश्रीभिरन्यान्परा०	१२	५५
भूभृत्ककुद एष जीजियकरव्या०	१४	२७८
भूमानथाऽभाषत दूरदेशा०	१३	१८३
भूमानिमावित्यवदत्ततोऽमी०	१३	२०४
भूमीन्दो!ऽसिचया एतं०	११	१४७
भूमीन्द्रकुम्भाभिधराणकस्य०	१३	१६
भूमीभुजां शेखरयन्शिरस्सु०	१७	५६
भूमीभृतां प्रतिभरं सुमनःसु मुख्यं०	१०	६६
भूमेर्जयाय चतुरम्बुधिमेखलाया०	१०	५३
भूम्या व्योमेर्ष्ययेवाऽधृषत रविरथाः०	११	११८
भूयोऽप्युवाचेति न साहिबाख्य०	१३	१८५
भूलोके भोगिलोके च०	१३	२११
भूषामणिद्योतितदिङ्मुखाभि०	१३	६१
भृङ्गनेत्रा मृणालीभुजा जृम्भिता०	१२	३७
भृङ्गालिसङ्गिनीर्धत्ते०	१५	७६
भोक्तुं भुवं द्यां च समं मघोनो०	१७	१५४
भोगीव योगी स तदा शमश्री०	१३	११४
मघाभुवेवाऽसुरशीतभानुना०	१४	१५६
मज्जज्जनस्याऽस्ति करावलम्ब०	१७	१२४
मञ्जुसिञ्जानमञ्जीरविस्फूर्जितैः०	१२	४०
मणिं सुराणां तनुमत्समीहित०	१४	१५०
मतिं श्रुतक्षीरधिपारदृश्वरीं०	१४	९५
मदमुदितमृगेन्द्रारब्धरावाः प्रतिश्रु०	१५	२८
मदीयतुर्यादिनिनादसादरं०	१४	११४
मदीयानुगः साहिब[:] खान आस्ते०	११	१८
मदोद्धतत्वं मधुपानुषङ्गितां०	११	१४१
मधुना मञ्जरीमाला०	१४	२४१
मधोः पिकीकान्त इवैष युष्म०	१३	४४
मध्येऽमीषां विनेयानां०	९	११
मध्येऽम्बुधेरस्ति समस्तदुःखे०	१७	४१
मनोभवं वाऽभिभवन्गुरोर्महो०	१४	१२९
मनोभुवा मोहयमानमानसो०	१४	२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
मन्दमन्दं चलन्नर्बुदोर्वीधरा०	१२	८३
मन्दराद्याखिलोर्वीधराणामिवो०	१२	७२
ममाऽग्रे द्विजिह्वा यथा यान्ति दूरे०	११	१००
मया विशेषात्परदर्शनस्पृशो०	१४	७१
मरकतकटकाङ्कस्फाटिकानुच्च०	१५	५६
मरकतशिखराणां पद्मरागोदराणां०	१५	३७
मरुद्द्रुमान्मेरुरिवेन्द्रियाणि०	१७	१३९
मरुन्मिथुनमण्डिता खर्गविनोद०	१६	३६
मरुन्मृगाक्ष्या मरुतेव दिव्यं०	१७	१३७
मरुस्थलीविक्रमनागपूर्वं०	१३	२७
मरौ सुराणामिवशाखिनं स०	१३	३१
मलयगिरिरिवाऽसौ क्वापि०	१५	४३
मलीमसजनाप्लवैर्निजमपावनी०	१६	५३
महात्माऽथ वा येन नीयेत तापं०	११	६९
महामहः कोऽपि महीहिमांशौ०	१७	५२
महामहैस्ततस्तस्य०	९	९५
महाव्रतानीव मुनीश्वराणां०	१७	१३२
महाव्रतिप्राप्तमृतिं पतिं निजं०	१२	१०१
महीन्दिरायाः शिरसीव नील०	१७	१७४
महीपालभूभृन्मुखाणामिवैत०	१६	१२६
महीमण्डलान्तः किमाविर्भवन्तं०	११	७६
महीमरुत्वानथ शेखशेखरं०	१४	१०२
महीयसीं नाम महीस्रवन्तीं०	११	१०६
महीहिमज्योतिरियेष खञ्जनो०	१४	१५२
महेन्द्रमिहिराङ्गजाम्बुनिधि०	१६	१३
महेभ्यवत्सन्निधिशालमाना०	१७	१५७
महैर्महीयोभिरनेकनागरैः०	९	१४८
महोदयमृगीदृशा सह विनोद०	१६	८७
महोदयविधायिना विमलभूभृताऽऽ०	१६	११
मह्यां विहरति स्वैरं ०	९	१३६
माकन्दमोचाबकुलप्रियाल०	१७	१९३

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
माद्यन्त्यष्टापदैः पृथ्वी०	११	१४४
मानोऽपमानममुना गमितः क्षितीन्दो०	१०	१०३
माहात्म्यमेतस्य समग्रमेकै०	१६	१३४
मित्रं महिम्ना किमनुव्रजन्तं०	१३	३
मित्रपुत्र्या सह स्थातुमप्यम्बरं०	१२	६६
मिलत्पयोवाहपयोधिगर्जितै०	१४	११९
मुक्त्वाऽमात्यमिवाऽवनीशसविधे०	१४	२५२
मुखं मृगाङ्कं मिलितुं स्वबन्धो०	१३	२०२
मुनीन्दुना शौर्यपुरं पदाम्बुजे०	१४	१४७
मुमुक्षुक्षोणीन्द्रक्रमकमलभक्तिप्रणमन०	११	१२५
मुमुक्षुशक्रः सदसत्समीक्षा०	१३	११८
मुहुः प्रसर्पन्नथ कण्ठपीठं०	१७	८
मूर्ध्ना दधाति वसुधां०	१४	१८४
मृगाङ्ककरसङ्गमक्षरदमन्दपाथः०	१६	७७
मृगारिरद्रेरिव कन्दरोदरे०	१४	१२३
मृगीदृशः काश्चन शातकौम्भान्०	१३	६७
मृगेन्द्रशरभाङ्कुशाः परिभवन्ति मां०	१६	४२
मेखलामालिनीः शालिपादाः०	१२	३६
मेरुर्भूरिव भात्येषा०	९	२०
मेरुर्गिरिष्विव गभस्तिरिव ग्रहेषु०	१०	६१
मेरूनिव क्वापि सुवर्णवर्ण्यान्०	१७	२६
मैत्री मम स्वेष्विव सर्वसत्त्वे०	१७	१४७
मोद्घाटयेः स्वस्तरुपत्रपेटां०	१७	४३
मौर्न्दीकमालावित नामधेयो०	१३	२००
मौलिलीलायमानामृतांशुक्षर०	१२	५७
यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा०	९	१५६
यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा०	१०	१३१
यं लक्ष्म्येव जिताः कुलाचलनिभृतः०	१३	२२०
यं स्वर्णकायमरिनागनिपातनिष्णं०	१०	३५
यः पद्मनन्दन इवाऽस्ति०	१०	७
यः परान्कौतुकैः काममुत्कण्ठय०	१२	८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
यः पूर्वं कलिकालकेलिकलना०	१४	२८०
यः सेरद्विकखण्डलम्भनिकया०	१४	२५१
यच्चान्द्रचैत्योपरि शातकौम्भः०	१२	१२३
यतः स शूरः सुदृशां भ्रुवं धनुः०	१४	४६
यतीन्द्र ! यत्पञ्चमचङ्क्रमोपमा०	१४	१६०
यतो जन्मिनामीप्सितं शर्म्म दत्से०	११	१०१
यत्कीर्त्ति नरनिर्जरोरगवधूप्रारब्ध०	१४	२९९
यत्कीर्त्तिविद्विषदकीर्त्तिहतप्रतीपा०	१०	२७
यत्तीर्थेऽन्यत्र शुद्धाध्यवसितिविशद०	१६	११३
यत्पण्डिताः सार्द्धशतं बभूवुः०	१७	१०६
यत्प्रस्थितौ रथहयद्विपपत्तिवीङ्खा-०	१०	१५
यत्र कल्लोलयन्नैककल्लोलिनी०	१२	७७
यत्र चन्द्रोदयश्च्योतदिन्दूपल०	१२	७१
यत्र पाञ्चालिकाशिल्पं०	१२	१०३
यत्र वापीषु पश्यन्ति शंभुश्रियं०	१२	१२
यत्र विश्वत्रयीश्रीनिवासा जिना०	१२	८५
यत्र सृष्टैरिव श्रेयसे तोरणैः०	१२	१४
यत्र सोपानपङ्क्तिः शिवाह्वं०	१२	१३
यत्राऽऽपणेष्वगुरुचन्दनगन्धधूली०	१०	७१
यत्रोन्मदैः परिणतैर्हरितां त्वरमाण०	१५	६५
यत्सम्प्रहारहतहास्तिकमस्तकान्त०	१०	२८
यथा दफरखानेन०	१४	२०१
यथा सुधाब्धेरपरो न वारिधि०	१४	७४
यदन्यनीवृत्ततिमुद्रिकायां०	१४	२५६
यदात्मनोर्व्यां परमेश्वरा इवा०	१४	१०९
यदाददे नैष मुहुर्बहूदित०	१४	९९
यदास्तेऽन्य आत्मेव मे देहभेदात्०	११	१९
यदास्यकौमुदीकान्त०	९	७
यदि(दी)क्षणजितो मृगः श्रित०	१६	४३
यदीयविभवैः पराजितजगत्त्रयी०	१६	६१
यदीयविभवैर्जगत्त्रयपुरीपराभावुकैः०	१६	४
यदुद्यच्छते भूधवस्योपकर्तुं०	११	८९
यदोजोजितः किं प्रसत्त्यै समेतः०	११	९६
यद्वप्रवज्ररुचिसञ्चितशक्रचाप०	१०	७०
यद्वाग्विधित्सया धात्रा०	१०	११३
यद्वैजयन्त्या सितिमश्रियाः स्वः०	१२	१२४
यद्वैरिराजकयशोगुणराशिरात्री०	१०	२५
यन्नभःसङ्गिशृङ्गङ्गणालिङ्गिनां०	१२	७०
यन्मणीमयशिखासु बिम्बितं०	१२	९०
यन्मेदिनीकुमुदिनीरमणप्रयाणे०	१०	१९
यमीसमीपे रपडीपुरं क्रमात्०	१४	१३२
यया ज्योत्स्नयेवाऽवदातीक्रियन्ते०	११	४०
यशः सुधांशोरपिधायिका ०	१४	४२
यशःसुमस्येव सुपर्वसालं०	१३	१७३
यशस्त्रियामादयिते कलङ्कति०	१४	४८
यस्मिन्गतावधि वसन्ति परे०	१०	९५
यस्मिन्जयन्त्यः कलकण्ठकण्ठान्०	१३	६३
यस्मिन्ननन्यमणिधोरणिक्लृप्तशृ०	१५	६६
यस्मिन्नित्थमशापि पात्रसलिलक्षेपा०	१६	१२५
यस्मिन्नुद्वहता कनीमिव लतां०	१५	६८
यस्मिन्नुरोद्वयसर्निःसृतसिन्धुरङ्क०	१५	६४
यस्मिन्पुनाने भुवमर्बुदाद्रि०	१७	११२
यस्मिन्महाश्चर्यरसे निमग्नी०	१३	४९
यस्मिन्रणाङ्गणगते प्रहताहिताश्वाः०	१०	२१
यस्मिन्विभाति भागिनी०	१०	२
यस्य प्रसृत्वरयशःशरभूसवित्री०	१०	२०
यस्यां द्विपेन्द्रैः स्वमदप्रवाहै०	१३	२
यस्यां महीमदनसंसदि नर्त्तकेषु०	१०	७९
यस्यामवीज्यत विभुश्चमरैः०	१०	८४
यस्याऽतिदानवशतः परितोषभाग्भि०	१०	३९
यस्याऽऽशुगः प्रसरदाशुगवन्निषङ्गात्०	१०	३३
यस्याऽऽशुग्रान्प्रणयतः प्रतिभूपतीनां०	१०	३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
यस्याऽऽहवोऽजनि घनाघनवत्कृपाण०	१०	४०
यस्योपदेशाद्बहवो विहाराः०	१७	११०
यस्यौजसि स्फुरति जैत्र इव०	१०	४२
या शान्तनोर्वीमघवाङ्गजानां०	१७	१९
याच्ञा मे क्रियतां फलेग्रहिरसौ०	११	१४९
यात्रां कृत्वाऽत्र सुत्रासा(मा)०	१४	२५०
यात्रासु यस्य चतुरङ्गचमूप्रचार-०	१०	१४
यात्रिकस्तत्र यात्रां जिनेन्द्राद्रिव०	१७	१९४
यावज्जम्भारिधूमध्वजजल०	१७	२०९
यावद्वितर्कानिति तर्कशास्त्रा०	१३	१६२
यावन्मार्त्तण्डमुख्यग्रहणकलितो०	१७	२०८
युगादिजिनमन्दिरे शिखरमम्बरा०	१६	६४
युगादिसमये यथा भुवनमुद्धृतं०	१६	९०
युद्धोद्धते भुवनभीतिकरे नरेशे०	१०	५१
येनाऽऽकरा रोहणवन्मणीना०	१३	२१४
येनाऽऽहवे प्रणिहतात्मपतिप्रवृत्तिं०	१०	३७
येनोद्वेगमवापितो जनपदः०	१४	२७४
यैरन्तरे ध्यानधनञ्जयस्य०	१७	१२२
रक्षामो जगदङ्गिनो न च मृषावादं०	११	१५०
रङ्गतरङ्गावलिरम्बुराशे०	१७	३६
रजनीवियुजां जाने०	९	५०
रणे वैरिणां पार्थिवा येन देहा०	११	२३
रत्नसान्वौषधीप्रस्थमुख्यश्रिया०	१२	६०
रत्नस्वर्णसुवर्णकोपलमयाप्ता०	१४	२६१
रथाः सरथ्या मम कामगामिनो०	१४	१६१
रथाङ्गभाजस्त्वरमाणताक्ष्याः०	१७	७०
रथाङ्गव्यथनोद्भूतैः०	९	३४
रथाङ्गी रथाङ्गं जगादेति दूरात्०	१४	२२८
रथ्यैः सनाथान्मणिशातकुम्भ०	१३	५५
रवेण बाह्याहितजित्वरं तरो०	१४	१४२
रसकूपीदिव्यौषधि०	१६	११८

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
रसिककरिविलोलत्कर्णतालो०	१५	५७
राकामृगाङ्का इव यत्र पद्मा०	१६	१२०
राजन् ! यत्र पतिंवरेव वृणुते०	१३	२१७
राजन् ! यस्य गुणानगलन्मिति०	१०	११६
राजन् ! हुताशा इव हेतिभीषणाः०	११	१४३
रामाङ्गजो मध्यमलोकपाल०	१३	१९८
रेजे गिरीशगिरिशृङ्गकृतैस्तपोभिः,०	१०	८
रेणुर्जिघांसुर्लघिमानमेत०	१३	८५
रेवन्तवद्वा तुरगेण दिव्य०	१३	१८४
रोप्या निपा नीलकजापिधाना०	१३	६८
रोमाङ्कुराः सँमिति यस्य०	१०	२३
रोहिणीरागिभावान्निजत्यागिनं०	१२	६७
लाडकीति प्रिया यस्य०	१७	१८९
लिखितसुरपथाङ्कप्रस्थपुञ्ज०	१५	५४
लीलायमानान्निजमौलिदेशे०	१५	७१
लुम्पाकानां मतात्तस्मादिव०	९	१०८
लुलितगगनगङ्गाशीकरासारवन्तः०	१५	५८
लेखं न्यासमिवाऽर्पितं ०	१४	२८७
लोकम्पृणान्वीक्ष्य गुणान्गणेन्दोः०	१७	६१
लोकान्कोकानिवाऽऽह्लादं०	९	२३
लोलरोलम्बकोलाहलप्रस्तुत०	१२	७६
ल्यारीसहस्रद्वयसङ्गृहीत०	१७	१६८
वचोवैदुषीमेतदीयामधृष्यां०	११	५
वदन्ति वाचंयमपुङ्गवास्त्रिधा०	१४	४१
वदान्यविश्राणनमीक्षमाणो०	१३	९७
वदान्यैः श्रीदवद्दानं०	९	१३०
वनप्रदेशा इव केऽप्यलाबू०	१३	७२
वनीमिवाऽवनीं सूरि०	९	१०४
वपुषा कुरुषे किमभ्यसूयां०	१४	२१७
वप्ताऽब्धिर्मथितोऽनवाप्तपद०	१२	९४
वरकाणकमागत्य०	१४	२६३

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
वरीतुममृताह्वयामिह पतिवरां०	१६	८०
वर्णयामः किमस्याऽमृतस्राविर्णी०	१२	५२
वर्षत्यसौ शिरसि सङ्घपतेः०	१६	१२९
वर्षाकाले व्रतीन्द्रौ तौ०	१४	२८३
वशार्रसिकगीतिभिर्विविधवाद्य०	१६	२३
वसतिमसुमच्चेतांसीव प्रविश्य०	११	१५७
वसुन्धराभोग इवाऽमराचला०	१४	३८
वहन्ति पञ्च व्रतिनो महाव्रता०	१४	५७
वाग्विलासैः सृजन्तीव०	९	२
वाचं वाचंयमश्रेणी०	९	८
वाचं सुधामिव निपीय ततः समुद्र०	१०	९०
वाचंयमावनिभृतः शमनामसाम०	१०	१०१
वाचंयमेन्दुर्निजमल्पमायु०	१७	११८
वाचोऽनुबिम्बाभिरिवाऽङ्गनाभि०	११	१०४
वादाल ! कुद्दालवदानेन किं०	१४	२३५
वादिनां विजयोदन्तं०	१४	२९३
वादे वादिगणान्विजित्य समरे०	१७	१९६
वाद्योघमाद्यन्निनदैर्जिनस्ये०	१७	१७२
वाध्रीणसस्येव विषाणमेको०	१७	१५१
वाहाः पञ्चमहाव्रतानि करिणः०	११	१५१
विकचकुसुमचञ्चच्चम्पक०	१५	५३
विकसितकुसुमालीकर्णिकालीन०	१५	४७
विक्रमार्क्क इव श्रीमत्०	९	१७
विगोपनमिवैतेषां०	९	१११
विघ्नाय जज्ञे भगवत्समाधे०	१३	१९०
विचिन्त्याऽऽत्मचित्ते तदादेशमर्ह०	११	४५
विजयसेनविभोर्हृदि दर्शनं०	१४	२८५
विजित्य कलिना समं०	१६	५१
विजित्य निजवैभवैः सुरनरोरग०	१६	७
विजित्वरविभूतिभिः प्रतिपदं०	१६	७१
विज्ञाय हीरसूरीन्दु०	९	१२१
विज्ञायाऽऽगमनं यतिक्षितिपते०	११	११६
वितत्य मायिकेवाऽभ्रं०	९	४४
वितन्वते ये भ्रमरा इवाऽऽत्म०	१७	१२३
विदग्धविहगा जयारवमुदी०	१६	३८
विदलयितुमिवान्तर्वैरिषड्वर्गं०	१५	२
विदलितदलमालाशालिलीलातमालाः०	१५	२२
विदलितदललीलाश्यामलीभूतभूमी०	१५	४१
विद्मो मन्दरकन्दरैः प्रतिरवैः०	१४	२९७
विद्राणोत्पलदृक्क्षीण०	९	४९
विद्वेषिणीयमिति येन निहन्यमाना०	१०	१०४
विधातृपुत्रीतनयैरिवाऽयं०	१३	९३
विधास्यति विभोरहर्निशमुपास्ति०	१६	६८
विधास्यामि सान्निध्यमभ्यास(श)०	११	९३
विनिद्रनीलाञ्जनिकानमेरु०	१३	१५
विनेया विनयावासाः०	९	१०
विन्ध्याचलं तुङ्गतया वयस्य०	१३	१४
विपक्षतामाकलयन्तमुग्रं०	१३	१५८
विपक्षान्क्षितौ क्ष्माभृतो हन्तुमेतो०	११	३
विपक्षान्विपक्षक्षमाभृत्सहस्रान्०	११	५६
विप्रलब्धं विधात्रेव रूपश्रिया०	१२	२३
विबुधपतिपुरन्ध्रीबन्धुरारब्धलीलं०	११	११४
विभाव्य भुवनत्रये स्वभवाङ्ककार०	१६	६९
विभाव्य यत्राऽद्भुतशालभञ्जी०	१२	१२१
विभाव्य विस्मेरविलोचनाम्भो०	१३	१५६
विभुज्य कण्ठं क्षितिपाकशासनो०	१४	४
विभुना वाक्सुधास्यन्दि०	९	३३
विभूषयद्विन्ध्यधराभृतोऽष्टा०	१३	१३
विमलशिखरिकुण्डा वल्लरीः०	१५	२०
विमलाभिधधीसखः पुरो०	१२	९६
विमानघण्टापटुनादसान्द्र०	१७	१७१
विमृश्य विश्राणयिता फलं स०	१३	१३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
विरागे नाऽनुरागे च०	१३	२१०
विलिखितगगनाङ्कप्रस्थकण्ठा०	१५	४९
विविधकमलाकेलीगेहं०	१५	७८
विविधनवचिरत्नायत्नदत्तात्मरत्नै०	१५	२१
विवेश वशिनामीशो०	१२	१०९
विवेश वशिशर्वरीवरयिता नृणां ०	१६	४१
विशां दृशः प्रीणाति शक्रकेता०	१३	९०
विशां वयांसीव भवन्ति येषां०	१७	१३०
विश्राणयत्यसुमतां क्षितिकान्त०	१०	१०२
विश्लेषियोषाविरहोष्मशुष्य०	१३	१०३
विश्वत्रयीमीक्षितुमुत्सुकेन०	१३	१५५
विश्वत्रयीश इव निःशरणात्मभाजा०	१०	१०७
विश्वस्फूर्जदमारिशिष्टपटहा०	११	१५२
विश्वासुमत्सु समदृक्परमेशितेव०	१०	८९
विश्वे वेश्मनि तारमौक्तिक०	१३	२०७
विषप्रदोऽस्थास्नु जडाशयश्चे०	१३	११२
विष्टपजीवनवारिमुचां किं०	१४	२२४
विष्टरोद्भासिनीश्चन्दनामोदिनीः०	१२	३८
विस्तीर्णोऽपि स सङ्कीर्णो ०	९	८८
विहायोऽङ्गणालिङ्गिगेहाग्रशृङ्गा०	११	१२१
विहारमिव संमदाद्व्रतिवसुन्धरा०	१६	९६
वृन्दं द्रुमाणामिव पुष्पकाला०	१७	१४८
वृषभजिनगुणौघान्गायतः०	१५	२६
वेश्मव्रजाः पुरि विभान्ति०	१०	७३
वैजयन्तं विजेतुं विभूषाभरै०	१२	१०५
वैधेयवन्निरीयाऽन्ध०	९	१३१
वैमलीयवसतिं व्रतीशिता०	१२	८७
व्यक्तिर्यथा प्रथममार्प्यत गूर्जराणां०	१४	१९१
व्यपोहैकदृक्त्वं त्वमस्मद्गिगानं०	११	१०२
व्यवस्यमानामिव जेतुमम्बरा०	१४	१३४
व्यसीसृपत् श्रोत्रसुधायमान०	१३	७०
व्याधेन वेध्यीकृतविग्रहेव०	१४	२३४
व्यापार्य कार्य क्वचन०	९	५
व्यालानुषङ्गवशतो वसतेर्वनान्ते०	१७	१७६
व्रजे यतीनां विजयाद्यसेन०	१७	१०९
व्रतं जिघृक्षुः सोऽकाङ्क्षी०	९	१२०
व्रतिक्षितीन्द्रेण ससप्तपञ्च०	१७	९०
व्रतीश्वरेणैक्ष्यत तोरणावली०	१२	९९
शंभुमुद्दिश्य मुक्तैः स्मरेणाऽऽशुगै०	१२	१५
शत्रुञ्जयाद्रेर्महिमैकसिन्धोः०	१७	२२
शत्रुञ्जयोर्वीधरसन्निधानं०	१७	१४
शत्रुञ्जयोर्वीधरसार्वभौम०	१७	३
शनैः शनैस्तत्पथि सञ्चरिष्णुः०	१३	४०
शनैः शनैस्तेन मया विमृश्य०	१४	१९७
शमी शमीगर्भमिवैकतान०	१७	१५३
शरत्समयपङ्कजाकर इव०	१६	१०८
शशंस सभ्यानथ पार्थिवेन्दु०	१३	१९९
शशंस साहिर्जनयन्ति मन्मनो०	१४	१८०
शशंस सूरिं कमिता ततः क्षितेः०	१४	१७०
शशाङ्ककरसङ्गमक्षरदमन्दपाथः०	१५	७०
शाखाप्रशाखाश्रेणीभि०	९	१४२
शापेन कस्याऽपि मुनेरिवाऽनिशं०	१४	१८१
शाश्वताद्रिरिवाऽनन्त०	१६	१३२
शिखरमणिविनिर्यज्ज्योतिरुज्जृ०	१५	६
शिखामणेस्तस्य निरीहताजुषां०	१४	१६९
शिरोधृतश्वेतसुवर्णकुम्भाः०	१७	६३
शिल्पिभिः कारितः सङ्घै०	९	८६
शिवश्रिय इवाऽवतीवलयशालि०	१६	१२
शिवश्रीविवाहोत्सुकीभूतचित्तै०	११	५०
शिवस्त्रिनेत्रीमिव भूमिमानिव०	१४	३६
शीलन्ति यं क्वचन संसदि०	१०	९१
शुश्रूषमाणस्य विशिष्य शिष्य०	१३	१३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
शून्यं सृजन्भुवनमप्यरिकीर्त्तिहंस०	१०	४१
शृङ्गारिताः क्वचन०	१०	८६
शृङ्गैरम्बरचुम्बिभिर्विदधतं विघ्नं०	११	१३१
शेखं तमित्थं कृतपूर्वपक्षं०	१३	१५०
शेखस्ततः साधुविधुं विशुद्ध०	१३	१५४
शेखूजी इत्येकः०	१३	२२३
शेषा इव त्रिभुवनाधिपतेः प्रमोदा०	१७	१८८
शोणी दीप्तिर्दिनेशस्या०	९	६६
शोभामुभौ लभेते स्म ०	९	१०३
शौर्याज्जिगीषुमवलोक्य निजं०	१०	८७
श्यामत्वमात्मपितृघातकपातकं०	१७	१७८
श्येनैः शकुन्ता इव पीडयमानाः०	१३	१४१
श्रवःपथातिथ्यमनायि यादृशो०	१४	७६
श्रीआगरापुरमुपेत्य कियन्ति वर्षा०	१०	६२
श्रीकाबिलाधिपतिबब्बरपातिसाहि-०	१०	११
श्रीभिर्जगन्मूर्द्धविधूननीभि०	१२	१००
श्रीमज्जेसलमेरुनामनगरादागत्य०	१४	२५४
श्रीमत्पर्युषणादिनारविमिताः सर्वे०	१४	२७१
श्रीमत्सूरिर्पातिः प्रसत्तहृदयः०	१४	२८४
श्रीमत्सूरिवरेण वार्द्धिवसना०	१४	२९०
श्रीमदाचार्यपादा उषित्वा०	१२	२९
श्रीमद्गुर्जरराजवीरधवलाधीशः०	१४	२४४
श्रीरामे भरतेनेव०	११	१५३
श्रीरोहिण्याः प्रतिष्ठाये०	१४	२६२
श्रीलाभलाभपुरयुग्मुलताननाम०	१४	१९२
श्रीवाचंयमपञ्चकोटिकलितः ०	१६	१३१
श्रीवाचकेन्द्रौ विमलादिहर्ष०	१७	१५९
श्रीविजयदेवसूरी०	१७	२०७
श्रीशत्रुञ्जयभूभृतस्तनुमतां०	१४	२७७
श्रीसाहिरित्यालपति स्म सूरयः०	१४	१९४
श्रीसूरिश्वरहीरहीरविजयैस्तैः०	१४	२४३

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
श्रीसूरिहीरविजये भर्जति द्युलोक०	१७	२०५
श्रीहीरसूरिः श्रयति स्म०	१७	१६६
श्रुतोक्तयावद्विधिपालने यदा-०	१४	६३
श्रुत्वा तद्वचाहत०	१७	१९९
श्रुत्वेति शेखस्य वचो विधत्ते०	१३	१५२
श्रेणीं सतामिव विमुक्तसमग्रदोषां०	१३	२०६
श्रेणीभवन्त्युभयपक्षवलक्षरत्न-०	१०	७२
श्रोत्रपत्रैर्निपीय प्रभोरागमा०	१२	५
षष्ठान्सपादां द्विशतीं व्रतीन्द्रो०	१७	९४
षष्ठैः सप्तभिरष्टमाष्टमयुतैर्य०	१६	१३६
स उ(ऊ)चेऽथ वाचेति पीयूषवर्ष०	११	३९
स उग्रसेनाद्यपुरात्फतेपुरं०	१४	१५१
स एकदत्तिस्फुरदर्कसिक्थ०	१७	९९
स घोटकचतुष्किकादिमगवाक्ष०	१६	४९
स तूररावैः कुलशैलकन्दरो०	१४	१३८
स देवकुलिकान्तरे जिनपुरन्दरा०	१६	९३
स द्वीपबन्दिरश्रेष्ठी०	१७	१९०
स धर्मकर्मारितसङ्कथास्वथो०	१४	१६
स पल्वलमिवाऽमेध्यं०	९	११४
स प्रस्थितस्तत्पुरतः पुरस्ता०	१३	१०
स प्रार्थितो द्वीपजनव्रजेन०	१७	५
स भक्तिमिव नाभिभूप्रभुपुरो०	१६	९८
स भद्रवांस्त्रैणकुचाचलान्तिक०	१४	४७
स श्रीकरीं कैरविणीशकीर्त्तिः०	१३	११७
स श्रीकरीं गन्तुमपीहमानः०	१३	९२
स श्रीकरीपुरमवासयदात्मशिल्पि०	१०	६३
स श्रेणिकायाऽभयवन्मृगारि०	१३	१२१
स सिद्धगृहवज्जिनं प्रणमति स्म०	१६	४४
स स्माऽऽहेति सहस्रदंष्ट्रमहिला०	१४	२३६
संप्राप्तयोर्निर्जरनागधाम्नो०	१३	२३
संलेखनां तत्र तपोविचित्रां०	१७	११९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्क	श्लोकाङ्क
संवर्त्तवत्तत्र तदा स्वपोत०	१७	३९
संसाधकेषु त्रिदिवापवर्ग०	१७	१४३
संसिसृक्षुः शशी कान्तां ०	९	५२
संसृत्यसारसरणिभ्रमणीभवेन०	१०	९७
संसेवितो द्विरसनैरसुराश्रयश्च०	१०	५
संस्कारोपस्करमथ०	१७	१७५
संस्थाप्य तं तत्र जिनेन्द्रबिम्बं०	१७	५५
संस्निह्यतश्चक्षुरिव प्रियं स्वं०	१३	३७
सखीभूतदिक्सुभ्रुवः सौविदल्ली०	११	५५
सखीमिव स्वःशिवपद्मधाम्नो०	१७	१३८
सगर्भभावं विधुना दधानाः०	१३	६२
सङ्क्रान्तशक्रबलिधामधरापदार्थ०	१०	९८
सङ्ख्यातिगैतद्गजवाजिपत्ति०	१३	७६
सङ्घः प्रतस्थेऽभिमुखं मुनीन्दो०	१३	५२
सतां स्वोपकर्त्तापकर्त्ता च चित्ते०	११	७०
सदाऽऽकृतिवपुः पदं परिचरामि०	१६	७४
सद्माऽस्ति यः पद्ममिवाऽष्टसिद्धि०	१७	१५०
सन्तोषतोयनिधिमध्य इवाऽस्य०	१०	१०५
सन्त्रस्यदेणरमणीदृगपाङ्गरङ्गो०	१०	९६
सन्देह सन्दोहमहाम्बुवाह०	१३	१३३
सन्ध्याद्रुहः केऽप्यवहन्विहायो०	१३	६६
सन्ध्याभ्रविभ्रममिवाऽध्रुवभावभाज०	१०	९४
सन्ध्यारागारुणं जैनं०	९	५८
सन्ध्ये दिनानामिव जन्मिनां द्वे०	१७	१२९
सप्तसहस्राः सर्वाः०	१७	१८१
सप्ताऽभवन्वाचकवारणेन्द्रा०	१७	१०७
समस्ति शेखोऽबलफइ(फै)जनामा०	१३	११९
समस्थापयत्तीर्थसार्थाननेका-०	९	१४३
समस्व स सुखं योषे०	१४	२१८
समहं मथुरापुर्यां०	१४	२४६
समागान्ममाऽऽह्वाननं भूमिभानोः०	११	८२
समानीयमाना अमीभिर्जनास्ते०	११	३५
समाकर्ण्य सुरीवर्ण्य०	९	१८
समीक्ष्य शिखिभोगिनौ स सखि०	१६	९७
समीपमुपजग्मिवानथ गिरीशितुः०	१६	१
समुत्कण्ठुलं मानसं मेदिनीन्द्रः०	११	७१
समुद्रोऽपि भीतिं दधद्वारिपूराद्०	११	४२
समेत्य मणिसेतुना वृषभकूट०	१६	४७
सम्प्रस्थिते वसुमतीविजयाय यस्मिन्०	१०	१७
सम्प्राप्तः पूर्ववारान्नवनवतिमिताना०	१६	१३०
सम्प्रीणता कुवलयं नृपसूरिराज०	१०	४५
सम्मोहसन्तमससन्ततिसान्द्रितेषु०	१०	१०८
सम्यग्विमृश्य गुरुणा निजभूमिभर्त्रो०	१४	१८७
सम्राज्यमप्यधिगतो निखिलस्य०	१०	१३
सरस्यनुपमाभिधे शिखरिशेखरे ०	१६	४६
सरुशिखरिणस्तुङ्गे शृङ्गे०	१०	११७
सर्वानुवाद इव यन्महसां विहायः०	१०	५६
सर्वे जनाः सृजति राजनि०	१०	६०
सशब्दानिवाऽब्दान्पतद्वारिधारान्०	११	९८
सहस्ररश्मेरिव सोमजन्मा०	१३	१२०
सहीरविजयप्रभुर्वरणगोपुरं प्राविशत्०	१६	५४
साम्राज्यं वारांनिधि०	१७	२०६
साम्राज्यमासाद्य दिवस्त्रिलोक्या०	१३	१६१
सालो दिशन्ति च फलानि०	१४	१८५
साहिः सवाईविजय०	१४	२९२
साहिना सार्द्धमभ्येयुः०	९	१२४
साहिश्रीमदकब्बरावनिभुजेत्यादिष्ट०	११	१३३
साहेः पर्षदि शेखादि०	१४	२९१
सिंहोऽप्याख्यद्भयभीता मा स्म०	१४	२१६
सिद्धान्तानेष निध्याय ०	९	१०७
सिन्धुशैलोद्भवद्गौरवैर्दुर्वहां०	१२	६३
सिन्धूः सुता इव पिता०	१५	६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
सीमन्तेषु मृगाक्षीणां०	९	७२
सीमभूमौ वटात्पल्लिकायास्ततो०	१२	२७
सुखं निखेलन्तु विलासविष्करा०	१४	१७८
सुखासुखानि प्रभविष्णु दातुं०	१३	१४६
सुत्रामगोत्राधिकगौरवेण०	१३	१६३
सुदृशां शिरसि व्यलीलसत्,०	११	१२०
सुधाधामदुग्धाब्धिकर्पूरपारी०	१०	११५
सुधाब्धिवद्यो ददतेऽमृतं पुनः०	१४	२७
सुधारसं प्रीतिभरेण पायं०	१३	१९६
सुधाशनपथातिथिं शिव०	१६	२९
सुरपथपथिकैतत्प्रस्थसंस्था नभोगाः०	१५	१०
सुरादिपरिवारिता किमभरावती०	१६	५
सुरासुरनरस्फुरन्मिथुनचारुचित्र०	१६	७९
सुरासुरनरेन्दिरादिमसमग्रकामप्रदा०	१६	८९
सुरैरिवेन्द्रः कलभैरिव द्विपो०	१४	५
सुवर्णकायानतिवातवेगान्०	१३	५३
सुवर्णश्रियाऽद्वैतयाऽलङ्कृतायाः०	११	२४
सुवर्णोऽप्यवर्णः सुरावासवासी०	११	६०
सूरिं दयाधर्ममिवाऽङ्गिजात०	१३	१५७
सूरिपुरन्दरगदिता०	१३	२२१
सूरिराजोऽथ सम्प्रस्थितस्तत्पुरात्०	१२	१
सूरिर्दीक्ष[य]ति स्म सक्षण०	१४	२९४
सूरिशीतांशुरापृच्छ्य भिल्लाधिपं०	१२	५४
सूरीन्दुरेकाग्रमनाश्चतस्रः०	१७	१०४
सूरीन्दुरेकाशनकं न याव०	१७	८८
सूरीन्दुर्वसतेर्मध्यं ०	९	७५
सूरीन्द्रः कामयाञ्चक्रे०	९	८२
सूरीन्द्रेणाऽथ दैवज्ञै०	९	८५
सूरेर्भूधनबोधनादिचरित०	१४	२९५
सूर्याचन्द्रमसौ पुनर्दिनतमी०	१४	२९६
सूर्योद्यानं सुरेन्दोर्दिशि विपिनमिव०	१६	११९
सृष्टसर्वज्ञसङ्गः सुधाधामव०	१२	२६
सैंहिकेयान्जयन्शौर्या०	९	१२३
सोऽप्यवक्कर्रिणि ! मा बिभेषि नः०	१४	२१२
सोऽप्याकर्णितहीरसूरिमघवाङ्गा०	१७	१९७
सौमङ्गलाद्या इव नाभिसूनो०	१७	१६४
सौवर्णेन ततो बभूव भविकै०	१४	२८१
स्तम्भादितीर्थे जलदागमेऽस्मि०	१७	११५
स्त्रीभ्यस्तदा य(त)द्गुणगायनीभ्यः०	१७	७२
स्थलप्रफुल्लन्नवहेमपद्म०	१३	५६
स्थितोऽद्रिः सुराणामिवाऽऽक्रम्य०	११	३१
स्थेमानं गाहमानो बलमथनपथे०	१७	२१०
स्पर्द्धया यन्मुखालोकनप्रोल्लस०	१२	३४
स्पर्द्धां दधन्निजयशःप्रसरैःस्वलक्ष्म्या०	१०	४८
स्पर्द्धां यया विदधतं क्षिजगज्जयिन्या०	१०	६७
स्पृहयद्भिर्भरवोढ्वोढुं०	९	१२८
स्फटिकघटितशृङ्गोत्सङ्गसङ्गी०	१५	१६
स्फटिकललितमन्तः पद्मरागप्रगल्भं०	१५	६०
स्फुटकटतटनिर्यद्दानपाथःप्रवाहैः०	१५	३९
स्फुटमिव घटितानां स्फाटिकाश्म०	१६	१२३
स्फुटस्फटिककल्पिता क्वचन०	१६	७८
स्फुरत्करतरङ्गितां स्फटिक०	१६	५२
स्फुरत्खरकरोद्धुरद्युतिवितानसन्ता०	१६	३२
स्फुरद्बाहुशाखः सपाणिप्रवालः०	११	५१
स्फुरन्ति शिष्याः कति वो व्रतीश्वरा०	१४	८०
स्फूर्जज्ज्योतिर्जलदपथवद्वृन्दमे०	११	१३६
स्फूर्त्या मणीकम्बुवराटमुक्तिका०	९	१४६
स्मारावरोधनधियं विदुषां ददाना०	१०	७७
स्मितद्रुमगलन्मणीचकचयोपचारा०	१६	३४
स्मेरपद्मेक्षणा भृङ्गगुञ्जारवा०	१२	३५
स्वःस्त्रैणजैत्रमणिकल्पितशिल्पचञ्च०	१०	८६
स्वकरनिकरसङ्गश्चोतदिन्दूपलाम्भो०	१५	६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
स्वकशिखरशिखाङ्कस्थायुका०	१५	१८
स्वकशिखरशिरःस्थां भृङ्गरङ्ग०	१५	४८
स्वकोशरक्षाधिकृतस्य भूमिमा०	१४	१२६
स्वचेतसो गोचरयन्नपि क्षमा०	१४	१६३
स्वचैत्यचटुलध्वजोपधिकरैः०	१६	३९
स्वच्छन्दं त्रिजगद्विलासरसिकां०	१४	३०२
स्वतुङ्गिमाधःकृतरत्नसानुं०	१३	१७
स्वभर्वविभवभूम्ना लम्भितेना०	१५	१९
स्वमण्डले भूतलशीतभानी(सा)०	१३	१९५
स्वमोज्झ्य भुवि निर्वृतौ गतमवेत्य०	१६	७६
स्वयं धरित्रीधरताभिषेको०	१३	१०७
स्वयं श्रमणशक्रेण०	९	४
स्वर्गे न किञ्चिदपि दानमवाप्नुवद्भिः०	१०	८१
स्वर्गे सुरेश इव शेष०	१०	७७
स्वर्णं तदास्ते भवदङ्गिचङ्गिम०	११	१३५
स्वर्णोदयार्बुदब्रह्म०	१६	११५
स्ववत्तदादत्त समस्तपुस्तकं०	१४	११०
स्ववासयोग्यां वसतिं न कुत्रचि०	१४	७२
स्वश्राद्धसौधाहृतभक्तभोगा०	१७	८२
स्वस्मिन्नम्बरचारिणां प्रतिपदं०	१५	७५
स्वां पत्नीं ताम्रचूडो दरतरलदृशं०	१४	२२६
स्वामिन् ! मे गन्धवाहा इव०	११	१३४

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
स्वाहान्वितं वह्निमिवोपयन्ता०	१३	८४
स्वाह्वाङ्कितं कजसुहृन्मित०	१४	१९०
स्वीयरूपश्रिया मानमातन्वतीः०	१२	४१
स्वीयान्ववायभवभूधनराजिमाजौ०	१०	४६
स्वोदयाय कलिं लुप्त्वा०	९	११७
हतारातिसारङ्गदृक्कज्जलाङ्क०	११	४
हन्तुं तपर्त्तोरिव तापमुर्व्यां०	१३	९९
हमांउसूः सोमयशोऽङ्गजन्मव०	१४	१०६
हमाउसूनोः फुरमानदाना०	१४	२७०
हरिन्मणीनिर्मितं(त)सन्निधिद्वया०	१२	९८
हरिर्य इह सेवकस्तव जिनेन्द्र०	१६	८४
हरिर्वा कृतान्ताः प्रचेताः कुबेरः०	११	८
हरिव्यापादितध्वान्त०	९	६८
हरेर्मृगदृशामिवोत्पलदृशां०	१६	२७
हा ! हा ! भूघनबोधनैर्कविबुध०	१७	२०१
हिंसादयं निर्दिशती विरोधि०	१३	१३४
हिमोर्वीधरोर्वीव सिन्धोः सुराणां०	११	७३
हृदन्तर्मुनीन्दोर्निनंसा पुरासीत्०	१४	२६७
हृदभिलषितसिद्धीरैहिकामुष्मिकाद्या०	११	४७
हृल्लेखितामाकलयद्भिरात्मा०	१६	१२४
हेमसूरीश्वरेणवा०	१७	२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट - २

ग्रन्थान्तर्गतोद्धरणानि

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
कथिताः करणे तनने ग्रथने चोत्पादने च ये पूर्वम् ते धातवः स्पृशन्ति प्रायस्तुल्यार्थतामेव '' [ ]	१	५		√
[1]भूवलयोर्वशीवशः [नैषधे १२/२७]	१	१५	√	
तारो निर्मलमौक्तिके [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ४१६]	१	१६	√	
प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रज[जाल]कम् [नैषधे १/१०१]	१	१९	√	
[2]चिरत्नरत्नाकि(चित)मुच्चितम् [नैषधे १/१०७]				
अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्गम् [नैषधे ७/९७]	१	२०	√	
[3]केलीषु तद्गीतगुणान्निपीय [नैषधे ३/२७]	१	२२	√	
सुरेश्वराध्व [नैषधे १३/२९]	१	५३	√	
पूगे क्रमुकगूवाकौ तस्योद्वेगं पुनः फलम् [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० २२०]	१	७९		√
भूयो बभौ दर्पणमादधाना [कुमारसंभवे]	१	८८	√	
सदा सनाऽनिशं शश्वद् [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ६ श्लो० १६७]	१	१००		√
परीरम्भः क्रोडीकृतिः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ६ श्लो० १४३]	१	१०२		√
गोरोचनाचन्दनकुङ्कुमैण-नाभीविलेपाद् [नैषधे १०/९८]	१	१०४	√	
गजानामभ्रमूपतिः [काव्यकल्पलतायां पृष्ठ ३८]	१	११०	√	
[4]शङ्के स्वसङ्केतनिकेतमाप्ताः [नैषधे २२/४१]	१	११३	√	
शिशुतरमहोमाणिक्यानामहर्मणिमण्डली [नैषधे १९/४२]	१	११८	√	
स्मरावरोधभ्रममावहन्ती [नैषधे ६/५८]	१	१२३	√	

१. **तमेनमुर्वीवलयोर्वशीवशः** इति मुद्रितनैषधे ।
२. **चिरत्नरत्नाधिकमुच्चितम्** इति मु. नै. ।
३. **केलीषु तद्गानगुणान्निपीय** इति मु. नै. ।
४. **शङ्कस्व सङ्केतनिकेतमाप्ताः** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
विधेः कदाचित् भ्रमणीविलासे [नैषधे ३/१९]	१	१३१	√	
जाम्बूनदोर्व्वीधरसार्वभौम० [नैषधे १४/७१]	१	१३५	√	√
क(का)मनीय[क]मधः कृतकामम् [नैषधे ५/६४]	२	९	√	
कुलं कुल्यगणे गेहे देहे जनपदेऽन्वये [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ४६९]	२	११		√
उदीतमातङ्कितवानशङ्किते [नैषधे १/९१]	२	१५	√	
तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटा [नैषधे १/१०९]	२	१७	√	√
केलतीमदनयोरुपाश्रये [नैषधे १८/९७]	२	१९	√	
लब्धार्द्धचन्द्र ईशः [चम्पूकथायां उच्छ्वास ६ श्लो० ३८]	२	१८	√	
इदं यशांसि द्विषतः [1]सुधामुचः [नैषधे १२/८९]	२	२०	√	
यन्मतौ विमलदर्पणिकायाम् [नैषधे ५/१०६]	२	२३	√	
अयमुदयति घुसृणारुणतरुणीवदनोपमश्चन्द्रः [विदग्धमुखमण्डने]	२	३६	√	
स्वःसोपान[2]परम्परामिव वियद्वीथीमलङ्कुर्वते [नलचम्पू उच्छ्वास ५ श्लो० ५६]	२	३८	√	
नाभीमथैष [3]श्लथवाससा नुतिः [नैषधे ६/२०]	२	४५	√	
विहारस्तु जिनालये लीलायां भ्रमरे स्कन्धे [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ५९६-५९७]	२	५७		√
सारङ्गा हरिणे शैले कुञ्जरे वातके खगे । शबले चिञ्चिरीके च [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० १२२/१२३]	२	६०		√
अध्यापयामः परमाणुमध्या [नैषधे ३/४१]	२	६४	√	
मृगाङ्कचूडामणिवर्जनार्ज्जितम् [नैषधे १/७८]	२	६४	√	
नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने [रघुवंशे ३/५३]	२	६८	√	
विशति विशति वेदीमुर्वसी(शी) सेयमुर्व्याः [नैषधे १०/१३७]	२	७४	√	
तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ, दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ [नैषधे १/८]	२	७८	√	

१. **०सुधारुचः** इति मु. नै. ।

२. **०परम्परा इव वियद्०** इति मुद्रितनलचम्पूकाव्ये ।

३. **०श्लथवाससोऽनु** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
दशनचन्द्रिकया व्यवभासितम् [रघुवंशे]	२	८०	√	
[1]मध्यंदिनाद(व)थ(धि)विधेर्वसुधाविवस्वाश(न्) [नैषधे २१/१२०]	२	९५	√	
वसुमतीयुवतीभुजङ्गः [काव्यकल्पलतायां पृष्ठ २१]	२	९७	√	
निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषी हरित् [नैषधे १९/३]	२	१००	√	
पलालजालैः [2]पिहितेक्षुडिम्भः [नैषधे ८/२]	२	१०६	√	
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव [रघुवंशे १/३६]	२	१०९	√	
यन्मतौ विमलदर्पणिकायाम् [नैषधे ५/१०६]	२	११७	√	
आखण्डलो [3]दण्डधरः शिखावान्पतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्रैः [नैषधे १०/१०]	२	११८	√	
पलालजालैः पिहितः स्वयं हि प्रकाशमासादयतीक्षुडिम्भम् [नैषधे ८/२]	३	२	√	
अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः [रघुवंशे २/७५]	३	४	√	
भुवि दिविजमहियं [अजितशान्तिस्तवे गाथा ७]	३	८	√	
अवलम्बितकर्णशष्कुलीकलशी(सी)कम् [नैषधे २/८]	३	२१	√	
उल्लसन्मयूखतें(म)ञरीरचितेन्द्रचापचक्राण्याभरणानि [नलचम्पू उच्छ्वास ३ पृष्ठ ७५]	३	२३	√	
वृता विभूषामणिरश्मिकार्मुकैः [नैषधे १५/५३]	३	२३	√	
[4]त्वयादृतः किन्नरसाधिमभ्रमः [नैषधे ९/४४]	३	२९	√	
पृथ्वीव पुण्यतीर्थम् [नलचम्पू उच्छ्वास ३ श्लो० २४]	३	३०	√	
विदर्भपुत्रीश्रवणावसंतिका० [नैषधे १५/४०]	३	३६	√	
पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा [नैषधे १/१८]	३	४१	√	
नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम् [रघुवंशे ३/७०]	३	४५	√	
अमितं मधु तत्कथा मम [नैषधे २/५६]	३	४६	√	

१. **माध्यंदिनादनु विधेर्वसुधासुधांशुः** इति मु. नै.।
२. **०पिहितः स्वयं हि प्रकाशमासादयतीक्षुडिम्भः** इति मु. नै.।
३. **०दण्डधरः कृशानुः पाशीति नाथैः ककुभां चतुर्भिः** इति मु. नै.।
४. **त्वया धृतः किं नरसाधिमभ्रमः** इति मु. नै.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
प्रसवश्च मणीवकम् [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० १९१]	३	५५		√
कृतां विधोर्गन्धफलीवलिश्रियम् [नैषधे १५/२८]	३	६०	√	
को दर्शयेत्स्वां कुरुविन्दमालाम् [ ]	३	६१	√	
चित्ते कुरुष्व कुरुविन्दसकान्तदन्ति [नैषधे ११/४८]	३	६१	√	
हंसं तनौ सन्निहितं चरन्तं मुनेर्मनोवृत्तिरिव स्विकायाम् [नैषधे ३/४]	३	७१	√	
शैशवावधिगुरुर्गुरुरस्य [नैषधे ५/७८]	३	७५	√	√
विचित्रवाक्चित्रशिखण्डिनन्दनः [नैषधे ९/७३]	३	७५	√	
सहस्रधात्मा व्यरुचद्विभक्तः [रघुवंशे ६/५]	३	७९	√	
कुमारः कुमरोऽपि च [शब्दप्रभेदे]	३	८०		√
तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटा [नैषधे १/१०९]	३	८३	√	
अष्टादशद्वीपनिखातयूपः [रघुवंशे ६/३८]	३	८८	√	
कर्णान्तरुत्कीर्णगभीरलेखः[1] किं तस्य सख्यैव नवा नवाङ्कः [नैषधे ७/६३]	३	८८	√	
वज्रस्तम्भाविवैते [जिनशतके]	३	१११	√	
शुश्रूषाराधनोपास्तिर्वरिवस्यापरीष्टयः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ३ श्लो० १६१]	३	११३		√
न षट्पदो गन्धफलीमजिघ्रत् [सूक्ते]	३	११८	√	
वृता विभूषामणिरश्मिकार्मुकैः [नैषधे १५/५३]	३	१२१	√	
हृदयं मनो वक्षश्च [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ५०६]	३	१३३		√
अपश्चिमो विपश्चिताम् [नलचम्पू उच्छ्वास १ पृष्ठ १६]	४	४	√	
आरो वक्रो लोहिताङ्गो मङ्गलोऽङ्गारकष्कु(ः कु)जः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० ३०]	४	७		√
स्वप्ने मानवमृगपतितुरङ्गमातङ्गवृषभसुरभीभिः [कल्पकिरणावल्यां स्वप्नाध्याये]	४	११	√	
सङ्ग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुः [रघुवंशे ६/३८]	४	२७	√	
बाहुसहस्रार्जुनः पिशुनः [सूक्ते]	४	२७	√	

१. ०गभीररेखः इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
सङ्ख्यार्थौ तु देहिनाम् [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ६ श्लो० ४८]	४	३९	√	
[1]पुष्पदन्तावेकोक्त्या शशिभास्करौ [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० ३८]	४	४२		√
रुक्मिप्रलम्बयमुनाभिदनन्तताल० [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० १३८]	४	४४		√
सल्लकी तु गजप्रिया [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० २१८]	४	५८	√	
पडिरूवो तेयस्सी [उपदेशमालायां गाथा १०]	४	६९	√	
विचित्रवाक्चित्रशिखण्डिनन्दनः [नैषधे ९/७३]	४	७०	√	
चिराय तस्थे विमनायमानया [नैषधे १/३७]	४	७२	√	
त्वग्भेदाद् रुधिरस्त्रावा-दामांसव्यथनादपि । संज्ञां न लभते यस्त-माहुर्गम्भीरवेदिनम् ॥ [ ]	४	७५	√	√
दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथी-चकार कारुण्यरसापगा गिरः [नैषधे १/१३४]	४	८७	√	
अजन्यमीतिरुत्पातः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० ४०]	४	८९	√	
निन्ये विजनमजागरि रजनिमगमि मदमयाचि सम्भोगम् । गोपीहावमकार्यत भावश्चैनामनन्तेन ॥ [प्रक्रियाकौमुद्याम्]	४	९१	√	
न्यादयो ण्यन्तनिष्कर्म-गत्यार्था मुख्यकर्मणि । प्रत्ययं यान्ति दुह्यादि-गौणेऽन्ये तु यथारुचि ॥ [ ]	४	९१	√	
रूपधेयभरमस्य विमृश्य [नैषधे ५/६३]	४	९३	√	
उडुपरिषदः किं [2]नार्हन्ती निशः किमनौचिती [नैषधे १९/१९]	४	९६	√	
[3]कपर्दस्तु जटाजूटः [अभिधानचिन्तामणौ का० २ श्लो० ११४]	४	१०५	√	
जिताहवो जितकाशी [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ३ श्लो० ४७०]	४	१०९	√	
पादा भट्टारको देवः [4]प्रयोज्याः पूज्यनामतः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० २५०]	४	१११	√	√

१. **पुष्पदन्तौ पुष्पवन्तावेकोक्त्या शशिभास्करौ** इति मुद्रिताभिधानचिन्तामणौ ।

१. **०नार्हत्वं निशः किमु नौचिती** इति मु. नै. ।

२. **कपर्दोऽस्य जटाजूटः** इति मु. अभि. चि. ।

३. **०प्रयोज्यः०** इति मु. अभि. चि. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः [रघुवंशे ६/६]	४	१३२	√	
अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती गणिश्च सः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड १ श्लो० ७८]	४	१३५	√	
मार१लोकर२खर३जिद्धर्म-राजो विज्ञानमातृकः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० १४९]	४	१३७		√
[1]अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्गीम् [नैषधे ७/९७]	४	१४६	√	
परिचरणामन्दनन्दन्नखेन्दुः [नैषधे १२/१८]	५	२	√	
पर्षत्परिषदा सह [शब्दप्रभेदे]	५	४	√	
दशनचन्द्रिकया व्यवभासितम् [रघुवंशे]	५	१०	√	
चन्दनच्छुरितं वपुः [पाण्डवचरित्रे सर्ग ४ श्लो० १५५]	५	१०	√	
जे पुव्वह्ने दिट्ठा ते अवरह्ने न दीसन्ति [ ]	५	२४	√	
प्रकारवचने थाल् । सामान्यस्य भेदको विशेषप्रकारस्तद्वृत्तेः किमादेस्थाल् स्यात्, सर्व प्रकारेणेति सर्वथा, अन्यथा इतरथा अपरथा [प्रक्रियाकौमुद्याम्]	५	२५	√	
भवानी कृष्णमैनाकस्वसा [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० ११८]	५	३७	√	√
[2]व्रजते हेलिहयालिकीलनाम् [नैषधे २/८०]	५	४०		
अवलम्बितकर्णशष्कुलीकलशी(सी)कं रचयन्नवोचत [नैषधे २/८]	५	४१	√	
स्वाहास्वधाक्रतुसुधाभुजः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० २]	५	४२	√	
[3]त्वयादृतः किं नरसाधिमभ्रमः [नैषधे ९/४४]	५	४६	√	
इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयैः [नैषधे १/१३४]	५	५२	√	
०पूर्वत्रिदिवताण्डवाः [हैमलिङ्गानुशासने पुंनपुंसकलिङ्गप्रकरणे ३१]	५	७०		√

१. **अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्गम्** इति मु. नै. ।

१. **सृजते हेलि०** इति मु. नै. ।

२. **त्वया धृतः किं नरसा०** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
तस्य जैमनिमुनित्वमुदीये । विग्रहं मखभुजामसहिष्णुः [नैषधे ५/३९]	५	७३	√	
छायामिसेण कालो, सव्वजियाणं च्छलं गवेसंतो । पासं कहवि न मुंचइ, [ता धम्मे उज्जमं कुणह।।] [ ]	५	७५	√	
उडुपरिषदः किं [1]नार्हन्ती निशः किमनौचिती [नैषधे १९/१९]	५	७७	√	
[2]अनादिधाविश्वपरम्परायाम् [नैषधे ६/१०२]	५	८२	√	
[3]अन्तस्तैत्तिरपक्षिपत्रमथवा मन्दं मृदु भ्राम्यति [नलचम्पू उच्छ्वास ४ श्लो० ९]	५	८६	√	
चन्द्रो विधौ कर्पूरे स्वर्णे च [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० २४६]	५	९९	√	
रुच्यो रुचीभिर्जितकाञ्चना(नी)भिः [नैषधे ८/२८]	५	९९	√	
नलस्य भाले मणिवीरपट्टिका [नैषधे १५/६१]	५	१०६	√	
[4]धृतैकया हाटकपट्टिकालिके [नैषधे १५/३२]	५	१०६	√	
[5]विदर्भसुभ्रूश्रवणावतंसिका [नैषधे १५/३२]	५	११४	√	
वृता विभूषा मणिरश्मिकार्मुकैः [नैषधे १५/५३]	५	१२४	√	
विविधरत्नप्रभासंवलितं शुक्रधनुः [ ]	५	१२४	√	
सा शृङ्खला पुंस्कटिस्था [ ]	५	१२५	√	
दूरं गौरगुणैरहङ्कृतिभृतां जैत्राङ्ककारे चर(रे)ति [नैषधे १२/८४]	५	१३५	√	
[6]मिषेण पुच्छस्य च केसरस्य च [नैषधे १/६२]	५	१३६	√	
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः [रघुवंशे]	५	१४२	√	
पुरुषः पूरुषो नरः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ३ श्लो० १]	५	१४२	√	
आखण्डलो [7]दण्डधरः शिखावान्पतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्राः [नैषधे १०/१०]	५	१४७	√	
हेषा ह्रेषा तुरङ्गाणां [8]गजानां गर्ज्जबृंहिते [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ६ श्लो० ४१]	५	१५४	√	
अमानोना प्रतिषेधे [ ]	५	१६९	√	

१. **०नार्हत्वं निशः किमु नौचिती** इति मु. नै. ।
२. **अनादिधाविस्वपरम्परायाम्** इति मु.नै. ।
३. **अन्तस्तित्तिर०** इति मुद्रितनलचम्पूकाव्ये ।
४. **धृतैतया०** इति मु. नै. ।
५. **विदर्भपुत्रीश्रवणावतंसिका** इति मु. नै. ।
६. **मिषेण पुच्छस्य च केसरस्य** इति मु. नै. ।
७. **०दण्डधरः कृशानुः पाशीतिनाथैः ककुभां चतुर्भिः** इति मु. नै. ।
८. **०गर्जनं गजबृंहिते** इति मु. अभि. चि. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
प्रणीतवान् [शैशव]शैषवानयम् [नैषधे १/१९]	५	१८०	√	
त्वयि स्मरव्रीडसमस्ययानया [नैषधे ९/१५५]	५	१८२	√	
प्रैयरूपकविशेषनिवेशैः [नैषधे ५/६६]	५	१८२	√	
अहो मदी(ही)यस्तव साहसिक्यम् [नैषधे ३/७६]	५	१८६	√	
मत्तालम्बोऽपाश्रयः स्यात् [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० ७८]	५	१९५	√	
आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि [रघुवंशे २/१७]	५	२०५	√	
पुरिसवरपुण्डरियाणं [शक्रस्तवे]	५	२०८	√	
प्रश्निस्तिथ्यशनी मणि(णिः) सृणिः [हैमलिङ्गानुशासने पुंस्त्रीलिङ्गप्रकरणे ११]	५	२०७		√
माने लक्षम् [हैमलिङ्गानुशासने स्त्रीक्लीबलिङ्गप्रकरणे १]	५	२११	√	
[1]मत्तोक्षगमनः पुमान् [काव्यकल्पलतायां चतुर्थप्रताने श्लो० ३४]	५	२१२	√	
महाव्रती वह्निहिरण्यरेताः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० २११]	५	२१२	√	√
[2]दम्यो वत्सतरः समौ [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० ३२६]	५	२१३	√	
वृद्धास्विव गतप्रायासु वर्षासु रतिमकुर्वाणः [नलचम्पू उच्छ्वास २ पृष्ठ ३७]	५	२१४	√	
कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः [रघुवंशे ६/६]	५	२१५	√	
रसः स्वादे जले वीर्ये शृङ्गारादौ विषे द्रवे । बा(चो)ले रागे देहधातौ तिक्तादौ पारदेऽपि च ॥ [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ५७३-५७४]	५	२१६	√	√
हंसांसाहतपद्मरेणुक[पिशक्षीरार्णवाम्भोभृतैः] [स्नातस्यास्तुतौ श्लोक २]	५	२१६		√
पठत्यामति [क्रियाकलापे]	६	१	√	
अधिगत्य जगत्यधीश्वरादथ मुक्तिं पुरुषोत्तमात्ततः [नैषधे २/१]	६	३	√	
विचित्रवाक्चित्रशिखण्डिनन्दनः [नैषधे ९/७३]	६	५	√	
निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषी हरित् [नैषधे १९/३]	६	७	√	
वरुणगृहिणीमाशामासादयन्तममुं रुची [नैषधे १९/३]	६	७	√	

१. **प्रमत्तोक्षगतिः** पुनः इति मुद्रितकाव्यकल्पलतायाम् ।

२. **दम्यवत्सतरौ समौ** इति मु. अभि. चि. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
रहः(ह)सहचरीमेतां राजन्नपि स्थिरतरां क्षणम् [नैषधे १९/२५]	६	९	√	
साहस्रैरपि पङ्क्तिरंहिभिरभिव्यक्तीभवन्भानुमान् [नैषधे ६/१३६]	६	९	√	
दिशि मन्दायते तेजः [रघुवंशे ४/४९]	६	९	√	
धुर्जटिजटाजूट इव पुन्नागवेष्टितो वापीपरिसरः [नलचम्पू उच्छ्वास २ पृष्ठ ३९]	६	१३	√	
अथ कम्बलाश्वतरधृतराष्ट्रबलाहकाः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० ३७७]	६	१३	√	
चन्दनच्छुरितं वपुः [पाण्डवचरित्रे सर्ग ४ श्लो० १५५]	६	१७	√	
सनगरं नगरन्ध्रकरोजसः [रघुवंशे ९/२]	६	२९	√	
शुद्धा सुधादीधितिमण्डलीयम् [नैषधे २२/७४]	६	३३	√	
चिराय तस्थे विमनायमानया [नैषधे १/३७]	६	४४	√	
म(य)न्मतौ विमलदर्पणिकायाम् [नैषधे ५/१०६]	६	७१	√	
मुनिद्रुमः कोरकितः शितिद्युतिः [नैषधे १/९६]	६	८७	√	
सेवाचणदर्पणार्प्पणाम् [नैषधे १५/७०]	६	९१	√	
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहम् [रघुवंशे ३/६१]	६	१०४	√	
[1]शृङ्गारसर्गद्व्यणुकोदरीयम् [नैषधे ११/२६]	६	११२	√	
सुहृदयो हृदयः प्रतिगर्जताम् [रघुवंशे ९/९]	६	१३०	√	
कलधौतं स्वर्णरूप्ययोः [अनेकार्थसंग्रहे का० ४ श्लो० १०६]	६	१३३		√
नृपमानसमिष्टमानसः [नैषधे २/८]	६	१३४	√	
पद्मनन्दनसुतारिरंसुना [नैषधे १८/२०]	६	१४१	√	
हरिः शुचीनौ गगनाध्वजाध्वगौ [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० ११]	६	१४३	√	
अहिर्बुध्नो विरूपाक्षविषान्तकौ [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० १११]	६	१५२	√	
केलतीमदनयोरुप(पा)श्रये [नैषधे १८/९७]	६	१५८	√	
विलसत्काशचामरः [रघुवंशे ४/१७]	६	१६२		
वशा स्त्री गजयोषितो [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ५४०]	६	१६६	√	
[2]वशा नार्यां वध्र्वगव्यां हस्तिन्यां दुहितर्यपि । वेश्यायां० [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ५४०]	६	१६६		√

१. **शृङ्गारसर्गरसिकद्व्यणुकोदरि ! त्वम्** इति मु. नै. ।
२. **वशा नार्यां वन्ध्यगव्यां०** इति मुद्रितानेकार्थसंग्रहे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
स्यात्पोतो [1]दशवार्षिकः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० २८५]	६	१७४	√	
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः [मेघदूते पूर्वमेघे १/९]	७	२	√	
गर्भाधानक्षणपरिचयात् [मेघदूते पूर्वमेघे १/९]	७	२	√	
विश्रान्तजिष्णुक्ष्मापालयुधि [नलचम्पू उच्छ्वास १ पृष्ठ २५]	७	२	√	
दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथी-चकार कारुण्य[र]सापगागिरः [नैषधे १/१३४]	७	१०	√	
स्वमाह सन्ध्यामधरोष्ठलेखा [नैषधे ७/३७]	७	२९	√	
आलोकतालोकमुलूकलोकः [नैषधे २२/३७]	७	३२	√	
आकाशे सावकाशे तमसि सममिते कोकलोके सशोके [नाटकशास्त्रे]	७	३२	√	
कपोतपाली विटङ्कः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० ७६]	७	३३	√	
सदा निनादपटले ते पिष्पलेरः [सुभाषिते]	७	३३	√	
रचयति रुचिः शोणीमेतां कुमारि[2]तरारवैः [नैषधे १९/३९]	७	३५	√	
भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणा [कुमारसंभवे १/७]	७	३७	√	
दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः [रघुवंशे ३/३०]	७	४१	√	
चन्दनच्छुरितं वपुः [पाण्डवचरित्रे सर्ग ४ श्लो० १५५]	७	४५	√	
येनाऽमुना बहुविगाढसुरेश्वराध्व० [नैषधे १३/२९]	७	४५	√	
जीवेऽत्सु(सु)जीवितप्राणाः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ६ श्लो० ३]	७	४८	√	
क्षये जगज्जीवपिबं शिवं वदन् [नैषधे ९/१२४]	७	४८	√	
मन्दिमानमगमच्छनैः शनैः [वस्तुपालकीर्तिकौमुद्याम्]	७	४९	√	
हा हा महाकष्टमराजकं जगत् [ ]	७	५२	√	
झगज्झगितिकान्तयः [पाण्डवचरित्रे]	७	५५	√	
स्वेदबिन्दुकितनासिकाशिखम् [नैषधे १८/१२१]	७	५७	√	
निजपरिवृढं गाढप्रेमा रथाङ्गविहङ्गमी [नैषधे १९/१७]	७	६४	√	
सुधाम्भोनिधिडिण्डीरपिण्डपाण्डुयशःकुशेशयखण्डमण्डित-सकलसंसारसराः [नलचम्पू उच्छ्वास १ पृष्ठ २०]	७	६५	√	

१. **०दशवर्षकः** इति मु. अभि चि. ।

२. **०तरा रवेः** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
निर्वापयिष्यन्निव संसिसृक्षोः [नैषधे १४/२१]	७	६७	√	
रज्यन्नखस्याऽङ्गुलिपञ्चकस्य [नैषधे ७/७०]	७	६७	√	
निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषी हरित् [नैषधे १९/३]	७	६७	√	
प्रथममुपहृत्यार्थं(र्घं) तारैरखण्डिततन्दुलैः [नैषधे १९/१४]	७	६७	√	
चकास्ति चञ्चति लसत्यपि शोभते [क्रियाकलापे]	७	६९	√	
जाम्बूनदोर्व्वीधरसार्वभौमः [नैषधे १४/७१]	७	७०	√	
पूर्वं गाधिसुतेन सामिघटिता मुक्ता नु मन्दाकिनी [नैषधे २/१०२]	७	७०	√	
गगनमवजगाहे मन्दमन्दं मृगाङ्कः [नलचम्पू उच्छ्वास ७ श्लो० २७]	७	७७	√	
प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा [रघुवंशे ६/७०]	७	७७	√	
उदयगिरिकुरङ्गीशृङ्गकण्डूयनेन, स्वपिति सुखमिदानीमन्तरेन्दोः कुरङ्गः [ ]	७	७७	√	
परिणतरविगर्भव्याकुला पौरहूती, दिगपि घनकपोती हुङ्कृतैः क्रन्थतीव [ ]	७	७७	√	
मुनेर्मनोवृत्तिरिव स्विकायाम् [नैषधे ३/४]	७	८१	√	
[1]स्मेरदम्भोरुहारामपवमानमिवाऽनिलः [पाण्डवचरित्रे सर्ग ४ श्लो० ३२२]	७	९१	√	
आपीडशेखरोत्तंसावतंसाः शिरसः स्रजि [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ३ श्लो० ३१८]	७	९१	√	
विदर्भसुभ्रूश्रवणावतंसिका [नैषधे १५/४०]	७	९१	√	
इदं तमुर्व्वीतलशीतलद्युतिम् [नैषधे ९/२]	७	९२	√	
ततो भुजङ्गाधिपतेः फणाग्रै-रधः कथञ्चिद्धृतभूमिभागः । शनैः कृतप्राणविमुक्तिरीशः, पर्यङ्कबन्धं निबिडं बिभेद ॥ [कुमारसंभवे ३/५६]	८	२	√	
[2]प्रसादनां दानशात्रवाणाम् [नैषधे १४/१]	८	८	√	
वनं काननन्नीरयोः [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० २७८]	८	१४	√	
राकामृगाङ्काः सम्भूय विभान्ति शरणागताः [पाण्डवचरित्रे सर्ग १ श्लो० १२]	८	२१	√	
चकास्ति रज्यच्छविरुज्जिहानः [नैषधे २२/५३]	८	२१	√	

१. **स्फुरदम्भोरुहारामपवमानमिवाऽलिनः** इति मुद्रितपाण्डवचरित्रे ।

२. **प्रसादनामाद्रियतामराणाम्** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
पदं किमस्याऽङ्कितमूर्ध्वरेखया [नैषधे १/१८]	८	२४	√	
अलम्भि मर्त्याभिरमुष्य दर्शने [नैषधे १/२९]	८	२४	√	
शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः [रघुवंशे ४/२६]	८	२७	√	
स्युरुत्तरपदे व्याघ्र-पुङ्गवर्षभकुञ्जराः सिंहशार्दूलनागाद्याः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ६ श्लो० ७६]	८	२७	√	
कारागृहे निर्जितवासवेन [रघुवंशे ६/४०]	८	२७	√	
न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे [नैषधे १/२३]	८	२८	√	
यन्मतौ विमलदर्प्पणिकायाम् [नैषधे ५/१०६]	८	३७	√	
इच्छातिरेकस्तु लालसा [अमरकोषे काण्ड १ नाट्यवर्गे श्लो० २९]	८	४७	√	
ईदृशीं गिरमुदीर्य बिडौजा, जोषमास न विशिष्य बभाषे । नाऽत्र चित्रमभिधाकुशलत्वे, शैशवावधिगुरुर्गुरुरस्य ॥ [नैषधे ५/७८]	८	४९	√	
वशा कान्ताकरिण्योः [ ]	८	५१	√	
पद्मिनी योषिदन्तरे । अब्जेऽब्जिन्यां सरस्यां च [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ३८२]	८	५२	√	
मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला [कुमारसंभवे १/३९]	८	५७	√	
प्रवाहः पुनरोघः स्या-द्वेणीधारा रयश्च सः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० १५३]	८	६०	√	
उदीतमातङ्कितवानशङ्कते [नैषधे १/९१]	८	६२	√	
नाभीमथैष [1]श्लथया समोनु (?) [नैषधे ६/२०]	८	६३	√	
[2]स्ववनी प्रवदत्पिकापिका [नैषधे २/४५]	८	६३	√	
साधारणीं गिरमुखर्बुधनैषधाभ्याम् [नैषधे १३/१४]	८	६८	√	
प्रियामुखीभूय सुखी सुधांशुः [नैषधे ७/५२]	८	७०	√	
निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः [रघुवंशे ७/६३]	८	८५	√	
स्वे हि [3]दर्शयति कः परेण वाऽनर्घ्यदन्तकुरविन्दमालिके [नैषधे १८/४९]	८	८७	√	
विना[ऽपि?] भूषामवधिः [4]श्रियामसौ [नैषधे १५/२७]	८	८८	√	

१. **०श्लथवाससोऽनु** इति मु. नै. ।
२. **स्ववनी सम्प्रवदत्पिका०** इति मु. नै. ।
३. **०दर्शयति ते परेण काऽनर्घ्य०** इति मु. नै. ।
४. **०श्रियामियं** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
प्रथममुपहृत्यार्थ(र्घं) तारैरखण्डिततन्दुलैः [नैषधे १९/१४]	८	८९	√	
[1]सिता वमन्त्यः खलु कीर्तिमुक्तिकाः [नैषधे १५/२३]	८	९२	√	
कथयति परिश्रान्तिं रात्रीतमः सह युध्वनाम् [नैषधे १९/४]	८	९२	√	
घृत्युद्भवा यच्चिबुके चकास्ति, निम्ने मनागङ्गुलियन्त्रणेव [नैषधे ७/५१]	८	९३	√	
कन्दर्पेऽनल्पदर्पे विकिरति किरणान् शर्वरीसार्वभौमः [नाटकग्रन्थे]	८	१०२	√	
अभिर्वीप्सा-लक्षणयोः [काव्यकल्पलतावृत्तौ तृतीयप्रताने श्लो० १७६]	८	१०६	√	
कन्दली तूपरागेऽपि कलापे च नवाङ्कुरे । मृगजातिप्रभेदे च० [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ६२४-६२५]	८	११२	√	
कपोलपालीजनितानुबिम्बयोः[2] [नैषधे १५/६५]	८	१२६	√	
कपोलपत्रान्मकरात्सकेतुः [नैषधे ७/६०]	८	१२७	√	
अध्यापयामः परमाणुमध्या [नैषधे ३/४१]	८	१३३	√	
[3]कर्तुं शशाङ्काभिमुखं न भैम्यां, मृगं दृगम्भोरुहनिर्जितं यत् । अस्या विवाहाय ययौ विदर्भांस्तद्वाहनस्तेन न गन्धवाहः ॥ [नैषधे १०/२२]	८	१३४	√	
स्मितं दिवा निश्यपि [सूत्रपाठे]	८	१३५	√	
दोहदोऽपि च चलद्वीचीचयैः पूर्यते [हंसाष्टके]	८	१३६	√	
यादःपतिपाशिमेघनादाः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० १०२]	८	१३८	√	
नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम् [नैषधे १/५]	८	१४०	√	
कर्णान्तरुत्कीर्णगभीरलेखः किं तस्य सङ्ख्यैव नवा नवाङ्कः [नैषधे ७/६३]	८	१४०	√	
कर्णयोः कुण्डले नीलोत्पले च [ ]	८	१४२	√	
पयसा नैषधशीलशीतलम् [नैषधे २/९४]	८	१४५	√	
क्रतोः कृते जाग्रति वेत्ति कः कति प्रभोरपां वेश्मनि कामधेनवः [नैषधे ९/७७]	८	१५२	√	

१. **सिता वमन्तः०** इति मु. नै० ।
२. **०जनिजानु०** इति मु. नै. ।
३. **कर्त्तुं शशाकाऽभिमुखं न भैम्या०** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
अदःसमित्संमुखवैरियौवत-त्रुटद्भुजाकम्बुमृणालहारिणी [नैषधे १२/३५]	८	१५४	√	
इदं नृपप्रार्थिभिरुज्झितोऽर्थिभिः [नैषधे १२/९०]	८	१५५	√	
अहो अहोभिर्महिमा हिमागमे [नैषधे १/४१]	८	१५६	√	
तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटा [नैषधे १/१०९]	८	१५६	√	
पशुनाऽप्यपुरस्कृतेन तत्तुलनामिच्छतु चामरेण कः [नैषधे २/२०]	८	१५६	√	
सनौचिती चेतसि नश्चकास्तु [नैषधे ३/९७]	८	१५७	√	
पक्षो मासार्द्धे, पिच्छे विरोधे देहाङ्गे सहाये राजकुञ्जरे [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ५५१-५५२]	८	१५७	√	
स्मरावरोधभ्रममावहन्ती[म्] [नैषधे ६/५८]	८	१५८	√	
चिराय तस्थे विमनाअ(य)मानया [नैषधे १/३७]	८	१५९	√	
सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनम् [नैषधे १/१९]	९	३	√	
जोषमासनविशिष्य बभाषे [नैषधे ५/७८]	९	६	√	
समय एव करोति बलाबलं, प्रणिगदन्त इतीव मनीषिणाम् । शरदि हंसरवाः परुषीकृत-स्वरमयूरमयूरमणीयताम् ॥ [ ]	९	६	√	
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे ! त्वां करुणा रुणद्धि नः [नैषधे १/१३५]	९	२५	√	
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् [भक्तामरस्तवे श्लो० २९]	९	२९	√	
कलधौतं स्वर्णरूप्ययोः [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ४ श्लो० १०६]	९	२९	√	
विदर्भपुत्रीश्रवणावसंतिका [नैषधे १५/४०]	९	३१	√	
वनाय [1]प्रीतिप्रतिबद्धवत्साम् [रघुवंशे २/१]	९	३२	√	
अजघन्यः प्रचेताः [नलचम्पू उच्छ्वास १ पृष्ठ १७]	९	३७	√	
उदयगिरिकुरङ्गीशृङ्गकण्डूयनेन स्वपिति सुखमिदानीमन्तरेन्दोः कुरङ्गः[ ]	९	४०	√	
प्रथममुपहृत्यार्थं तारैरखण्डिततन्दुलैः [नैषधे १९/१४]	९	४५	√	
बहुरूपकशालभञ्जिका मुखचन्द्रेषु कलङ्करङ्कवः । [2]यदनेकपसौधकन्धरा हरिभिः कुक्षिगतीकृता इव ॥ [नैषधे २/८३]	९	४५	√	
विहगयोः कृपयेव शनैर्ययौ रविरहर्विरहध्रुवभेदयोः [रघुवंशे]	९	५०	√	
रजनीवियुजां पतत्त्रिणाम् [सुरथोत्सवकाव्ये]	९	५०	√	

१. **पीतप्रतिबद्ध०** इति मुद्रितरघुवंशे । २. **यदनेककसौध०** इति मु.नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
निर्वापयिष्यन्निव संसिसृक्षोः [नैषधे १४/२१]	९	५२	√	
इह हि समये मन्देहेषु व्रजन्त्युदवज्रताम् [नैषधे १९/४१]	९	५७	√	
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च मन्देहा नाम राक्षसाः ।				
उदयन्तं सहस्रांशु-मभियुद्ध्यन्ति ते सदा ॥ [नैषधवृत्तौ]	९	५७	√	√
भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणाः [कुमारसम्भवे १/७]	९	५९	√	
क्षितिजलपवनहुताशन-यजमानाकाशसोमसूर्याख्याः ।				
यस्य खलु मूर्तयोऽष्टौ, स भवतु भवतां भवः सिद्ध्यै ॥ [ ]	९	६२	√	
गजानामभ्रमूपतिः [काव्यकल्पलतायां पृष्ठ ३८]	९	६३	√	
जरत्युदरनिःसरद्वरसरोजपीठीपठच्चतुर्मुखमुखावली०	९	६५	√	
[नलचम्पू उच्छ्वास ६ श्लो० ६]				
रचयति रुचिः शोणीमेतां कुमारितरा रवेः [नैषधे १९/३९]	९	६६	√	
दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः [रघुवंशे ३/३०]	९	६९	√	
भिल्लीपल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु	९	७०	√	
[चम्पूकथायां उच्छ्वास ३ श्लो० ७]				
द्रोणी द्रोणिरिदन्तः श्रेण्यामपि	९	७०	√	
[अनेकार्थवृत्तौ का० २ श्लो० १४३]				
योगात्स चाऽन्तः परमात्मसंज्ञं दृष्ट्वा परंज्योतिरुपारराम	९	७४	√	
[कुमारसंभवे ३/५८]				
नृपमानसमिष्टमानसः [नैषधे २/८]	९	७९	√	
क्षणः कालविशेषे स्यात् पर्वण्यवसरे महे	९	८५	√	
[अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० १३३]				
एनं [1]महस्विनमुपैति सदारुणोच्चैः [नैषधे १३/१३]	९	८९	√	
महस्विनं तेजस्विन[मनल]मुत्सववन्तं च [ ]	९	८९	√	
महस्तेजस्युत्सवे च [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ५७२]	९	८९	√	
लक्ष्मीर्यस्याः सर्वाङ्गलावण्यमधु लोचनचषकैरापीय पीयूषजुषो				
मदनपरवशाः परस्परमेवेर्ष्यन्तश्चक्रुश्चक्रपाणिना समं सङ्गरम् ।				
अथ सर्वानप्यन्तरान्तरापततस्वानुल्लङ्घ्य भगवतश्चिक्षेप कण्ठे				
वैकुण्ठस्य स्वयंवरणमालिकाम्	९	९६	√	
[नलचम्पू उच्छ्वास ५ पृ० १४६/१४७]				
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः [रघुवंशे ४/१]	९	१०२	√	

१. ०महस्विनमुपेहि इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हीलं०
स्ववनी सम्प्रवदत्पिकापि का [नैषधे २/४५]	९	१०४	√	
पदैश्चतुर्भिः सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे [नैषधे १/७]	९	११७	√	
ललामवल्ललामश्चाऽदन्तः पुंक्लीबे नकारान्तः क्लीबे [अनेकार्थसंग्रहे का० ३ श्लो० ३९८]	९	११९	√	
नमसितुमना यन्नाम स्यान्न सम्प्रति पूषणम् [नैषधे १९/२३]	९	१२३	√	
तदासेचनकं यस्य दर्शनाद् दृग् न तृप्यति [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ६ श्लो० ७९]	९	१२६	√	√
हृदि शल्यमिवाऽर्पितम् [रघुवंशे]	९	१२७	√	
कल्पद्रुमता [सौमसौभाग्यकाव्ये]	९	१४०	√	
येनाऽमुना बहुविगाढसुरेश्वराध्व-राज्याभिषेकविकसन्महसा बभूवे [नैषधे १३/२९]	९	१५२	√	
नाभीमथैष [1]श्लथवाससोऽस्याः [नैषधे ६/२०]	१०	१	√	
इक्षुच्छायानिषादिन्यः [रघुवंशे ४/२०]	१०	४	√	
रसातलं यातु यदत्र पौरुषम् [ ]	१०	५	√	
निजस्य तेजःशिखिनः परःशताः [नैषधे १/९]	१०	६	√	
पद्मनन्दनसुतारिरंसुना [नैषधे १८/२०]	१०	७	√	
स्फुरन्माञ्जिष्ठवैभवः [काव्यकल्पलतायां पृष्ठ ११६]	१०	९	√	
[2]माध्यन्दिनावधिविधेर्वसुधाविवस्वान् [नैषधे २१/१२०]	१०	१२	√	
[3]पतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्रैः [नैषधे १०/१०]	१०	१४	√	
आलोकलताली(लो)कमुलूकलोकः [नैषधे २२/३७]	१०	१५	√	
इदं तमुर्व्वीतलशीतलद्युतिम् [नैषधे ९/२]	१०	१९	√	
पन्था भास्वति दृश्यते बिलमयः प्रत्यर्थिभिः पार्थिवैः [नैषधे १२/२९]	१०	१९	√	
द्वावेतौ पुरुषौ लोके, सूर्यमण्डलभेदिनौ । परिव्राड् योगयुक्तश्च, रणे चाऽभिमुखो हतः ॥ [ ]	१०	१९	√	
राज्ञां समूहो राजकम् [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ६ श्लो० ५३]	१०	२५	√	
विधेः कदाचिद् भ्रमणीविलासे [नैषधे ३/१९]	१०	३२	√	
दूरं गौरगुणैरहङ्कृतिभृतां जैत्राङ्ककारे चर० [नैषधे १२/८४]	१०	३२	√	

१. **०श्लथवाससोऽनु** इति मु.नै. । २. **माध्यन्दिनादनु विधेर्वसुधासुधांशुः** इति मु. नै. ।
३. **पाशीति नाथैः कुकुभां चतुर्भिः** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
पात्रं तु कूलयोर्मध्ये, पर्णे नृपतिमन्त्रिणि । योग्यभाजनयोर्यज्ञ-भाण्डे नाट्यनुकर्तरि ॥ [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ४२७]	१०	३८	√	
तिमिरकरिकुम्भभेदनभल्लीष्विव [नलचम्पू]	१०	४०	√	
चलद्वलयमुखकरतालोत्तालिकारम्भरमणीयरसिकरासकक्रीडानिर्भरा: [नलचम्पू उच्छ्वास ५ पृष्ठ १४९]	१०	४३	√	
अहिर्महीगौरवसासहिर्य: [नैषधे १०/१५]	१०	४७	√	
रामालिरोमावलिदिग्विगाहि-ध्वान्तायते वाहनमन्तकस्य । [1]यत्प्रेक्ष्य दूरादपि बिभ्यत: स्वा-नश्वान् गृहीत्वाऽपसृतो विवस्वान् ॥ [नैषधे २२/२७]	१०	५४	√	
निषधवसुधामीनाङ्कस्य प्रियाङ्कमुपेयुष: [नैषधे १९/१]	१०	५५	√	
शरभ: कुञ्जरातिरुत्पादकोऽष्टपादपि [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० ३५२]	१०	५७	√	
वसुदेवो भूकश्यपो दु(दि)न्दुरानकदुन्दुभि: [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० १३७]	१०	६२	√	
हंसांसाहतपद्मरेणुकपिशक्षीरार्णवाम्भोभृतै: [स्नातस्यास्तुति: श्लो० २]	१०	६२	√	
कालिन्दी कन्हविरहे अज्ज वि कालं जलं वहइ [वृत्तरत्नाकरवृत्तौ]	१०	६२(पाठा०)	√	
कैलासौका यक्षधननिधिकिंपुरुषेश्वर: [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० १०४]	१०	६५	√	
बलिसद्म दिवं सतथ्यवागुपरि स्माह दिवोऽपि नारद: [नैषधे २/८४]	१०	६७	√	
शय्यां [2]त्यजन्त्युभयपक्षविनीतनिद्रा [रघुवंशे ५/७२]	१०	७२	√	
निषधवसुधामीनाङ्कस्य [नैषधे १९/१]	१०	७९	√	
चरणलक्ष्मिकरग्रहणोत्सवे [ऋषभनम्रस्तवे]	१०	७९	√	
जिते च लभ्यते लक्ष्मी: [ ]	१०	८५	√	
दशनचन्द्रिकया व्यवभासितम् [रघुवंशे]	१०	९०	√	
इट्टे कवयति कवते [क्रियाकलापे]	१०	९२	√	
वरुणगृहिणीमाशामासादयन्तममुं रुचीनिचय० [नैषधे १९/३]	१०	९६	√	
बालया निजमन:परमाणौ [नैषधे ५/२९]	१०	९९	√	
उदीतमातङ्कितवानशङ्कते [नैषधे १/९१]	१०	१११	√	

१. **यद्वीक्ष्य०** इति मु. नै. । २. **जहत्युभय०** इति मुद्रितरघुवंशे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
यामिनीकामिनीपतिः [काव्यकल्पलतायां पृष्ठ ११४]	१०	११७	√	
विचित्रवाक्चित्रशिखण्डिनन्दनः [नैषधे ९/७३]	१०	१२०	√	
साधारणी गिरमुषर्बुधनैषधाभ्याम् [नैषधे १३/१४]	१०	१२०	√	
[1]त्वयाऽऽदृतः किं भ(न)रसाधिमभ्रमः [नैषधे ९/४४]	११	६		*
जानामि त्वां प्रवरपुरुषं कामरूपं मघोनः [मेघदूते पूर्वमेघे १/६]	११	१४		
पार्थिवं हि निजमाजिषु वीराः गौरवाद्वपुरपास्य भजन्ते [नैषधे ५/१५]	११	२३		
क्षये जगज्जीवपिबं शिवं वदन् [नैषधे ९/१२४]	११	३०		
अपक्षपातेन परीक्ष्यमाणः पक्षः [अनेकार्थवृत्तौ काण्ड २ श्लो० ५५१]	११	४५		
शिशिरे करिणां मदः [वाग्भट्टकाव्यानुशासने]	११	७१		
अहो अकुसुमजं फलम् [ ]	११	७८		
अक्षबीजवलयेन निर्बभौ [रघुवंशे ११/६६]	११	८०		
तत्तातस्य कृतादरस्य रभसा[दा]ह्वाननं दूरतः [नलचम्पू उच्छ्वास ४ श्लो० ३१]	११	८२		
अधिगतं विधिवद्यदपालयत् [रघुवंशे ९/२]	११	८३		
तिथिप्रणीः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० १८]	११	८५		
अहो महीयस्तव साहसिक्यम् [नैषधे ३/७६]	११	९०		
भिल्लीपल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु [नलचम्पू उच्छ्वास ३ श्लो० ७]	११	१०७-१०८		
यामिनीकामिनीपतिः [काव्यकल्पलतावृत्तौ पृष्ठ ११४]	११	१११		
अखिलपुरपुरन्ध्रीनेत्रनीलोत्पलानि [नैषधे १७/१२८]	११	११४		
अध्यापयामः परमाणुमध्या० [नैषधे ३/४१]	११	११९		
मित्र ! ते मोदते मनः [वाक्यप्रकाशे]	११	१३४		
स्वच्छेऽन्तर्मानसेऽस्मिन्कथमवनिपते ! तेऽम्बुपानाभिलाषः [वैतालिककृतौ विक्रमस्तुतौ]	११	१३४		
जिनवचन पद्धतिरुक्तिचङ्गिममालिनी [ ]	११	१३५		
खंती मद्दवअज्जव [नवतत्त्वप्रकरणे गाथा २९]	११	१५१		
पाण्योरुपकृति सत्त्वं, स्त्रिया भग्नशुनो बलम् (?) । जिह्वाया दक्षतामक्ष्णोः, सखितां शिक्षयेत् सुधीः ॥ [ ]	११	१५४		

१. **त्वया धृतः** । इति मु. नै. ।

* ११/१०त आरम्भ हीलप्रतौ हीसुंवत्पाठोऽस्ति । अत इतः परमुद्धरणानि सर्वाण्यपि हीसुं.अन्तर्गतान्येव ज्ञेयानि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
वैदर्भनिर्दिष्ट[1]मथो कुमारो नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः [रघुवंशे ६/३]	११	१५७		
ताम्यंस्तामरसान्तरालवसतिर्देवः स्वयंभूरभूद् [खण्डप्रशस्तौ]	११	१५७		
[2]स्मेरदम्भोरुहारामपवमानमिवालिनः [पाण्डवचरित्रे ४/३२२]	१२	५		
निषेधार्थवाची[चि]नकारस्यान्नादेशो न स्यान्नैकधेत्यादौ [प्रक्रियाकौमुद्याम्]	१२	९		
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव य विभाति [रघुवंशे ६/३२]	१२	१८		
वाण्या भृङ्गीपिकीरवौ [काव्यकल्पलतावृत्तौ ४/२५]	१२	३५		
देव भवद्वैरिवधूवदने [3]वने च भान्ति गण्डशैलस्थलालङ्कारिण्यो रोध्रलता [नलचम्पू उच्छ्वास २ पृ० ३९]	१२	३६		
नाभीमथैष [4]श्लथवाससोऽस्याः [नैषधे ६/२०]	१२	३७		
मेचकश्चन्द्रकः समौ [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० ३८६]	१२	३९		
[5]कथं च स देशः स्वर्गाद्विशिष्यते न [नलचम्पू उच्छ्वास १ पृष्ठ ११]	१२	४१		
जलाच्च तातान्मुकुराच्च मित्राद(त्) । अभ्यर्थ्य धत्तः खलु पद्मचन्द्रौ [नैषधे ७/५६]	१२	४२		
[6]नीलतमालका नाभिरस्याः [नलचम्पू उच्छ्वास २ पृष्ठ ३९]	१२	४४		
हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वरवर्णिनी [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ३ श्लो० ८२]	१२	४५		
कीलालं भुवनं वनं घनरसो यादो निवासा(सोऽ)मृतम् [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० १३५]	१२	४५		
विशेषतीर्थैरिव [7]जह्नुनन्दना [नैषधे १५/५४]	१२	४७		
विश्वस्ता विधवा समे [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ३ श्लो० १३४]	१२	५०		
नलात्स्ववैश्वस्त्यमनाप्तुमानता० [नैषधे १५/५५]	१२	५०		
दिवमङ्कादमराद्रिरागताम् [नैषधे २/८६]	१२	६१		
मेरुः स्वर्गाधारः [परसिद्धान्ते]	१२	६१		

१. **०मसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम्** इति मुद्रितरघुवंशे ।
२. **स्फुरदम्भोरुहाराम०** इति मुद्रितपाण्डवचरित्रे ।
३. **वने च नारङ्गतरूपशोभे गण्डशैलस्थलालङ्कारधारिण्यो लोध्रलता०** इति मुद्रितनलचम्पूकाव्ये ।
४ **०श्लथवाससोऽनु** इति मु.नै. ।
५ **कथं चाऽसौ स्वर्गान्न विशिष्यते** इति मुद्रितनलचम्पूकाव्ये ।
६ **नाभिरम्या नीलतमालका** इति मुद्रितनलचम्पूकाव्ये । ७. **०जह्नुनन्दिनी** इति मु.नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
केलतीमदनयोरुपाश्रये [नैषधे १८/९७]	१२	६२		
जयत्युदरनिःसरद्वरसरोजपीठीपढच्चतुर्मुखमुखा[1]वलीरचितसामनाम-स्तुतिः [नलचम्पू उच्छ्वास ६ श्लो० ६]	१२	६४		
उदात्तनायकोपेता [नलचम्पू उच्छ्वास १ श्लो० २५] तथा- 'उदात्तो महात्मा महार्घ्यश्च [तट्टिपनके]	१२	६४		
[2]स्मेरदम्भोरुहाराम० [पाण्डवचरित्रे सर्ग ४ श्लो० ३२२]	१२	७७		
झरन्निर्झरझात्कारी [पाण्डवचरित्रे]	१२	७९		
गगनमवजगाहे मन्दमन्दं मृगाङ्क० [नलचम्पू उच्छ्वास ७ श्लो० २७]	१२	८३		
स्रोतः सारस्वतं वहत् [नलचम्पू उच्छ्वास् १ श्लो० ३]	१२	८६		
पयोनिलीनाभ्रमुकामुकावली [नैषधे १/१०८]	१२	८७		
सहस्रमुच्चैः[3]श्रवसां वसन्निव [नैषधे १/१०९]	१२	८७		
कस्या नोत्तानगाया दिवि सुरसुरभेरास्यदेशं गताग्रैः [नैषधे २/१०५]	१२	९५		
स्ववनी सम्प्रवदत्पिकापि का [नैषधे २/४५]	१२	९८		
अद्भुतकरी परमूर्द्धविधूननी [नैषधे ४/५५]	१२	१००		
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः [नलचम्पू उच्छ्वास् १ श्लो० ५]	१२	१००		
लग्नं-मर्मप्रविष्टं चमत्कृतं च सन्मस्तकं न कम्पयति [तट्टिपनके]	१२	१००		
स्मरावरोध[4]भ्रममुद्वहन्ती [नैषधे ६/५८]	१२	१०१		
पाण्डोरवनिमार्त्तण्ड-स्याऽवदातान्गुणान् रहः [पाण्डवचरित्रे सर्ग १ श्लो० ४६]	१२	१०६		
सिता वमन्तः खलु कीर्तिमुक्तिकाः [नैषधे १५/२३]	१२	१०७		
गौरः श्वेतपीतयोः [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ४०२]	१२	११६		
द्वितीये नवमे राशौ, बृहस्पतिरुपागतः । कुर्यान्महोदयं पुत्र-गोत्रवृद्धिं धनं पुनः ॥ [ ]	१३	९		
नीलाञ्जनिकाकुसुमकान्तिनि तमसि [नलचम्पू उच्छ्वास ५ पृष्ठ १२५]	१३	१५		
नीलाञ्जनिकाकुसुमकान्तयः किरातयुवतयः [ ]	१३	१५		
अहिर्महीगौरवसासहिर्य० [नैषधे १०/१५]	१३	१९		

१. ०वलीविहितरम्यसामस्तुतिः इति मु. नलचम्पूकाव्ये ।
२. स्फुरदम्भोरुहाराम० इति मु. पा. च. ।
३. ०श्रवसामिवाऽऽश्रयन् इति मु.नै. ।
४ ०भ्रममावहन्तीम् इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
महं तु महसा साकं [शब्दप्रभेदनाममालायाम्]	१३	३४		
एनं [1]महस्विनमुपैहि सदारुणोच्चैः [नैषधे १३/१२]	१३	३४		
[2]विनैव भूषामवधिः श्रियामियम् [नैषधे १५/२७]	१३	५४		
सङ्क्रन्दनाखण्डलमेघवाहनाः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० ८५]	१३	५४		
जवेऽपि मानेऽपि च पौरुषधिकम् [नैषधे १/५७]	१३	५८		
महानन्दसरोराज-मरालायाऽर्हते नमः [सकलार्हत्स्तोत्रे श्लो० २६]	१३	६०		
कण्ठो ध्वनौ सन्निधाने ग्रीवायां मदनद्रुमे [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० १०१]	१३	६३		
वष्टिभागुरिरल्लोप-मवाप्योरुपसर्गयोः [प्रक्रियायाम्]	१३	६८		
व्रजति कुमुदे मोदं दृष्ट्वा दृशोरपिधायके [नैषधे १९/८]	१३	६८		
राकामृगाङ्काः सम्भूय विभान्ति शरणागताः [पाण्डवचरित्रे सर्ग १ श्लो० १२]	१३	६८		
उडुपरिषदः किं [3]नाऽर्हन्ती निशः किमनौचिती [नैषधे १९/१९]	१३	७०		
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् [रघुवंशे १/५६]	१३	८४		
हा स्वा[हा]प्रिय धूममङ्गजममुं सूत्वा न किं दूयसे [सूक्ते]	१३	८४		
सकलसुरासु[र]करपरिघपरिवर्त्यमानमन्दरमन्थानमथितदुग्धाम्भोधेरजनि जनितजगद्विस्मया लक्ष्मीमृगाङ्कसुरभिसुरतरुधन्वन्तरिकौस्तुभोच्चैःश्रवसा सहभूः शशधरकान्तिरैरावतस्तत्प्रसूतिरियमशेषवनान्यलङ्करोति । [नलचम्पू उच्छ्वास ६ पृष्ठ १८७]	१३	८८		
वेला स्याद्वृद्धिरम्भसः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० १४२]	१३	८९		
पुरी प्रभा, अलका वस्वोकसारा [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० १०४-१०५]	१३	९१		
एक एव खगो मानी, चिरं जीवतु चातकः । पिपासितो वा म्रियते, याचते वा पुरन्दरम् ॥ [ ]	१३	९९		
करः प्रत्यायशुण्डयोः रश्मौ वर्षोपले पाणौ [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ३८८]	१३	१०४		

१. **०महस्विनमुपेहि** इति मु. नै. ।

२. **विनाऽपि भूषा०** इति मु. नै. ।

३. **नार्हत्वं निशः किमु नौचिती** इति मु.नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
आशय आश्रयेऽभिप्रायपनसयोरपि [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ४७२]	१३	११२		
उदयः पर्वतोन्नत्योः [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ४७४]	१३	११५		
शुद्धा सुधादीधितिमण्डलीव[1] [नैषधे २२/७४]	१३	११७		
श्रवणप्राघुणकीकृता मम [नैषधे २/५६]	१३	१२२		
संसारसिन्धावनुबिम्बमत्र जागर्त्ति जाने तव वैरसेनिः [नैषधे ८/४६]	१३	१२४		
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहा [भक्तामरस्तवे श्लो० ४१]	१३	१२५		
जोषमासनविशिष्य बभाषे [नैषधे ५/७८]	१३	१२६		
[2]विहङ्गमद्भाषितसूत्रपद्धतौ प्रबन्धृतास्तु प्रतिबन्धृता न ते [नैषधे ९/३७]	१३	१३०		
संखो इव निरंजणे [ ]	१३	१४४		
सत्तायामस्त्यास्ते [क्रियाकलापे]	१३	१४४		
अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृत्ताङ्गम् [नैषधे ७/९७]	१३	१४५		
प्रसह्य चेतो हरतोऽर्द्धशम्भुः [नैषधे ३/२९]	१३	१५९		
षोडशीमपि कलां किल नोर्वी [नैषधे ५/८२]	१३	१७०		
परमा धार्मिकतिथयश्चन्द्रकलाः पञ्चदश भवन्तीह [काव्यकल्पलतावृत्तौ प्रतान ४ श्लो० २७३]	१३	१७०		
तिथिंतिथिं प्रतिस्वर्गि-भोग्यैकैककलाधिका । कला यस्येशपूजाऽऽसी-देकः श्लाघ्यः स चन्द्रमाः ॥ [काव्यकल्पलतावृत्तौ पृष्ठ २२८]	१३	१७०		
सत्तायामस्त्यास्ते जागर्ति च विद्यते [क्रियाकलापे]	१३	१७४		
सुरासुरनराधीश-मधुपापीतपत्कजः [सारस्वतव्याकरणप्रान्ते]	१३	१७८		
जे पुव्वह्ने दिट्ठा ते अवरह्ने न दीसंति [ ]	१३	१८१		
नासाऽदसीया तिलपुष्पतूणम् [नैषधे ७/३६]	१३	१९१		
इदं तमुर्व्वीतलशीतलद्युतिम् [नैषधे ९/२]	१३	१९५		
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधिते-रनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः [रघुवंशे ३/२२]	१३	२०२		
सभाजनं तत्र ससर्ज तेषाम् [नैषधे १४/५]	१३	२०५		
सभाजनार्थे सभाजयति [क्रियाकलापे]	१३	२०५		

१. **०मण्डलीयम्०** इति मु.नै. ।   २. **तदत्र मद्भाषित०** इति मु.नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
एतस्योत्तरमद्य नः समजनि त्वत्तेजसां लङ्घने [नैषधे ६/१३६]	१३	२०८		
पृषत्किशोरी [1]कुरुतामसङ्गतम् [नैषधे ९/२९]	१३	२०९		
[2]भवद्वृत्तं स्तोतुर्मदुपहितकण्ठस्य कवितुः [नैषधे १५/९२]	१३	२१६		
राजादनीतरुतले विमलगिरिरयं जयति तीर्थम् [ ]	१३	२१७		
त्रिजगतीं पुनती कविसेविता [ ]	१३	२१७		
नभःपरिरम्भणलोलुभेन [ ]	१३	२१९		
प्रस्थं तीर्थं प्रा(प्रो)थमलिन्द० [हैमलिङ्गानुशासने पुंनपुंसकलिङ्गे १८]	१३	२२१		
सदा हंसाकुलं बिभ्रन्मानसं प्रचलज्जलम् । भूभृन्नाथोऽपि [3]नाऽऽयाति यस्य साम्यं हिमाचलः ॥ [नलचम्पू उच्छ्वास १ श्लो० ३६]	१३	२२२		
बहुलभ्रामरमेचकतामसं [काव्यक्लकलतावृत्तौ पृष्ठ ७]	१३	२२५		
धरातुरासाहि मदर्थयाच्ञा [नैषधे ३/९५]	१४	३		
शम्बरो दानवान्तरे, मत्स्यैणगिरिभेदेषु [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ५९९-६००]	१४	१८		
अर्थो हेतौ प्रयोजने । निवृत्तौ विषये वाच्ये प्रकारे द्रव्यवस्तुषु ॥ [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० २०८-२०९]	१४	१८		
सङ्गरं गरमिवाऽऽकलयन्ति [नैषधे ५/३१]	१४	२०		
[4]ऋतुं विधत्ते यदि सार्वकामिकम् [नैषधे ९/७५]	१४	२०		
वृषस्यन्ती कामुकी स्यात् [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ३ श्लो० १९१]	१४	२४		
अष्टादशद्वीपनिखातयूप [रघुवंशे ६/३८]	१४	२८		
नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम् [नैषधे १/५]	१४	२८		
जय जोई मणकमलभसलभयपंजरकुंजर० [जयतिहुअणस्तोत्रे]	१४	३०		
उडुपरिषदः किं [5]नाऽर्हन्ती निशः किमनौचिती [नैषधे १९/१९]	१४	३०		
भुवनवलिवह्निविद्यासन्ध्यागजवाजि(जाति)शम्भुनेत्राणि [काव्यकल्पलतायां प्रतान ४ श्लो० २५४]	१४	३६		
व्रतोपवीतौ पलितो वसन्तः [हैमलिङ्गानुशासने पुंनपुंकलिङ्गे १७]	१४	३८		

१. **कुरुतामसङ्गताम्** इति मु. नै. । २. **भवद्वृत्तस्तोतुर्मदु०** इति मु. नै. ।
३. **नो याति** इति मुद्रितनलचम्पूकाव्ये । ४. **क्रतुं** इति मु. नै. ।
५. **०नार्हत्वं निशः किमु नौचिती** इति मु.नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
देव ! त्वद्भुजदण्डदर्पगरिमोद्दीर्णप्रतापानल० [खण्डप्रशस्तौ]	१४	४०		
व्रजति कुमुदे मोदं दृष्ट्वा दृशोरपिधायके० [नैषधे १९/८]	१४	४२		
लिम्बोऽरिष्टः पिचुमन्द० [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० २०५]	१४	४३		
व्रीडनं व्रीडा चित्तसङ्कोचः व्रीडोऽपि [अभिधानचिन्तामणिस्वोपज्ञटीकायां काण्ड २ श्लो० २२५]	१४	४९		
त्वयि स्मरव्रीडसमस्ययानया [नैषधे ९/१५५]	१४	४९		
स्ववनी सम्प्रवदत्पिकापि का [नैषधे २/४५]	१४	५०		
कम्बुस्तु वारिजः [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० २७०]	१४	५३		
पञ्चमुखोऽष्टमूर्तिः [अभिधानचिन्तामणौ काम्ड २ श्लो० ११०]	१४	५७		
गन्धोत्तमा कल्पमिरा परिप्लुता [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ३ श्लो० ५६६]	१४	५८		
एनं [1]महस्विनमुपैहि सदारुणोच्चैः [नैषधे १३/१२]	१४	५९		
दिष्टान्तोऽस्तं कालधर्म० [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड २ श्लो० २३८]	१४	५९		
निषधवसुधामीनाङ्कस्य प्रियाङ्कमुपेयुष० [नैषधे १९/१]	१४	६७		
तमेनमुर्वीवलयोर्वशीवशम् [नैषधे १२/२७]	१४	७०		
समुद्रस्ताम्रपर्णी च, वंशः करिशिरस्तथा । उद्भवो मौक्तिकानां स्यात्, प्रायोऽमीषु परत्र न ॥ [ ]	१४	७९		
सोऽयमित्थमथ [2]भीमनन्दनाम् [नैषधे १८/१]	१४	८०		
उदीतमातङ्कितवानशङ्कत [नैषधे १/९१]	१४	८६		
सारमुद्ध्रियते किञ्चिज्ज्योतिषक्षीरनीरधेः [ ]	१४	८७		
दिनान्तसन्ध्यासमयस्य देवता [नैषधे १२/८७]	१४	९२		
गीर्वाणद्रुमकुम्भधेनुमणयस्तस्याऽङ्गणैरिङ्गिण० [चिन्तामणिपार्श्वनाथस्तवे]	१४	९३		
तपर्त्तुपूर्त्तावपि मेदसां भरा विभावरीभिर्बिभराम्बभूविरे [नैषधे १/४१]	१४	१२१		
विस्फुरच्छफरीनेत्रा, तत्राऽपि रणसाक्षिणी । अस्ति ज्योत्स्नासपत्नाम्बु-रियमेव सरस्वती ॥ [पाण्डवचरित्रे सर्ग १४ श्लो० ६]	१४	१३६		

१. ०महस्विनमुपेहि इति मु. नै. । २. ०भीमनन्दिनीम् इति मु.नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
पुष्करं तु जले व्योम्नि, तीर्थे कुण्डे च०	१४	१४१		
[अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ५७३]				
एकः श्रीपाञ्चजन्यो हरिकरकमलक्रोडलीलायमानो,				
यस्य ध्वानैरमानैरसुरसुरवधूवर्गगर्भा गलन्ति । [ ]	१४	१४२		
स्कन्दो मन्दमतिश्चकार न करस्पर्शं स्त्रियाः शङ्कितः	१४	१४३		
[खण्डप्रशस्तौ]				
इदं तमुर्वीतलशीतलद्युतिम् [नैषधे ९/२]	१४	१५४		
गिरां हि पारे निषधेन्द्र[1]वैभवः [नैषधे १२/४१]	१४	१५७		
मदो दानं प्रवृत्तिश्च [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० २८९]	१४	१६४		
जवेऽपि मानेऽपि च पौरुषाधिकम् [नैषधे १/५७]	१४	१६५		
परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे [नैषधे १/६८]				
शल्यं-शस्त्रं कुन्तश्चेति तद्वृत्तौ ।	१४	१६६		
न षट्पदो गन्धक(फ)लीमजिघ्रत [सुभाषिते]	१४	१७२		
मखांशभाजां [2]प्रथमो निगद्यसे [रघुवंशे ३/४४]	१४	१८४		
[3]व्याघ्रानभीः फुल्लासनाग्रविटपानिव [रघुवंशे ९/६३]	१४	२१७		
व्याघ्रो द्वीपी शार्दूलचित्रकौ चित्रकायः पुण्डरीकः	१४	२१७		
[अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० ३५१]				
पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे [नैषधे २/२३]	१४	२२१		
पृषत्किशोरी [4]कुरुतामसङ्गतम् [नैषधे ९/२९]	१४	२२२		
पक्षो गोत्रे परीवारे पक्षतौ च०	१४	२३१		
[अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ५५१]				
अनिमिषो देवमीनयोः [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ४ श्लो० ३१६]	१४	२३३		
क्षणमप्यवतिष्ठति(ते) श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ	१४	२४०		
[रघुवंशे ८/८७]				
और देस सब मुंदरडी ओर नागोर नगीना [ ]	१४	२५६		
समणाणं सउणाणं भ्रमरकुलाणं गोकुलाणं च ।				
अणिआउ वसहीउ सारयाणं च मेहाणं ॥ [ ]	१४	२६२		

१. **वैभवम्** इति गु.नै. ।
२. **प्रथमो मनीषिभिस्तमेव देवेन्द्र ! सदा निगद्यसे** इति मु. रघु० ।
३. **व्याघ्रानभीरभिमुखोत्पतितान् गुहाभ्यः,**
फुल्लासनाग्रविटपानिव वायुरुग्णान् । इति मु. रघु. ।
४ **०कुरुतामसङ्गताम्** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
पुरं देहनगर्योः स्यात् [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ४२८]	१४	२७४		
कह्लारमिन्दुकिरणा इव हासभासम् [नैषधे ११/२३]	१४	२८०		
सोऽहं हंसायितुं मोहाद् [नलचम्पू उच्छ्वास १ श्लो० २१]	१४	२९८		
वारं वारं तारतरस्वरनिर्जितगङ्गातरङ्गाम् [पद्मसुन्दरकविकृतभारतीस्तवे]	१४	२९९		
[1]पतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्रैः [नैषधे १०/१०]	१४	३०१		
०स्याहेर्भूयः फणसमुचितः काययष्टीनिकाय० [नैषधे १२/५७]	१५	४		
दिवमङ्कादमराद्रिरागताम् [नैषधे २/८६]	१५	५		
सुरेन्द्रतटिनीतीरे० [भोजप्रबन्धे]	१५	७		
वरुणगृहिणीमाशामासादयन्तममुं रुची० [नैषधे १९/३]	१५	८		
निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषीहरिद्० [नैषधे १९/३]	१५	८		
शरद्घनात्ययः [ ]	१५	१३		
पर्जन्यश्चपलाशयः [ ]	१५	१३		
अब्दैर्वारिजिघृक्षयाऽर्णवगतैः [खण्डप्रशस्तौ]	१५	१३		
चिरत्नरत्नाचितमुच्चितं चिरात् [नैषधे १/१०७]	१५	२१		
स्मेरदम्भोजखण्डाभिः [खण्डप्रशस्तौ]	१५	२५		
निषण्णमृगनाभिभिः [रघुवंशे ५/७४]	१५	२९		
बहुलभ्रामरमेचकतामसम् [काव्यकल्पलतावृत्तौ पृष्ठ ७]	१५	३२		
अनिशतापमिषादुदसृज्यत [नैषधे ४/१७]	१५	३५		
तृष्णा लिप्सा वशः स्पृहा [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ३ श्लो० ९४]	१५	३५		
जाम्बूनदोर्वीधरसार्वभौमः [नैषधे १४/७१]	१५	४०		
बहुविगाढसुरेश्वराध्व० [नैषधे १३/२९]	१५	४०		
धरणिविरहिणि क्लान्तमुद्रे समुद्रे [नाटके]	१५	४०		
पद्मिनी कमलकमलिन्योः [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ३८२]	१५	५१		
[2]उषसि गजयूथकर्णतालैः [रघुवंशे ९/७१]	१५	५७		
[3]व्रजतो हेलिहयालिकीलनाम् [नैषधे २/८०]	१६	१२		
जडो मूर्खे हिमाघ्राते मूकेऽवि च [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ११७]	१६	१९		

१. **पाशीति नाथैः ककुभां चतुर्भिः** इति मु.नै. ।

२. **उषसि स गजयूथ०** इति मु. रघु. । ३. **सृजते हेलि०** इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
सदा हंसाकुलं बिभ्रन्मानसं प्रचलज्जलम् ।				
भूभृन्नाथोऽपि [1]नाऽऽयाति यस्य साम्यं हिमाचलः ॥	१६	१९		
[नलचम्पू उच्छ्वास १ श्लो० ३६]				
तमोऽन्धकारेऽज्ञानेऽघे [अनेकार्थसंग्रहे काण्ड २ श्लो० ५६८]	१६	२८		
मन्दररत्नशैलशिखरे [स्नातस्यास्तुतौ श्लो. २]	१६	३३		
स्वेदबिन्दुकितनासिका[2]शिखा० [नैषधे १८/१२१]	१६	३४		
प्रणीय विषयं दृशोरिह कुमारदेवीभुवोज्जयन्त० [ ]	१६	४७		
स्वामिन् ! मामुग्रसेनक्षितिपकुलभवां सानुरागां सुरूपां				
बालां त्यक्त्वा कथं त्वं बहुमनुजरतां मुक्तिनारीमरूपाम् ।				
वृद्धां मूकामकुल्यां करपदरहितामीहसेऽशेषविच्छ्रा-				
गित्युक्तो राजीमत्या यदुकुलतिलकः श्रेयसे सोऽस्तु नेमिः ॥ [ ]	१६	४८		
यदनेककसौधकन्धराहरिभिः कुक्षिगतीकृता इव [नैषधे २/८३]	१६	६३		
दूरं गौरगुणैरहङ्कृतिभृतां जैत्राङ्ककारे चरत् [नैषधे १२/८४]	१६	६९		
नृपस्य नाऽतिप्रमनाः सदोगृहम् [रघुवंशे ३/६७]	१६	८८		
उच्छे(त्से)द उदयोच्छ्रायौ	१६	९२		
[अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ६ श्लो० ६७]				
नवनवति पूर्ववारान् यस्मिन्समवासरद् युगादिजिनः ।				
राजादनीतरुतले विमलगिरियं जयति तीर्थम् ॥ [ ]	१६	९३		
ब्रह्मशर्म किल चारुयतीव [नैषधे ५/८]	१६	९५		
पद्मिनी कमलकमलिन्योः	१६	१०२		
[अनेकार्थसंग्रहे काण्ड ३ श्लो० ३८१-३८२]				
गौरं तु पीतश्वेतयोः [ ]	१६	१०४		
बालातपमिवाब्जाना-मकालजलदोदयः [रघुवंशे ४/६१]	१६	१०५		
विद्राणपङ्कजसरसि जलदानेहसि [नलचम्पू उच्छ्वास १ पृष्ठ २५]	१६	१०५		
निवेश्य दध्मौ जलजं कुमार० [रघुवंशे ७/६३]	१६	१०६		
गिरा विभुर्द्वारि विभुज्य कण्ठम् [नैषधे ६/१२]	१७	८		
गङ्गीयत्यसितापगा [खण्डप्रशस्तौ]	१७	२२		
अधुनाऽजयभूपालभाग्येनेयमिहाऽऽगता [शत्रुञ्जयमाहात्म्ये]	१७	३१		
स दिशः सकला जिष्णु-र्जयन्प्राग्भवकर्मणा ।				

१. **नो याति** इति मु. नलचम्पूकाव्ये ।

२. **०शिखं** इति मु.नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	हीसुं०	हील०
सप्तोत्तरशतेनाऽथ, व्याधिभिः परिपीडितः ॥१॥				
आक्रामन्निति भूपालान्, बलात्सौराष्ट्रमण्डलम् ।				
क्रमात्प्रापदखण्डाज्ञ-स्त्रिखण्डावनिमण्डनः ॥२॥ [ ]	१७	४४		
साकेतं कोशलाऽयोध्या	१७	५४		
[अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० ४१]				
क्षीरोर्मय इवाऽच्युत [रघुवंशे]	१७	६४		
भक्तं भक्तस्य नो कल्प्येत [ ]	१७	८२		
सितच्छत्रितकीर्तिमण्डल० [नैषधे १/१]	१७	९०		
यस्याऽस्मिन्नुरगप्रभोरिव भवेज्जिह्वासहस्रद्वयम्	१७	९६		
[नलचम्पू उच्छ्वास १ श्लो० ५८]				
पञ्चाशदादौ किल मूलभूमे-र्दशोर्ध्वभूमेरपि विस्तरोऽस्य ।				
उच्चत्वमष्टैव तु योजनानि, मानं वदन्तीह जिनेश्वराद्रेः ॥ [ ]	१७	११३		
जुहाव यन्मन्दिरमिन्द्रियाणाम् [नैषधे ८/३३]	१७	१५२		
[१]निशि दशमितामागच्छन्त्याम् [नैषधे १९/१]	१७	१५३		
फलं तु सस्यम् [अभिधानचिन्तामणौ काण्ड ४ श्लो० १९६]	१७	१७६		
यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलपुष्पवर्जितो विहितः [ ]	१७	१७६		
क्षितिजलपवनहुताशन-यजमानाकाशसोमसूर्याद्याः ।				
अष्टौ शिवमूर्त्तयः [ ]	१७	१७८		
भ्रातृशतप्रतिमामात्मप्रतिमां च स्तूपशतं च मा कश्चिदाक्रमणं				
करिष्यतीति तत्रैकं भगवतः स्तूपं शेषाणि एकोनशतभ्रातृणाम्०	१७	१९०		
[हारिभद्र्यां मलयगिर्यां चाऽऽवश्यकवृत्तौ]				

१. निशि दशमितामालिङ्गन्त्याम् इति मु. नै. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट - ३

ग्रन्थान्तर्निर्दिष्टा गूर्जरभाषाप्रयोगाः

	सर्गाङ्क :	श्लोकाङ्क :	हीसुं/हील.		सर्गाङ्क :	श्लोकाङ्क :	हीसुं/हील.
कुडउ	१	८७		सहसंखी	१०	६६	हीसुं०हील०
खेजडी	३	२-३-४	हील०	फडसि	१०	११५	
कालीवेलि	३	२-३-४	हील०	फते	१०	१४	हीसुं०हील०
कुडउ	४	२६		[1]च्छोह	११	१६	
सेस	४	१४४		चूणि	११	९९	
मुगतउ	४	१४५	हील०	गणेश	११	१०१	
जीरगोली	५	११०		भैरव	११	१०२	
गंगेटिउ	५	११२		मींढहल	११	११२	
चित्रडि	५	१९५	हील०	चांदउल	१२	३९	
कालिवेलि	६	९३		रींछ	१२	६१	
हीरो	६	१०९		गभारो	१२	१०६	
पितृपथ	६०	६०		वाक	१२	१०७	
फडसि	७	८८		सांगि	१२	१२२	
नवकरवाली	८	३	हील०	चाक	१३	१५	
आरसी	८	३८		पीरोजिका	१३	२४	
पोलाडि	८	३६		उड	१३	७५	
कदलीहर	८	३९		अबीर	१३	७७	
वपोहरीया	८	९८		आर्भा	१३	७८	
विपोहरीयां	८	९८	हील०	आभलां	१३	१००	
हस्तोलक	८	१५४		घूसरं	१३	१६४	
हथोलो	८	१५४	हील०	मेवडा	१३	२००	
विपोहरियां	९	६१		दुलीचा	१४	६	
सूरीयो वायु	९	९२	हील०				
संचकार	९	१३२	हीसुं०हीलु०	कथीपा	१४	१३	
पाज	९	१५३		सारवणी	१४	४२	
छडीदार	१०	११	हीसुं०हील०	मींढुल	१४	५०	
सेस	१०	५८	हीसुं०हील०	अणाव्युं	१४	८४	

1. ११/१०त आरभ्य हील०मध्ये हीसुंवदेव पाठोऽस्ति । अतः, परं सर्वेऽपि शब्दा हीसुं०अन्तर्गता एव ज्ञेयाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्क :	श्लोकाङ्क :	हीसुं/हील.		सर्गाङ्क :	श्लोकाङ्क :	हीसुं/हील.
दाण	१४	२७७		चउक	१६	९१	
खेजडी	१४	१८०		चउरी	१६	११०	
थापिणि	१४	२८६		खेजडी	१७	१५३	
पाखर	१४	६५		माण्डवी	१७	१६८	
छहरी	१५	२		चूआ	१७	१७७	
खचरा	१६	१८		सेस	१७	१८८	
छांहडी	१६	३७		कइरी	१७	१८८	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थान्तर्गतविशेषनामानि

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम् हीसुं०	टीकायाम् हील०
अकब्बर	९	१२३, १२७	१२४, १२७	१२३-१२४
[जलालदीन, गाजी]	१०	१२, ६४	१, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २२, २३, २५, २७, २९, ३२, ३४, ३७, ३८, ३९, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४८, ४९, ५१, ५२, ५५, ५६, ६०, ६१, ६२, ६३, ७७, ७८, ७९, ८३, ८४, ९०, ९२	१२, १६, २४, ३४, ३७, ४४, ५२, ५८, ८२, ८७
अचलदुर्ग	१२	१२७	१२७	
जेसलमेरु	१४	२५४	२५४	
अजय (राजा)	१७	३१, ४३, ५१	६, ३१, ४३, ४९, ५१, ५८	
अजयपार्श्वनाथ [अझारोपार्श्वनाथ]	१७	६	६, ३१, ३२	
अजयपुर	१७	३०, ५४	३०, ५४, ५५, ५९, ६०, ६२	
अजितदेवसूरि	४	१०४	१०६	१०५
अणहिल्लपत्तन	१		६३	
	३			१३४
	५		१९१	
	६	११४	११४	११४
	९		७७	
	१२		४	
	१७		१९८	
अनुपमतटाक	१६	४६	४६	
अनुपमदेवी	१६		४६	
अन्तरिक्षपार्श्वनाथ [अन्तरीकपार्श्व]	६	१८	१८	१८
अबलफैज	१३	११९, १२०, १२१,	१२०, १२१, १२८,	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम् हीसुं०	हील०
[अबलफइज, शेख]		१२२, १२४, १२५, १२७, १३०, १३१, १३२, १३५, १४७, १५०, १५२, १५४	१३४, १४३, १५०	
	१४	७०, १०२, १५२, १५३, १५४, २९०, २९१	७०, १०२, ११०, ११२, १५२, १५३, १५४, १५५, २९०, २९१	
अभयकुमार	१३	१२१		
अभयकुमार	१३	१२१		
अभयदेवसूरि	१	४२		४४
अभिरामाबाद	१३	४३	४३	
अमीपाल	५			२०९
	१३	४६		
अम्बिकादेवी	१३		२१८	
अयोध्या (साकेत)	१७	५४	५४, ५६	
अर्जुन [भील]	१२	३३	३३, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५४	
अर्बुद (पर्वत)	१२	५४, ५६, ७४, ८३, ८४, १०७, १२५	५४, ५५, ५६, ५७, ६२, ६४, ६५, ६६, ६७, ७०, ७१, ७४, ७९, ८०, ८१, ८३, ८४, ८८, ९१, १०७, ११९, १२५, १२८, १२९	
अर्बुदजिन [अदबुदजिन]	१६	४५	४५	
अवन्तीपार्श्वनाथ	४			४२
अवन्तीसुकुमाल	४	४०, ४१	४१	४१, ४२
अष्टापद (पर्वत)	२	११४	११४	११५, ११७
[कैलाश]	४	९	९	९
	१२	११७	११७, १२९	
	१४		१४३	
	१५		७७	
	१६	११७	११७	
अहम्मदावाद	१	६४		६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम् हीसुं०	हील०
[अकमिपुर]	९	८०, १२१	८०, ८३, ८६, १००	८०, १२२
	११	२२, ११४, १२६	२३, ३४, ४१, ४४, ६०, ११६, १५७	
	१२		१	
आउआ	१३	२४	२४	
आगरा	१०	६२, ६२ (पाठा०)	६२, ६२ (पाठा०)	६२
[उग्रसेनपुर]	१४	१२७, १४९, १५१, २४९	१२७, १३०, १४९, १५०, १५१, २५०	
आघाट (नगर)	४	१०८	१०८	१०९
[आहडनगर]	१४	२००	२००	
आचाराङ्ग	९		१०७	
आनन्दपुर	१	२६		२६
आनन्दपुर	१६	२	२	
आनन्दविमलसूरि	३	१४	१४	१४
	४	१३१	१३५, १४१	१३२, १३५, १४१, १४३, १४५
आम (राजा)	११	८२	८२	
	१७		८२	
आम्रभट्टमन्त्री	४		११५	
आर्यमहागिरि	४	३६	३६	
आर्यसुहस्ति (सूरि)	४	३६, ३७, ४२	३६, ३७, ४२	३८, ४३
[सुहस्तिसूरि]	११	१३०	१३०	
	१४	१५	१५	
आसपाल	१४	२६५	२६५	
इक्ष्वाकु (वंश)	४	२	२	२
	१७		१९	
इन्द्रदिन्न (सूरि)	४	४४	४६	४५
इन्द्रराज	१४	२५८	२५८, २५९, २६०, २६२	
उज्जयिनी	४		११६	४२, ११७
[अवन्तीनगरी,	६	७९	७९	७९
अवन्ती]	१३	११		
उदयनाचार्य	७		७७	
	९		४०	
उदयसिंह (राजा)	६	११०, १४६, १४९	११०, १४७	११०, १४६, १४९
उद्योतनसूरि	४	९३	९३	९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
उद्योतविजय	९	१३३		१३५, १३६
उन्नतपुर	१७	६२, ११७, १६१	६२, ६५, ७३, ७५, ७६, ८०, ८५, ८६, ११७, ११९, १६१, १६४, १८२	
उपसर्गहरस्तव	४	२९, ७७	२९, ७७	२९, ७८
ऋषभ (व्यवहारी)	५			३९
ऋषभकूट[वृषभकूट]	१६	४७	४७	
ओकेशवंश	३	७०	२८	
ककुश्रेष्ठी	१६	१११	१११	
कटुकश्राद्ध	४		१३५	
कदम्बाचल	१६	६५, १३३	६५	
	१७	१०	१०	
कन्थेरिकावन	४			४२
कपर्दिसरोवर	१६	१२२	१२२	
कमा [कमोसाधु, कम्मा]	६	१५०	१५२, १५५, १५८, १५९, १६४, १६८, १७०, १७६	१५०, १५४, १६५
	९	८१, १३७		
	१२	६		
	१४	२५२, २८८		
	१७		२१०	
कमाल	१३	२००	२००	
करहडापार्श्वनाथ [करहेटकपार्श्वनाथ करटापार्श्वनाथ]	६	२१	२१	२०
करहडापुर	६		२१	
कलिन्द (पर्वत)	८	६२	६२	६३
कल्पसूत्र	४	२८	२८	२८
कल्याणविजय	१३	१२	१२, १३, २५	
	१४		२६०	
काञ्चनबलानक	१		३३	३३
काबिल	१०	११	११	
	१४	१६८	१६८	
कालिदास	७		७७	
काशी [वाराणसी]	४	९४	९४	९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम् हीसुं०	टीकायाम् हील०
	१३		२२०	
	१४		८९	
काश्मीर [कश्मीर]	१४	२७५	२७५, २७७	
कासी	१३	२२०		
कुंअरजीऋषि	९	१०६		१०६
कुंरा	१		५	
	२	१	३, ८, ९, २७, ५८, ६०, ६२, ६५, ६९, ७५, ७६, ७७, ८०,	१, २, ५६, ६५
	३	६९	२५, २८, ४३, ५०, ५२	२५, ४४, ४६, ४७, ४९, ५१, ७०
	५		५०	
कुङ्कुण (मन्त्री)	४	९८	९८	९९
कुमारदेवी	१६		४७	
कुमारपाल	१		२८, ६३	२८, २९
	३		१२८	१२९
	६		८३	८३
	११		७२	१
	१४		२३८	
कुमारविहार	१२		१२७	
कुम्भा (राणक)	१३	१६	१६	
कुराण	१३	१४२		
कुल्लपाकनगर [कुल्यपाकनगर]	२	११३	११३	११४
कुशावर्त्त (देश)	१०	३	३	३-४
कृपाकोश	१४	२६९	२६९	
केकयी	११		१५३	
केशी (गणधर)	११	६१	६१	
	१४	१	१	
	१७	५	५	
कोटिशिला	१	२७		२७
कोडाई [कोडां, कोडिमादेवी]	६	१५३	१५४, १५६, १५८, १५९, १६३ १६४, १६६, १६७, १७८, १८१	१५३, १५६, १७८
कोरण्टक	४		६७	
कोशा	४	३२	३२, ३३	३२, ३४

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम् हीसुं०	टीकायाम् हील०
कौटिक [कोटिक]	४	४३	४३	४४
खरहतवसति	१६	४८	४८	
खान (देश)	१३	११	११	
खोमाण	४	८३	८३	८४
गजसुकुमाल	६	१८०		१८०
गन्धार	९	१४४	१४४, १४५, १४६, १४९, १५०	१४६, १५२
	११	१६	१७, ४४, ४९	
	१३	१८२	२०४	
गलराजमन्त्री [गल्लोमहेतो]	४	१४५	१४५	१४७
गिरिनारि [उज्जयन्त, रैवत]	१	३३, ३४		३३
	१२	१२५	१२५	
	१३	२१८	२१८	
	१६	४७, १३३	४७	
	१७	११२	११२	
गुणसुन्दरी	१०			४५
गूर्जर [देश] [गौर्जर]	१	२३, ५९, ६४, १३५	२३, ५६, ५९, ६०, ६१	२३, २४, २५, २६, ५७, ६१, ६२, ६३, ६६, ६८, १३७.
	९	१२३	१२३	१२३-१२४
	११	१८	१८, ८३	
	१४	१९१, २४४, २५२, २६६	१९१, १९९, २५२, २६६	
	१७	१९८	१११, १९८	
गोपालशैल [गोपालगिरि, ग्वालेर]	१४	२४८	२४८, २४९	
गौतम (स्वामी) [इन्द्रभूति]	४	६, ७	६, ७, ८	७
	७		५	५
	९	११८		११७-१२०
	१२	११७	११७	
	१३		८६	
	१६	१००, १११	१००, १११	
घोटकचतुष्क (प्रासाद)[घोडाचउकी]	१६	४९	४९	
चन्द्र (शाखा)	४		६१	६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
चन्द्रगच्छ	४	६४		६५
चन्द्रावती [चण्डाउली]	४	९८	९८	९९
चन्द्रोद्यान	१६	११९	११९	
चाङ्ग (संघवी)	६	८०	८०, ९९, १००	८०, ८१, ९९, १०१
चित्रसारथि	१७	५	५	
चिन्तामणिपार्श्वनाथ	१४	१५०	१५०	
	१७		२१०	
चिल्लणासर	१६	१२१	१२१, १२२	
छीपावसति	१६	४४	४४	
जगच्चन्द्रसूरि	४	१०७, १०८	१०८, ११०	१०८, १०९, १११
	१४	२००	२००	
जगडू	१३	२४	२४	
जगन्मल्ल कच्छवाह	१३		९३	
[जगमाल]	१४	२५३	२५३	
जगर्षि [जगउऋषि]	४	१४४	१४४	
जम्बूनदी	८	१२	१२	१२
जम्बूस्वामी	४	१५, १३०	१३०	१५, १९, १३१
[जम्बूकुमार]	५	१८०	३९, १८०	३९, १८१
	६	१	१	१
	१४	२४७	२४७	
जयदेवसूरि	४	७९		८०
जयनल (राजा)	१४	२७५	२७५	
जयनललङ्का	१४	२७५	२७५	
जयविमल	६	१८३	१८३	१८४
	९	१३, ९१	१६, १९, ८१, ८५, ८६, ८८, ९२, ९३, ९६	१३, १४, ८१-८२, ९१
जयसिंह	६	१७०	१७०, १७२, १७५, १७६, १७७, १८२	१७०
जयानन्दसूरि	४	८७		८८
जसमादेवी	६	४१, ५८	४१, ४४, ४५, ५८	४१, ५८
जसूढार [जसूढक्कर]	१६	९७	९७	
जीर्णदुर्ग	१७		७९	
जीवत्स्वामी	६	२०, २५ (हील०)	२०	२०
जेजीयक (कर) [जीज़िया]	१४	२६९, २७४, २७८	२६९, २७४, २७८	
जैमनीय	५	७३	७३	७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्क:	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
झंझूपुर	१	४० (हील०)		४०
टेलीग्राम	४	९४		९५
टोकराविहार	१६	४५	४५	
डामर (सरोवर)	१०	६३	६३	६३
[डाबर]	१४	१९३, २०५	१९३, २०५	
डीसा	६		१८७, १८८, १८९, १९०, १९२	१८८, १९०, १९३
	७		१, ४	
ढंक	१६	१३३		
	१७	१०		
तक्षशिला	४		७३	
[बाहुबलिपुर]	१३	२६	२६	
तपा (बिरुद)	१४	२००	२००	
तपागच्छ	४	११०		१११
[तपा]	६		११५	११५
	९	११९	११९, १३८	११७-१२०
	११	४५	४५	
तारङ्ग (गिरि) [तारणगिरि]	१	२७	३०	२७, २८, २९, ३०
तालध्वज	१६	१३३		
	१७	१०		
ताह्ला	१३	२४		
	१४	२५७	२५७	
तिलकतोरण [तिलकुंतोरण]	१६	४९	४९	
तुङ्गिका	१३	४१	४१	
तुरुष्कगोत्र	१३		१३६	
दफरखान	१४	२०१	२०१	
	१६	९४		
दशरथ	१७		६, ३१	
दशवैकालिक	४	२३	२३	२३
दानीयार	१३	२२३	१५५	
दिन्नसूरि	४	४६	४८	४७, ४८
दिल्ली	१०	१, ८	१, ३, ४, ५, ६, ८, ९, १०, ६२	३-४, ५, ६, ७, ८, ९, १०
	१४	१९१	१९१	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
दुःशासन	१२		४५	
दुजणसाल- [दुर्ज्जनशल्य]	१	४० (हील०)		४०
दुर्जनमल्ल	१४	२४५		
दुर्वासा	१४		१८१	
दूदा (राजा)	६	७९	८०, ८३, ९६	७९
देवकपत्तन	४	११४	११४	११५
	१७		७९	
देवगिरि	६	२६, ४७, ४८	२६, २७, ३०, ३१, ३२, ३८, ३९	२६, ३०, ३९, ४७
देवविमल	१	१३८ (हील०)	१३८ हील०	
	२	१४२ (हील०)		
	३	१३६ (हील०)		
	४	१४९ (हील०)		
	५	२१८ (हील०)		
	६	१९४ (हील०)		
	७	९५ (हील०)		
	८	१७२ (हील०)		
	९	१५६ (हील०)		
	१०	१३१ (हील०)		
देवसी	६	३८	३८,३९,४०,४१,४५,५८	३८
देवसुन्दरसूरि	४	१२१		१२२
देवसूरि	४	९९		१००
देवानन्दसूरि	४	८०	८१	८१
देवेन्द्रसूरि	४	१११	१११	११२
द्वारिका	१		७२	
[द्वारका, द्वारवती]	६		१४६	१४६
	९			१४६
	१०	६३, ६८		६८
	१७	७५	७५	
द्वीपबन्दिर [द्वीपपुर]	१७	५, ४३, ४७, ६०, १६७	५, ६, ३०, ४३, ४७, ६०, ६५, ८०, १६७, १६९, १८२, १९०	
धनगिरि	४		५५	५७
धनपाल	१०		५	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्क:	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
धनविजय	१४	२०५	२०५	
धरण	६	८१	८१	८१
	१३	१४		
धरणविहार	१३		१४, २१	
धन्यानगार	१७	८६	८६	
धर्मघोषसूरि	४	११२	११२, ११७	११३, ११५
	१२	५२	५२	
धर्मसागर	६	४८, ५४, ७६	५४, ७६	४८, ५४
धानधार	१	६६		६८
धारिणी	५	३९		३९
धृतराष्ट्र	१२		४५	
नडुलाई (नगर) [नारदपत्तन]	६	७२, ७४, १४०	७२, १५७	१४०, १४६, १५७
नमिऊण (स्तोत्र)	४		७७	७८
नरसिंहसूरि	४	८२, ८३		८३, ८४
नवीननगर	१७		७९	
नागपुर [नागुर]	१३	२७	२७	
	१४	२५२, २५७	२५२, २५३, २५४, २५५, २५६	
नागपुरीयतपापक्ष	१४		८९	
नागहृद (नगर)	४	८४	८४	८५
नागार्जुन	१६	३	३	
नागेन्द्र (शाखा)	४		६१	६२
नाथी	२	१४, ८६	१५, १७, २१, २२, २३, २५, २७, २९, ३०, ३१, ३४, ३६, ३७, ४०, ४२, ४५, ५०, ५३, ५६, ५९, ६०, ६१, ६२, ६५, ६९, ७३, ७५, ७७, ७८, ८०, १२१, १४०	१४, १५, २३, २५, ५६, ६५, ६६, ७३, ७९, ८७
	३	१, ३२	२, ६, ८, १२, १३ १५, १६, २०, २८, ३८, ४७	२, २०, २६-३२
	५	२१६		२१७
	६	८९		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम् हीसुं०	टीकायाम् हील०
निजामसाहि	६	३४	३४, ३६	३४
निर्वृत्ति (शाखा)	४		६१	६२
नेता	१४	२६५	२६५	
नेमिचन्द्रसूरि	४	१०१	१०२	
नेमिनाथचतुरिका	१६	४८	४८	
पद्मसुन्दर	१४	८९	८९, ९०, ९१, ९२, १०३	
परमहंस	६	५४	५४	५४
पाटी	१३	२२३	१५५	
पादलिप्तपुर	१६	२, ५, ७	२, ४, १८	
[पालीताणा]	१७	४	४, ६	
पादलिप्ताचार्य	१६		३	
पिरोजिका (नाणक)	१३	२४	२४	
पींपाढि	१४	२५७, २५९	२५९, २६०	
पुण्डरीक (गणधर)	१६	१३१	१३१	
पृथ्वी	४	७	७	७
पृथ्वीधर [पेथडदे]	१६	४४	४४	
पेथडदे	४		११७	११८
प्रतापदेवी	१४	१०२, १२४		
प्रदेशी (राजा)	११	६१	६१	
	१४	१	१, २५६	
प्रद्युम्नदेव (सूरि)	४	९०		९१
प्रद्योतनसूरि	४	६८	६८	६९
प्रभवस्वामी	४	१९	२१	१९, २२
	१४	२४७	२४७	
प्रह्लादनपार्श्वनाथ	१	७३		७५, ७६
प्रह्लादनप्रासाद	१	७३	७३, ७५	७७
प्रह्लादनपुर	१	६७	६८, ८१	६९, ७०, ७२, ९९, १०७
	२		१	
	३	४२	२८	४३
प्रह्लादनराणक	१	७४	७४	७६
प्राग्वाटवंश	१	८०	८०	८१-८२
फतेपुर	१०	६४	६४, ७१, ७३, ७६, ८२	६४, ७३
	१३	३५, ३६, ४४, ९१	४४, ५७, ८६, ९१, २१४	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
	१४	१२७, १५१, १९१	१५२, १९१, २६८	
फलवर्द्धिपार्श्व	१३	३१		
बप्पभट्टिसूरि	११	८२	८२	
	१७	८२, १९५	८२, १९५	
बब्बर	१०	११	११	११
	१४	७९	७९	
बाण (कवि)	१	३६	३६	३६
बाम्बी (ब्राह्मण)	४	१२७	१२७	१२८
बृहद्गच्छ[वडगच्छ]	४	९५	९५	९६, १११
बृहन्नगर	१			२६
भक्तामर (स्तोत्र)	४	७५, ७६	७५	७६
भगीरथ	१३	१९५	१९५	
भद्रबाहुसूरि	४	२८, ७७	७७	२८, ७८
भद्रेश्वर	१३		२४	
भरत	११	१५३		
भानुचन्द्र	१४	२६८, २७७, २८४, २९०	२६८, २७७, २८४	
भारमल्ल	१४	२५८	२५८	
भावड	६	१३४		१३४
भीम	१२		४५	
भृगुकच्छ	४	११५	११५	
भोजराज	१४		२६१	
मङ्गलपुर	१७		७९	
मणिरत्नसूरि	४	१०६	१०७	
मण्डपाचल	४	१३५	११७, १३५	११८, १३६
मथुरा	१०	६२		६२
	१४	२४६	२४६	
मनक	४	२३	२३	२३
मरु	१७		१११	
मरुदेवा [मरुदेवी]	१६	४२, ८५, ८६	८६, १२३	
मरुदेश	१३		२४	
मलय [दक्षिणाचल]	१५	७७	७७	
महमुन्दपातिसाहि	१	१२७	१३५	१२९
महाराष्ट्र (देश)	१३	११	११	
महीपाल	१०			४५
	१६	११६	११६	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
माणिक्यस्वामी	६	१६	१६, २५	११, १६
माण्डण	१४	२५४	२५४	
मानतुङ्गसूरि	४	७४, ७६	७४	७५, ७७
मानदेवसूरि	४	७०, ८५, ९१	७१, ७३, ७४, ८५, ९२	७१, ८६, ९२
मानससर	१६	१९	१९	
मानू	१३	४६		
मालव (देश)	४			११८
	११		११	
	१४	१९१	१९१	
मीयांखान [खानखाना]	१४	८४	८४	
मुनिचन्द्रसूरि	४	१०२		१०३
मुनिसुन्दरसूरि	४	१२३	१२४	१२४
	१४	२०१, २९१	२०१, २९१	
मुरादिसाहि	१४		२७३	
मुलतान	१४	१९२	१९२	
मूलकश्रेष्ठी [मूलो श्रेष्ठी]	९	१००	१००	१००, १०१
मेघकुमार	५		४३	४३
मेघजीऋषि	९	१०५, १०८, १२१, १२६	१०५, १०६, १०८, १०९, ११४, ११९, १२०, १२८, १३३	१०५, १०६, १०७, १०८, १३३-१३४
मेघपारिख	१७	१९०	१९०	
मेडता [मेदिनीपुर]	१३	२६	२६, २७, २८, २९, ३२, ३४	
	१४	२५१	२५१	
मेदपाट	६	१३५	१३५, १४०	१३५, १४०
	१३		१६	
	१७		१११	
मेवडा	१२	१	१	
मेवात	१०		१	१, ३-४
	११		८३	
	१२		९५	
	१४		२५२, २६०	
	१७		१११	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम् हीसुं०	हील०
मेहाजल	१४	२५३		
मोह्लावसति	१६	४५	४५	
मौन्दी	१३	२००	२००	
यक्षदिन्ना	४		३४	
यक्षा	४		३४	
यदु (वंश) [यादवकुल]	४	३	३	३
यशोदेवसूरि	४	८९	८९	९०
यशोभद्र (सूरि)	४	२४, १०१	२५, १०२,	२४, २५
यशोभद्रगणि	४		११५	
रत्नशेखरसूरि	४	१२७		१२८
रपडीपुर	१४	१३२	१३२, १३७	
रविप्रभसूरि	४	८८		८९
राजगृह	११	११६	११६	
राजधन्यपुर [राजधनपुर]	१४	२८३	२८३	
राजनगर	११		१२१	
राजविमल	६	७६	७६	
राणपुर	६	८१	८१	
	१३	१३, २५	१४, २३	
राणी	३	१२३		१२४
राम (थार्नसिंहस्य	१३	११८	१२०	
पिता)	१४		२४३	
राम	११	१५३	१५३	
	१५		३८	
रामजी	१६	९७	९७	
रामसेणि (नगर) [रामसेन]	४	९७	९७	९८
रुक्मिणी	४	५८		५९
रूपादेवी	१७	२१०	२१०	
लक्षणावती	१७	१९५	१९५	
लक्ष्मीलीलाविला-सवन	१६	११९	११९	
लक्ष्मीसागरसूरि	४	१२८		१२९
लङ्का	१५	३८		
	१६	८		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
ललितसरोवर	१६	१९	१९, २१	
लाट [लाड]	९	१४४	१४४	१४६
	११	१६	१६	
लाडकी	१७	१७९	१८९	
लाभपुर [लाहोर]	१२		९५	
	१४	१९२, २८८	१९२, २८४, २८८	
	१७	१९५	१९५	
लुम्पाक (गच्छ)	४	१४४, १४६(हील.)		१३३, १४५, १४६
[लुंका, लउका]	९	१०५, १०६, १०८, ११४	१०५, १०८, १०९, ११०, १११, ११३, ११४, ११५	१०५, १०८, ११४–११५
लौहित्य	१६	१३३		
	१७	१०		
वङ्कचूल	१२	५२	५२	
वज्रसेन	४	५९	६१, ६२	६०, ६३
वज्रस्वामी	३		३५	३५
[वज्रप्रभु]	४	५०, ५३	५४, ५५, ५६, ५९, ११३	५१, ५४, ५७
	६	१८२	१८२	९०, १८३
	९	५		५
	१२	५२	५२	
वटदल [वडदल]	११	१०९	१०९	
वटपल्लि	१२	२७	२७	
वटपल्लिकापुर [वडली]	६	१८४	१८४	१८५
वनवासी	४	६६	६६	६७
वयरी (शाखा)	४		९५	
वरकाणक	१४	२६३	२६३	
वरकाणकपार्श्वनाथ	६	७५	७५	
	१४	२६३	२६३	
वराहमिहिर	४		२९	
वसुभूति	७	५		
वस्तुपाल (मन्त्री)	१२	११९	११९	
	१४	२४४		
	१६	४७	४७	
वस्तुपालवसति	१२		१२०, १२५	
[वस्तुपालप्रासाद]	१३		२१९	
	१६		४७	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
वागड (देश)	१३	११	११	
विक्रम (राजा)	६	७९		७९
	९	१७	१७	
विक्रमपुर	१३	२७	२७	
विक्रमसूरि	४	८१		८२
विजयदानसूरि	४	१४३	१४५, १४६	१४४
	५	१, ३९, २०८	७, ८, ४०, ४३, २०८, २१०, २१६	१, ४, ३९, २०४, २०५
	६	१८३, १८४	१, २, ३, ४६, ६५, ७०, ७६, ७७, ८५, ९२, ९४, ९५, ९७, १०८, १०९, ११३, १२२, १२३, १३४, १७७, १७९, १८०, १८१, १८५, १८६	१३४, १७९, १८५
	१२		२७	
	१७	९२	९२, १०१	
विजयदेवसूरि	१७	२०७	२०७, २१०	
विजयसिंह(व्यवहारी)	५	३९, ९४		३९, ९५
विजयसिंहसूरि	४	१०५	१०५, १०६	१०६
विजयसेनसूरि	९	९७, १५१	१०१, १०२, १०३, १३७, १३८	९७, १३९, १५३
	१२		६, ७, ८, २९	
	१४	२६४, २८५, २९२	२५१, २६४, २८२, २८५, २८६, २८७, २८८, २९०, २९१, २९२	
	१७	१०९, १५८, १९५, २०५, २०६, २०७	१०९, १५८, १९५, ११६, २०५, २०६, २०७, २१०	
विद्याधर (शाखा)	४		६१	६२
विद्यापुर	४	११५		११६
विद्यासागर(वाचक)	४	१३४		१३५
विनीता (**नगरी**)	१	२६		२६
विन्ध्याचल	१२	३६	३६	
[विन्ध्य, विन्ध्यशैल]	१५	४३, ७७	४३, ७७	
विबुधप्रभसूरि	४	८६		८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्क:	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
विमल (मन्त्री)	१२	९३, ९६, ९७, १०४	८७, ९६, १०४	
विमलचन्द्रसूरि	४	९२	९२	९३
विमलवसति	१२	८७	९०, ९२, ९३, ११८	
विमलविजय	९		१४२	
विमलहर्ष	१३	३२	३२, ३६, ४०, ४३	
	१७	१५९	१५९	
विमला	३	१२३, १२९	१२५	१२४, १२५-१२६, १३०
	५			९५
विराट (देश)	१३	११	११	
विराटनगर	१४	२६०	२६०	
विशलपुरी (नाणक) [विश्वलपुरी]	१	७५	७५	७७
वीरधवल	१४	२४४	२४४	
वीराचार्य	४	७८	७८	७९
वृद्धदेव (सूरि)	४	६७	६८	६८
वेलाकूल	१७		७९	
शकडाल	६	१३१		
शङ्कर (राजा)	६	१६	१६	१६
शङ्खपुर	१	३७	३८	३७
शङ्खेश्वरपार्श्वनाथ	१	३१		३१, ३२, ३९, ४२, ४३
शत्रुञ्जय (नदी)	१६		११६	
[शत्रुञ्जया]	१७	२०	१५, १६, १७, १८, १९, २१, २२, २४	
शत्रुञ्जय	१	२६, ३०	१८	१८, ३०
[सिद्धाचल, सिद्धगिरि	२	११६, ११९	११२, ११६, ११९	११३, ११४, ११७, १२०
विमलाचल, सिद्धशैल				
विमलगिरि, मृत्युञ्जय	३			२६-३२
पुण्यराशि]	४	१४५	११३, १४५	१४७
	११		५०	
	१३	२१७	२१२, २१७	
	१४	२७६, २८०, २८१	२०३, २१८, २४८, २७६, २७७, २७९, २८०, २८८	
	१५	१, २, ३, ८, ११, १७, २०, २८, ३३ ३५, ७८	१, ३, ८, १०, १७, २०, २२, २८, ३०, ३७, ४०, ४२, ५६,	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम् हीसुं०	टीकायाम् हीलं०
			५७, ५९, ६०, ७८	
	१६	५, ६, ११, १२, १४, २९, ४०, ५३, ७९, ८७, १०८, ११२, ११६, १२२, १३८	२, ३, ५, ६, ८, ९, १०, ११, १६, १७, २९, ३५, ४०, ५३, ६५, ७३, ७४, ७९, ८७, ८८, ९०, १०८, ११२, ११३, ११४, ११६, ११७, १२२, १२५, १२७, १३१, १३३, १३४, १३७, १३८	
	१७	२, ३, ६, १०, १२, १४, १६, १८, २२, ६४, ११२, १९२	१, ३, ७, ८, ९, १०, १२, १३, १४, १५, १६, १८, २२, २५, २६, ६४, ११२, ११३, १८४, १९२, १९४	
शत्रुञ्जयमाहात्म्य	१०			४५
शय्यंभव (सूरि)	४	२१	२२	२१, २२
शांतिचन्द्र	१४	२४४, २५२, २६८, २६९	२४४, २६८, २६९	
शान्तनु (राजा)	१७	१९	१९	
शान्तिकर (स्तव) [संतिकरस्तव]	४	१२४	१२४	
शिवा (साह)	१	१३८ (हीलं०)	१३८ (हीलं०)	
	२	१४२ (हीलं०)		
	३	१३६ (हीलं०)		
	४	१४९ (हीलं०)		
	५	२१८ (हीलं०)		
	६	१९४ (हीलं०)		
	७	९५ (हीलं०)		
	८	१७२ (हीलं०)		
	९	१५६ (हीलं०)		
	१०	१३१ (हीलं०)		
शेखुजी	१३	१२३	१५५	
	१४		८४	
श्रावस्ती (नगरी)	१७		५	
श्रीकरी	१०	६३	६४, ६७, ७०, ७३, ७७	६३, ६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्क:	श्लोके	टीकायाम् हीसुं०	टीकायाम् हील०
	१३	३६, ९२, ११७	९२	
	१४		१२७	
श्रीचन्द्र (सूरि)	४	६२, ६४		६३, ६५
श्रीपाल	२		६	६
	३	१२३		१२४
	५		८९	९०
श्रीमाल (देश)	१४	२५८	२५८	
श्रीरोहीनगर	६	७८	७८, ११०	७९, ११०
[शिवपुरी,	१३	४	४, ५, ६, ७, ८, ९	
श्रीरोहिणीमण्डल,	१४	२६२, २६५, २६६	२६२, २६५, २६६	
सीरोही, सिरोही]				
श्रेणिक	१३	१२१		
श्वेताम्बी	१४		२५७	
[श्वेताम्बिका]	१७	५	५	
सज्जनमन्त्री	१	३९ (हील०)		३९
सदारङ्ग	१४	२५१	२५१	
समर्थ भणसाली	६	११६	११६, ११८	११६
[समरथभणसाली]				
समुद्रसूरि	४	८३	८४	८४, ८५
सम्प्रति (राजा)	४	३८, ३९		४०
	११	१३०	१३०	
	१४	१५	१५	
सम्भूतिविजय	४	२६	२६, ३०	२६, २८
सम्मेतशैल	१३	२१९		
	१७	११२	११२.	
सरस्वती (नदी)	१	४५, ६५	४७, ५१, ६५	४७, ४९, ५०, ६७
	२		४४	४३-४४
	८		५८	५८-५९
	१०		२७	२७
	१५		२३	
सर्वदेवसूरि	४	९६, १००	१०१	९७, १०१
सलेमसाहि	१४		२७३	
सांगानगर	१३	३५, ३९	३५, ३९	
[सांगानेयर, सांगानेर]				
सागर (व्यवहारी)	१७	३८	३३, ३५, ३७, ३८,	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हीलं०
[समुद्र]			४०, ४६, ४७, ५५	
सादडी (नगर)	१३	१०	१२	
सादिमासुरताण	१३	२८	२८	
साभ्रमती (नदी)	१	५१	५१	५१-५२-५३
सामन्तभद्र (सूरि)	४	६५	६६	६६
साहिबखान [खान]	११	४४, ५८	२४, २५, २६, ३०, ३४, ३७, ४५, ४७, १२६, १२७, १२९, १३०, १३२, १४८, १५५, १५६	
	१३	१८५	१८५, १८६	
सिंहगिरिसूरि	४	४८		४९
	६	१८२		
सिंहद्वार	१३		११८, १२०	
सिंहनिषद्याप्रसाद	२	११४	११४	११५
सिंहविमल	१	१३८ (हील०)	१३८ (हील०)	
	२	१४२ (हील०)		
	३	१३६ (हील०)		
	४	१४९ (हील०)		
	५	२१८ (हील०)		
	६	१९४ (हील०)		
	७	९५ (हील०)		
	८	१७२ (हील०)		
	९	१५६ (हील०)		
	१०	१३१ (हील०)		
	१३	३२	३२	
सिद्धनृप [सिद्धराजजयसिंह]	१७	१९२	१९२	
सिद्धपुर	१२	२८	२८	
सिद्धवट	१६	१२४	१२४	
सिन्धु (नदी)	४		१०३	
सुधर्मस्वामी	४	११	११, १३, १४	११, १२, १३, १४
	५	३९		३९
	६	१	१, १०८	१, १२२
सुनन्दा	४	५६	५६	
	६	१८२		१८३
सुप्रतिबद्धसूरि	४	४२	४३, ४४	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
सुमतिसाधुसूरि	४	१२९	१२९	१३०
सुरतिबन्दिर	६	१३४	१३४	१३४
सुरत्राण	१३	५, ६	५, ६	
	१४	२६६	२६६	
सुस्थित (सूरि)	४	४२	४३, ४४	
	६	८२	८२	
सूर्यकुण्ड	१३		२१७	
	१६	१२६	५०	
सूर्योद्यान	१६	११९	११९	
सेरखानपठाण	६			११६
सोपारकपत्तन	२	११३	११३	११४
	६	२०		
सोमतिलकसूरि	४	१२०	१२१	१२१
सोमप्रभसूरि	४	१०६, ११९	१०७	१२०
सोमविजय	१७	१५९	१५९	
सोमसुन्दरसूरि	१	८०	८०	८१-८२
	३	४२	४२	४३
	४	१२२		
सौभाग्यदेवी	१	१३८ (हील०)	१३८ (हील०)	
	२	१४२ (हील०)		
	३	१३६ (हील०)		
	४	१४९ (हील०)		
	५	२१८ (हील०)		
	६	१९४ (हील०)		
	७	९५ (हील०)		
	८	१७२ (हील०)		
	९	१५६ (हील०)		
	१०	१३१ (हील०)		
सौराष्ट्र	१३	२१७	२१७	
	१४	१९१	१९१	
	१५	४	४	
	१७		१११	
सौर्यपुर [शौर्यपुर, सौरीपुर]	**१४**	**१३१**, १३३, १४७	१३१, १३२, १३७, १४७, १४८	
स्थम्भन (तीर्थ)	१	४२, ६४		४४, ६६
[स्तम्भ]	४		१२७	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्क :	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
	११	१०९		
	१४	२०१	२०१	
	१७	११५	११५	
स्थम्भनपार्श्वनाथ	१	४२		४४, ४५
स्थानसिंह	९	१२५	१२५	१२६
[थानसिंह]	१३	४६, १२०, १९१	१९८	
	१४	२४३	१०२, ११०, ११२, ११३, १२४	
स्थूलभद्र	४	३०	३०, ३४, ३६	३०
	६		१३१	१३९
स्वरारोहणशृङ्ग [स्वर्गारोहणशृङ्ग]	१६	४६	४६	
स्वर्णगुहा	१६	१३६	१३६	
हंस	६	५४	५४	५४
हमाउ	१०	१०	१०, १२	१०
[हमाऊ, हमाउं,	१३	११९, १२७		
हमाऊं]	१४	१०६, २८		
	१७	१९५		
हरिभंद्रसूरि	६		५४	
हर्षसौभाग्य	९		१४२	
हर्षा	१४	२६०	२६०	
हिमाचल	६		६	
	७		८९	
	१२		६०, १२८	
	१३		२१६, २२२	
	१५		७, ७७	
	१७		३	
हीरकुमार	१	४५, ८३, ८७	८३, ८७,	४७, ८५, ८९,
	२		६, ५६	६
	३	५४, १०२, १३३	१४, २७, २८, २९, ४०, ४२, ५८, ६२, ६३, ६४, ७३, ७५, ७६, ८०, ८८, ९५, ११९, १२५, १३१, १३२, १३३, १३४	३६, ५४-५५, ७५, ८१, ८७, ८८, १०३, ११८, १३४
	५	९, ३१, ७६, ८६,	१३, ३७, ३९, ५९,	३१, ७६, ११७, ११८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
		११६	८०, ८७, ८९, ९२, १०१, १६२, १८४, १९८, २००, २०७	१९५, २०३, २०४
	६	४६	४६, ८९	
हीरविजयसूरि	१			८
	३			१४
	६	१०९, १८५, १९२	१०९, १११, ११२, ११३, १२२, १२४, १२५, १२८, १४२, १८३, १८५, १८६, १८९, १९०, १९१	१०९, १९३
	७		१, १३, २०, २३, ७३	७३
	८		१४५	१४९
	९	११९, १२०, १२१, १३१, १३७, १५१	१, ५५, ८३, ८६, ९३, १०२, १०३, १५२	३३, ११७-१२०, १२१, १२२, १३३-१३४, १३९, १४२, १५३
	१०	९१	४५, ९२, ९३, ११७	९८, १३०
	११	१६, ४१, ५३, १३३	१६, ४२, ४३, ४६, १५६	
	१२	७, २५, ३१	७, ८, १०, २९, १२ ३२, ९१, १९५	
	१४	२०२, २९१	१, ७१, ११०, ११३, १२३, १५२, १९२, २०२, २०४, २०५, २१४, २४३, २४४, २६४, २६९, २७४, २७६, २८१, २८३, २८४, २८५, २८८, २९१, २९३, २९४, २९५, २९८	
	१५		२	
	१६	५४	९, २२, २६, ५४, ९४, १३८	
	१७	१६६, १८३, १९७, १९८, २००, २०२,	१, १७, ३१, ५९, ७१, ७५, १०४, ११०	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोके	टीकायाम्	
			हीसुं०	हील०
		२०५	१५५, १५६, १६६, १७९, १८०, १८३, १९०, १९१, १९५, १९७, १९८, २००, २०२, २०३, २०५	
हीरहर्ष [हीरवाचक, हीरोपाध्याय]	५	२१०, २१३	२१५	२११, २१३, २१४, २१६
	६	८८, ९१	१, ४, ४६, ४९, ५०, ५८, ६९, ७८, ८८, ९१, ९८, १०६, १०७, १०९	४७, ४९, ८८-८९, ९८ १०६
हेमचन्द्र (सूरि) [हेमसूरि, हेमाचार्य]	४	११५	११५	११६
	८		१३८	
	११	१, ७२	१	१
	१४	२६७	२६७	
हेमराज	९	१३९	१३९	१४१
हेमविमलसूरि	४	१३०		१३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट - ५

हीसुं० हीमु० हील० मध्ये श्लोकतालिका

सर्गः	हीसुं०	हीमु०	हील०
१	१४-१५-१६ ९६-९७-९८	१६-१४-१५ ९९-१००-९८	१६-१४-१५ ९९-१००-९८
४	१४६	३०	३०
५	२०-२१-२२	२२-२०-२१	२२-२०-२१
७	३०-३१	३१-३०	३१-३०
८	२७-२८ ७५-७६-७७ ७९-८०-८१ ८५-८६-८७ १००-१०१-१०२ १३९-१४०	२८-२७ ७६-७७-७५ ८१-७९-८० ८८-८९-८७ १०५-१०३-१०४ १४३-१४२	२८-२७ ७७-७८-७६ ८२-८०-८१ ८९-९०-८८ १०६-१०४-१०५ १४४-१४३
९	३४-३५-३६-३७-३८-३९ ४२-४३-४४-४५-४६-४७ ४८-४९-५०-५१-५२	३६-३९-३५-३४-३८-३७ ५१-४२-५२-४३-४४-४५- ४६-४७-४८-४९-५०	३६-३९-३५-३४-३८-३७ ५१-४२-५२-५३-४४-४५ ४६-४७-४८-४९-५०
१०	३०-३१-३२-३३-३४-३५ ३६-३७-३८-३९-४०-४१ ४२-४३-४४-४५-४६-४७ ४८-४९-५०-५१-५२-५३ ५४-५५-५६-५७-५८-५९	४७-४९-४८-३०-४६-३१ ३२-३३-३४-५०-३५-३६ ५३-३७-३८-५१-३९-४०- ५२-४१-४२-४३-४४-४५ ५४-५५-५६-५८-५९-५७	४७-४९-४८-३०-४६-३१ ३२-३३-३४-५०-३५-३६ ५३-३७-३८-५१-३९-४० ५२-४१-४२-४३-४४-४५ ५४-५५-५६-५८-५९-५७
१२	५७-५८	५८-५७	
१३	१००	१०९	
१४	१८०-१८१	१८६-१८७	
१५	७५-७६	७९-७८	
१६	५७-५८	५८-५७	
१७	२१-२२	२२-२१	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीमु० हीसुं० हील० – अन्तर्गता ये श्लोका यत्र न सन्ति तेषां सूचिः

सर्गः	हीमु०	हीसुं०	हील०
१	३९	X	✓
	४०	X	✓
	१३८	X	✓
२	६५	X	✓
	१४२	X	✓
३	४२	X	✓
	X	५९	✓
	१३६	X	✓
४	१४६	X	✓
	१४९	X	✓
५	८९	X	✓
	२१८	X	✓
६	२५	X	✓
	१८१	X	✓
	१९४	X	✓
७	९५	X	✓
८	X	४३	✓
	५७	X	✓
	८२	X	✓
	९६	X	✓
	१६१	X	✓
	१६९	X	✓
	१७२	X	✓
९	११४	X	✓
	१३०-१३१	[1]१२९	✓
	१५६	X	✓
१०	७७	X	✓
	८६	X	✓
	८७	X	✓

1. युग्मस्थाने एक एव श्लोकोऽस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्गः	हीमु०	हीसुं०	हील०
	८८	X	✓
	८९	X	✓
	९०	X	✓
	९१	X	✓
	१३१	X	✓
[1]११	१५८	X	
१२	१३०	X	
१३	३२	X	
	२२७	X	
१४	८७	X	
	८८	X	
	१९८	X	
	X	१५९	
	२९७	X	
	३०६	X	
१५	४४	X	
	७७	X	
	८२	X	
१६	५९	X	
	६५	X	
	११३	X	
	१४२	X	
१७	५७	X	
	१११	X	
	२१४	X	

1. ११/१०त आरभ्य हीलप्रतौ हीसुंवदेव पाठो दृश्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

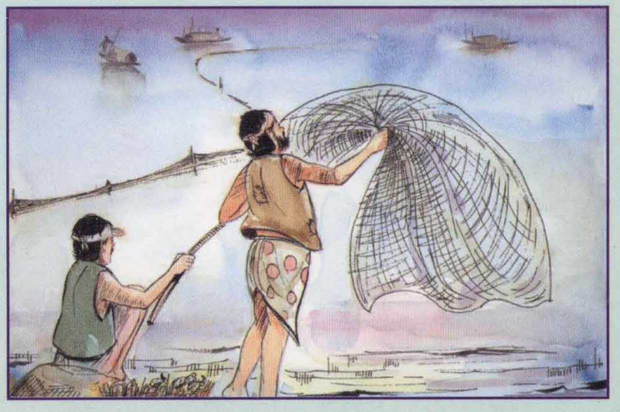

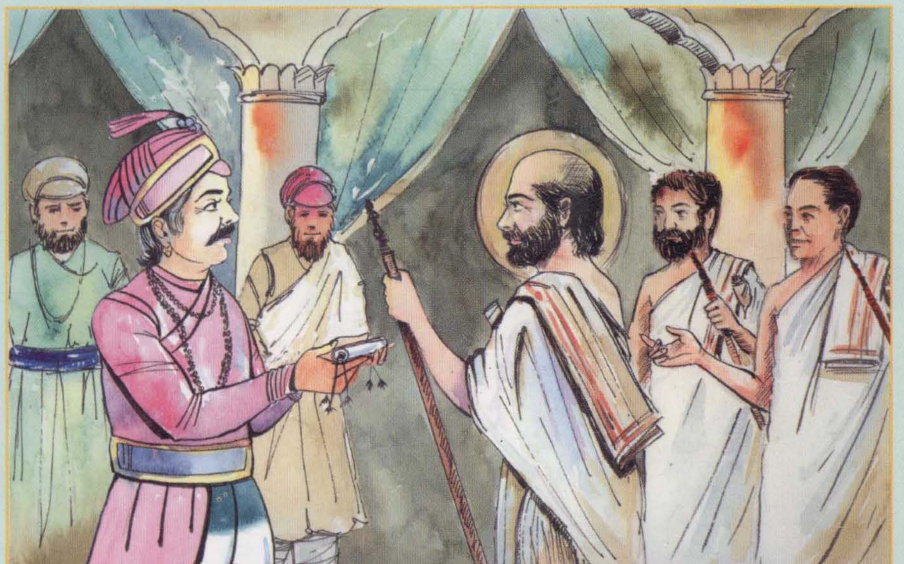

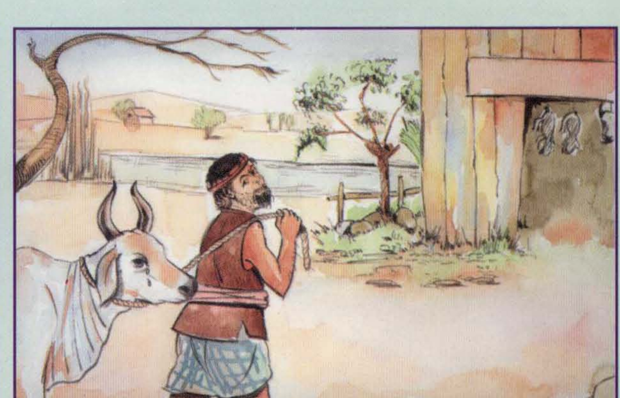

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org